भगवान महावीर पच्चीस-सौवें निर्वाण-महोत्सव समारोह
के उपलक्ष्य में

प्रकाशक :
श्री मरुधरकेशरी साहित्य प्रकाशन समिति
जोधपुर-ब्यावर

प्रेरक : श्री रजत मुनि
संपादक :
श्री सुकन मुनि

प्रथम आवृत्ति :
वि०सं० २०३० आषाढीपूर्णिमा

मुद्रणव्यवस्था :
संजय साहित्य संगम, आगरा-२
मुद्रक :
रामनारायन मेड़तवाल
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस, आगरा-२

मूल्य : आठ रुपये मात्र

अभिनन्दन

'प्रवचन सुधा'

(मनहर छंद)

मिटाने को मोह माया, जग-जाल जलाने को
श्रीखण्ड - सी प्रवचन-सुधा सुधा सम है।
प्रमत्त न दमो दीह, मान खुला तोल देती
वर रूप सिद्धि देनी, मोक्ष ही के सम है।
चमकते भाव-उडु, ज्योति को जगावे नित
नहीं होती भव भीर ज्ञान भी न कम है।
सुनि सुठि भाव मरुधर केशरी के मित,
धाम धाम पहुचाना, 'सुकन' सुगम है।

× × ×

(हरिगीतिका)

प्रवचन-सुधा का पात्र पाठक ! ज्ञान से भरपूर है।
आत्म - भाव प्रबोध करता, तम हटाता दूर है॥
पढलो समझलो कार्य मे, परिणत 'सुकन' कर लो जरा।
मोक्षगामी हो अवसि, उपदेश है सच्चा खरा॥ १॥

प्रकाशकीय

ज्ञान मनुष्य की तीसरी आँख है। यह आँख जन्म से नहीं, किन्तु अभ्यास और साधना के द्वारा जागृत होती है। कहना नहीं होगा, इस दिव्य नेत्र को जागृत करने में सद्गुरु का सहयोग अत्यन्त अपेक्षित है। सद्गुरु ही हमारे इस दिव्य चक्षु को उद्घाटित कर सकते हैं। उनके दर्शन, सत्संग, उपदेश और प्रवचन इसमें अत्यन्त सहायक होते हैं। इसलिए सद्गुरुओं के प्रवचन सुनने और उस पर मनन करने की आज बहुत आवश्यकता है।

बहुत से व्यक्ति सद्गुरुदेव के प्रवचन सुनने को उत्सुक होते हुए भी वे सुन नहीं पाते। चूंकि वे सुदूर क्षेत्रों में रहते हैं, जहां सद्गुरुजनों का चरण-स्पर्श मिलना भी कठिन होता है।

ऐसी स्थिति में प्रवचन को साहित्य का रूप देकर उनके हाथों में पहुंचाना और भगवद्वाणी का रसास्वादन करवाना एक उपयोगी कार्य होता है। ऐसे प्रयत्न हजारों वर्षों से होते भी आये हैं। इसी शुभ परम्परा में हमारा यह प्रयत्न है श्री मरुधरकेसरी जी म० के प्रवचन साहित्य को व्यवस्थित करके प्रकाशित कर जन-जन के हाथों में पहुँचाना।

यह सर्वविदित है कि श्री मरुधरकेसरी जी म० के प्रवचन बड़े ही सरस, मधुर, साथ ही हृदय को आन्दोलित करने वाले, कर्तव्यबुद्धि को जगाने वाले और मीठी चोट करने वाले होते हैं।

उनके प्रवचनों मे सामयिक समस्याओं पर और जीवन की पेचीदी गुत्थियों पर बड़ा ही विचारपूर्ण समाधान छिपा रहता है, साथ ही उनमें बड़ा चुटीलापन और रोचकता भी रहती है, जो श्रोता और पाठक को चुम्बक की भांति अपनी ओर खींचे रखते है। इसलिए हमें विश्वास है कि यह प्रवचन साहित्य पाठकों को रुचिकर और मनोहर लगेगा।

श्री मरुधरकेसरी साहित्य-प्रकाशन समिति के द्वारा मुनिश्री जी का कुछ महत्वपूर्ण साहित्य प्रकाशित किया गया है, और अभी बहुत सा साहित्य, कविताएँ, प्रवचन आदि अप्रकाशित ही पड़ा है। हम इस दिशा में प्रयत्नशील हैं कि यह जनोपयोगी साहित्य शीघ्र ही सुन्दर और मनभावने रूप में प्रकाशित होकर पाठकों के हाथों मे पहुंचे।

इन प्रवचनो का संपादन मुनिश्री के विद्याविनोदी शिष्य श्री सुकन मुनि जी के निर्देशन मे किया गया है। अतः मुनिश्री का तथा अन्य सहयोगी विद्वानो का हम हृदय से आभार मानते है।

पुस्तक को मुद्रण आदि की दृष्टि से आधुनिक साज-सज्जा के साथ प्रस्तुत करने मे श्रीचन्दजी सुराना 'सरस' का हार्दिक सहयोग हमे प्राप्त हुआ है, जिसे भुलाया नहीं जा सकता।

अब यह पुस्तक पाठको के हाथो में प्रस्तुत है— इसी आशा के साथ कि वे इसके स्वाध्याय से अधिकाधिक लाभ उठायेंगे।

—पुखराज सिशोदिया

अध्यक्ष

श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति

दो शब्द

साधारण मनुष्य की वाणी 'वचन' कहलाती है, किन्तु किसी ज्ञानी, साधक एवं अन्तर्मुखी चिन्तक की वाणी 'प्रवचन' होती है। उसकी वाणी में एक विशिष्ट बल, प्रेरणा और दिव्यता-भव्यता का चमत्कार छिपा रहता है। श्रोता के हृदय को सीधा स्पर्श कर बिजली की भांति आन्दोलित करने की क्षमता उस वाणी में होती है।

प्रवचन-सुधा के प्रवचन पढ़ते समय पाठक को कुछ ऐसा ही अनुभव होगा इन प्रवचनों मे जितनी सरलता और सहजता है, उतना ही चुटीलापन और हृदय को उद्बोधित करने की तीव्रता भी है। मुनिश्री की वाणी बिल्कुल सहज रूप में नदी प्रवाह की भांति वहती हुई सी लगती है, उसमें न कृत्रिमता है, न घुमाव है और न व्यर्थ का शब्दो का उफान! ऐसा लगता है, जैसे पाठक स्वयं वक्ता के सामने खड़ा है, और साक्षात् उसकी वाणी सुन रहा है प्रवचनों की इतनी सहजता, स्वाभाविकता और हृदय-स्पर्शिता बहुत कम प्रवक्ताओं में मिलती है।

इन प्रवचनों मे जीवन के विविध पक्षों पर, विभिन्न समस्याओ पर मुनिश्री ने बड़े ही व्यावहारिक और सहजगम्य ढंग से अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है। कही-कही विषय को ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक दृष्टि से व्यापक बनाकर उसकी गहराई तक श्रोताओं को ले जाने का प्रयत्न भी किया गया है। इससे प्रवचनकार की बहुश्रुतता, और सूक्ष्म-प्रतिभा का भी स्पष्ट परिचय मिलता है।

प्रवचनकार मुनिश्री मिश्रीमलजी सचमुच 'मिश्री' की भाति ही एक 'कठोर-मधुर' जीवन के प्रतीक है। उनके नाम के पूर्व 'मरुधरकेसरी और कही-कही 'कडकमिश्री' विशेषणो का भी प्रयोग होता है—यह विशेषण उनके व्यक्तित्व के बाह्य-आभ्यन्तर रूप को दर्शाते हैं।

मिश्री—की दो विशेषताएँ है, मधुर तो वह है ही, उसका नाम लेते ही मुह मे पानी छूट जाता है। किन्तु उसका बाह्य आकार बडा कठोर है यदि ढले की तरह उसको फेककर किसी के सिर मे चोट की जाय तो खून भी आ सकता है। अर्थात् मधुरता के साथ कठोरता का एक विचित्र भाव-'मिश्री' शब्द मे छिपा है। सचमुच ऐसा ही भाव क्या मुनिश्री के जीवन में नही है ?

उनका हृदय बहुत कोमल है, दयालु है। किसी को सकटग्रस्त, दुखी व सतप्त देखकर मोम की भाँति उनका मन पिघल जाता है। मिश्री को मुट्ठी मे बद कर लेने से जसे वह पिघलने लगती है, वैसे ही मुनिश्री किसी को दुखी देखकर भीतर-ही-भीतर पिघलने लगते है, और करुणा-विगलित होकर अपने वरदहस्त से उसे आशीर्वाद देने तत्पर हो जाते हैं। जीव दया, मानव-सेवा, साधर्मिवात्सल्य आदि के प्रसगो पर उनकी असीम मधुरता, कोमलता देखकर लगता है, मिश्री का माधुर्य भी यहा फीका पड जाता है!

उनका दूसरा रूप है—कठोरता! समाज व राष्ट्र के जीवन मे वे कही भी भ्रष्टाचार देखते है, अनुशासनहीनता और साम्प्रदायिक द्वन्द्व, झगडे देखते हैं तो पत्थर से भी गहरी चोट वहा पर करते हैं। केसरी की तरह गर्जना करते हुए वे उन दुर्गुणो व बुराइयो को ध्वस्त करने के लिए कमर कस कर खडे हो जाते हैं। समाज मे जहा-तहा साप्रदायिक तनाव, विरोध और आपस के झगडे होते हैं—वहा प्राय मरुधरकेसरी जी के प्रवचनो की कडी चोट पडती है, और वे उनका अन्त करके ही दम लेते हैं।

लगभग अस्सी वर्ष के महास्थविर मुनिश्री मिश्रीमलजी महाराज के हृदय मे समाज व सघ की उन्नति, अभ्युदय और एकता व सगठन की तीव्र तडप है।

एकता व संगठन के क्षेत्र में वे एक महत्वपूर्ण कड़ी की भांति स्थानकवासी श्रमण संघ में सदा-सदा से सन्माननीय रहे हैं। समाज सेवा के क्षेत्र में उनका देय बहुत बड़ा है। राजस्थान के अंचलों में गांव-गांव में फैले शिक्षाकेन्द्र, ज्ञानभंडार, वाचनालय, उद्योगमन्दिर, व धार्मिकसाधना केन्द्र उनके तेजस्वी कृतित्व के बोलते चित्र हैं। विभिन्न क्षेत्रों मे काम करनेवाली लगभग ३५ संस्थाएँ उनकी सद्प्रेरणाओं से आज भी चल रही हैं, अनेक संस्थाओं, साहित्यिको, मुनिवरों व विद्वानों को उनका वरद आशीर्वाद प्राप्त होता रहता है। वे अपने आप में व्यक्ति नहीं, एक संस्था की तरह विकासोन्मुखी प्रवृत्तियों के केन्द्र है।

मुनिश्री आशुकवि है। उनकी कविताओं में वीररस की प्रधानता रहती है, किन्तु वीरता के साथ-साथ विरक्ति, तपस्या और सेवा की प्रबल तरंगे भी उनके काव्य-सरोवर मे उठ-उठ कर जन-जीवन को प्रेरणा देती रही हैं।

श्री मरुधरकेसरी जी के प्रवचनों का विशाल साहित्य संकलित किया पड़ा है, उसमें से अभी बहुत कम प्रवचन ही प्रकाश में आये हैं। इन प्रवचनों को साहित्यिक रूप देने में तपस्वी कविरत्न श्रीरूपचन्द जी म० 'रजत' का बहुत बड़ा योगदान रहा है। उनकी अन्तर् इच्छा है कि मरुधर केसरी जी म० का सम्पूर्ण प्रवचन साहित्य एक माला के रूप में सुन्दर, रुचिकर और नयना-भिराम ढंग से पाठकों के हाथों में पहुंचे। श्री 'रजत' मुनि जी की यह भावना साकार होगी तो अवश्य ही साहित्य के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण कृतियां हमें प्राप्त हो सकेंगी। विद्याप्रेमी श्री सुकन मुनिजी की प्रेरणाओं से इन प्रवचनों का संपादन एवं प्रकाशन शीघ्र ही गति पर आया है, और आशा है भविष्य में भी आता रहेगा।

मुझे विश्वास है, प्रवचन-सुधा के पाठक एक नई प्रेरणा और कर्तव्य की स्फूर्ति प्राप्त कर कृतार्थता अनुभव करेंगे।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

अनुक्रमणिका

प्रवचन-सुधा

१ | देव तू ही, महादेव तू ही

ससार में प्रत्येक वस्तु का प्रतिपक्ष अवश्य है। देखो—अमृत का प्रतिपक्षी विप है, धूप की प्रतिपक्षी छाया है, लाभ की प्रतिपक्षी हानि है, यश का प्रतिपक्षी अपयश है और सम्पन्नता की प्रतिपक्षी दरिद्रता है। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं के भी प्रतिपक्षी जानना चाहिए। इन प्रतिपक्षियों की संसार में सर्वत्र घुड-दौड़ चल रही है। कभी यदि एक का वेग बढ़ता है तो कभी दूसरे का वेग बढ़ता है। जब जिसका वेग जोरदार होता है, तब वह अपने प्रतिपक्षी को दबा देता है। यदि अन्धड़ आकाश में अधिक छा जाता है, तो तावड़ा कम हो जाता है। यदि पुण्यवानी का उदय प्रबल होता है तो दरिद्रता घट जाती है और यदि पाप का तीव्र उदय होता हे तो दरिद्रता आ घेरती है। इसलिए कवि कहता है कि—

रवि उगते कुमति-घटा विलायी सुमति आई।

अर्थात्—सूर्य का उदय होते ही अन्धकार का नाश हो जाता है। यहा तक कि जहां पर सूर्य की किरणें नही पहुंच पाती है, ऐसे तल घर गुफा आदि में भी इतना प्रकाश पहुंच ही जाता है, कि वहा पर रहने वाले मनुष्य को भी सूर्य के उदय का आभास हो ही जाता है। और भी कहा है—

तारो की ज्योति से चांद छिपे नहिं, सूर्य छिपे नहि बादल छाया,
जंग जुरे रजपूत छिपे नहिं, दाता छिपे नहि मांग न आया।
चंचल नारि के नैन छिपे नहीं, नीच छिपे नहीं ऊँच पद आया,
जोगी के भेष अनेक करें, पर कर्म छिपे न भभूति लगाया॥

शास्त्रो मे बताया गया है कि ६६९७५ कोडाकोडी तारे है। परन्तु उनसे क्या चन्द्र छिपता है ? नही छिपता। चन्द्र के प्रकाश के सामने वे सब टिम-टिमाते दृष्टि गोचर होते हैं। आकाश मे मेघ घटा कितनी भी छा जाय, परन्तु सूर्य का अस्तित्व नही छिपता है। यदि युद्ध की भेरी बजाने लगे तो असली राजपूत चुपचाप ठहर नही सकता है, वह तुरन्त तैयार होकर और शस्त्रास्त्र ले कर युद्ध के मैदान मे जा पहुचेगा। ऐसे समय उसका क्षत्रियत्व छिप नही सकता है। यदि याचक जन द्वार पर आकर याचना करे, तो दाता भी छिपता नही है। उसके कानो मे याचक के शब्द पहुचे नही, कि वह तुरन्त आकर उस याचक की इच्छा पूरी करेगा। जिस स्त्री ने लज्जा और शील को जलाञ्जलि दे दी और कुलीनता को पलीता लगा दिया। ऐसी चचल मनो-वृत्ति वाली स्त्री भी छिपाए नही छिपेगी, उसके चचल नेत्र उसके हृदय की चचलता को प्रकट कर ही देंगे। कोई नीच व्यक्ति यदि कितने ही ऊँचे पद पर जाकर के बैठ जाय, परन्तु उसकी नीचता भी छिपी नही रहेगी। इसी प्रकार यदि कोई बदमाश या दुराचारी मनुष्य शरीर मे भस्म लगा कर साधु का भेष भी धारण कर लेवे, परन्तु उसके भी कर्म छिपाये नही छिपेंगे। किन्तु जो सच्चे साधु है, जिन्होने ससार, देह और भोगो से विरक्त होकर साधुपना अगीकार किया है, उनके पास बाहिर मे कुछ भी नही होते हुए भी अन्तरग मे ऐसी शक्ति प्रगट होती है कि वह भी छिपाये नही छिपती है। वह जिधर से भी निकल जाता है, उसके त्याग और तपस्या का प्रभाव सब लोगो पर अपने आप पडता है और राजा-महाराजा लोग स्वय आकर उसके चरणो मे नम्रीभूत होते हैं। इसका कारण यह है कि उसके त्याग से प्रति समय उत्तम भाग्य का निर्माण हो रहा है और पुरातन पाप कर्म निर्जीर्ण हो रहे हैं। जिसका हृदय शुद्ध है, वह स्वय भी आनन्द का उपयोग करता है और दूसरो को भी आनन्द प्रदान करता है। ऐसा साधु जहा भी जाता है, उसके प्रभाव से लोगो का अज्ञान-अन्धकार स्वय ही दूर होने लगता है। ऐसे ही गुरुजनो के लिए ससार नमस्कार करता है। जैसा कि कहा है —

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवेनमः॥

अर्थात् अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धे बने पुरुषो के नेत्र जिसने अपने ज्ञान रूपी अजनशलाका से खोल दिए हैं, उस श्री गुरुदेव के लिए नमस्कार हो।

गुरु की महिमा

भाई, गुरु का माहात्म्य भी तभी तक है, जब तक कि वह निर्लोभी है, विषय-कषाय से दूर है। और जहां उसमें किसी भी दोष का संचार हुआ कि उसका सारा माहात्म्य समाप्त हो जाता है। जज की—न्यायाधीश की प्रतिष्ठा तब तक ही है, जब तक कि वह निर्लोभवृत्ति से अपना निर्णय देता है। और जहां उसमें लोभ ने प्रवेश किया, और रिश्वत लेना प्रारम्भ किया, वहीं उसकी सारी प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है। लोभ आने के पश्चात् ज्योतिषी का ज्ञान, मंत्रवादी का मंत्र-प्रयोग, चिकित्सक की चिकित्सा और पंचों की पंचायत भी समाप्त होते देर नहीं लगती है।

किन्तु जिस व्यक्ति में स्वाभिमान है, वह अपने पद का विचार करता है अतः वह ऐसा कोई भी काम नहीं करता है, जिससे कि उसके पदकी प्रतिष्ठा में आघात पहुँचे। स्वाभिमानी या मनस्वी व्यक्ति के पास धन, परिवार, बल, बुद्धि आदि सब कुछ होते हुए भी वह विचारता है कि यह सब मेरा कुछ भी नहीं है। ये सब तो पुण्यवानी से प्राप्त वस्तुएँ है। जिस समय पुण्यवानी समाप्त हो जायगी उसी समय इन सब के भी समाप्त होने में देर नहीं लगेगी। मेरा ज्ञानानन्दमयी स्वभाव सदा मेरे पास है। फिर मैं उसका स्वाभिमान न करके उन पर वस्तुओं का अभिमान क्यों करूँ जो कि क्षणभंगुर है। इस प्रकार वह ससार की किसी भी वस्तु का अहंकार नहीं करता है।

भाइयो, एक सूर्य का उदय होने पर सारे संसार के अन्धकार का नाश हो जाता है। दुनिया के जितने भी कार्य है, वे सब सूर्य के पीछे ही हैं। सूर्य के उदय होने पर ही किसान किसानी को, व्यापारी व्यापार को, मजदूर मजदूरी को और दानी दान को भलीभांति सम्पन्न करता है। यह अन्धकार भी एक प्रकार का नहीं है, किन्तु अनेक प्रकार का है। आलस्य और प्रमाद भी सूर्य से दूर होता है। पूर्व समय में लोग जन्म-मरण और परण (विवाह) आदि मे सूर्य, चन्द्र की साक्षी देते थे। दान भी दिन में ही दिया जाता था, विवाह भी दिन में ही होते थे और मन सम्मान के समारोह भी दिन में ही होते थे। परन्तु आज तो किसी भी बात की मर्यादा नहीं रही है। संसार में सभी दुर्गुण एक कुमति के पीछे चलते है और सभी सद्गुण एक सुमति के पीछे चलते हैं। सद्गुरु की शिक्षा के प्राप्त होते ही सभी गुण स्वयमेव प्राप्त होने लगते है। किन्तु गुरु भक्ति के बिना कुछ भी नही है। सदाचार या चारित्र का प्रसार गुरु भक्ति के होने पर ही होता है। अतः कहा गया है कि—

गुरौभक्ति गुरौ भक्ति गुरौभक्तिः सदाऽस्तु मे।
चारित्रमेव संसार-वारणं मोक्षकारणम् ॥

मेरे हृदय मे गुरु के प्रति भक्ति सदा ही बनी रहे, सदा ही बनी रहे। क्योंकि उनके प्रताप और प्रसाद से ही भव्यजीवों के हृदय में चारित्र का भाव जागृत होता है। और यह चारित्र ही संसार का निवारण करनेवाला है और मोक्ष का कारण है।

लोग कहते हैं कि अरिहन्त, सिद्ध बड़े हैं, ब्रह्मा, विष्णु और महेश बड़े हैं। परन्तु उनका यह बड़प्पन किसने बताया क्या? हमने उनको देखा है? या उनसे बातचीत की है? उनके गुणों को किसने बताया? अरिहन्त और सिद्ध की पहिचान किसने बतलायी? पंच परमेष्ठियों के गुण किसने बतलाये? सबका उत्तर यही है कि गुरु के प्रसाद से ही यह सब जानकारी प्राप्त हुई है। यदि गुरु न होते तो संसार में सर्वत्र अन्धकार ही दृष्टिगोचर होता। इसलिए सबसे बड़ा पद गुरु का ही है। इसी कारण से श्री दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है कि—

जस्संतिए धम्मपयाइ सिक्खे तस्संतिए वेणइयं पउंजे।
सक्कारए तस्सणं पंचएण काएण वाया मणसावि णिच्चं ॥

अर्थात् जिसके समीप धर्म के पदों को सीखे उसका सदा विनय करना चाहिए, उसको पंचांग नमस्कार करे और मन, वचन काया से उसका नित्य सत्कार करे।

तीर्थंकर जैसे महापुरुष भी पूर्व भव में गुरु के प्रसाद से दर्शन-विशुद्धि आदि बीस बोलों की आराधना करके तीर्थंकर नाम गोत्र का बन्ध करते हैं। पुनः तीर्थंकर बनकर जगत का उद्धार करते हुए मोक्ष को प्राप्त करते हैं। यह सब गुरुभक्ति का प्रसाद है। भाई, गुरु के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता है।

लोभ छोड़िए

मनुष्य को अपनी उन्नति करने के लिए आवश्यक है कि वह लोभ का परित्याग करे। धन के लोभ को ही लोभ नहीं कहते हैं, अपि तु मान-प्रतिष्ठा का मोह भी लोभ कहलाता है। परिवार की वृद्धि का लोभ भी लोभ है और किसी भी प्रकार की संग्रह-वृत्ति या लालसा को भी लोभ ही कहते हैं। मनुष्यों को शरीर का भी लोभ होता है कि यदि हम तपस्या करेंगे तो हमारा शरीर दुर्बल हो जायगा। भाई लोभ को पाप का बाप कहा जाता है। यह लोभ सर्व अवगुणों का भंडार है। और भी कहा है कि 'लोहो सव्व विणासणो' अर्थात् लोभ सर्व गुणों का विनाशक है। लोभ से, इस परिग्रह के संचय की वृत्ति से मनुष्य क्या क्या अनर्थ नहीं करता है। किसी ने ठीक कहा है कि—

बेटा मारे बाप को, नारि हरे भरतार।
इस परिग्रह के कारणे, अनरथ हुए अपार ।।

भाई, संसार में यदि देखा जाय तो बाप और बेटे का सम्बन्ध सबसे बड़ा है। परन्तु लोभ के वशीभूत होकर बेटा बाप को मार देता है और बाप बेटे को मार देता है। पति अपनी पत्नी को और पत्नी अपने पति को मार देती है। इस प्रकार संसार में इस परिग्रह के कारण आज तक अपार अनर्थ हुए हैं।

और भी देखो—प्रातः काल चार बजे से लेकर रात्रि के १० बजे तक एक नौकर जो मालिक की अनेक प्रकार की बातें सुनता हैं, गालियों को सहन करता है, उसके साथ देश-विदेश में जाता है और नाना प्रकार के संकटों को उठाता है, वह सब लोभ के पीछे ही तो है। यह भौतिक मकान तो लोहे-पाषाण के थंभों के आधार पर ठहरता है। परन्तु लोभ का महल बिना थंभों के अधर ही आकाश में निर्मित होता है। मनुष्य आकाश का पार भले ही पा लेवे, परन्तु लोभ के पार को कोई नहीं पा सकता है। अन्याय, छल, छिद्र, कपट और धोखा आदि यह सब कुछ लोभ ही कराता है।

किन्तु जिसने अपने आत्मा के पद को पहिचान लिया कि मैं तो सत्-चिद्-आनन्दमय हूं, वह फिर इन भौतिक पर पदार्थों का अभिमान नहीं करता है। वह सोचता है कि मेरा पद तो सर्वोपरि है, उसके सामने संसार के बड़े से बड़े भौतिक पद भी तुच्छ हैं—नगण्य हैं, ऐसा समझ कर वह किसी भी सांसारिक वस्तु का अभिमान नही करता है। यहां तक कि वह फिर अपनी जाति का, कुल का, विद्या का, बल का और शरीर-सौंदर्य आदि का भी अभिमान नहीं करता है।

स्वभाव क्यों छोड़ें ?

एक बार एक भाई एक महात्मा के पास पहुंचा और उसने पूछा - महाराज, मुझे दुःख क्यों होता है, भय क्यों लगता है और नाना प्रकार की चिन्ताएँ क्यों सताती है? इसका क्या कारण है? कोई ऐसा उपाय बतलाइये कि जिससे में इन सबसे विमुक्त हो जाऊं? और मेरी आत्मा में शान्ति आ जाय? महात्मा ने कहा—देख, मैं एक उपाय बतलाता हूं। यदि तू उस पर अमल करेगा, तो अवश्य शान्ति को प्राप्त होगा। वह उपाय यह है कि "जो हूं, तो मैं हूं, और मेरे से बढ़कर संसार में और कोई नहीं है। जैसा मैं काम कर सकता हूं, वैसा दूसरा कोई नहीं कर सकता। बस यह विचार मन में ले आ। फिर तुझे कोई चिन्ता नहीं सतावेगी।" उसने महात्माजी की यह बात अपने

हृदय मे धारण कर ली और तदनुसार प्रवृत्ति करने लगा। अब उस के पश्चात् यदि कोई उसे कुछ भला-बुरा कहता, तो वह उसके कहने को बुरा नही मानता। प्रत्युत यह सोचता है कि मुझ से बढकर कोई दूसरा बुरा नहीं है और मुझसे बढकर कोई भला भी नही है। मै तो सदा सत्-चिद्-आनन्दमय हूं। मेरे भीतर जो चिन्ता, भय, आशा और लोभादिक दुर्गुण थे, वे सब गुरुदेव की कृपा से निकल गये हैं। अब वह किसी की निंदा भी नहीं करता है और सबसे हंसकर बोलता है। यदि कोई उसकी निन्दा भी करता है तो भी वह उससे हंसकर ही बोलता है। उसके इस परिवर्तन से उसका यश सर्वं और फैल गया और सब लोग कहने लगे कि अरे, यह तो गृहस्थाश्रम मे रहते हुए भी महात्मा बन गया है। अब सभी लोग उसे बहुत भला आदमी मानने लगे।

भाई, ससार मे कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जिन्हे दूसरो का उत्कर्ष, यश या बडप्पन सहन नही होता है। उसके पडौस मे भी एक ऐसा ही व्यक्ति रहता था। उसे इसका यश सहन नही हुआ और उसने प्रतिदिन प्रात काल अपने घर का कूडा-कचरा उसके घर के आगे डालना प्रारम्भ कर दिया। वह बिना कुछ कहे उसे उठाकर कचरा-घर मे फेंक आता। यह देख उसकी स्त्री कहने लगी— आप उन कचरा डालनेवाले से कुछ भी नहीं कहते हैं? पर वह उत्तर देता, यदि वह अपना स्वभाव नही छोडता है, तो मै क्यो अपना स्वभाव छोडू ? अपना कचरा उठाकर कूडा-घर मे डालना ही पडता है, फिर जरा-सा और उठाकर डाल देने मे क्या कष्ट है? फिर जिस चबूतरी पर वह कचरा डालता है, वह तो पत्थर की बनी है। वह मेरी आत्मा पर तो नही डाल सकता है। इसलिए अपन को समभाव मे रहना चाहिए। दुनिया की जैसी मर्जी हो, वह वैसी करती रहे। उससे अपना क्या बनता—बिगडता है। इसप्रकार इस व्यक्ति ने स्त्री को समझाकर शान्त कर दिया और स्वय भी शान्ति मे रहने लगा।

धीरे धीरे उस पडौसी की हरकते दिन पर दिन बढने लगी। अब वह मकान के भीतर भी अपना कचरा डालने लगा। उसके ग्राहको को भडकाने लगा और उसकी बदनामी भी करने लगा। परन्तु वह शान्तिपूर्वक इन सब बातो को सहन करता रहता और अपने गुरुदेव के द्वारा दिये हुए मत्र का पालन करता हुआ अपने मे मग्न रहता। इस प्रकार दोनो अपने-अपने स्वभाव से काम करते रहे और पाच वर्ष बीत गये। सब नगर-निवासी कहने लगे कि देखो—यह पडौसी कितना नीच है जो वर्षो से उसके घर पर कचरा फेंकता चला आरहा है और इसे तग करता रहता है। परन्तु वह लोगो को मना कर

देता कि भाई इसके कूड़ा कचरा फेंकने से मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ता है। मैं तो जैसा हूं, वैसा ही हूं। मेरे हाथ, नाक, कान, जीभ आंख और हाथ-पैरों में कोई कमी या कसर थोड़े ही पड़ती है। कसर तो शोक, चिन्ता और दुःख से पड़ती है। सो यह सब गुरु महाराज ने दूर कर दी है। अब मुझे दुःख का क्या काम है? पड़ौसी भी उसकी और उसकी स्त्री की यह शान्ति देखकर आश्चर्य करता है, परन्तु अपनी हरकत से बाज नहीं आता है।

एक दिन नगर के बाहिर महादेव जी का मेला था। पड़ौसी ने स्नानकर बढ़िया कपड़े पहिने और एक नई मटकी में मल-मूत्रादि भर कर उसे ढक्कन ऊपर से बांध दिया और उसके ऊपर एक शाल रखकर और हाथ में छड़ी लेकर घर से बाहिर निकला। इसी समय वह भला आदमी भी मेले में जाने के लिए घर से बाहिर निकला। उसे देखते ही यह दुष्ट बोला—भाई साहब! यदि यह घड़ा आप मेले तक पहुंचा देंगे तो बड़ी कृपा होगी। उसने भी हंसते हुए वह घड़ा ले लिया और मेले को चल दिया। वह उसके पीछे इस शान से छड़ी घुमाते हुए चल रहा था, मानों यह मालिक है और नौकर मटकी लिए आगे चल रहा है। जब वे दोनों मेले के बीच में पहुंचे तो उस दुष्ट ने सबके सामने अपनी छड़ी को घुमाकर उस घड़े पर दे मारी। घड़े के फूटते ही उसमें भरी हुई सारी गन्दगी से वह भला आदमी लथ-पथ होगया। फिर भी वह खिल-खिलाकर हंसने लगा। यह देख पड़ौसी बोला—भाई, क्यों हंसे? वह बोला—भाई, आप जितने भी प्रसंग मेरे बुरे के लिए बनाते हैं। उनसे मेरा बड़ा उपकार हो रहा है। अनेक भवों के संचित ये सब दुष्कर्म आपके निमित्त से उदीर्ण होकर निर्जीण हो रहे हैं। यदि आप निमित्त न बनते तो पता नहीं, आगे ये कब उदय मे आते और मै उस समय समभाव से इन कर्मों का उदय सहन भी कर पाता, या नहीं? आपके सुयोग से मैं अभी ही इस कर्म-भार से हल्का हो गया हूं। इसलिए आपको लाख-लाख धन्यवाद है। यह सुनते ही वह पड़ौसी उसके चरणों में पड़ गया और कहने लगा—भाई, मुझे माफ करो। आज तक मैंने आपको क्रोधित करने के लिए अनेक प्रयत्न किये और आज तो सबसे अधिक दुर्व्यवहार इस भरे मेले में आपके साथ किया। परन्तु आपने अपनी अगाध शान्ति का परिचय दिया है। आप में सच्ची मानवता के दर्शन आज मैंने किये हैं। मैं अपने अपराधों की सच्चे दिल से क्षमा याचना करता हूं। आशा ही नही, पूर्ण विश्वास है कि आप मुझे क्षमा करेंगे। आप अपने कपड़े खोल दीजिए, मैं अभी तालाब में धोकर लाता हूं और आपको स्नान कराता हूं। उसने कहा—भाई, आज तक आप जो कुछ करते रहे, सो आप तो निमित्त मात्र थे। उदय तो मेरे पाप कर्मों का था। मुझे तो इस बात का

दुःख है कि मेरे निमित्त से आज तक आपको इतना संक्लेश उठाना पड़ा और दुष्कर्मों का बन्ध करना पड़ा। मेरी ओर से आपके प्रति पूर्ण क्षमा भाव है। रही कपड़े धोने की बात, तो अभी शरीर में इतनी सामर्थ्य है कि यह काम मैं स्वयं कर लूंगा। इसके लिए आपको कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं है। यह सुन पड़ौसी स्तम्भित-सा रह गया। उस दिन के पश्चात् वह पड़ौसी उसके नाम की माला प्रातः सायं काल फेरने लगा और उसका सच्चा भक्त बन गया। सर्व ओर वह उसके गुण-गान करने लगा। उसकी इस भक्ति को देखकर एक देवता ने परीक्षार्थ ब्रह्मा का रूप बनाकर नगर के पूर्व की ओर आसन जमाया। सारे नगर-निवासी लोग उसकी वन्दना के लिए गये। मगर यह पड़ौसी नहीं गया। बोला—सच्चा ब्रह्मा तो मेरे पड़ौस में ही रहता है। दूसरे दिन उस देवता ने विष्णु का रूप बनाकर दक्षिण दिशा में आसन जमाया। सब लोग उसकी वन्दना को गये, मगर यह नहीं गया। तीसरे दिन उस देवता ने महादेव का रूप बनाकर नगर के पश्चिम में और चौथे दिन कामदेव का रूप बनाकर नगर के उत्तर में आसन जमाया। मगर वह कहीं भी किसी की वन्दना के लिए नहीं गया और सबसे यही कहता रहा कि सच्चा ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और कामदेव तो मेरा पड़ौसी ही है। इसके अतिरिक्त कोई बड़ा मेरे लिए नहीं है। जिसने सर्व प्रकार के अहंकार का परित्याग कर दिया है और जो स्वात्मनिष्ठ है, और स्वाभिमानी है, मैं तो उसे ही हाथ जोड़ता हूं। जो सांसारिक प्रपचों में फंस रहे हैं, जिनके माया-मोह लग रहा है, जो राग-द्वेष से भरे हुए हैं, जिनका मन स्वयं अशान्त है, ऐसे व्यक्ति कैसे पूज्य हो सकते हैं। मैं तो अपने इस पड़ौसी को उन सबसे बढ़कर देखता हूं, इसलिए मेरा तो यही आराध्य है, पूज्य है और मेरा यही सर्वस्व है। भाई, दूसरे के हृदय का परिवर्तन इस प्रकार किया जाता है और अपने ऊपर विजय इस प्रकार सहनशील बनकर प्राप्त की जाती है। जिसे अपने आपका भान हो जाता है, वही सच्चा स्वाभिमानी बन सकता है। भौतिक वस्तुओं के अभिमान को तो दर्प, मद या अहंकार कहते हैं। इसलिए मनुष्यों को इन भौतिक वस्तुओं का मद न करके अपने आत्म-गुणों का अभिमान करके उन्हें प्राप्त करने और आगे बढ़ाते रहने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

आपके सामने मीराबाई का उदाहरण उपस्थित है। वह कुड़की के मेड़तिये की लड़की और राणा रतनसिंह की रानी थी। उसका पीहर और ससुराल दोनों ही सर्वप्रकार से सम्पन्न थे। उसे आत्म-भान हो गया, तो राणा जी की रुकावट खटकने लगी। राणा ने कहा—देख मीरा, एक म्यान में दो तलवारें

नहीं रह सकती। मेरे पीछे ही तेरा सारा सुख-सौभाग्य है। इसलिए तू इन बावली सी बातों को छोड़ दे। तब मीरा ने उत्तर दिया—'**लिया मैं तो सांवरिया ने मोल राणा**' 'सांवरिया' के 'सा' का अर्थ है वह, जो अपना था, उसे 'वरिया' अर्थात् मैंने वर लिया है। जो मेरी वस्तु थी, उसे मैंने वरण कर ली है। अब मेरा ध्यान उसके सिवाय किसी दूसरे की ओर नहीं है। उसके इस उत्तर से रुष्ट होकर राणा ने उसे कितने ही कष्ट दिये। मगर वह रंच मात्र भी अपने ध्येय से चल-विचल नहीं हुई और अपने स्वरूप में मस्त रही। उसका आत्मिक चिन्तन उत्तरोत्तर आगे बढ़ता ही गया और आज सारा भक्त समाज मीरा का पथानुगामी एवं भक्त बन रहा है।

भाइयो, भगवान महावीर ने हमें प्रारम्भ से ही यह शिक्षा दी है कि प्रत्येक आत्मा अपना भला और बुरा करने में स्वतन्त्र है। अतः दूसरा कोई सुख-दुःख देता है, यह भ्रम छोड़कर दूसरे पर इष्ट-अनिष्ट बुद्धि को छोड़कर आत्म-स्वरूप में तू स्थिर रह। अपने को मेरे समान समझ। और जिस मार्ग पर चलकर मैं साधारण आत्मा से परमात्मा बना हूं, तू भी इसी मार्ग को अपना करके आत्मोद्धार कर। दीनवृत्ति को छोड़कर मनस्वी और स्वाभिमानी बन। संसार के सबसे उत्तम गुण तेरे ही भीतर भरे हुए हैं। संसार में देव भी तू ही है. महादेव भी तू ही है, संसार की समस्त ऋद्धि और समृद्धि तेरी आत्मा के अन्दर विद्यमान है। इन कर्म-पटलों को दूर करके उन्हें प्रकट कर। फिर तुझे सर्व ओर आनन्द ही आनन्द दृष्टि गोचर होगा। यह अवसर इस मानव-योनि में ही प्राप्त होता है, अन्य पशु—आदि योनियों में नहीं। अतः इस अवसर से मत चूक और अपने ध्येय को प्राप्त करने का पुरुषार्थ स्वाभिमानी बन करके कर।

वि० सं० २०२७ आसोज सुदि ५
जोधपुर

२ | नमस्कारमंत्र का प्रभाव

'ओली' यह शब्द आवली का अपभ्रंश रूप है। आवली, पंक्ति, श्रेणी और परम्परा ये सब एकार्थवाचक शब्द हैं। सनातन कहे जानेवाले वैदिक धर्म में ओली का प्रारम्भ आसोजसुदी १ से होता है, इसी को नवरात्रिका प्रारम्भ कहते हैं। किन्तु जैन सम्प्रदाय में इस नवरात्रिका प्रारम्भ आसोजसुदी ७ से होता है। जैन धर्म और वैदिक धर्म ये दो भिन्न-भिन्न ही धर्म हैं। वैदिक धर्म को ही हिन्दु धर्म कहा जाने लगा। जब मुसलमान पश्चिम की ओर से सिन्धु पर आये, तब उन्होंने इसका नाम पूछा। वहां पर कोई मारवाड़ी खड़ा था। उसने नदी का नाम हिन्दु बताया। क्योंकि मारवाड में आज भी 'स' को 'ह' बोलते हैं। जैसे—'सत्तरह' को 'हत्तरह' और 'सोजत' को 'होजत' कहते हैं। इस प्रकार सिन्धु का नाम 'हिन्दु' बोला जाने लगा और उसके इस ओर के समस्त प्रदेश को हिन्दुस्तान। इसी प्रकार हिन्दुस्तान में रहनेवालों के धर्म को हिन्दु धर्म कहा जाने लगा? वैसे इस देश का प्राचीन नाम भारत वर्ष एवं आर्यावर्त है। इस देश में मुख्य रूप से छह दर्शन या मत प्रचलित रहे हैं—बौद्ध, नैयायिक, सांख्य, मीमांसक, जैन और चार्वाक। इनमें जैनदर्शन एक स्वतन्त्र दर्शन है। इसका तत्त्व-विवेचन एवं पर्व-मान्यता आदि सभी बातें अन्य मतों से सर्वथा भिन्न हैं। जैन मतावलम्बियों के दीपावली, अक्षयतृतीया, रक्षाबन्धन आदि पर्वों का आधार भी हिन्दुधर्म से सर्वथा भिन्न है।

देवी पूजा के नाम पर

हिन्दुओं की नवरात्रि में दुर्गा के सम्मुख बकरे, भैसे आदि पशुओं की बलि चढ़ाई जाती है। हिन्दु लोग भैरव की माता को प्रसन्न करने के लिए पशुओं की हत्या करते है। कितने ही लोग अपनी सन्तान के दीर्घजीवन की आशा से और कितने ही लोग अनेक प्रकार के भयों से संत्रस्त होकर मूक पशुओं की गर्दनों पर खटाखट तलवारे-चलाते है और खून की धाराएं बहाते है। प्रारम्भ में जो आर्य धर्म हिंसा से सर्वथा रहित था, वही पीछे जाकर हिंसामय हो गया। बीच के समय में वामपंथियों का राजा लोगों पर प्रभाव बढ़ा और उन्होंने यह प्रचार किया कि हिंसा से ही शान्ति मिलती है। इस लोक में सन्तान-प्राप्ति के लिए, धनोपार्जन के लिए, तथा परलोक में स्वर्ग पाने के लिए यज्ञ करना आवश्यक है और यज्ञों में बकरे आदि मूक पशुओं का हवन करना जरूरी है। इस प्रकार का उपदेश देकर हिंसामय यज्ञों का उनके पुरोहितों ने भरपूर प्रचार किया। भाई, भली बातें तो दिमाग में बड़ी कठिनाई से जमती हैं। परन्तु बुरी बातों का प्रभाव मनुष्य पर जल्दी होता है। बायों की जाति में राती जोगा देते हैं, तो शाम से लेकर सबेरे तक गीतों का अन्त आता है क्या ? नहीं ! परन्तु यदि जैन समाज में एक चौबीसी गवाई जावे, तो वह भी शुद्ध नहीं बोल सकेंगे। उसमें अशुद्धियों की भर-मार रहेगी। अरे, चौबीसी छोड़ो और सैकड़ों स्त्रियों को नवकारमंत्र भी शुद्ध नहीं आता है। इसका कारण यह है कि लोग विषय-कषाय की प्रवृत्तियों से चिर-परिचित है। किन्तु धर्म से अभी तक भी—जैनकुल में जन्म लेने पर भी—अपरिचित ही हैं।

वामपन्थ में भी कुंडापन्थ और कांचलियापन्थ हो गये हैं। कुंडापन्थियों में पंच मकार के सेवन का भारी प्रचार रहा है। वे पंच मकार हैं—मांस, मदिरा, मद्य, मैथुन और मछली। कांचलियापन्थी कुंडापन्थियों से भी आगे बढ गये। वे लोग अपने सम्प्रदाय की स्त्रियों की कांचलिया (चोलियां) एक घड़े में डालते हैं और फिर लूट मचाते हैं। यदि बेटी की कांचली बाप के हाथ में आजाय, या सास की जमाई के हाथ में आजाय, तो वह उसके साथ मैथुन सेवन करता है। उनका कहना है कि सच्चा धर्म तो हमारे ही पास है, क्योंकि हम लोगों ने ममता को जीता है और हम लोग बिना किसी भेद-भाव के परस्पर में स्त्रियो का विनिमय करते है। वे कहते है कि अंगदान या रति-दान तो गंगा मे स्नान करने के समान पुण्य कार्य है।

आज के संसार के विषय-कषायों के पोषण करनेवाले अनेक पन्थ प्रचलित हैं। अनेक पन्थवाले रात को जंगल में जाते हैं, सगति करते है और प्राणियों

को मारते हैं। जो लोग एक बार धर्म से भ्रष्ट हो गये, वे दूसरों को भी भ्रष्ट करते रहते हैं। इससे व्यभिचार बढ़ रहा है और खान-पान भी बिगड़ रहा है। यह सब क्यों हुआ? क्योंकि सनातन सम्प्रदायवालों ने इन कुप्रवृत्तियों का प्रारम्भ होते ही उन्हें दूर करने का प्रयत्न नहीं किया। जब कोई कुप्रथा एक बार किसी सम्प्रदाय में घर कर लेती है, तब उसे दूर करना कठिन हो जाता है। यद्यपि अनेक बुद्धिमान सनातनी इन कुप्रवृत्तियों को बुरा कहते हैं और जीव-घात को महापाप कहते हैं। परन्तु कहने मात्र से कोई दुष्प्रवृत्ति दूर नहीं हो सकती। उसके लिए तो जान हथेली पर रखकर प्रचार करना होगा। तब कहीं बन्द होने की आशा की जा सकेगी।

तप-त्याग का प्रभाव

हां, तो मैं कह रहा था कि आज से जैनियों की नवरात्रि प्रारम्भ हो रही है। यहां हिंसा का काम नहीं है और न किसी प्रकार की अन्य कुप्रवृत्तियों का नामो-निशान है। यहां तो केवल दया का पालन करना है। दया को पालने के लिए इन्द्रियों के विकारों को जीतना पड़ता है। और वह तब सम्भव है, जबकि त्याग-तपस्या हो। नवरात्रियों में पहिले सब लोग आयंबिल करते थे। इन दिनों लोग नीरस, लूखा और अलूना खाते हैं। वह भी कैसा? केवल दो द्रव्य लेना, तीसरे का काम नहीं। यदि गेहूं की गूंघरी खाली तो खांखरे, चावल और रोटी नहीं खा सकते। चना लेंगे तो केवल उसे ही लेंगे। आज कल तो लोगों ने भगवान के द्वारा बतलाये हुए त्याग-प्रत्याख्यानों को तोड़मरोड़कर रख दिया। अब नाम तो ओलियों का है, परन्तु रोलियां कर रहे हैं। जैसे गेहूं में रोली लग जाती है, तो वह फिर ठीक रीति से नहीं पक सकता है। उसी प्रकार आज नाम तो ओलियो का है, परन्तु कहते हैं कि नीबू-नमक डाल दो। ढोकलियां बनाते है, तथा और भी अनेक प्रकार की खाने की वस्तुएं बनाते हैं और थोड़ा-थोड़ा सबका स्वाद लेते हैं। परन्तु आयंबिल तो वही है कि एक अन्न लिया और उसे पानी में निचोड़ कर खालिया। इस प्रकार के आयंबिल का ही महत्त्व है। इसे ही लूखा एकाशन कहते हैं। इस रीति से यदि इन नवरात्रियों में नौ आयंबिल करलें, तो यह अठाई से भी अधिक तपस्या है। कारण कि अठाई करने से जितनी शक्ति क्षीण नहीं होती हैं, जितनी कि आयंबिल करने से होती है। भूखे रहने से शक्ति नष्ट नही होती है, परन्तु नमक नहीं खाने से बहुत शक्ति नष्ट होती है। भाई, अपनी इन्द्रियों को वश में करने के लिए जैनियों की ये नवरात्रियां हैं। इन दिनों पंच परमेष्ठी के वाचक पांच पद और ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप ये चार गुण, इन नौ का जप, ध्यान, स्मरण और चिन्तन किया जाता है।

पंच परमेष्ठियों में पहिला पद अरिहन्त का है, उनका वर्ण लाल कहा गया है। दूसरा पद सिद्ध का है, उनका वर्ण श्वेत है। तीसरा पद आचार्य का है, उनका वर्ण हरा है। चौथा पद उपाध्याय का है, उनका वर्ण पीला है और पांचवां पद साधु का है, उनका वर्ण श्याम माना गया है। जिस पद का जैसा वर्ण है वैसे ही वर्ण का आयंबिल किया जाता है। इन पंच परमेष्ठियों के चार गुण है—**णमो णाणस्स, णमो दंसणस्स, णमो चरित्तस्स, णमो तवस्स।** इनमें सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को नमस्कार किया गया है। नमस्कार मन्त्र के पांचों पदों में पंच परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है। आचार्यो ने इस नमस्कार मन्त्र का माहात्म्य बतलाते हुए कहा है कि—

एसो पंच णमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेंसि पढमं हवइ मंगलं॥

अर्थात् यह पंच नमस्कार मंत्र सर्व पापों का नाश करने वाला है और सर्व मंगलों में प्रथम मंगल है।

उक्त पंच परमेष्ठी और ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप इन नव पदों का जाप नौ करोड़ प्रमाण कहा गया है। जिसके पुण्यवानी पोते होवे, वही नौ करोड़ का जाप कर सकता है। यदि पुण्यवानी न हो और कोई जाप करें तो अनेक विघ्न खड़े हो जाते हैं। भाव पूर्वक जाप करने वाले के लिए कहा गया है कि—

'नौ लख जपतां नरक टाले, नौ कोडि जपतां मोक्ष जावे'।

किन्तु भाई, माला हाथ मे चलती रहे और नींद लेते हुए कुछ का कुछ जाप करता है, तो उससे कोई लाभ नहीं है। हां, आयंबिल करो, जप करो और उन पदों के अर्थ-चिन्तन में लीन हो जाओ, तभी जाप का फल प्राप्त होता है।

भाई, ग्यारह वर्ष तक द्वारिका का कुछ नहीं बिगड़ा, जब ग्यारह वर्ष, ग्यारह मास और उनतीस दिन निकल गये और अन्तिम दिन आया, तब यादवों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई कि अब क्या द्वारिका जल सकती है। वे सोचने लगे कि अब कुछ हानि होने वाली नहीं है। कृष्ण-महाराज तो यों ही कह रहे हैं और लोगों को डरा रहे है। उस समय द्वारिका में भी नवकारसी, पोरसी और आयंबिल आदि करने वाले अनेक व्यक्ति थे। परन्तु होनहार तो हो करके ही रहती है। अन्तिम दिन यादवों के घरों में एक भी त्यागवाला नही था। भगवान् भी वहां नहीं थे। जहाँ तीर्थंकर भगवान् विराजते है, वहा सौ-सौ कोस तक ईति, भीति आदि किसी भी प्रकार का उपद्रव नही होता है।

द्वारिका पुरी इतने वर्षों तक जो अखंडित रही, वह आयंबिल का प्रताप था। जो भी व्यक्ति विश्वास-पूर्वक आयंबिल तप करे और नवकार मंत्र का एकाग्र चित्त से जप और ध्यान करे, उसके ऊपर पहिले तो किसी भी प्रकार का विघ्न, उपद्रव और चिन्ता आदि आयेंगे ही नहीं। यदि कदाचित् पूर्वोपार्जित तीव्र पाप के उदय से आ भी जाय, तो वह नियम से दूर हो जायगा। भाई, एक वार शुद्ध अन्तःकरण से नवपद का स्मरण करो, कोई भी विघ्न-बाधा नहीं आयगी। यदि जाप करते हुए विघ्न-बाधा आवे, तो समझो कि व्रत-विधान और मंत्र-पद-जाप विधिपूर्वक नहीं हो रहा है और पुण्यवानी में भी कसर है। यदि आनेवाले विघ्न टल जावें, तो समझना चाहिए कि दिन-मान अच्छे है—हमारा बेडा पार हो जायगा।

आप लोग प्रतिदिन सुनते है और आपके ध्यान में भी है कि श्रीपाल और उनके साथियों की क्या स्थिति थी ? वे कैसे संकट में पड़े और अन्त में किस पद पर पहुचे। भाई, यह सब नवपद के स्मरण का ही प्रताप है। इस नवपद की ओली आती है आसोज सुदी सप्तमी और चैत्र सुदी सप्तमी से। इस नवपद में क्या रहस्य भरा है, यदि आप शान्ति से सुनने और समझने का प्रयास करें तो आप को वह रहस्य ज्ञात हो जायगा। इस एक सज्झाय में श्रीपाल का सारा चरित्र गर्भित है और सारी बातें उसमें बता दी गई हैं। मनकी गति को रोकने के लिए यह 'ओली' बताई गई है। यदि इसे पल्ले बाधोगे, तो यह माल अन्त तक आपके साथ चलेगा। ये दुनियादारी के माल-जिन्हें आप भारी संभाल करके रखते हैं, वे साथ में जाने वाले नहीं है। परन्तु नवपद का स्मरण अवश्य साथ में जायगा। भाई, ऐसा सुवर्ण अवसर आप वार-वार चाहे तो मिलना संभव नहीं है। इसलिए प्राप्त हुए इस उत्तम अवसर को हाथ से नहीं निकलने देना चाहिए।

श्रीपालजी को गुरु महाराज ने एक वार ही आदेश दिया कि नौ आयबिल करो। उन्होंने उसे शिरोधार्य कर लिया और विधिवत् नवकार मंत्र का साधन किया। वे कोढीपन की दशा में जंगल में थे, जहां पर किसी भी प्रकार की जोगवाई नहीं थी। परन्तु स्वधर्मी भाई ने वहा पर भी सब सुविधाएं जुटा दी। एक-एक ओली में एक-एक सिद्धि मिलती है। भाई, नौ निधिया है और ये नौ ही ओलिया है। ऋद्धि-सिद्धि भी नौ ही है और सनातनियों के अनुसार दुर्गा भी नौ है। जो लोग दुर्गा पाठ करते हैं, तो उसके भी सात सौ श्लोक हैं। आपके यहा भी सप्तशती है, उसके भी सात सौ श्लोक है। इस सप्तशती का आप लोग पाठ करें और अपनी पुण्यवानी को बढावें। ये नवसिद्धि रूप

नव रात्रियां आत्मा के कल्याण के लिए है और नव ऋद्धियां संसार के कल्याण के लिए हैं। भाई, आत्मकल्याण के साथ सांसारिक कल्याण साथ में ही रहता है। जैसे खेती से गेहूं प्राप्त होता है, तो भूसा भी साथ में प्राप्त हो जाता है। उसके लिए अलग से खेती नहीं करनी पड़ती है। जो वस्तु आत्म-कल्याण करनेवाली है, वह संसार का कल्याण तो सहज मे ही करती है। इस नवकार पद का माहात्म्य बतलाते हुए कहा गया है कि—

त्रिलोकीमूल्य-रत्नेन दुर्लभः किं तुषोत्करः।

अर्थात्—जिस नमस्कार मंत्र रूप महारत्न के द्वारा तीनों लोक खरीदे जा सकते हैं, उसके द्वारा क्या भूसे का ढेर पाना दुर्लभ है ? कभी नहीं।

भाइयो, आप लोग सांसारिक सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए तो सदा उद्यत रहते है। परन्तु आत्म-कल्याण की ओर आपका ध्यान ही नहीं है। इससे न तो आपका आत्मकल्याण ही होता है और न सासारिक कल्याण ही होता है। भाई किसी की बरात में जाते हो, वहां पर जब ओली लिखते हो, तब ओली मिलती है। जब नोली का मुख खोलते हो, तब ओली मिलती है। नोली मेंसे जब रुपये बाहिर निकालते हो, तब ओली हाथ में आती है। लेने वाला आत्मा है, द्रव्य रूपी ओली है और देता है—शरीर। शरीर में से कब निकले ? जैसे नोली में से माल निकलें, इसी प्रकार इस ओली के प्रसाद से आत्मा में से भी माल मिलता है। जब आप अपना माल दुनिया को लुटाना चाहेंगे तभी आपको ओली मिलेगी।

सिद्धि साधना से मिलती है

भगवान महावीर के समवसरण में चौदह हजार सन्त थे और सभी पुण्यवान् थे। परन्तु यश प्राप्त किया धन्नाजी ने। उन्होंने साधुपना केवल नौ मास पाला। इसी प्रकार भगवान नेमिनाथ के सन्तों में ढंढण मुनि ने यश प्राप्त किया। भाई, यह यश यों ही नहीं मिल गया। किन्तु जब उन्होंने अपना सर्वस्व त्याग दिया, तब मिला है। हम कष्ट तो किसी प्रकार का उठाना चाहते नहीं, और चाहते है कि जोधपुर और जयपुर का राज्य मिल जाय ? तो कैसे मिल सकता है ? आप लोग आकरके कहा करते हैं कि महाराज, कोई मंत्र बताने की कृपा करें, जिससे कि हमारा दरिद्र दूर हो जाय और संकट टल जाय। परन्तु भाई, मंत्र के बता देने से ही सिद्धि नही मिलेगी। सिद्धि के लिए तो मन-वचन-काय से साधना करनी पड़ेगी, तब वह प्राप्त होगी। बिना त्याग-तपस्या के कोई भी सिद्धि प्राप्त होनेवाली नहीं है। जो त्याग-तपस्या करते हैं, वे ही सिद्धि को प्राप्त करते हैं। पाबू ने घोड़ो के लिए और चारण

की गायों के लिए प्राण दिये, तभी कहते हैं रंग पानू राठौड़। तेजाजी ने गायों की रक्षा की। उनका सारा शरीर छिन्न-भिन्न हो गया। रास्ते में काला सर्प मिला, उससे वापिस आने की प्रतिज्ञा की और फिर वापिस वहां पहुंचे और उससे कहा कि डंक मार। सांप ने कहा कि तेरा सारा शरीर तो छिन्न-भिन्न है। मैं कहां डंक मारूं? तब तेजाजी ने अपनी जीभ निकाल करके कहा—यह घाव रहित है, इस पर तुम डंक मारो। सांपने सोचा यह कितना सत्यवादी और प्रतिज्ञा को निभाने वाला है। अतः उसने उसे नहीं डसा और उससे कहा—यदि किसी व्यक्ति को काला सांप काट खायगा, वह जो तेरा नाम ले लेगा तो वह बच जायगा। तेजाजी को यह वरदान कब मिला? जब उन्होंने अपने प्राणों की कोई चिन्ता नहीं की और अपनी प्रतिज्ञा को निभाया।

आज लोग रामदेवजी का स्मरण करते हैं। वे कोई द्वारकाधीश नहीं थे। हम-आप जैसे मनुष्य ही थे। उन्होंने गायों की रक्षा की, तभी रामदेवजी बाबा कहलाये और आज देवता के रूप में पूजे जाते हैं। महापुरुषों के नाम-स्मरण से बुद्धि निर्मल होती है। आज शान्तिनाथ, नेमिनाथ या पार्श्वनाथ भगवान् यहां नहीं हैं, वे तो मोक्ष में विराजमान हैं और वे किसी का भला-बुरा भी नही करते हैं। परन्तु उनका नाम लेने से हमारा हृदय शुद्ध होता है, इससे प्राचीन पाप गलता है और नवीन पुण्य बढ़ता है। इस पुण्य से प्रेरित होकर उनके अधिष्ठायक देव हमारा कल्याण कर देते हैं। भाई, यह सब नाम की ही करामात है। वह तभी प्राप्त होगी, जब प्रभु का नाम-स्मरण करोगे। परन्तु हम चाहते हैं कि काम कुछ करना नही पड़े और लाभ प्राप्त हो जाय। पर यह कैसे सम्भव है? जो आज से प्रारम्भ करके आसोजसुदी पूर्णिमा तक नौ दिन उक्त नव पदो का अखण्डित एकाग्र चित्त से ध्यान करते हैं, उन्हें आगामी बारह मास का शुभाशुभ स्वप्न में दृष्टिगोचर हो जाता है। यह कोई साधारण बात नहीं है। एक चमत्कारी बात है। परन्तु आज इस पर लोगों को विश्वास नहीं है। विश्वास क्यों नहीं है? भाई, अति परिचय से आपके मन में उनका महत्त्व नही रहा।

मेरठ (उ०प्र०) में एक जैन भाई के पुत्र को सांपने काट खाया और वह विष चढ़ जाने से मूर्च्छित हो गया। अनेक मत्रवादी कालवेलों को बुलाया गया। परन्तु किसी से भी विष नही उतरा। तब निराश होकर एक मुसलमान फकीर को बुलाया गया। उसके झाड़ा देते ही विष दूर हो गया और लड़का उठकर बैठ गया। वे जैनी भाई यह देखकर बड़े विस्मित हुए। फकीर के पैर पकड़ लिए और बोले—विष दूर करने का यह मत्र हमें बतला दीजिए। जब उस भाई ने बहुत हठ किया तो उसने एकांत

में ले जाकर कहा—देखो—हमें यह मन्त्र एक जैन साधु से मिला है। मन्त्र देने से पूर्व उन्होंने मांस-मदिरा के खान-पान का त्याग कराया और कहा कि इसके प्रयोग से धन कमाने की भी भावना मत रखना। उसके पश्चात् उन्होंने मुझे यह मन्त्र दिया। ऐसा कहकर उस फकीर ने णमोक्कार मन्त्र सुना दिया और कहा कि इसके द्वारा मैंने आज तक अनेकों का विष दूर किया है। णमोक्कार मन्त्र को सुनते ही वे जैनी भाई बोल उठे—फकीर बाबा, यह मन्त्र तो हमारे घर के छोटे-छोटे बच्चे तक जानते हैं। उनकी बात सुनकर फकीर बोला—भाई, जब आपकी इस पर श्रद्धा नहीं हैं, तभी आपको इससे लाभ नहीं मिलता है। यही हाल आप सब लोगों का है कि इस महामन्त्र को प्रति दिन जपते हुए भी आप लोग उसके लाभ से वंचित रह रहे हैं।

एक सम्यक्त्वी भाई ने अपनी लड़की की शादी एक मिथ्यात्वी के घर कर दी। घरवाले सभी पक्के मिथ्यात्वी और जैन धर्म के द्वेषी थे। अतः इस लड़की के वहां जाने पर और उसके जैन आचार-विचार देखने पर उसकी निन्दा करना प्रारम्भ कर दिया। उस लड़की की सास, ननद और जिठानियों ने उसके धनी को भड़काना प्रारम्भ कर दिया। वे सब उससे कहने लगी—तू स्त्री का गुलाम बन गया है, जो उससे कुछ कहता नहीं है। बार-बार घरवालों की प्रेरणा पर उसने अपनी स्त्री को मार डालने का निश्चय किया। उसने सोचा कि अन्य उपाय से मारने पर तो भंडाफोड़ हो जायगा। अतः किसी ऐसे उपाय से मारना चाहिए कि जिससे बदनामी भी न उठानी पड़े और काम भी बन जावे। एक दिन जब कोई मनुष्य सांप को घड़े में पकड़ कर जंगल में छोड़ने के लिए जा रहा था, तब इसकी उससे भेंट हो गई और उसे कुछ रुपये देकर वह सांप रखे घड़े को घर ले आया। रात के समय उसने अपनी स्त्री से कहा—मैं तेरे लिए एक सुन्दर फूलों की माला लाया हूं। उस घड़े में रखी है, उसे निकाल कर ले आ। मैं तुझे अपने हाथों से पहिनाऊंगा। वह स्त्री पक्की सम्यक्त्वी थी और हर समय णमोकार मंत्र को जपती रहती थी। अतः उसने निःशंक होकर घड़े में हाथ डाला। उसके मंत्र-स्मरण के प्राभव से वह सांप एक सुन्दर पंचरंगी पुष्पमाला के रूप में परिणत हो गया। जब वह माला लेकर अपने पति के सामने गई तो वह सांप को फूलमाला के रूप में देखकर अति विस्मित हुआ। उसने अपनी मां, बहिन और भौजाई आदि को बुलाकर कहा—देखो, मैं आप लोगों के कहने से उसे मारने के लिए एक काला सांप घड़े में रख कर लाया था और उसे निकाल कर लाने को कहा। वह गई और णमोकार मंत्र को जपते हुए घड़े में हाथ डालकर निकाला, तो वह फूलमाला

बन गया है। यह सुनकर सब अति विस्मित होते हुए उसके कमरे में पहुंचे। उन्होंने वह फूलमाला उससे मांगी, तो उसने उन्हें दे दी। उनके हाथ में लेते ही वह सांप रूप से परिणत हो गई और उसने एक-एक करके तीनों को डस लिया। उसके डसते ही वे तीनों बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ी और घर में हाहाकार मच गया। यह सुनते ही उस लड़के के पिता-भाई आदि भी दौड़े आये, और उस सम्यक्त्वी बाई को कोसने लगे। उसने णमोकार मंत्र को जपते हुए उस सांप को हाथ में उठाया, तो वह फूल की माला बन गया। यह देखते ही वे लोग बोले—बाई, आज हम लोगों ने तुझे पहिचान लिया है। हम लोगों के अपराध को क्षमा कर और इन लोगों को जिन्दा कर दे। पति ने भी कहा—श्रीमती, इन्हें जिलाओ। अन्यथा मेरा मुख काला हो जायगा। यह सुनते ही उसने णमोकार मंत्र को जपते हुए उस माला को उन मूर्च्छितों के शरीर पर फेरा। माला के फेरते ही वे सब होश में आगई और हाथ जोड़-कर बोली—बींदणीजी, हम लोगों को क्षमा करो। हम तुम्हारे सत्यधर्म से परिचित नहीं थे। तब श्रीमती ने कहा—मां साहब, इसमे मेरी कोई कला नहीं है। यह तो नमस्कार मंत्र का प्रभाव है। उन लोगों के पूछने पर उसने वह मंत्र सबको सिखाया। यह प्रत्यक्ष फल देखने से सबकी मंत्र पर श्रद्धा जम गई। पुनः उन्होंने कहा—कि इस मंत्र के जपने की विधि भी बताओ। तब श्रीमती ने कहा—द्वितीया, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या के दिन रात्रि-भोजन नहीं करना होगा, जमीकन्द नहीं खाना होगा और कच्चा पानी भी नहीं पीना होगा। तथा प्रतिदिन प्रातः सायंकाल शरीर शुद्ध करके शुद्ध वस्त्र पहिनकर एकान्त मे बैठकर मौन पूर्वक १०८ बार इसका जाप करना। इस विधि से यदि जाप किया जायगा, तो यह महामंत्र सदा सिद्धि प्रदान करेगा। कवि ने कहा है—

श्रीमती लाई पुष्प की माला, कोढ़ गयो रे श्रीपाल को।
जाप जपो रे नवकार को। १
सकल मंत्र शिर मुकुट मणी है—साधन है रे निसतार को।
जाप जपो रे नवकार को। २
उदयदान कहे उद्योगी बनके, तिर जावो भव पार को।
जाप जपो रे नवकार को। ३

भाइयों, नमस्कार मंत्र का यह थोड़ा सा माहात्म्य आप लोगों को बताया है। इसके जाप से असंख्य प्राणी संसार से पार हो गये और अनेकों के भयानक संकट दूर हुए हैं। यह अनादि मूल मंत्र अनादि काल से जगमगाता आया है

और अनन्तकाल तक जगमगाता रहेगा। जो लोग श्रद्धा और भक्ति से इसका जाप करेंगे, वे नियम से सुफल को प्राप्त करेंगे। आप लोग यदि इस-भव और पर-भव म आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं तो इसके भक्त बनो और श्रद्धा से इसका जाप करो। इसके जापकी जो विधि अभी बतायी गई है, तदनुसार इसकी आराधना करो। ये नवरात्रि ही इसके जाप-आरम्भ करने का सबसे उत्तम अवसर है। यदि इन दिनो आयंबिल पूर्वक नवपद की आराधना करेंगे और श्रीपाल का चरित्र सुनेंगे, तो आप लोगो को सदा आनन्द ही आनन्द रहेगा।

वि० स० २०२७ आसोजसुदि ६
जोधपुर

३ | जातीय-एकता : एक विचारणा

भाइयो, नीतिकारों ने कहा है कि उत्तम गुणों का समावेश उत्तम पुरुषों में होता है और दुर्गुणों का समावेश अधम पुरुषों में होता है। मैं आपसे पूछता हूं कि क्या मनुष्य उत्तम और अधम शरीर से कहलाता है, कपड़ों से, या गहनों से ? इन किसी से भी मनुष्य उत्तम या अधम नहीं कहलाता है। किन्तु अपने उच्च कृत्यों से उत्तम और नीच कृत्यों से अधम कहलाता है। जो जैसा भला या बुरा कार्य करता है, वह दुनिया उसे वैसा ही कहने लगती है।

आज के बुद्धिवादी युग में एक ओर तो दुनिया बड़े सुधार की ओर जा रही है और दूसरी ओर भारी नुकसान कर रही है। ये दो बातें साथ मे चल रही हैं। सुधार के विषय में आज लोग कहते हैं कि मानव मात्र को एक रूप में मानो। उनका यह कहना गलत नहीं है, सत्य है। जब हम एक देश के निवासी हैं, एक ही आर्य संस्कृति के उपासक हैं और एक धर्म के माननेवाले हैं, तब हमारे भीतर भेदभाव क्यों होना चाहिए ? अत: सब मनुष्यों का एकीकरण आवश्यक है। उनका यह कथन एक दृष्टिकोण से ठीक है। परन्तु दूसरा दृष्टिकोण गलत होता जा रहा है। क्योंकि हमारे पूर्वजों ने प्रभु की यह समता वाणी नहीं सुनी, या उस पर अमल नहीं किया, यह हम मानने को तैयार नहीं हैं। वाणी उन्होंने भी सुनी है और उस पर अमल भी उन्होंने किया है।

तब प्रश्न खड़ा होता है कि ये जाति और पन्थ के झगड़े क्यों खड़े हो गये ? जब हम इस प्रश्न पर विचार करते है और भारत के प्राचीन इतिहास को देखते हैं, तब उसका उत्तर हमें मिलता है। वह यह कि पूर्व समय में जो लोग आचार से पतित हो गये और जिनका व्यवहार अधम होने लगा, उस समय हमारे पूर्वजों ने सोचा कि यदि इन पतित और हीनाचारी लोगों के साथ सारी समाज का सम्पर्क बना रहेगा, तो सब हीनाचारी और भ्रष्ट हो जायेंगे। अतः उनके दुर्गुणों से बचने के लिए ये जातिवाद की दीवालें खड़ी कर दी गई और कह दिया गया कि जो कोई उन पतित लोगों के साथ खान-पान करेगा, वह दंडित किया जायगा। यद्यपि उनका हृदय नहीं चाहता था कि हम ऐसा करें। परन्तु दिन पर दिन बिगड़तीं हुई सन्तान की रक्षार्थ उन्हें ऐसा करने के लिए विवश होना पड़ा। जैसे आपके मोहल्ले या गांव में कोई स्त्री तेज नजर वाली हो, या खोटे नक्षत्र में जिसका जन्म होता है तो उसकी दृष्टि में जहर आ जाता है और उसकी नजर जिस पर पड़ जाती है, उस बालक को कष्ट उठाना पड़ता है। जब ऐसी स्त्री या पुरुष किसी गली से निकलता है, तो घरवाले अपने बच्चों को सावधान कर देते है कि घर से बाहिर नहीं निकलना, बाहिर चुड़ैलन है या हौवा है, वह तुम्हें खा जायगा। यह भय उन्हें घर से बाहिर नहीं निकलने देने के लिए है। इसी प्रकार अपने पूर्वजों ने भी भावी सन्तान के सदाचार को सुरक्षित रखने के लिए यह पाबन्दी लगा दी कि इन् पतित पुरुषों के साथ जो भी खान-पान करेगा और उनकी संगति में रहेगा, वह जाति से बाहिर कर दिया जायगा, वह धर्म भ्रष्ट समझा जायगा। इस प्रकार जिन-जिन लोगों के आचार-विचार और खान-पान एक रहे, उन-उनका एक-एक संगठन होता गया और कालान्तर में वे एक-एक स्वतंत्र जातियां बन गई।

आज भी अनेक अवसरों पर हमें अपने घर में भी यह भेद-भाव व्यवहार में लाना पड़ता है। जब घर में किसी एक बच्चे को कुकरखांसी, खुजली या और कोई संक्रामक रोग हो जाता है, तब अपने ही दूसरे बच्चों से कहना पड़ता है कि देखो—उससे दूर रहना, उसके कपड़े मत पहिनना और न उसका जूंठा पानी पीना। अन्यथा तुम्हें भी यही बीमारी लग जायगी। डाक्टर और वैद्य भी यही परामर्श देते हैं। और उस पर सबको अमल करना पड़ता है। यहाँ पर आप कह सकते है कि उस बीमार बालक के स्वस्थ हो जाने के बाद तो वह प्रतिबन्ध उठा दिया जाता है। इसी प्रकार जातियों पर से अब तक यह प्रतिबन्ध क्यों नहीं उठाया गया ? भाई, इसका उत्तर यह है कि जो लोग प्रारम्भ मे पतित हुए थे, वे और उनकी सन्तान दिन पर दिन पतित

होती चली गई। आचार-विचार से गिर गई और खान-पान से भी गिर गई। हिंसादि पापों में निरत हो गई और सर्व प्रकार के दुर्व्यसन सेवन करने लगी, तब प्रतिबन्ध का उठाना तो दूर रहा, उल्टा उसे कठोर और करना पड़ा। अब आप लोग स्वयं विचार करें कि जब उन लोगों का इतना अधिक पतन हो गया है, तब उनके साथ उच्च आचार-विचार और निर्दोष खान-पान वालों का एकीकरण कैसे किया जा सकता है। ऐसी दशा में तो उनके साथ एकीकरण करना सारी सामाजिक शुद्धि को समाप्त करना है और उत्तम आचार-विचार वालों को भी हीन आचार-विचार वाला बनाना है। क्योंकि संसर्ग से उनके दुर्गुणों का समाज में और हमारी सन्तान में प्रवेश होना सहज संभव है।

हरिजन कौन ?

भाई, आज सर्वत्र हरिजन-उद्धार की चर्चा है। 'हरिजन' यह कितना अच्छा नाम है। हरि नाम भगवान का है, उनके जो अनुयायी हैं, उन्हें हरिजन कहते हैं। 'हरिजन नर तो तेनें कहिये जे पीर पराई जाने रे', यह गान्धीजी का प्रिय भजन रहा है। हरिजन कहो, चाहे वैष्णवजन कहो, एक ही बात है। जो दूसरों की पीर जाने, वह हरिजन है। परन्तु हम देखते हैं कि जो लोग आज हरिजन कहलाते हैं, उनमें दया का नामोनिशान भी नहीं है। बेचारे दीन पशु-पक्षियों को मारना और खाना ही उनका काम है। जीवित सूकरों को लाठियों से निर्दयतापूर्वक मारना और जीवित ही उन्हें आग में भून कर खाना नित्य का कार्य है। जिन लोगों में इतना अधिक राक्षसपना आ गया है, पहिले उनके ये दुर्गुण छुड़ाना आवश्यक है। उनके आचार-विचार का सुधार करो, तब तो सच्चा हरिजन-उद्धार कहा जाय। परन्तु इस ओर तो किसी का ध्यान नहीं है। उलटे कहते हैं कि उनके साथ खान-पान करो, उन्हें अपने समान समझो। यदि इस प्रकार उनकी बुरी आदतों को छुड़ाये बिना ही उन्हें अपना लिया गया तो वे फिर क्यों अपने दुर्गुण छोड़ेंगे ? उनके संसर्ग से हमारे भीतर भी वे दुर्गुण आजावेंगे। ऐसी दशा में हरिजन-उद्धार तो नहीं होगा। हां, हमारा पतन अवश्य हो जाएगा।

कुछ लोगों का कहना है कि जो ऊंची जातियां कहलाती हैं, उनमें भी तो उक्त दुर्गुण पाये जाते हैं। भाई, आपका कहना सत्य है। ऐसे लोगों का हम कब समर्थन करते हैं। जो उच्च-जाति में जन्म लेने पर भी नीच कार्य करते हैं, वे तो जन्मजात हरिजनों से भी अधिक निम्न हैं। उनका सुधार करना भी आवश्यक है। जब सर्दी का प्रकोप होता है और बर्फानी हवायें

चलती हैं, तब हर कोई कहता है कि कपड़ों का साधन रखिये। इसी प्रकार जब गर्मी जोर की पड़ती है और लू चलती हैं, तो उससे बचने के लिये भी कहा जाता है। जन्मजात कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं है। जैनधर्म तो ब्राह्मण के कर्तव्य पालन करने वाले को ब्राह्मण, क्षत्रिय के कर्तव्य करने वाले को क्षत्रिय, वैश्य के कर्तव्य करने वाले को वैश्य और शूद्र के कर्तव्य पालन करनेवाले को शूद्र मानता है। देखो, व्यापार करने की दृष्टि से सब व्यापारी समान हैं, किसी में कोई भेदभाव की बात नहीं है। किन्तु जिसने दिवाला निकाल दिया, उसे लोग दिवालिया कहते हैं, कोई साहूकार नहीं कहता। उस दिवालिये के पास में यदि कोई साहूकार अधिक उठे-बैठे, सलाह-मशविरा करे, ठंडाई छाने और खान-पान करे, तो लोग कहने लगते हैं कि ये भी इनके पाट पर बैठनेवाले हैं। इसीप्रकार यदि कोई पतित मनुष्य नीच जनों की संगति छोड़कर उत्तम जनों की संगति करने लगता है और अपना आचार-विचार सुधारता हुआ दिखता है, तो दुनियां कहने लगती है कि इसके दिन-मान अच्छे आ रहे हैं, अब इसके दुर्गुण दूर हो जावेंगे। भाई, सोहबत का असर अवश्य होता है। किसी फारसी कवि ने कहा है—**तुख्मे तासीर, सोहबते-असर'**। जैसा तुख्म (संग) होगा, उसमें वैसी तासीर आयेगी।

संगति का असर

सोहबत या संगति का असर मनुष्यों पर ही नहीं, अपितु पशु-पक्षियों पर भी पड़ता है। एक बार एक राजा ने अपने अधिकारियों को आदेश दिया कि दो तोते ऐसे मंगा कर मेरे शयनागार में टांगो, जो कि अपनी सानी नहीं रखते हों। बड़ी खोज के बाद दो तोते लाये गये और राजा ने उन्हें यथास्थान पिंजड़े में बन्द करके टंगवा दिया और उनके खाने-पीने की समुचित व्यवस्था करा दी। दूसरे दिन जब प्रभात होने को आया तो एक तोते ने ईश्वर की स्तुति-परक उत्तम-उत्तम श्लोक मंत्र-आदि बोलना प्रारम्भ कर दिया। अपने साथी को बोलता देखकर दूसरे ने भी बोलना शुरू किया—छुरी लाओ, बकरा लाओ, गाय काटो। इसका मांस ऐसा होता है और उसका मांस वैसा होता है। राजा जहां पहिले तोते की स्तुति आदि सुनकर अति आनन्द का अनुभव करता हुआ प्रसन्न हो रहा था, वहां इस तोते की बोली सुनकर अति क्रोधित हुआ और द्वारपाल को आदेश दिया कि इस तोते के पिंजड़े को बगीचे की बावड़ी में फेंक दो। राजा का यह आदेश सुनते ही पहला तोता बोला—

गवाशनानां वचनं श्रृणोत्ययमहं मुनीनां वचनं श्रृणोमि ।
न तस्य दोषो न च मे गुणो वा संसर्गजा दोष-गुणा भवन्ति ॥

अर्थात् हे महाराज, कृपाकर मेरी प्रार्थना सुनिये । हम दोनों अपनी मां के पेट से एक साथ जन्मे हुए दोनों सगे भाई हैं । बचपन में ही बहेलियों के द्वारा हम दोनों पकड़ गये । मैं तो साधु-सन्तों के हाथों में बिका और यह मेरा भाई कसाइयों के हाथों में बिका । मैं साधु-सन्तों की बोली सुनता रहा, सो ये श्लोक आदि याद हो गये हैं । और मेरा भाई कसाइयों की बोली सुनता रहा, सो, उनके यहाँ जैसा बोलचाल रहा, वह उसे याद हो गया । महाराज, मेरे श्लोक बोलने में न मेरा कोई गुण है और न उसके बोलने में कोई दोष है । हम लोग अर्थ-अनर्थ को क्या जाने । जैसा सुना वैसा याद कर लिया । प्राणी में दोष और गुण भले-बुरे संसर्ग से हो जाते हैं उस तोते की बात सुनकर उसे बावड़ी में फेंकने से रोक दिया और जंगल में छुड़वा दिया ।

भाइयो, इसके कहने का अभिप्राय यही है कि हमें अपनी सन्तान को बुरे संसर्ग से बचाना चाहिए । आप नहा-धोकर और उत्तम वस्त्र पहिन कर निकले और यदि तेल या घी से चिक्कट जाजम बिछी है तो उस पर नहीं बैठेंगे, क्योंकि आप जानते हैं कि इस पर बैठने से हमारे कपड़े खराब हो जायेंगे । इसी प्रकार कोई चोर चोरी करके मार्ग में जा रहा है । आपने आगे-पीछे कुछ विचार न करके उसका साथ पकड़ लिया इतने में पीछे से पुलिस आगई, तो वह चोर के साथ क्या आपको नहीं पकड़ेगी ? अब आप कहें कि मैंने चोरी नहीं की है, मैं निर्दोष हूं, इस प्रकार आप कितनी अपनी सफाई क्यों न देवें, पर पुलिस नहीं छोड़ेगी, क्योंकि आप उस चोर के साथ थे ।

जाति-पांति किसलिए

सज्जनो, इस कुसंग का प्रभाव हम पर और हमारी सन्तान पर न पड़े, इसके लिए पूर्वजों ने यह जाति-पांति की दीवाल खड़ी की थी । अन्यथा उनका कलेजा छोटा नहीं था । और न उन्हें किसी से घृणा थी । यदि घृणा थी, तो दुर्गुणों से ही घृणा है । आज यदि ये हरिजन अपने दुर्गुणों को छोड़ दें, तो उनके अपनाने में हमे कोई आपत्ति नहीं है ।

भाइयों, और भी देखो आप सामायिक में बैठे है और कोई बाई भी सामायिक कर रही है । न आप उसका स्पर्श कर रहे हैं और न वह आपका स्पर्श कर रही है । यदि किसी कारण-वश एक का से दूसरे संघट्टा हो जाय, तो इसमें किसी जीव की हिंसा नहीं हुई है । परन्तु यह संघट्टा लोक-व्यवहार के विरुद्ध हैं, क्योंकि इसमें दोनों की ही बदनामी की आशंका है । इसी प्रकार

आते-जाते यदि किसी साधु का किसी स्त्री या साध्वी से स्पर्श हो जाय, तो साधुपना तो नष्ट नहीं होगा। किन्तु यह कार्य साधु-मर्यादा के प्रतिकूल है। अतः साधु को एक उपवास का दण्ड भोगना पड़ेगा। ये सब मर्यादायें साधुपन की सुरक्षा के लिए बांधी गई हैं। कोई साधु किसी संकड़े मार्ग से जा रहा है। उस मार्ग में एक ओर पानी भरा हुआ है और दूसरी ओर हरी घास ऊग रही है। आगे जाने पर सामने से एक स्त्री आती हुई मिली। उसने पीछे मुड़ने का विचार किया तो देखा कि पीछे से भी एक स्त्री आ रही है। ऐसी दशा में यह साधु क्या करे। दोनों ओर की स्त्रियां पीछे लौटने को तैयार नहीं है। तब साधु के लिए कहा गया है कि ऐसे अवसर पर वह पानी में उतर जाय। यद्यपि पानी में उतरने पर असंख्यात जीवों की हिंसा है अथवा हरियाली पर जाने से भी असंख्यात जीवों की हिंसा है। परन्तु इस जीव विराधना की अपेक्षा स्त्री के शरीर के स्पर्श होने में संयम की विराधना संभव है। जीव घात की तो प्रायश्चित्त से शुद्धि हो जायगी। परन्तु स्त्री के सम्पर्क से यदि साधु का चित्त व्यामोह को प्राप्त हो गया, तो फिर वह संयम से ही भ्रष्ट हो जायगा। वैसी दशा में उसकी शुद्धि की ही संभावना नहीं रहेगी। संयम का सारा मकान ही ढह जायगा। भाई—मकान का किसी ओर से एक दो पत्थर का गिरना अच्छा अथवा सारे मकान का ही गिरना अच्छा है? कहा है कि—

हियो हुवै जो हाथ, कुसंगी केता मिलो।
चन्दन भुजंगा साथ, कदे न कालो किसनीया॥

यदि मन में दृढ़ता है और आत्मा में शक्ति है, तो कुसंगी कितने ही मिल जावें, कोई हानि नहीं है। जैसे चन्दन वृक्ष के सैकड़ों साप लिपटे रहते हैं, परन्तु उनके विष का उस पर कोई असर नहीं होता है। किन्तु इतनी दृढ़ता वाले स्त्री और पुरुष विरले ही मिलते हैं। हां, फिसलने वाले सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। आपने देखा होगा कि अनेक लोग केला खाकर उसके छिलके सड़क पर फेंक देते हैं, जिन पर पैर पड़ जाने पर अनेक मनुष्य फिसल कर ऐसे गिरते हैं कि कितनों के तो हाथ पैर ही टूट जाते हैं। छिलके डालने वाले की तो कोई आलोचना नहीं करता। परन्तु फिसलनेवाले की सभी आलोचना करेंगे। आज आप लोगों में फैशन कुछ अधिक बढ गई है, इसलिए मकानों के फर्शों और चौकों में मार्बल कराते हैं, चीप्स कराते हैं, और सीमेन्ट कराते हैं। यदि उस पर पानी पड़ा हुआ है और चलने वाले का ध्यान उस ओर नही है, तो वह फिसले बिना नही रहेगा। पहिले आगन कच्चा रहता था, उस पर

पानी कितना ही पड़ जाता, तो वह सूख जाता था। कभी फिसलने का भय नहीं रहता था। परन्तु आज आप लोगों की भाग्यवानी बढ गई है। वह दिमाग में, हाथों-पैरों में और वचन-व्यवहार में नहीं वढ़ी, किन्तु फैशन में वढ़ी है। यह भाग्यवानी गिराने वाली है, पैरों को मजबूत रखने वाली नहीं है। पहिले के लोग ऐसी फिसलने की चीजों से दूर रहते थे।

सावधानी चाहिये

मैंने प्रारम्भ में कहा था कि लोग आज के जमाने में सारी जातियों का एकीकरण करने की कहते हैं। यह दृष्टिकोण बुरा नहीं है। परन्तु बुरा क्या है कि केले के छिलके के समान आज फिसलने के साधन अधिक हैं। यदि सावधानी से चला जाय, तब तो ठीक है। अन्यथा फिसले विना नहीं रहोगे। आप कहें कि फिसलते ही सावधान हो जावेंगे? किन्तु भाई, फिसलने के बाद संभलना अपने हाथ नहीं रहता। कुसंग में पड़ कर कोई चाहे कि हम नहीं विगड़ेंगे, सो तुम्हारी तो हस्ती क्या है? बड़े-बड़े महात्मा लोग भी ऐसे फिसले और इतने नीचे गिरे कि फिर ऊँचे नहीं आ सके। क्यों नहीं आ सके? क्योंकि फिसलने का काम ही बुरा है। भाई, जैसा जैन-सन्तों का त्याग है, वैसा वैष्णव और शैव-साधुओं का नहीं है। फिर भी त्याग की भावना सबमें थी और सभी ने मोक्ष के मार्ग में कनक और कामिनी को दुर्गम घाटी कहा है। यथा—

> मोक्षपुरी के पन्थ में, दुर्गम घाटी दोय।
> कनक-कामिनी से वचे शिव पद पावे सोय॥

जब तक सनातनी साधु कनक और कामिनी से वचे रहे, तब तक उनकी साधु-संस्था पर कोई आंच नहीं आई। परन्तु जब से उन्होंने पैसे पर हाथ डाला और स्त्री रखने लगे, तभी से उनका अधःपात प्रारम्भ हो गया। आज उन सम्प्रदायों में कितने सच्चे साधु मिलेंगे? पहिले जितने मठ और मन्दिर थे, उनके महन्त क्या स्त्रियां रखते थे। नहीं रखते थे। वे ब्रह्मचर्य से रहते थे, तो उनमें त्याग था। उनका राजाओं पर प्रभाव था और वे जो कुछ भी कहते थे, राजा लोग उसे स्वीकार करते थे। जब वे लोग फिसल गये और स्त्रियों को रखकर मन्दिरों को अपना घर बनालिया, तब से समाज में उनका महत्त्व भी गिर गया। भाई, फिसलने के पश्चात् किसी का महत्त्व कायम नहीं रह सकता। इसलिए भगवान ने कहा है कि किसी की भी संगति करो, व्यवहार करो, इसमें आपत्ति नहीं। किन्तु जहां पर देखो कि आचार-विचार का ह्रास सम्भव है, मर्यादा टूटने का भय है, तो ऐसे ठिकानों से दूर रहो। उनके साथ

वार्तालाप भी मत करो। भाई, अपने को बचाने के लिए भगवान ने शील की नव बाड़े बताई है और दसवां कोट बताया है, तो ये क्यों बताये? इसीलिए बताये कि संगम-समागम से मन के बिगड़ने की सम्भावना रहती है। स्त्री का सम्पर्क तो पुरुष मात्र के लिए फिसलने का कारण बताया है। जैसा कि कहा है—

अङ्गारसदृशी नारी नवनीतसमो नर.।
तत्तत्सान्निध्य मात्रेण द्रवेत्पुंसां हि मानसम्॥

अर्थात् स्त्री की प्रकृति अंगार के समान है और पुरुष का स्वभाव नवनीत (लोनी) के समान है। जैसे अगार के सामीप्य मात्रा से नवनीत पिघल जाता है, उसी प्रकार स्त्री के सम्पर्क मात्र से पुरुषों का मन भी पिघल जाता है। अतः पुरुष को स्त्री के सम्पर्क से दूर ही रहना चाहिए।

कुसंगति से कष्ट

जैसे साधु के लिए स्त्रीमात्र का सम्पर्क त्याज्य है, उसी प्रकार पुरुष मात्र के लिए परस्त्री का सम्पर्क त्याज्य है। तथा मनुष्य मात्र के लिए कुसंग त्याज्य है। अभी आपके सामने श्रीपाल का व्याख्यान चलता है। सिंहरथ और वीरदमन दोनों भाई थे और साथ में रहने वाले थे। स्वभाव का परीक्षण किये बिना राज्य का सारा कारोबार वीरदमन को सौंप दिया गया। उसका परिणाम क्या हुआ? यह आप लोगों ने सुना ही है। यदि अभी नही सुना है तो आगे सुन लेंगे। वह कुसगतिका ही असर हुआ। देखो—जो उत्तम संगति में रहते हैं, तो उनके विचार भी उत्तम रहते है। जो अधम संगति मे रहते है तो उनके विचार भी अधम रहते है। एक वार सन्तो के प्रतिदिन व्याख्यान सुननेवाली बाई का एक जगल मे रहनेवाली स्त्री के साथ कहीं जाते हुए मार्ग मे वृक्ष की छाया के नीचे विश्राम करते हुए मिलाप हो गया। जगल वाली स्त्री ने उस दूसरी बाई से कहा—बहिन, मेरे माथे में बहुत खुजलाहट हो रही है। जूं मालूम पडते है, तू जरा देख तो दे। वह उसका माथा देखने लगी और जू मिलने पर उसने उसके हाथ पर रख दिया। उसने उसे तुरन्त मार दिया। उस बाई ने उससे कहा—अरी पगली, यह क्या किया? वह बोली—यह मुझे खाता था, इसलिए इसे मार दिया। उसने उसका माथा देखना बन्द कर दिया। जूं को मारते हुए देखकर उसके रोमाञ्च खड़े हो गये। क्यो खड़े हो गये? क्योंकि, वह इस प्रकार के कुसंग से दूर रही थी। और

जो जूं मारनेवालों के ही सम्पर्क में सदा रही है, उसे जूं मारते हुए दया का लेश भी नहीं है।

भाई, जिनके हृदय में दया है, जो जीव घात से डरते हैं, चोरी नहीं करते, झूठ नहीं बोलते, दूसरों की बहू-बेटी पर नजर नहीं डालते और लोभ-तृष्णा से रहित हैं, ऐसे पुरुष सदा ही कुसंग से दूर रहते हैं। वे लोग कहीं ठहरने के पहिले यह देखते हैं कि यह स्थान हमारे ठहरने के योग्य है भी, या नहीं? उनको ठहरने आते-जाते वा खाने-पीने आदि सभी कार्यों में यतना करने की भगवान ने आज्ञा दी है। यदि किसी सन्त-महात्मा को विहार करते हुए प्यास लग जावे तो उन्हें आदेश है कि वे तालाब कुंआ, प्याऊ आदि पर पानी नहीं पीवें। क्योंकि उक्त स्थानों पर बैठकर भले ही वे अपने साथ का प्रासुक निर्दोष जल क्यों न पीवें। परन्तु देखने वालों के हृदय में यह विचार उत्पन्न हो सकता है कि इन्होंने तालाब या प्याऊ का सचित्त पानी पिया है। इसी प्रकार साधु को गृहस्थ के ऐसे घर पर ठहरने की मनाई की गई है, जहां पर कि कपास आदि रखा हो और द्वार एक ही हो। क्योंकि द्वार खुला रखने पर यदि गृहस्थ के सामान की चोरी हो जाय, तो साधु के बदनाम होने की सम्भावना रहेगी और यदि द्वार बन्द रखें तो जीव दुःख पावे। इसलिए भगवान ने ऐसे स्थान पर ठहरने का साधु के लिए निषेध किया है।

मर्यादा से मान रहेगा

भाई, वि० सं० १९९० की साल अजमेर में साधु-सम्मेलन था। हम गुजराती और काठियावाडी सन्तों को लेने के लिए उधर गये थे। एक दिन हमने अठारह कोस का विहार किया तो थक गये। माघ का मास था, सर्दी का जोर था। फिर आबू के समीप तो उसका कहना ही क्या था। समीप में एक रेल्वे स्टेशन था। हमने स्टेशन मास्टर से ठहरने के लिए पूछा। उसने कहा—कोई मकान खाली नहीं है। तब एक भाई ने वेटिंग रूम खोल देने के लिए कहा। स्टेशन मास्टर बोला—यदि रात को कोई अफसर आगया, तब आपको खाली करना पड़ेगा। हमने कहा—ठीक है, यदि कोई आजाय, तो आप हमसे कह देना। हम जाकर वेटिंग रूम में ठहर गये। रास्ते के थके हुए थे सो लेटते ही हम लोग सो गये। रात के दस बजे की गाड़ी से कोई अफसर उतरा। उसने ठहरने के लिए वेटिंग रूम खोलने को कहा। तब स्टेशन मास्टर ने कहा - वेटिंग रूम में तो जनाना सरदार है। अतः उसके लिए बाहिर ही प्रबन्धकर दिया गया। उसके ये शब्द मैंने सुन लिये। मेरे साथ में छगनलालजी स्वामी और चांदमलजी स्वामी थे। मैंने उनसे कहा —यहां ठहरने पर यह

उपाधि मिली है। अतः यहां अब नहीं ठहरना चाहिए। क्या औरतें बनना है ? कहने का आशय यह है कि जिस स्थान पर ठहरने से किसी को किसी प्रकार का वहम हो, वहां पर नही ठहरना चाहिए। भगवान् ने जो मर्यादाएं बांधी हैं वे बहुत दूरदर्शिता से बांधी है। परन्तु आज उनको तोड़ने की तैयारी हो रही है।

प्रकृत मे मेरा आप सब लोगों से यही कहना है कि आप लोग पूर्वजों की बांधी हुई मर्यादाओं के रहस्य को समझें और मूल उद्देश्य की रक्षा करते हुए जैसा जहा एकीकरण सम्भव हो करें। कही मूल पर ही कुठाराघात न हो जाय, इसका ध्यान रखें।

अपने आदर्शो को सुरक्षित रखते हुए यदि एकता और समन्वय हो सकता हो तो करे, किंतु आदर्श और सिद्धान्त का बलिदान देकर एकता और समन्वय करना घर फूककर तमाशा दिखाना है।

वि० स० २०२७ आसोज सुदि ७
जोधपुर

४ | उदारता और कृतज्ञता

भाइयो, जिसका हृदय उत्तम है और जिसके विचार निरन्तर उन्नत बने रहते है, वह कैसी भी परिस्थिति मे जाकर घिर जाय, तो भी वह अपने स्वभाव मे स्थिर बना रहता है, उसमें किसी भी प्रकार का विकार दृष्टिगोचर नही होता है। ऐसे ही पुरुषो को धीर-वीर कहा जाता है। जैसा कि कहा है—

विकार हेतौ सति विक्रियन्ते, येषा न चेतासि त एव धीराः।

अर्थात् जिनका चित्त विकार के कारण मिलने पर भी विकार को प्राप्त नही होता है, वे पुरुष ही धीर-वीर कहे जाते है।

देखो—जुही, चमेली और मोगरा आदि के फूल हवा आदि के झोंके से उडकर किसी कूड़े-कचरे के ढेर पर भी जा पड़ें, तो भी वे अपनी सुगन्ध को नही छोडते हैं। यद्यपि वे स्थान-भ्रष्ट हो गये हैं, तथापि वे जिस किसी भी स्थिति मे पहुचने पर अपने सौरभ को सर्वत्र बिखेरते ही हैं।

अभी आपके सामने बताया गया है कि मैना सुन्दरी उत्तम-गुणवाली और बुद्धिमती है। परन्तु दैवयोग से ऐसा सयोग जुडा कि जहा उसे नही जाना चाहिए था, वहा जा पहुची। परन्तु ऐसी विकट परिस्थिति मे भी उसका हृदय घबराया नही। उसका ध्यान अपन मूल स्थान पर केन्द्रित हुआ और वह विचारने लगी कि यदि मैंने भूतकाल में दान दिया है, शील पाला है और किसी का बुरा नही किया है, तो एक दिन ये सब सकट अवश्य दूर हो जावेंगे। और

यदि मैंने पूर्व भव में बुरे कार्य किये हैं, दूसरे जीवों को सताया है और पाप का संचय कर रखा है, तो कोई भी मुझे आराम नहीं दे सकता। मेरी बहिन का विवाह-सम्बन्ध एक राज घराने में हुआ और मेरा एक कोढ़ी के साथ। यह सब उस पूर्व-संचित कर्म का फल है। कर्मों की गति बड़ी गहन है। वह रंक को क्षण भर में राजा बना देती है और राजा को क्षणभर मे रंक बना देती है। इसी को कुदरत का खेल कहते हैं। कहा भी है—'यह कुदरत की कारीगरी है जनाब कुदरत की कारीगरी देखो कि वह रजकण को आफताब बना देता है और जहां अभी कुछ भी दृष्टि गोचर नहीं होता, वहां पर सब कुछ नजर आने लगता है। और भी कहा है—"**रब का शुक्र अदा कर भाई, जिसने ऐसी गाय बनाई।**" कैसी गाय बनाई ? जिसके शरीर में रक्त-मांस ही था; उसे ही गर्भस्थ शिशु के जन्म लेने के साथ उत्तम, मिष्ट एवं श्वेत दूध बना देती है। इस दूध का निर्माण किसी औषधि के पिलाने से या इंजेक्शन के लगाने से नहीं हुआ। किन्तु यह कुदरत की ही करामात है। कुदरत जानती है कि नव-जात शिशु के मुख में अभी दांत नहीं हैं, मसूड़े भी इतने सरल नहीं हैं कि वह जिससे अपनी खुराक को चबाकर अपना पोषण कर सके। अतः उसने माँ के स्तनों में रक्त को दूध रूप से परिणत कर दिया। यदि यह कुदरत रूठ जाय, तो फिर उसका कोई सहायक नहीं है।

श्रीपाल और मैनासुन्दरी दोनों ही कर्मों की इस गति से, या कुदरत के इस खेल से भली भांति परिचित हैं। अतः उन्होंने वर्तमान में प्राप्त अपनी दुरवस्था के लिए किसी को दोष नहीं दिया और न अधीर ही हुए। किन्तु दृढ़तापूर्वक कमर कसकर उसका मुकाबिला करने के लिए तैयार हो गये। उनका हृदय एक दूसरे के प्रति स्वच्छ है। मैना चाहती है कि तब मैं अपने को कृतार्थ समझूंगी, जबकि श्रीपाल को साक्षात् कामदेव के समान सुन्दर और इन्द्र के समान वैभवशाली बना दूंगी। उधर श्रीपाल भी सोचते हैं कि यह सुकुमारी राजकुमारी मुझ कोढ़ी के पल्ले बांध दी गई है, तो मैं ऐसा प्रयत्न करूं कि जिससे इसे किसी भी प्रकार का कष्ट न हो। इस प्रकार दोनों ही एक दूसरे को सुखी बनाने की भावना कर रहे है और यथासंभव प्रयत्न भी कर रहे हैं। भाई, स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध तभी प्रशंसनीय और उत्तम माना जाता है, जब वे एक दूसरे को सुखी करना अपना कर्तव्य समझें, दोनों के हृदय शुद्ध हों, दोनों में परस्पर असीम प्रेम हो और दोनों ही जब परिवार, समाज, देश और राष्ट्र के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करने मे जागरूक रहें। ऐसे ही स्त्री-पुरुषों को लक्ष्य में रखकर कहा गया है कि—

'संसारोऽपि सारःस्याद्दम्पत्योरेकफण्ठयोः ।'

यदि दम्पती का—स्त्री-पुरुष का—एक कण्ठ हो—एक हृदय हो, जो बात एक सोचे, वही दूसरा करे, जो एक कहे, वही दूसरा कहे और जो एक करे, वही दूसरा करे, तो नीतिकार कहता है कि ऐसा होने पर तो यह असार कहा जाने वाला संसार भी सार युक्त है।

किन्तु जहां पर ऐसा एक हृदय नहीं है, जहां पर स्त्री सोचे कि यह मुझे एक नौकर मिल गया है, मैं इसे जैसा नचाऊंगी, इसे वैसा ही नाचना पड़ेगा। और पुरुष सोचे कि यह मुझे एक नौकरानी मिल गई है, इसे रात-दिन मेरी चाकरी बजानी चाहिए। इस प्रकार की जहा मनोवृत्ति हो, वह स्त्री-पुरुष का सम्मेलन कहां तक सुखदायी होगा, यह बात आप लोग स्वयं अनुभव करें।

आज भारत में सर्वत्र सम्मेलनों की धूम मची हुई है। जातीय, प्रान्तीय, राजकीय और धार्मिक सम्मेलन स्थान-स्थान पर होते ही रहते हैं। उनकी बड़े जोरों से तैयारियां होती हैं। और एक-एक सम्मेलन पर लाखों रुपया खर्च होते हैं, बड़ी दौड़-धूप की जाती है। परन्तु जब हम उनका परिणाम देखते हैं, तब जीरो (शून्य) नजर आता है। इस असफलता का क्या कारण है? यही कि इनके करने वाले ऊपर से तो सम्मेलनों का आयोजन करते हैं, किन्तु भीतर से उनके हृदय में सम्मिलन का रत्ती भर भी भाव नहीं रहता है। सब अपनी मनमानी मोनोपाली को ही दृढ़ करने मे संलग्न रहते हैं। जब उनका स्वार्थ होता है, तब वे हर एक से मिलेंगे, उसकी खुशामद करेंगे और कहेंगे कि मैं आपका ही आदमी हूं। किन्तु जैसे ही उनका काम निकला कि फिर वे आंख उठा करके भी उसकी ओर देखने को तैयार नही है। फिर आप बतलावें कि देश, जाति और धर्म का सुधार कैसे हो?

उपकार भूल गये

बलूंदा के शम्भूमलजी गंगारामजी फर्म वाले सेठ छगनमलजी मूथा—जिन्होंने असहयोग आन्दोलन के समय श्री जयनारायणजी व्यास और उनके साथियो के साथ ऐसी सज्जनता दिखाई कि जिसकी हद नहीं। व्यासजी और उनके साथी जब-जब भी जेल मे गये, तब उन्होंने उनके परिवार वालों के खाने-पीने की और बच्चों की पढ़ाई-लिखाई की समुचित व्यवस्था की, उनके घर माहवारी हजारों रुपये भिजवाये और पूरी सार-संभाल की। किन्तु स्वराज्य मिलने पर जब यहां कांग्रेसी सरकार बनी और व्यासजी मुख्यमन्त्री बने, तब मुनीम की भूल से हथियारों के लायसेन्स लेने में देर हो गई तो जैतारन के

थानेदार ने जाकर उनकी चारों राइफलें जप्त करलीं। सेठजी ने सोचा—व्यासजी अपने ही हैं, जब जयपुर जावेंगे, तब उनसे हथियारों की वापिसी का आर्डर ले आवेंगे। कुछ समय पश्चात् सेठजी जोधपुर गये और अपने सुसराल में जाकर ठहरे। वहां से उन्होंने व्यासजी को फोन किया। जवाब में पूछा गया कि 'कौन'? तो इन्होंने कहा—मूथा छगनमल। फिर पूछा गया कि 'कौन छगनमल'? तो उत्तर दिया कि बलूंदे का छगनमल मूथा। फिर भी व्यासजी बोले—मैंने अभी तक आपको पहिचाना नहीं? तब ये मन में विचारने लगे—अरे, वर्षों तक खिलाया-पिलाया और परिवार का पालन-पोषण किया। फिर भी कहते है कि मैंने पहिचाना नहीं। तब इन्होंने जोर से कहा—मैं हूं बलूंदा के सेठ शम्भूमल गंगाराम फर्म का मालिक छगनमल मूथा। तब व्यासजी बोले—सेठ छगनमलजी आप हैं। इन्होंने कहा—हां, मैं ही हूं। एक आवश्यक कार्य से मैं आपसे मिलना चाहता हूं। व्यासजी ने कहा—माफ कीजिए, मुझे अभी मिलने की फुर्सत नही है। सेठजी यह उत्तर सुनकर अवाक् रह गये। अरे, कुर्सी पर बैठते तो देर नही हुई, और यह उत्तर सुनने को मिला। सारी कृतज्ञता काफूर हो गई। सेठजी के मन में आया कि हथियारों को गोली मारें और उनको वापिस कराने का झंझट छोड़ें। इतने में ही बलदेवदासजी आगये सेठजी से मिलने के लिए। और आते ही पूछा—आप यहां कब आये? तब छगनमलजी ने कहा—दो दिन से आया हुआ हूं। उन्होने पूछा—अभी आप फोन पर किससे बातें कर रहे थे? इन्होंने कहा—राइफलों के लायसेन्स के लिये व्यासजी से बात करना चाहता था। पर उन्होंने समय ही नहीं दिया। तब बलदेवदासजी बोले—इस जरा से काम के लिए उन्हें क्यों कहते हैं? आपका यह काम हो जायगा। वे थानेदार के पास गये और राइफले वापिस उनके घर भिजवा दीं। देखो—जिनसे कुछ विशेष परिचय भी नहीं था, उन्होंने तो झट काम करा दिया। किन्तु जिन व्यासजी से इतना घनिष्ट सम्बन्ध था, उनसे सुनने को मिला कि 'पहिचाना नहीं, आप कौन है? भाई, पहिचाना क्यों नही? क्योंकि कुर्सी पर बैठते ही मनुष्य के दिमाग पर हुकूमत का भूत सवार हो जाता है और अभिमान का नशा चढ़ जाता है। यह सब समय की बलिहारी है।

दिल को छोटा न करो

भाइयो, यदि श्रीपाल और मैनासुन्दरी के हृदय स्वच्छ नही होते तो उनके विचार पवित्र नहीं रहते। परन्तु वे उदारचेता थे, और दोनो ही एक दूसरे को सुखी बनाने की कामना करते थे। श्रीपाल का ख्याल था कि मेरे

सम्पर्क में आकर यह रत्न कहीं कंकर न बन जाय ? और मैना सोचती थी कि कब मैं इनको इनके वास्तविक पद पर आसीन हुआ देखूं ? ऐसे उत्तम विचार उनके ही हो सकते हैं जिन्होने जैन सिद्धान्त को पढ़ा है, जिन्होंने कर्मों के रहस्यों को समझा है और जिनके हृदय में विश्व-बन्धुत्व की भावना प्रवाहित हो रही है। आप भी जैन कहलाते है और दयाधर्म की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। परन्तु अपने हृदय पर हाथ रखकर देखें कि क्या आपकी भी ऐसी भावना है ? आपकी तो भावनाएं तो थोड़ी सी पूंजी के बढ़ते ही हवा हो गई हैं। आपके रिश्तेदार परिस्थिति से विवश होकर यदि आपके सामने आकर कुछ सहायता की याचना करते हैं, तो आपका मुख भी नहीं खुलता है। अरे, रोना तो इस बात का है कि यदि बोल गये तो सौ-दो सौ देना पड़ेंगे। परन्तु आपको यह पता नहीं है कि जैसी 'शर्म आप बेचे' हुए है, वैसी ये गरीब लोग नहीं बेचे हुए हैं। इस गरीबी में भी इनके भीतर त्याग और वैराग्य की भावना है। अरे धनिको, यदि आप लोगों के पास से सौ-दोसौ रुपये चले भी गये और किसी की सेवा कर दी, तो आपके क्या घाटा पड़ जायगा ? जब जन्म लिया था और असहाय थे, तब क्या यह विचार किया था कि आगे क्या खावेंगे ? कैसे काम चलावेंगे ? और भाई-बहिनों की शादी कैसे करेंगे ? तब आमदनी तो सौ-दो सौ रुपये सालाना की नहीं थी। फिर भी उस समय कोई चिन्ता नही थी। और अब जब कि हजारों रुपये मासिक व्याज की आमदनी है, कोई धन्धा नहीं करना पड़ता है और गादी-तकिया पर बैठे आराम करते रहते हैं, तब सन्तोष नहीं है, किसी को देने की भावना नहीं है, रिश्तेदारों से प्रेम नही है और किसी की सहायता के भाव नही है। पहिले आठ आने का व्याज था, तब भी उतने में आनन्द था। और आज दो और चार रुपये सैकड़े का व्याज है और लेने वाले की गर्ज के ऊपर इससे भी ऊपर मिलता है और इस प्रकार विना हाथ-पैर हिलाये लाखों रुपयों की आमदनी है। फिर भी आपका हृदय कीड़ों से भी छोटा बन गया है कि पैसा कम हो जायगा। अरे भाई, यदि कम हो जायगा, तो भी तुम्हारा क्या जायगा। हाथ से तो कमाया नही है और न साथ लाये थे। यदि चला गया तो क्या हो जायगा ? और यदि आपने परिश्रम से कमाया है और फिर भी चला गया, तब भी चिन्ता की बात नही हैं, फिर अपने पुरुषार्थ से कमा लोगे। इसलिए दिल को छोटा करने की आवश्यकता नहीं है।

पहिले राजाओं को रोना क्यों नहीं पड़ता था ? इसलिए कि जब आता तो ले लेते थे। और जब जाने का अवसर होता था, तो स्वयं उसका मोह

छोड देते थे। हमारे ऋषि-महर्षियो ने भी यही शिक्षा दी है कि —

अवश्यं यदि नश्यन्ति स्थित्वाऽपि विषयाश्चिरम्।
स्वयं त्याज्यास्तथा हि स्यान्मुक्ति-संसृतिरन्यथा॥

यदि यह धन-माल, ये इन्द्रियों के भोग-उपभोग-सम्बन्धी विषय और सांसारिक पदार्थ चिरकाल तक तुम्हारे पास रह करके भी एक दिन अवश्य नष्ट होने वाले हैं, तो तुम्हें उनका स्वयं ही त्याग कर देना चाहिये। ऐसा करने से तुम मुक्ति को प्राप्त करोगे। यदि स्वयं त्यागे नहीं करोगे, तब भी यह तो एक दिन नष्ट होने ही वाले है और इन सबको छोड़कर तुम्हें अकेला ही संसार से कूच करना निश्चित है, उस अवस्था में तुम्हे संसार मे ही परिभ्रमण करना पड़ेगा।

भाई, इस गुरु मन्त्र को और सनातन सत्य को सदा हृदय मे धारण करो और त्याग के अवसर पर अपने हृदय को छोटा मत बनाओ। दीनता के वचन मत बोलो।। ऐसी दीनता से तो मनस्वी मनुष्य मरना भला समझते है। कहा भी है—

जीवितान्नु महार्दैन्याज्जीवानां मरणं वरम्।
मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रत्वं वितीर्णं केन कानने॥

अरे, इस महादीनता से बीतने वाले जीवन से तो जीवों का मरना ही भला है। मनुष्य को सिंह के समान पुरुषार्थी और पराक्रमी होना चाहिए। देखो—सिंह को जंगल में मृगो का राजा कौन बनाता है? कोई नही। वह अपने पुरुषार्थ से ही जगल का राजा बनता है। तुम्हें भी अपने पुरुषार्थ पर भरोसा रखना चाहिए और सदा सिंह के समान अपना उन्नत मस्तक और ऊँचा हाथ रखना चाहिए। उत्तम पुरुष वे ही कहलाते हैं जो कि हर परिस्थिति मे प्रसन्न चित्त रहते है और मुख पर चिन्ता की आभा भी नही आने देते हैं। मनस्वी मनुष्य अपनी बुद्धि को ठिकाने रखते हैं, उसे इधर से उधर नही होने देते हैं। और कैसा भी संकट का समय आ जाय, उससे बचने का मार्ग खोज ही लेते है।

एक समय की बात है, चार मित्रो ने परदेश में जा करके धन कमाने का विचार किया। उनमें एक था राजा का पुत्र, दूसरा था मंत्री का पुत्र, तीसरा था पुरोहित का पुत्र, और चौथा था नगर सेठ का पुत्र। परदेश मे जाकर खूब व्यापार किया। लाभान्तराय के क्षयोपशम से कमाई भी हुई। करोड़ो का धन उन्होंने घरों को भेज दिया और अन्त मे स्वयं घर लौटने का

विचार किया। चलते समय उन्होने एक जौहरी के पास से सवा करोड़ का एक बढिया माणिक खरीदा और देश को रवाना हो गये। मार्ग में उन्होंने सोचा कि बारी-बारी से एक-एक व्यक्ति प्रतिदिन अपने पास रखकर उसकी संभाल करता चले। तदनुसार वे चारों मित्र एक-एक दिन उस माणिक को अपने पास रखते और रक्षा करते- हुये चले आ रहे थे। मार्ग में एक शहर मिला। अतः विश्रामार्थ वे चारों वहां की किसी धर्मशाला में ठहर गये। वहा पर उन्होंने वह माणिक एक जौहरी को दिखाया, तो उसने परीक्षा करके कहा—यह तो असली नही है, नकली है। यह सुनते ही उन सबके मुख फीके पड़ गये और सोचने लगे कि किसने असली को छिपा करके नकली माणिक रख दिया है। बहुत कुछ विचार करने पर भी जब कुछ निर्णय नही हो सका, तब उन्होने विचारा कि पहले अपन लोग खान-पान आदि से निवृत्त हो लेवें, पीछे इसका विचार करेगे। जब वे खान-पान और विश्राम आदि कर चुके, तब उन्होने आपस मे कहा कि भाई, असली माणिक है तो अपने चारो में से किसी एक के पास। क्योंकि पांचवां न अपने पास आया है और न अपन ने पांचवें को उसे दिखाया ही है। अतः अच्छा यही है कि जिसने असली माणिक को लेकर यह नकली माणिक रख दिया है, वह स्वयं प्रकट कर दे, जिससे कि बात बाहर न जाने पावे और अपन लोगो में भी मैत्रीभाव यथापूर्व बना रहें। इतना कहने पर भी जब असली माणिक का किसी ने भेद नहीं दिया। तब वे चारों उस नगर के राजा के पास पहुँचे। और यथोचित भेंट देकर राजा को नमस्कार किया। राजा ने इन लोगों से पूछा—कहां के निवासी हो और किस उद्देश्य से यहां आये हो? उन्होने अपना सर्व वृत्तान्त कहा और उस माणिक के खरीदकर लाने, मार्ग में बारी-बारी से अपने पास रखने और यकायक असली के गुम होने और उसके स्थान पर नकली माणिक के आ जाने की बात कही। साथ ही यह भी निवेदन किया कि इस विषय में आप न हम चारों में से किसी से कुछ पूछताछ ही कर सकते हैं और न संभाला ही ले सकते हैं। और माणिक को ठिकाने आ जाना चाहिये। उनकी बात सुन कर राजा बडी दुविधा में पड़ा कि बिना पूछताछ किये, या खाना तलाशी लिए माणिक का कैसे पता लग सकता है? अन्त मे राजा ने दीवान से कहा—इनकी शर्त को ध्यान मे रख करके माणिक को तीन दिन के भीतर ढूंढ निकालो। दीवान बोला—महाराज, यह कैसे संभव है? राजा ने कहा —तुम दीवानगिरी करते हो, या आरामगिरी करते हो? मैं कुछ नही सुनना चाहता, तीन दिन के भीतर माणिक आना ही चाहिये। अन्यथा तुम्हें मृत्यु

दण्ड दिया जायेगा। पहिले राठौड़ी राज्य था। और राजाओं का नादिरशाही हुक्म हुआ करता था।

वि० सं० १९७४ की साल जोधपुर में प्लेग का प्रकोप हुआ। उस समय महाराजा सुमेरसिंह जी ने राज्य के सारे बंगले खुलवा दिये और आर्डर लगा दिया कि यदि जनता की कोई भी चीज चली गई तो अधिकारियों की खबर ले ली जायगी। उनके इस सख्त आर्डर से किसी की कोई भी चीज नहीं गई। उस समय राजाओं का ऐसा ही तेज था और उसी से राज के सब काम काज चलते थे। आज के समान उस समय अन्धेर नहीं था कि दिन-दहाड़े, संगीनबद्ध पहरा लगा होने पर भी बैंकों से लाखों रुपये लूट लिये जाते हैं और फिर भी कुछ पता नहीं चलता है।

हां, तो प्रधान ने चुपचाप आदेश को स्वीकार किया और चिन्तातुर होकर वह घर पहुँचा। भोजन के समय जब थाल परोस कर उसकी लड़की ने सामने रखा, तो उसका हाथ ही खाने के लिये नही उठा। उसे तो आसमान के तारे नजर आ रहे थे। भाई सातभयों में से मरणभय ही सबसे बड़ा भय है। दीवान साहब को इतना चिन्तित देखकर लड़की ने पूछा—पिताजी, आज आप इतने चिन्तित क्यों हैं? उसने कहा—बेटी, क्या बताऊँ? दो दिन का और जीवन है। तीसरे दिन तो मरना पड़ेगा। लड़की के आग्रह पर दीवान ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। और कहा कि राजा का हुक्म है कि बिना पूछताछ किये और मुसाफिरों के सामान की खानातलाशी लिये बिना ही माणिक आना चाहिये। अन्यथा तीसरे दिन मृत्युदण्ड दिया जायगा। अब तू ही बता, उस माणिक का निकल आना कैसे संभव है। यह सुनकर लड़की बोली पिताजी, यह तो साधारण बात है। इसके लिये आप कोई चिन्ता न करें। मैं एक दिन में ही माणिक निकाल दूँगी। दीवान बोला—अरी, जब मेरी बुद्धि काम नहीं दे रही है, तब तू कैसे उसे निकालेगी? लड़की बोली—पिताजी, भारत पर अनेक नरेशों ने शासन किया है, परन्तु महारानी विक्टोरिया के समान किसने राज्य को संभाला? युद्ध के मैदान में अनेकों शूरमा लड़े। परन्तु झांसी वाली रानी लक्ष्मीबाई के समान कौन लड़ा? जिसने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये थे और जिसकी आज भी बुन्देल खण्ड में यशोगाथा गाई जाती है कि—

खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी॥

इसी प्रकार महाराज जसवन्तसिंह की हाड़ा रानी लड़ी किले में लालशाही को तोड़ दिया। इसलिये पिताजी, आप नारियों को अवला और मूर्खा न समझें। समय-समय पर उन्हें वहां पर अपना करतव दिखाया है, जहां पर कि बड़े-बड़े मर्दों ने घुटने टेक दिये थे। लड़की की बात सुनकर सन्तोष की सांस लेते हुए दीवान ने पूछा बेटी, बता, इसके लिये तुझे किस साधन-सामग्री की आवश्यकता है। उसने कहा—मुझे किसी साधन-सामग्री की आवश्यकता नहीं है। आप केवल उन मुसाफिरों को आज की रात में बारी-बारी से मेरे साथ चौपड़ खेलने के लिए भेजने की व्यवस्था कर दीजिये। मैं आज रात में ही असली माणिक को निकाल करके आपके सामने रख दूंगी। दीवान ने उन चारों मुसाफिरों को चौपड़ खेलने को आने के लिए निमंत्रण दे दिया और रात्रि का एक-एक पहर उनके लिए निश्चित कर दिया।

दीवान ने अपने खाने में गलीचा बिछवा दिया, गादी तकिए लगवा दिये और सबसे पहले उन चारों में से राजकुमार को चौपड़ खेलने के लिए बुलाया। राजकुमार आया, और दीवानखाने में अकेली लड़की को देखकर बोला—सुश्री, आप यहाँ अकेली हैं और मैं भी अकेला हूँ। अतः यह तो शंका जैसी चीज है? लड़की ने कहा—आप इसकी जरा भी शंका मत कीजिए। जो शुद्ध हृदय के स्त्री-पुरुष हैं, उनके साथ खेलने में शंका की कोई बात नहीं है। अब दोनों चौपड़ खेलने लगे। जब खेलते हुए एक घन्टा बीत गया, तब लड़की ने एक कहानी सुनाना प्रारम्भ किया। वह बोली—कुँवर साहब, एक लड़की बचपन में एक स्कूल में पढ़ती थी। साथ मे अनेक लड़के और लड़कियां भी पढ़ती थीं। उसका एक लड़के से अधिक स्नेह हो गया तो एक दिन उसने उससे कह दिया कि मैं तेरे साथ शादी करूंगी। लड़के ने कहा—यह तेरे हाथ की बात नहीं है। मां-बाप की जहां मर्जी होगी, शादी तो वहीं होगी। तब लड़की ने कहा—मां-बाप जहां करेंगे, सो तो ठीक है। परन्तु फिर भी शादी होने के बाद पहिली रात में तुम्हारे पास आऊँगी। इस प्रकार उसने उस लड़के को वचन दे दिया। जब वह पति के घर पहुंची तो उसने रात्रि के प्रथम पहर में अपने धनी से कहा—पतिदेव, मेरी एक प्रार्थना है कि बचपन में जब मैं स्कूल में पढ़ती थी, तब अपने एक सहपाठी को मैंने ऐसा वचन दे दिया था कि शादी की पहली रात में तुम्हारे पास आऊँगी। यह सुनकर पति ने सोचा कि यदि यह दुराचारिणी होती, तो ऐसी बात मेरे से न कहती। यह कुलीन लड़की है। यद्यपि इसे ऐसा अनुचित वचन नहीं देना चाहिए था। फिर भी जब यह अपना वचन पूरा करने के लिये पूछ रही है, तब इसे

स्वीकारता दे देना चाहिए। ऐसा विचार करके उसने उसे जाने के लिये हां भर दी कि तुम जा सकती हो। पति की आज्ञा पाकर वह शादी के उसी वेष में सर्व वस्त्राभूषण पहिने हुए अपने बचपन के साथी से मिलने के लिए चल दी। उसका पति भी उसकी परीक्षा के लिये गुप्त रूप से उसके पीछे हो लिया।

कुछ दूर जाने पर उसे रास्ते में चार चोर मिले। उसे वस्त्राभूषणों से सज्जित देखकर बड़े खुश हुए और बोले कि आज तो अच्छा शकुन हुआ है। चोरों ने पूछा—तू कहां जा रही है ? उसने कहा—तुम लोग मेरे से दूर रहना। अभी मैं अपने एक वचन को पूरा करने जा रही हूं। यदि तुम्हें मेरे गहने चाहिये हैं तो मैं वापिस आते समय तुम्हें स्वयं उतार करके दे दूंगी। यह सुनकर चोर बड़े विस्मित हुये और सोचने लगे कि हमने बहुत-सी चोरियां की और अनेकों को लूटा है। मगर इसके समान वचन देने वाला अभी तक कोई नहीं मिला। जब यह वचन दे रही है, तब इसकी परीक्षा करना चाहिये। यह सोचकर उन्होंने उसे चले जाने दिया। कुछ दूर आगे जाने पर उसे तीन दिन का भूखा एक राक्षस मिला। उसे देखते ही उसने सोचा—आज तो खुराक मिल गई है। यह इसके पास आया और बोला—भगवान का नाम सुमर ! मैं तुझे खाऊँगा। इसने कहा—यदि तुझे खाना है तो खा लेना। मगर पहिले मुझे अपना एक वचन पूरा कर आने दे। वापिस लौटने पर खा लेना। राक्षस ने भी उसे जाने दिया।

अब वह वहाँ से चलकर सीधी उस साथी के घर पहुँची। उसके घर का द्वार बन्द था और सब लोग रात्रि के सन्नाटे में गहरी नींद ले रहे थे। इसने द्वार के किवाड़ खटखटाये। खटखट सुनकर उसने पूछा - कौन है ? इसने कहा—मैं हूँ, किवाड़ खोल। उसने किवाड़ खोले और इसे देखकर पूछा—आधी रात को इस समय तुम यहां कैसे आयीं। उसने कहा—पढ़ते समय मैंने तुम्हें वचन दिया था कि शादी की पहिली रात में तुम्हारे पास आऊँगी। अतः उसी वचन को पूरा करने के लिये मैं तुम्हारे पास आई हूँ। यह सुनते ही वह मन में सोचने लगा—धन्य है इसे, जो अपने पति की आज्ञा लेकर अपना वचन पूरा करने के लिये यहां आई। अब यदि मैं इसके सतीत्व को भ्रष्ट करूँ तो मेरे से अधिक और कौन नीच होगा ? अब यह मेरी बहिन के समान है। ऐसा विचार कर उसने उससे कहा—बाई, अब आप वापिस घर पधारें। यह कह कर उसने उसे चूंदड़ी ओढा करके उसे रवाना किया और उसे पहुंचाने के लिए स्वयं साथ हो गया। यह सारा हाल गुप्त रूप से उसका पति देख रहा था।

अब ये दोनों भाई-बहिन चलते हुए राक्षस के ठिकाने पर पहुंचे। राक्षस मिला और उससे उस स्त्री ने कहा—अब तू मुझे खा सकता है। यह सुनकर राक्षस ने सोचा अरे, जब इसने अपना वचन निभाया है तब मैं इसे खाऊँ ? यह नही हो सकता। प्रकट में उसने उससे कहा—अब मैं तुझे नहीं खाऊंगा। तू मेरी बहिन है, यह कह कर उसने उसे बहुमूल्य आभूषण दिये और उसे पहुंचाने के लिए वह राक्षस भी साथ हो लिया। कुछ आगे जाने पर वे चारों चोर मिले जो इसके आने की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। इसने सामने पहुँच कर कहा— लो मैं आ गई हूं। अब जो कुछ तुम लोग लेना चाहो सो ले सकते हो। चोरों ने देखा इसके साथ एक राक्षस और एक भला आदमी और यह अपने वचन की पक्की निकली है। अतः इसे नहीं लूटना चाहिए। यह विचार कर उन्होंने कहा—तू अब हमारी बहिन है, यह कहकर जो धन लूट से लाये थे, वह उसे देकर उसे पहुंचाने के लिए साथ में हो गये।

कुछ दूर चलने पर जैसे ही उसका गांव आया कि उसका पति जो गुप्त रूप से अभी तक पीछे-पीछे चल रहा था, झट वहां से दूसरे मार्ग-द्वारा अपने घर में जा पहुंचे। थोडी देर में यह स्त्री भी गई। पति ने पूछा– वचन पूरा करके आ गई ? इसने कहा—हां आ गई हूँ। बाहिर आपके छह साले खड़े हैं। उनसे जाकर मिल लीजिए। वह बाहिर गया, सब का स्वागत किया और उन्होंने जो धन दिया, वह लेकर और उन्हें विदा करके अपनी स्त्री के पास आ गया।

यह कहानी कहकर उस दीवान की लड़की ने पूछा - कुंवर साहब, यह बताइये कि पति, चोर, राक्षस और साथी इन चारों में सबसे बढ़कर साहूकार कौन है ? और इन चारों में से धन्यवाद किसे दिया जावे ? तब राजकुमार ने कहा–राक्षस को धन्यवाद देना चाहिये, जो तीन दिन भूखा होने पर भी उसने इसे नहीं खाया। यह सुनकर उसने राजकुमार को धन्यवाद दिया और उनसे कहा—अब आप पधारिये।

राजकुमार के जाने के पश्चात दीवान-पुत्र आया। उसने उसके साथ भी चौपड़ खेली और सारी कहानी सुनाकरके पूछा– बताइये, आपकी राय में धन्यवाद का पात्र कौन है ? उसने कहा—उसका पति और वह बाल साथी दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं। उसके पति ने तो अपनी स्त्री पर विश्वास किया और उसके साथी ने आत्म-संयम रखकर और बहिन बनाकर उसे वापिस किया। दीवान की लड़की ने इन्हें धन्यवाद देकर विदा किया।

इसके पश्चात सेठ के लड़के का नम्बर आया। दीवान की लड़की ने उसके साथ चौपड़ खेली और यही कहानी उसे सुनाकर पूछा—बताइये, उन चारों में धन्यवाद का पात्र कौन है? उसने कहा—मेरी राय में वह स्त्री धन्यवाद की पात्र है, जिसने कि अपने पति से कोई कपट नहीं किया और अपनी गुप्त बात भी पति से कह दी। और जाकर अपना वचन भी निभाया। उसने इन्हें भी धन्यवाद देकर कहा-- अब आप पधार सकते हैं।

अब चौथा नम्बर आया पुरोहित जी के पुत्र का। वह उसके साथ भी चौपड़ खेली और वही कहानी इसे भी सुनाकर पूछा—बताइये, धन्यवाद का पात्र उन चारों में कौन है? इसने कहा—धन्यवाद तो चोरों को देना चाहिए कि जिन्होंने ऐसा सुन्दर अवसर पाकर के भी स्त्री और उसके जेवर पर हाथ नहीं डाला! दीवान की लड़की ने कहा—ठीक है। लड़की ने देखा कि अभी तक भी दिन का उदय नहीं हो रहा है। अतः उसने दासी को इशारा करके दीपक को गुल करा दिया। अंधेरा होते ही वह बोली—अहा, चौपड़ खेलने में कैसा आनन्द आ रहा था, कि इसने अंधेरा कर दिया। अब चौपड़ कैसे खेली जाये? तब वह बोला—आप चिन्ता न कीजिए। मेरे पास एक ऐसी गोली है कि जिससे अभी चांदना हुआ जाता है। ऐसा कहकर उसने उस सवा करोड़ के माणिक को निकाल कर ज्यों ही बाहिर रखा कि एकदम प्रकाश हो गया। इसी समय उसने पीने के लिए पानी मांगा। ज्यों ही वह पानी पीने लगा कि उस लड़की ने उसे पैर की ठोकर से नीचे चौक में गिरा दिया। वहां पर अंधेरा हो गया। यह देख वह बोला—अरी, तूने यह क्या किया है? मेरी यह गोली कहां चली गई है? वह बोली चिन्ता न कीजिए। दिन के ऊगने पर उसे ढूंढ लेंगे। अभी आप पधारो और विश्राम करो। यह कहकर उसने उसे रवाना कर दिया।

प्रातः काल होने पर लड़की उस माणिक को लेकर दीवान साब के पास गई और बोली—पिताजी, रात में उन चारों के साथ चौपड़ खेली और खेल-खेल में आपका काम भी पूरा कर लिया है। यह लीजिये वह माणिक। दीवान साहब यथा समय राजदरबार म पहुंचे और उन चारों मुसाफिरों को बुलवाया। दीवान ने वह माणिक राजा साहब के आगे रखते हुए कहा—महाराज, यह है वह माणिक। इसे निकालने मे मेरी नहीं, किन्तु मेरी पुत्री की कुशलता ने काम किया है। तब राजा ने दीवान की पुत्री को बुलवाया। वह आई और महाराज को नमस्कार करके बैठ गई। राजा ने अपने भंडार से अनेकों माणिकों को मंगवा कर उनके बीच मे इस माणिक को मिलाकर उन

चारों मुसाफिरों से कहा—आप लोग अपने माणिक को पहिचान लेवें। उन्होंने पहिचान करके अपने माणिक को उठा लिया। इस प्रकार विना किसी की खाना-तलाशी लिए और नाम को प्रकट किये विना ही उनका माणिक उनके पास पहुंच गया।

इस समय सारे राज-दरबारी यह जानने को उत्सुक थे कि यह माणिक किस प्रकार निकलवाया गया? तब राजा ने उस दीवान की पुत्री से पूछा—बेटी, तूने कैसे इस माणिक को निकलवाया है? तब उसने रात वाली कहानी कहकर इन लोगों से पूछा कि उन लोगों में से आप लोग किसे धन्यवाद का पात्र समझते हैं? तब उनमें से एक ने राक्षस की प्रशंसा की, दूसरे ने धनी और उसके बाल-साथी की प्रशंसा की तीसरे ने स्त्री की और चौथे ने चोरों की प्रशंसा की। महाराज, चोरी की प्रशंसा तो चोर ही कर सकता है। अतः मुझे उस पर सन्देह हुआ और तरकीब से उसे निकलवा लिया। सारे दरबारी लोग सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और महाराज ने भी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। उन चारों मुसाफिरों में जो राजा का पुत्र था, उसने पूछा—महाराज, यह किसकी पुत्री है? दीवान बोला—रात को किसके साथ चौपड़ खेले थे? उसने कहा—दीवान साहब की पुत्री के साथ। तब उसने अपना परिचय दिया कि मैं अमुक नरेश का राजकुमार हूं और बिना टीके के ही रिश्ता मंजूर करता हूँ। राजा ने भी दीवान से कहा—दीवान साहब, अवसर अच्छा है, विचार कर लो। दीवान ने कहा—महाराज, मैं लड़की की इच्छा के जाने बिना कुछ भी नहीं कह सकता हूं। अतः उससे विचार-विमर्श करके सायंकाल इसका उत्तर दूंगा। तत्पश्चात् दरबार विसर्जित कर दिया गया और सायंकाल सबको आने के लिए कहा गया।

घर जाकर दीवान ने अपनी पुत्री से पूछा—बेटी, राजकुमार के साथ सम्बन्ध के बाबत तेरा क्या विचार है? उसने कहा—यदि आपकी राय है, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। सायं काल राजदरबार जुड़ा। दीवान ने जाकर राजा से कहा—कि राजकुमार का प्रस्ताव हमें मंजूर है। उसी समय दीवान ने धूम-धाम के साथ अपनी पुत्री का उस राजकुमार के साथ विवाह कर दिया और भर-पूर दहेज देकर उसे विदा कर दिया।

इस कहानी के कहने का अभिप्राय यह है कि यदि मनुष्य में बुद्धि है, तो वह कठिन से भी कठिन परिस्थिति में विकट से भी विकट समस्या का समाधान ढूंढ सकता है। पर यह तभी संभव है, जबकि मनुष्य का हृदय शुद्ध हो।

शुद्ध हृदय वाले व्यक्ति की बुद्धि सदा सन्मार्ग दिखाती है और अशुद्ध हृदय वाले की बुद्धि उन्मार्ग की ओर ले जाती है। उत्तम पुरुष के विचार सदा उत्तम रहेंगे, मध्यम के मध्यम और अधम के विचार अधम रहेंगे। भले और बुरे मनुष्य की पहिचान उसके आचार-विचार से ही होती है। इसलिए हमें सदा शुद्ध हृदय और उन्नत विचार रखने चाहिए।

वास्तव में जीवन के ये दो गुण मनुष्य को महानता के शिखर पर पहुंचा देते हैं—हृदय में उदारता, हाथ और मनखुला रहे तथा कोई अपना उपकार करे उसके प्रति कृतज्ञ रहें।

शुभ औदार्य कृतज्ञता, जीवन के दो रूप।
मानव जीवन का मधुर 'मिश्री' रूप अनूप।

वि० सं० २०२७ असोज सुदी ८
जोधपुर

५ पापों की विशुद्धि का मार्ग आलोचना

सज्जनो, शास्त्रकार भव्य जीवों के लिए उपदेश दे रहे हैं कि अपने आचार मे किये गये दोपो की विशुद्धि के लिए प्रायश्चित्त करो। जब तक मनुष्य छद्मस्थ है—अल्पज्ञानी है—तब तक भूलें होना स्वाभाविक है। यदि मनुष्य से भूल हो गई, तो उसे गुरु के सम्मुख प्रकट करने पर वे क्या करेंगे ? वे आपके दोष के अनुरूप दंड देंगे, या उपालम्भ देंगे। मगर इससे आप शुद्ध हो गये और पापों की या भूलों की परम्परा आगे नही बढी। क्योंकि भूल को संभाल करली। किन्तु जब मनुष्य एक भूल करने के पश्चात् अपनी भूल का अनुभव नहीं करके उसे छिपाने का प्रयत्न करता है, तब वह भूल करके पहिले ही अपराधी बना और उसे छिपाने का प्रयत्न करके और भी महा अपराधी बनता है। यद्यपि वह अन्तरंग मे जानता है कि मैंने अपराध किया है, तथापि मानादि कषायों के वशीभूत होकर वाहिर में गुरु आदि के सामने स्वीकार नही करना चाहता है। तथा जिसने अपनी भूल को बताया है, झूठ बोलकर वह उसका भी अपमान करता है। इस प्रकार वह अपराधी स्व और पर का विघातक चोर बनता है। जो स्व और पक्का चोर बनता है, वह परमात्मा का भी चोर है। इस प्रकार वह जानने वाले तीन पुरुषों का अपराधी बन जाता है। ऐसी दशा में भी मनुष्य सोचता है कि हम संसार से पार हो जावेंगे, क्योंकि हमने

इतनी सामायिकें की हैं, इतने व्रत-उपवास किये हैं और इतना दान दिया है ! आप लोग स्वयं विचार कीजिए कि उक्त कार्यों को करनेवाला व्यक्ति क्या अपने पापों की आलोचना किये बिना ही तिर जायगा ? कभी नहीं तिर सकेगा ।

स्वयं, स्वयं के द्रष्टा

भाइयो, भगवान महावीर का बताया मोक्ष का मार्ग तो बहुत सीधा और सरल है तथा उच्चकोटि का है। उन्होंने कहा है कि यदि तुम से भूल हुई है, जिसके प्रति दुर्भाव रखे हैं, या कोई अपराध किया है, तो उससे क्षमा-याचना करो और अपनी भूल की आलोचना, निन्दा और गर्हा करो, तुम्हारा पाप धुल जायगा और तुम निर्दोष हो जाओगे, निर्मल बन जाओगे। अपनी शुद्धि का यही राजमार्ग है। जैन शासन के धारक व्यक्ति की महिमा देखो कि उस की भूल को किसी ने देखा नही, किसी ने बताया नही और दुनिया जिसे साहूकार और भला मनुष्य मानती है। परन्तु भूल होने पर वह स्वयं अपने मुख से कहता है कि भाई साहब, आप मुझे साहूकार मानते हैं, परन्तु मै चोर हूं, क्योकि मैंने अमुक-अमुक चोरिया की है। उसकी यह बात सुनकर लोग दंग रह जाते है कि यह कितना ईमानदार और सरल व्यक्ति है कि जिसकी चोरियो को कोई भी नही जानता, उन्हे वह अपने ही मुख से कह रहा है। भाई, सच पूछो तो मै कहूंगा कि उसने ही धर्म का मर्म जाना है। और इस प्रकार बिना किसी के कहे ही अपने अपराधो को कहने और स्वीकारने वाला मनुष्य नियम से संसार को तिरने वाला है।

एक राजा का गुप्त खजाना था, पर न उसे उसका पता था और न राज्य के अन्य अधिकारियो को ही। इसका कारण यह था वह खजाना कई पीढ़ियों से इसी प्रकार सुरक्षित चला आ रहा था और उसकी चाबी भी सदा से एक व्यक्ति के परिवार के पास सुरक्षित चली आ रही थी। उस परिवार को उसके पूर्वज सदा यह हिदायत देते आ रहे थे, कि इन खजाने का भेद किसी को भी न बताया जाय। हा, जब राज्य आर्थिक सकट से ग्रस्त हो, तब इस खजाने से उसे द्रव्य दिया जावे। जिस व्यक्ति के पास उस खजाने की चाबी थी, उसकी आर्थिक दशा बिगडने लगी और वह अपने कुटुम्ब के पालन-पोषण करने के लिए समय-समय पर उस खजाने में से आवश्यकता के अनुसार थोड़ा-थोड़ा धन निकाल कर अपना निर्वाह करने लगा। धीरे-धीरे उसकी लोभ वृत्ति बढ़ने लगी और वह आवश्यकता से भी अधिक धन निकालने लगा और ठाठ बाट से रहने लगा। उसकी यह शान-शौकत देखकर पड़ोसियो को सन्देह होने लगा

कि यह व्यापार-धन्धा तो कुछ करता नहीं है, फिर इसके पास यह धन कहां से आता है ? धीरे-धीरे यह बात राज्य के अधिकारियों के कानों तक पहुंच गई। वे लोग भी गुप्त रूप से उसके ऊपर नजर रखने लगे। मगर वह व्यक्ति इतना सतर्क और सावधान था कि अधिकारियों की पकड़ में नहीं आया। इस प्रकार बहुत समय बीत गया।

इधर राज्य में भ्रष्टाचार बढ़ गया और राज्याधिकारी अपने कर्तव्य-पालन मे शिथिल हो गये। फलस्वरूप राज्य के चालू खजाने की सम्पत्ति समाप्त हो गई और राज्य ऋण के भार से दब गया। दूसरी ओर दुष्काल पड़ा और एक समीपवर्ती राजा ने राज्य पर आक्रमण भी कर दिया। इससे राजा बहुत परेशानी में पड़ गया। राज्य के अधिकारी किनारा-कशी करने लगे, तथा राज्य के अन्य हितैषी लोग भी अपनी नजर चुराने लगे। इस प्रकार राजा पर बहुत भारी मुसीबत आ गई। उस समय जिस व्यक्ति के पास गुप्त खजाने की चाबी थी, उसने सोचा कि राज्य इस समय संकट-ग्रस्त है। कहीं ऐसा न हो कि इससे संत्रस्त होकर राजा अपने प्राणों की बाजी न लगा दे। यह विचार कर वह एक दिन एकान्त-अवसर पाकर राजा के पास गया। राजा ने पूछा—भाई, तुम कौन हो और कैसे आये हो ? उसने कहा—महाराज, मैं आपका चोर हूं और यह कहने के लिए मैं आपके पास आया हूं कि मेरे पास जो कुछ भी धन है, वह आप ले लीजिए, ताकि मै शुद्ध हो जाऊँ ? राजा उसकी बात सुनकर बड़ा विस्मित हुआ और बोला - भाई, मैं तुझे चोर नहीं समझता। मैंने गुप्त सूत्रों से तेरी जांच-पड़ताल की है, पर तेरी एक भी चोरी पकड़ में नहीं आई है। जब चोरी नहीं पकड़ी गई है, तब मैं तुम्हारा धन कैसे ले सकता हूं ! वह व्यक्ति बोला—महाराज, मैने आपके खजाने से इतना धन चुराया है कि यदि मैं ब्याज-सहित उसका भुगतान करूं, तो भी नहीं चुका सकता। अतः मेरा निवेदन है कि आप मेरा सब धन लेकर मुझे चोरी के अपराध से मुक्त कीजिए। राजा ने कहा—भाई, जब तेरी चोरी पकड़ी ही नहीं गई हैं, तब मैं कैसे तो तुम्हें चोर मानूं और कैसे तुम्हारा धन लूं ? हां, यदि तू राज्य की सहायतार्थ दे, या कर्ज पर दे, अथवा भेंट में दे, तब तो मैं तेरा धन ले सकता हूं। अन्यथा नहीं। वह बोला—महाराज, न तो मैं भेंट देने के योग्य हूं, न ऋण पर ही देने का अधिकारी हूं और न राज्य की सहायता ही कर सकता हूं। किन्तु मैंने राज्य के खजाने से चोरियां की है, अतः मै तो आप से यही प्रार्थना करता हूं, कि मैं आपका धन आपको वापिस देकर आत्म-शुद्धि करना चाहता हूं, कृपया मेरा धन लेकर मुझे शुद्ध कीजिए। अब दोनों अपनी अपनी बात पर अड़ गये। राजा कहता है कि तू चोर नहीं है तो मैं

कैसे तुझे दंड दूं और कैसे तेरा धन ग्रहण करूं ? और वह व्यक्ति कहता है कि मैं चोर हूं, मैंने आपका धन चुराया है, अत. मुझे दंड दीजिए और मेरा धन ले लीजिए। उसने आगे कहा—महाराज, आपके गुप्त खजाने की चाबी मेरे पास थी, उससे मैं गुप्त खजाने से अब तक चोरिया करता। अब आपका राज्य आर्थिक सकट से ग्रस्त है, दुष्काल भी पड रहा है और दूसरे राजा ने राज्य पर आक्रमण भी किया हुआ है। ऐसी दशा में आपको गुप्त खजाने की चाबी देता हूं और भंडार को भी संभलाता हूं। पर पहिले मुझे दंड देकर और मेरा धन लेकर मुझे शुद्ध कर देवें। उसके इस प्रकार बहुत कुछ अनुनय-विनय करने पर भी जब राजा किसी प्रकार उसे चोर मानने और उसका धन लेने को तैयार नही हुआ, तब उसने महारानी जी के पास जाने के लिए राजा से आज्ञा मांगी। राजा ने 'हां' भर दी। वह महारानी के पास पहुंचा और उनसे बोला—महारानी जी साहब, मैं आपका चोर हू। रानी ने पूछा—भाई, तू चोर कैसे है ? तब उसने उपर्युक्त सर्व वृत्तान्त उनसे कहा। रानी बोली—जब महाराज, तुझे चोर मानते और तेरा धन लेने के लिए तैयार नही है, तब मैं कैसे तुझे चोर मान सकती हूं और कैसे तेरा धन ले सकती हूँ ? फिर जो चोर होता है, वह अपने मुख से नही कहता-फिरता है कि मैं चोर हूं और मेरा धन ले लीजिए। उसने बहुत कुछ आग्रह किया और यथार्थ बात भी कही। परन्तु रानी साहब न उसे चोर मानने को तैयार हुई और न उसका धन लेने के लिए ही।

अब वह महारानी सा० के पास से महाराजकुमार के पास गया और उनसे भी उक्त सारी बातें कहकर और धन ले कर अपने को शुद्ध करने की बात कही। उन्होने भी उसे चोर मानने और धन लेने से इनकार कर दिया।

भाइयो, आप लोग बतायें कि हमने जो पाप किया और उसे भगवान के सामने रख दिया, तो क्या भगवान हमें अपराधी मानेंगे ? कभी नही। वे यही मानेंगे कि प्रमाद-वश इससे यह भूल हो गई है, अत यह क्षमा का पात्र है। उस व्यक्ति ने जब चोरी की थी, तब वह चोर था। किन्तु जिसकी चोरी की थी, वह जब उससे ही अपना अपराध कह रहा है और उसका प्रायश्चित भी लेने को तैयार है, तब वह चोर नही रहा। अब तो वह साहूकार बन गया है।

जब महाराजकुमार ने उसे चोर नही माना और न उसका धन लेना स्वीकार किया, तब उसने महाराज, महारानी और महाराज कुमार इन तीनो को एकत्रित करके निवेदन किया कि मैं चोर हू और उसके दंड रूप मेरा सब धन ले लीजिए। तब राजा ने कहा—यदि तू चोर है, तो बता, किस खजाने

से कब-कब कितना धन कहाँ से चुराया है ? वह बोला—महाराज, वह खजाना तो मुझे आपको बताने के लिए मनाई की हुई है। परन्तु मैं यह सत्य कहता हूं यह खजाना आपका है और मैंने अमुक-अमुक समय इतना धन चुराया है कि अपना सारा धन देने पर भी मैं आपके ऋण भार से मुक्त नहीं हो सकता हूं। राजा ने पूछा - उस खजाने मे कितना माल है ? उसने कहा — महाराज, इसका भी मुझे कुछ पता नही है। परन्तु मैं इतना अवश्य जानता हूं कि उसमें अपार धन है ? राजा ने कहा—यदि ऐसी बात है तो तू वह खजाना मुझे बता। वह बोला महाराज, उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूं, क्योंकि मेरे पिता ने मरते समय उसे बताने के लिए मना किया था। हाँ, राज्य पर संकट आने के समय उसमें से धन निकाल कर आप को देने के लिए अवश्य कहा था। राज्य इस समय संकट-ग्रस्त है और मैंने उसमें से धन चुराया है। मेरे पास इस समय इतना धन है कि राज्य का संकट टल सकता है। अतः मैं आप सबसे यही प्रार्थना करता हूं कि आप मेरा धन लेकर मुझे शुद्ध कीजिए और राज्य के संकट को दूर कीजिए। राजा ने पूछा—तूने खजाने में से धन क्यों चुराया ? उसने कहा—महाराज, मेरी आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर हो गई थी और कुटुम्ब के भरण-पोषण का कोई मार्ग मेरे पास नहीं था, अत. पर-वश होकर मैंने खजाने में से धन लिया है। राजा ने पूछा—कितना धन लिया है ? वह बोला महाराज, मौखिक तो मैं नही बता सकता। परन्तु जब-जब जितना धन लिया हैं, उसे मिती-वार मैंने अपनी बही मे अवश्य लिखा है। राजा ने कहा—यदि ऐसा है, तो तू मेरे पैरों को हाथ लगाकर के कहदे कि मैंने चोरी की है। उसने कहा—महाराज, में इससे भी बढ़कर हल्फिया कह सकता हूँ कि मैंने आपकी चोरी की है। यदि इतने पर भी आपको मेरी बात पर विश्वास न हो, तो आप मेरा सिर धड़ से अलग कर सकते हैं। उसकी यह बात सुनकर रानी ने राजा से कहा—यह सज्जन पुरुष प्रतीत होता है, अतः इसकी बात को आप मान लीजिए। राजा ने कहा—इसे चोर मानने और इसका धन लेने के लिए मेरी आत्मा गवाही नही देती है। परन्तु यह मेरे पैरों को हाथ लगाकर क्यों नहीं कहता है कि मैं चोर हूं। तब रानी ने उससे कहा—यदि तू महाराज के चरणों को हाथ लगाकर कहने को तैयार नहीं है तो देवगुरु की साक्षी से कहदे कि मैं चोर हूं। उसने कहा हुजूर, जब मेरी आत्मा स्वयं साक्षी है, तब मैं देव-गुरु को क्यों साक्षी बनाऊँ ? उनको साक्षी बनाने की आवश्यकता ही क्या है ? इस प्रकार न राजा ही उसे चोर मानने को तैयार हुआ और न उसने देव-गुरु की साक्षी-पूर्वक कहने की बात ही स्वीकार की वह बार-बार यही

कहता रहा कि मैं हल्फिया कहता हू कि मैंने आपके खजाने का धन चुराया है और इसलिए मैं आपका चोर हू, अपराधी हू। मगर राजा ने उसकी बात नही मानी। वह निराश होकर अपने घर चला गया और इधर राजा, रानी और राजकुमार भी सोच-विचार मे पड गये।

एक दिन राजा ने स्वप्न मे देखा कि उसके राजमहल मे एक बडा भारी खजाना है और उसमे अपार धन भरा हुआ है। उस खजाने की चाबी जिस व्यक्ति के पास है, वह आकर के कह रहा है कि यह खजाने की चाबी लो, और उसमे से जितना धन मैंने लिया है उसे भी सभालो। राजा स्वप्न देखते ही जाग गया और और विचारने लगा कि यह स्वप्न कैसे आया ? कही यह दिन मे उस व्यक्ति के द्वारा कही गई बातो के सस्कार से तो नही आया है ? क्योकि **'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'** अर्थात् जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है। और स्वप्नो के विषय मे यह भी कहा है कि—**'अस्वप्नपूर्वं जीवाना न हि जातु शुभाशुभम्'** अर्थात् जीवो के आगामीकाल मे होनेवाला कोई भी शुभ या अशुभ कार्य बिना स्वप्न आये नही होता है। अत मेरा यह स्वप्न भी सार्थक ही प्रतीत होता है। राजा ने प्रात काल अपने स्वप्न का वृत्तान्त रानी से कहा। तब रानी भी बोली — महाराज मुझे भी यही स्वप्न आया है। महाराज कुमार ने भी आकर के कहा—आज मैंने ऐसा स्वप्न देखा है। महारानी और महाराज कुमार ने राजा से कहा—उस आदमी का कथन सत्य प्रतीत होता है। हमे उसकी बात मान लेनी चाहिए। मगर राजा ने कहा—दिन मे जो बातें हुई हैं, उनके असर से ही यह स्वप्न आया प्रतीत होता है। अत मै अभी भी उसे चोर मानने को तैयार नहीं हू। इस प्रकार यह दिन निकल गया।

दूसरे दिन रात मे राजा ने फिर स्वप्न देखा कि कोई व्यक्ति आकर के कह रहा है—हे राजन ! उस व्यक्ति ने अन्न-जल का तब तक के लिए त्याग कर दिया है, जब तक कि तू उसे चोर मानकर उसका सब धन नही लेगा। अत तू उसका धन ले ले। यदि धन नही लेगा और वह मर गया तो उसकी हत्या के पाप का भागी तू होगा। सवेरे उठने पर मालूम हुआ कि इसी प्रकार का स्वप्न रानी और राजकुमार ने भी देखा है। जो पुण्यात्मा और सत्कर्मी होते है, उन्हे भविष्य-सूचक सत्य स्वप्न आया करते है। इस दिन भी राजा ने कुछ ध्यान नही दिया और यह दिन भी यो ही बीत गया।

तीसरे दिन राजा ने रात्रि में फिर स्वप्न देखा कि कोई व्यक्ति कह रहा है कि हे राजन्, देख, उसे अन्न-जल का त्याग किये हुए आज तीसरा दिन है। तू अब भी उसकी बात को मान ले। यदि कल दोपहर तक तूने उसकी बात नहीं मानी तो उसी समय तेरा मरण हो जायगा। राजा की स्वप्न देखते ही नींद खुल गई। वह कुछ भय-भीत हुआ। राजा ने अपने स्वप्न की बात कही तो उन दोनों ने भी कहा—महाराज यही स्वप्न हम दोनों ने भी देखा है। तब राजा बोला इस विषय में दीवान साहब से भी परामर्श कर लेना चाहिए। रानी ने कहा—महाराज, यह बात अपन लोगों से बाहर नहीं जानी चाहिये। दीवान साहब के भ्रष्टाचार के कारण ही तो राज्य की यह दुर्दशा हो रही है। अतः उनसे इस विषय में विचार-विमर्श करना ठीक नही है। तब रानी ने गाड़ी भिजवा करके राजकुमार के द्वारा उस व्यक्ति को कहलवाया कि आप पारणा करें और धन को गाड़ी में भर कर राजमहल भिजवा देवें। राजकुमार ने जाकर उससे अन्न-जल ग्रहण करने और धन राजमहल भिजवाने की बात कही। वह बोला—न मैं अन्न-जल ही ग्रहण करूंगा और न धन ही दूंगा। जब महाराज मुझे चोर मान कर मेरा धन दण्डस्वरूप लेंगे, तभी मैं अन्न जल ग्रहण करूंगा और धन भी तभी दूंगा। राजकुमार उसके इस उत्तर से निराश होकर वापिस चले आये और अपनी माताजी से सब हाल कह सुनाया। रानी बोली—बेटा यह भी अपनी हठ पर डटा हुआ है और महाराज भी अपनी हठ पर डटे हुए हैं। अब क्या किया जाये ? दोनों सलाह करके महाराज साहब के पास गये और बोले—महाराज, क्या उसके प्राण लेना है, अथवा स्वयं के मरने का निश्चय किया है ? महाराज बोले—महारानी जी, स्वप्न से आसार तो ऐसे ही दिखते हैं। पर मुझे निश्चय कैसे हो कि वह चोर है ? तब रानी ने कहा—महाराज, इतने प्रमाण आपको मिल चुके हैं, फिर भी आप उसे चोर मानने को तैयार नही हैं, यह बड़े आश्चर्य की बात है। इस प्रकार समझा-बुझा कर रानी राजा को लिवाकर उसके घर पहुंची। वहां जाकर राजा ने उससे कहा—भाई, भोजन करो और अपना धन मुझे दे दो। राजा की यह बात सुनकर वह बोला—महाराज, जब तक आप मुझे चोर नहीं मानेंगे और मेरे पास के धन को चोरी का माल मान करके नहीं लेंगे, तब तक न मैं अन्न-जल ही ग्रहण करूंगा और न धन ही दूंगा। राजा फिर भी उसे चोर मानने को तैयार नहीं हुआ। इतने में बारह बजने का समय होने को आया और राजा की तबियत एकदम बिगड़ गई। वह छटपटा कर मूच्छित हो गया। राजा को तुरन्त राजमहल में ले जाया गया। चिकित्सक बुलाये गये और सर्व-

प्रकार के उपचार प्रारम्भ किये गये। मगर राजा की हालत उत्तरोत्तर विगड़ती गई और नाड़ी ने भी अपना स्थान छोड़ दिया। राजा की यह दशा देखकर रानी और राजकुमार रोने लगे और सारे राजमहल में कुहराम मच गया।

इसी समय वेहोशी की हालत में राजा को ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई मनुष्य आकर कान में कह रहा है कि क्यों व्यर्थ अपने प्राण गंवाता है। वह सत्य कहता है कि मैं चोर हूं। अतः तू जाकर और उसे चोर मानकर उससे धन ले आ और गुप्त खजाने की चावी भी उससे ले आ। तीसरे दिन वह स्वयं आकर गुप्त खजाने को भी वतला देगा। कानों में ये शब्द पड़ते ही राजा होश में आ गया। सारे लोग यह देखकर वड़ हर्षित हुये। राजा ने उसके यहां जाकर कहा—भाई, मेरे खजाने की चावी मुझे दो और मेरा माल भी मुझे दो और अब अन्न-जल ग्रहण करो। उसने सहर्ष चावी राजा को सौंप दिया और अन्न-जल को ग्रहण करके अपने नियम को पूरा किया।

राजा भी चावी और धन लेकर राजमहल लौट आया। तीसरे दिन वह व्यक्ति राजा के पास आया और नमस्कार करके बैठ गया। राजा ने कहा—भाई, तुमने गुप्त खजाने की चावी तो मुझे दे दी है, मगर वह स्थान तो वतलाओ, जहां पर कि गुप्त खजाना है। तब उसने कहा—महाराज, आप प्रतिज्ञा कीजिये कि यदि मेरे ऊपर वड़ी से भी वड़ी आपत्ति आयेगी, तब भी मैं खजाने को खाली नही करूँगा। आपके प्रतिज्ञा करने पर जब मुझे विश्वास हो जायगा, तभी मै गुप्त खजाने के स्थान को वतलाऊँगा। हां राज्य पर और जनता पर आपत्ति आने के समय आप उससे धन लेकर उसका दुःख दूर कर सकते हैं। परन्तु अपने या अपने परिवार के लिए कभी भी उससे धन नहीं ले सकेंगे। महाराज-द्वारा उक्त प्रतिज्ञा के करने पर वह उस स्थान पर ले गया, जहां पर कि गुप्त खजाना था। राजा ने उसका ताला खोला तो देखा कि वहां पर अपार धनराशि पड़ी है। यह देखकर राजा ने कहा—इसे वन्द कर दो। जब वह खजाने को वन्द करके चावी राजा को देने लगा तब राजा वोला—अव मुझे चावी की आवश्यकता नहीं है। अब तो मैं जब चाहूँगा, तभी ताला तुड़वा करके धन को ले लूँगा। मैंने इतने दिन तक निभाली। अब मैं अपनी आत्मा को विगाड़ना नहीं चाहता हूं।

भाइयो, यह एक द्रव्य दृष्टान्त है। भाव-दृष्टान्त यह है कि हमारी आत्मा के निज गुणरूपी गुप्त खजाने की चावी सम्यक्त्व है। वह परम पिता भगवान ने हमे दी है। परन्तु हमने उस व्यक्ति के समान निरन्तर चोरियां

ही की है। कभी तपस्या में चोरी की, कभी व्रत-पालने में चोरी की और कभी आचार में चोरी की। उनके फलस्वरूप मर कर किल्विषी देव हुए। किल्विषी अर्थात् पाप-बहुत नीच जाति के देव क्यों हुए? क्योंकि हमने अपने पापों की आलोचना नही की—अपने पापो को गुरु के सम्मुख प्रकाशित नही किया। जब तक हम अपने पाप प्रकाशित नही करते हैं, तब तक हम सब चोर ही है। परन्तु जब आत्मा के भीतर सम्यक्त्व प्रकट हो गया, तब हमे यह कहने का साहस आया कि भगवन्, मैंने तपस्या में चोरी की है, व्रतो मे चोरी की है और आचार मे चोरी की है। प्रभो, मैं आपका चोर हूं, आप मुझे दण्ड दीजिए। तब भगवान् कहते हैं—तुम चोर नही हो! तुम अपनी आलोचना स्वयं कर रहे हो तो यह तो तुम्हारी साहूकारी ही है।

जब एक राजा अपने को चोर कहने वाले व्यक्ति को चोर मानने के लिए तैयार नही है, तब भगवान उसे चोर कैसे मान सकते है? जो अपने अपराध को स्वयं स्वीकार कर रहा है, वह अपराधी, पापी या चोर नहीं है, क्योंकि अपने अपराध को स्वीकार करना तो उत्कृष्ट कोटिका तप है कि जो कुछ भी उसने अज्ञान, प्रमाद से, या जानबूझ कर पाप किया है, वह सबके सम्मुख प्रकट कर देवे। जो व्यक्ति जब तक अपने पाप को छिपा करके रखता है, तब तक उसका कल्याण नही हो सकता है।

एक साधु गंगा के किनारे पर रह कर खूब तपस्या करता था। कुछ धीवर लोग उसके सामने ही जाल डाल कर नदी में से मछलिया पकड़ा करते थे। एक दिन उसने धीवरों से पूछा—तुम लोग इन मछलियो को ले जाकर के क्या करते हो? उन्होंने बताया कि इन्हें तेल मे तल करके खाते हैं। साधु सुनकर विचारने लगा मछली खाने मे स्वादिष्ट होती होगी। तब उसने भी मछली पकड़ कर और उसे तल कर खाई। मछली खाने से उसके पेट में बहुत दर्द उठा। वैद्यो से दवा लेने पर भी आराम नही मिला। वह बहुत दुखी हुआ। एक चतुर पुराने वैद्य ने साधु की नाड़ी देखते हुए पूछा—आप सत्य कहिये, क्या खाया है। उसने चार-पांच बार झूठ बोलकर अन्य वस्तुओं के नाम लिए। वैद्य बोला—नाड़ी तो इस वस्तु के खाने को नहीं बताती है। उसने कहा—महाराज, यदि जीवित रहना है, तो सच बताओ कि क्या खाया है, तब तो मैं आपका इलाज करके ठीक कर दूंगा। अन्यथा बैकुण्ठी तैयार है। "साधु सोचने लगा कि मेरे इतने भक्त यहाँ पर बैठे है। मैं इनके सामने सच बात कैसे कहूं। मगर जब वैद्य ने मरने का नाम लिया, तो उसने सब बात सच कह दी। वैद्य ने उसका उपचार करके उसे ठीक कर दिया। भाई, वह साधु कब शुद्ध और स्वस्थ हुआ, जब उसने अपना पाप चिकित्सक से कह दिया तब।

भाइयो, जो भी पुरुप व्रत-नियम लेकर के दुष्कर्म करता है और उनको छिपाता है, अथवा अन्य प्रकार से कहता है, वह किल्विषी देव होता है, वह भव-पार नहीं होता है। किन्तु जो किये हुए पापों की ठीक रीति से आलोचना करता है शुद्ध हृदय से निश्छल होकर गुरु के सम्मुख अपने दुष्कृतों को खोलता है और उनसे प्रायश्चित्त लेता है, वह शुद्ध हो जाता है।

भगवान ने जीवन के अन्त में जो संथारे का—समाधि मरण स्वीकार करने का उपदेश दिया है, वह जीवन भर की तपस्या का फल कहा है। यथा—

अन्तः क्रियाधिकरणं तपः फलं सकलदर्शिन स्तुवते।
तस्माद् यावद् विभवं समाधिमरणे प्रवतितव्यम्॥

सकलदर्शी सर्वज्ञ देव अन्तिम समय सर्वपापों की आलोचना करके संथारे को जीवन भरके तप का फल कहते हैं। इसलिए जब तक होश-हवाश दुरुस्त रहें, तब तक ज्ञानियों को समाधिमरण में प्रयत्न करना चाहिए। उसके लिए कहा गया है कि—

आलोच्य सर्वमेनः कृत-कारितमनुमतं च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महाव्रत मारणस्थायि नि.शेषम्॥

संथारा को स्वीकार करते हुए सर्वप्रथम निर्व्याज रूप से छल-कपट-रहित होकर कृत-कारित और अनुमोदना से किये हुए अपने सर्वपापों की आलोचना करे। पुन. मरण पर्यन्त स्थायीरूप से पांचों पापों का त्याग करके महाव्रतों को धारण करे।

जब मनुष्य बेहोश हो जाय, तब संथारा कराने से कोई लाभ नहीं है। स्वस्थ दशा में आलोचना करके संथारा स्वीकार करना ही सच्चा संथारा ग्रहण कहलाता है। वही पंडितमरण या समाधिमरण कहलाता है। वैसे जब भी मनुष्य संभले और जितना कुछ भी भगवान का नाम-स्मरण कर लेवे, वह भी अच्छा ही है।

मैंने आलोचना के लिए पहिला उदाहरण राजा का और दूसरा साधु का दिया है। इनसे आप समझ गये होंगे कि अपने पाप को कहने पर ही मनुष्य शुद्ध होता है। जिसने व्रत लिया, उसी से भूल होती है। जिसने व्रत लिया ही नही, वह क्या व्रत भंग करेगा? साहूकार ही नुकसान उठाता है। दिवालिया को क्या नुकसान होगा? भाई, जैनमार्ग का यही सार है कि आलोचना-पूर्वक संथारा लेकर अपने जीवन को सफल करो। जो समाधिपूर्वक मरण करता है, वह नियम से परभव में सद्गति को प्राप्त करता है।

वि०सं० २०२७ असोजसुदि ९
जोधपुर

६ आत्म-विजेता का मार्ग

विजय के चार रूप :

आज विजयादशमी का दिन है। विजय का अर्थ है जीतना। जीत दो प्रकार की होती है—एक जीत और जीत के साथ हार होती है । एक हार के साथ जीत। एक जीत के साथ जीत । और एक हार के साथ हार। ये चार बातें हुईं। जीत के साथ हार क्या है ? जीवन में बाजी जीते पांच सौ, हजार, लाख, दस लाख की । परन्तु आपको पता है कि हजार की जीत के साथ दो हजार और लाख की जीत के साथ दो लाख उसको देने पड़ेंगे। आपने सट्टे में कमा लिए, परन्तु दूसरी पूनम को देने पड़े तो यह हार के साथ जीत है। एक चोर ने चोरी की और धन का झोला भर लाया। परन्तु पकड़ा गया। मार पड़ी और जेल जाने की नौबत आ गई तो यह जीत के साथ हार है। युद्ध में जिन्होंने विजय प्राप्त की, हजारों-लाखों को खपाया। पीछे उसे उससे भी बलवान मिल गया तो यह जीत के साथ हार है। हार के साथ जीत—कभी ऐसा ही अवसर आ जाता है, जब बुद्धिमान् पुरुष को भी कुछ समय के लिए धैर्य धारण करके चुप बैठना पड़ता है कि अभी बोलने का समय नहीं है। भाई, बुद्धिमान् पुरुष समय की प्रतीक्षा करते हैं। कहा भी है **'विद्वान् समयं प्रतीक्षते'**। अर्थात् जो विद्वान पुरुष होता है, वह योग्य अवसर की प्रतीक्षा करता है और जब उचित अवसर देखता है, तभी बोलता है। ऐसे धैर्य धारण करनेवाले के लिए दुनिया कहती है, कि यह हार गया, किसी कार्य के योग्य

नहीं है। परन्तु बुद्धिमान् मनुष्य कोई उत्तर नहीं देता है। परन्तु उचित अवसर आते ही वह ऐसा पराक्रम दिखाता है कि कोई फिर उसे जीत नहीं सकता। अब जीत के साथ जीत—जो महान् पुरुष आध्यात्मिक है—जिन्होंने अपनी आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है, वे उत्तरोत्तर विजय पर विजय प्राप्त करते जाते हैं। अब हार के साथ हार कहते हैं—संसार के सभी प्राणी दिन पर दिन हारते ही जाते हैं। उनके जीवन में कभी विजय का नाम ही नहीं है, क्योंकि वे मिथ्यात्व, असंयम, कषायादि के द्वारा उत्तरोत्तर पाप कर्मों का बन्ध करते ही रहते हैं। इस प्रकार जैसे विजय के साथ हार का और हार के साथ विजय का सम्बन्ध है उसी प्रकार विजय के साथ विजय का और हार के साथ हार का भी सम्बन्ध चलता रहता है।

आज विजयादशमी है। तिथियां पांच प्रकार की होती हैं—नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा। एक पक्ष में पन्द्रह तिथियां होती हैं। उनमें से एकम, षष्ठी, एकादशी ये तीन नन्दा तिथि हैं। द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी ये तीन भद्रा तिथि हैं। तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी ये तीन जया तिथि हैं। चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी ये तीन रिक्ता तिथि हैं। और पंचमी, दशमी, पूर्णमासी ये तीन पूर्णा तिथि हैं। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार रिक्ता तिथियों में किया हुआ कार्य सफल नहीं होता। शेष तिथियों में किया गया कार्य उनके नाम के अनुसार आनन्द-कारक, कल्याण-कारक, विजय-प्रदाता और पूरा मन चिंतित करनेवाला होता है।

विजयादशमी के विषय में वैदिक सम्प्रदाय के अनुसार ऐसा उल्लेख मिलता है कि महिषासुर नामका एक बड़ा अत्याचारी राजा था। उसके अत्याचार से सारे देश में हाहाकार मच गया था और प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी। तब आज के दिन चामुण्डा देवी ने उसका मर्दन किया था। इसलिए आज का दिन विजयादशमी के नाम से प्रसिद्ध हो गया। अर्वाचीन पुराणों के अनुसार आज के दिन श्री राम ने रावण पर विजय प्राप्त करके सीता को प्राप्त किया था, इसलिए भी यह तिथि विजयादशमी कहलाने लगी।

सच्ची विजय

परन्तु जैन सिद्धान्त कहता है कि जो पांच इन्द्रिय, चार कषाय और मन इन दश के ऊपर विजय प्राप्त करता है, उस व्यक्ति की दशमी तिथि ही विजयादशमी है। जिन्होंने अपने एक मन को जीत लिया, उन्होंने चारों कषायों को जीत लिया। और जिन्होने इन पाचों को जीत लिया उन्होंने पांचो इन्द्रियों को जीत लिया। केशी कुमार ने जब गौतम स्वामी से पूछा—कि तुम

सहस्रों शत्रुओं के बीच में रह करके भी उन्हें कैसे जीतते हो ? तब गौतम स्वामी ने उत्तर दिया—

एगे जिए जिया पंच पंच जिए जिया दस ।
दसहा उ जिणित्ता ण सव्वसत्तू जिणामहं ।।

अर्थात्—एक मनरूपी शत्रु के जीत लेने पर मन और चार कषाय ये पांच जीत लिये जाते हैं। और इन पांचों के जीत लेने पर इनके साथ पांच इन्द्रियां भी जीत ली जाती हैं। इन दशों को जीत लेने पर मैं सर्व शत्रुओं को जीत लेता हूं।

एक महापुरुष की स्मृति

आज मैं आपके सामने एक ऐसे महापुरुष का चरित वर्णन कर रहा हूं जिन्होंने कि दश पर विजय प्राप्त की और जैनधर्म का झंडा चारों ओर फहराया। उन महापुरुष का जन्म वि० सं० १७१२ के आसोज सुदी दशमी को इसी मारवाड़ के नागौर नगर में हुआ। उनके पूर्वज मुणोत थे और जोधपुर के रहनेवाले थे। परन्तु नागौर चले गये थे।

मुणोत महाराज आसथान जी जैसलमेर शादी करने गये और भट्टियानी जी के साथ शादी की। भाग्य से मंत्री संपतसेण की लड़की का भी इनके साथ अनुराग हो गया और उसने प्रण कर लिया कि मैं तो इनके साथ ही शादी करूंगी। मारवाड़ के महाराज आसथान जी इसे करने को तैयार नहीं हो रहे थे, तब जेसलमेर महाराज ने कहा—इस सम्बन्ध के स्वीकार करने में क्या है ? आप क्षत्रिय हो और यह जैन-क्षत्रिय हैं। उस समय ब्राह्मणों का बोलवाला था। उन्होंने कहा—महाराज, इनकी जो सन्तान होगी, वह राज्य की उत्तराधिकारी नहीं हो सकेगी, क्योंकि आप तो जाति के क्षत्रिय हैं और ये तो जैन हैं। उनके लड़के मोहनजी हुए उन्होंने राज्य की दीवानगिरी की और उनके वंशज मुणोत कहलाये। यह वि० सं० १३८३ की बात है जब इन्होंने जैनधर्म को स्वीकार किया। सब जातियां बनने के बाद मुणोत जाति बनी है। उस समय अनेक क्षत्रिय जैनधर्म में आ गये। कितने ही लोग—जो इस तथ्य से अजानकार हैं—वे कहते हैं कि हम तो राजपूतों में से निकले हैं। अरे भाई, दूसरी जाति से निकले हुए तो दरोगा कहलाते हैं। जैसे नारियल में से गोला निकलता है। यद्यपि ये लोग क्षत्रियों मे से ही आये है और आहार-विहार और खान-पान की प्रवृत्ति और थी। परन्तु जैन धर्म स्वीकार करने के पश्चात् उनके आचार-विचार में भारी परिवर्तन आगया। आचार्यों ने जैन धर्म का महत्व बताकर उनको ऐसी मोड़ दी कि आज वे कट्टर जैनधर्मी

हैं। यह बड़ी वीर जाति है। उसमें जन्म लेनेवाले अनेक महापुरुषों ने मारवाड़ की बड़ी सेवाएं की हैं। उनके वंशज सुंदरसी, नेनसी मेड़ता चले गये। और एक भाई का परिवार नागौर चला गया। इनमें नेनसी के पुत्र थे मुलोजी, उसके पुत्र माणकसीजी उनकी स्त्री का नाम रूपाजी था। उनकी कुक्षि से आसोज सुदी दशमी को एक पुत्र का जन्म हुआ। वह बड़ा होनहार, अद्भुत पराक्रमी और रूपवान था। उसके नेत्र बड़े विशाल थे। अतः उसके पूर्वजों ने उसका नाम भूधर रखा। भूधर कहते हैं पहाड़ को। दुनिया कहती है कि यदि ये पहाड़ इस भूमि को नहीं रोके होते, तो यहां उथल-पुथल हो जाती। पर्वतों के कारण ही यह स्थिर है। जो भूमि को धारण करे, उसे भूधर कहते हैं। उस पुत्र के माता-पिता ने भी अनुभव किया कि यह पुत्र भविष्य में धर्म के भारी बोझ को उठानेवाला होगा, अतः उसका नाम भूधर रखा। भूधर क्रमशः बढ़ने लगे और उनकी पढ़ाई होने लगी। आपके बचपन में ही मानकसीजी का और माता जी का स्वर्गवास हो गया। ये बड़े तेजस्वी और उदात्त वीर थे। उस समय जोधपुर के महाराजा अपने सरदारों का बड़ा ध्यान रखते थे। उन्होंने भूधर को भी होनहार और होशियार देखकर अपने पास में रखा और उनकी निशानेबाजी को और तेजस्विता को देखकर उन्हें फौज का अफसर बना दिया। ये ज्यों-ज्यों बड़े हुए, त्यों-त्यों इनका साहस और पराक्रम भी बढ़ता गया। इन्होंने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की। परन्तु इधर सोजत का जो इलाका अरावली पहाड़ के पास आया हुआ है, वहां पर बहुत डाकू रहते थे। उनकी डाकेजनी से सारा इलाका उन दिनों संकट में पड़ गया था। तब महाराज ने भूधर जी को हुक्म दिया की आप पांच सौ घुड़सवारों के साथ वहां रहें। जब भूधर जी वहाँ पहुंचे, तो कुछ दिनों में ही चोरों और डाकुओं का नामोनिशान भी न रहा।

बहादुर भूधर :

अब कोई कहे कि वे तो महाजन थे, फिर उनसे यह काम कैसे हुआ? परन्तु भाई, जैन सिद्धान्त यह बतलाता है कि जब तक कोई दूसरा व्यक्ति अपने को नहीं सताता है और देश, जाति और धर्म में खलल नहीं पहुंचाता है, तब तक उसे सताने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु जब आक्रमणकारी सताने के लिए उद्यत हो जायें और सताने लगें, तब दया का ढोंग करके बैठे रहना, यह दया नही कायरता है—बुजदिली है। उस वीर-बहादुर भूधर ने सारे इलाके को डाकुओं के भय से रहित कर दिया और शान्ति का वातावरण फैला दिया। उनका सम्बन्ध रातडिया मेहता के यहां हो गया, तब वे नागौर छोड़कर सोजत में रहने लगे।

कुछ समय के बाद एक दिन ऐसा मौका आया कि चौरासी ऊंटों की धाड़ कंटालिए के ऊपर आई। वीरमणि ग्रासिया बड़ा खूंख्वार था। लोगों से ज्ञात हुआ कि आज कंटालिया लुटनेवाला हैं, तो ठाकुर की ओर से सन्देश मिलते ही भूधरजी वहां पहुंचे। उनके साथ घमासान युद्ध किया और कितने ही डाकुओं को इन्होंने मार दिया। जब धाड़ देनेवाले भागने लगे तो भूधर जी ने उनके पीछे अपने घुड़सवारों को लगा दिया। जब इस प्रकार भगाते-मारते जा रहे थे, तब एक ऊंट के तलवार लगी और उसका आधा सिर कट गया। उसका धड़ और सिर लड़खड़ाते देख उनके हृदय से इस मार-काट से घृणा पैदा हो गई। वे विचारने लगे अरे, मैं प्रतिदिन कितने प्राणियों को मारकर उनका खून बहाता हूं ? मैंने आज तक कितने मनुष्यों और पशुओं को मारा है ? क्या मुझे इसी प्रकार से अपना हिंसक जीवन बिताना है ? फिर इन बेचारे दीन पशुओं ने हमारा क्या बिगाड़ किया है ? इस प्रकार के युद्धों में तो ये भी मारे जाते हैं ! बस, यह दृश्य ही उनके वैराग्य का निमित्तकारण बन गया।

इस घटना के पश्चात् भूधर जी सोजत पहुंचे और वहां से फिर जोधपुर गये। वहां पर उन्होने महाराज से निवेदन किया—महाराज, सेवक से आज तक जितनी सेवा बन सकी, उतनी हृदय से सहर्ष की। अब मैं आगे सेवा करने में असमर्थ हूं। महाराज ने बहुत आग्रह किया। मगर ये आगे सेवा करने के लिए तैयार नहीं हुए। और महाराज से आज्ञा लेकर नौकरी से अलग हो गये। इतना वचन अवश्य देते आये कि यदि कभी मेरी आवश्यकता प्रतीत हो तो मैं आपकी सेवा में अवश्य उपस्थित हो जाऊंगा।

घर आकर बहुत समय तक यह विचार करते रहे कि आगे अपने जीवन को कैसे सुधारना चाहिए ? इसी विचार से आप एक अच्छे मार्ग-दर्शक की खोज में निकले कि कोई सन्त-महात्मा मार्ग-दर्शक मिल जाय, तो उसकी सेवा में रहकर आत्म-कल्याण करूं ! उस समय यहां पर एक पोतियाबंध (एक पात्री) धर्म चल पड़ा था। उसके अनुयायी केश-लुंचन करते और साधु की सब क्रिया भी करते थे। परन्तु कहते यह थे पंचमकाल में साधु हो ही नही सकता है। उनका यह कथन आगम-विरुद्ध था। उस सम्प्रदाय के एक शिष्य कल्याण जी थे। वे घूमते हुए सांचोर पहुंचे। अनेक लोग उनका व्याख्यान सुनने के लिए पहुंचे। भाई, जब कोई नई बात लोगों के सामने आती है, तब लोग बिना आमंत्रण के ही वहां पहुंच जाते हैं। भले ही कोई किसी भी धर्म या सम्प्रदाय का अनुयायी क्यों न हो ? लोग पहुँचे और उनके

वचन सुने। चूंकि उनकी बात नई थी, अपूर्व थी—अतः लोगों को उसे सुनने में बड़ा आनन्द आया। भूधरजी भी उनसे प्रभावित हुए और उन्होंने सांसारिक धन-दौलत और स्त्री-पुत्रादि को छोड़कर पोतियाबंध एकपात्री धर्म में दीक्षित हो गये। इनसे पहिले पोरवाल जाति के धन्ना जी भी इस धर्म में दीक्षित हो चुके थे। भूधर जी घूमते हुए मालवे में उनसे मिले। वहीं पर धर्मदास जी महाराज से भी आपका मिलना हुआ। और उनके साथ चर्चा हुई। धर्मदासजी महाराज इसमें नया परिवर्तन लाये और वि० सं० १७२१ की कार्तिकवदी पंचमी के दिन इक्कीस लोगों के साथ आपने अपना नया धर्म परिवर्तन किया। इस प्रकार धर्मदासजी महाराज के शिष्य बने धन्नाजी और उनके शिष्य बने भूधरजी। वे धर्मदासजी महाराज शिष्य के स्थान पर संथारा करके स्वर्ग पधार गये। तत्पश्चात् यह धन्नाजी की सम्प्रदाय कहलाने लगी। इन्होंने ग्रामानुग्राम विचरते हुए धर्म का खूब प्रचार किया। उस समय वे अपने विहार से मालवे की भूमि को पवित्र कर रहे थे।

उस समय इधर जोधपुर महाराज के पास दीवान भंडारी खींवसी, रघुनाथ सिंह जी और दीपसी थे। भंडारी खीवसी जी जोधपुर के दीवान होते हुए भी दिल्ली चले गये। बादशाह का उन पर पूर्ण विश्वास था। खींवसी जो कुछ भी कहते थे, बादशाह उसे पूर्ण सत्य मानता था।

बादशाह के कई हुरमाएं थीं। उनमें एक बड़ी मर्जी की थी, बादशाह उस पर बहुत खुश थे। दूसरी कम मर्जी की थी, उसका उन्होंने निरादर कर दिया। बड़ी मर्जीवाली हुरमा के ऊपर कम मर्जीवाली हुरमा की दृष्टि जमी हुई थी कि किसी प्रकार इसको नीचे गिराया जाय। बदकिस्मती से उसकी शहजादी के गर्भ रह गया। इसका पता कम मर्जीवाली बेगम को चल गया। वह मनमें बहुत खुश हुई कि अब मैं उसे नीचे गिरा सकूंगी। अवसर पाकर एक दिन वह बादशाह की सेवा में हाजिर हुई और बोली—हुजूर, मैं कैसी भी हूं, परन्तु आपको अपने खानदान का ख्याल तो रखना चाहिए। जिस हुरमा के ऊपर आपकी बेहद मिहरबानी है उसकी शहजादी के कारनामें क्या हैं, इसका भी तो आप कुछ ख्याल करें। यह सुनते ही बादशाह शहजादी के महल में गया और सख्त नाराज होते हुए उससे कहा—अरी नीच, तूने यह दुराचार कहां किया? शहजादी बोली—खुदावन्द, मैंने कोई दुराचार नहीं किया है। बादशाह और भी खफा होकर बोला—अरी, पाप करके भी सिरजोरी करती है और झूठ बोलती है? यह कहकर उसने दो चार हंटर उसे लगाये। परन्तु वह बराबर यही कहती रही कि मैंने कोई पाप नहीं किया

है। तब बादशाह दरबार मे जाकर तख्त पर जा विराजे और सभी औलिया, फकीर, मौलवी और पडितो को बुलवाया। उनके आने पर बादशाह ने उन सबसे पूछा कि क्या बिना हराम किये भी किसी को गर्भ रह सकता है? यह बात सुनकर सब लोग आश्चर्य-चकित होकर बोले—हुजूर, कहीं बिना हराम के भी गर्भ रह सकता है? यह सब जानते है कि बिना हराम के गर्भ नही रहता। तब बादशाह ने हुक्म दिया कि शहजादी का सिर काटकर उस खडक मे डाल दिया जाय। जैसे ही बादशाह ने यह हुक्म दिया, वैसे ही खीवसीजी का आना हो गया। वे बोले—जहापनाह, आपने यह क्या हुक्म दिया है? बादशाह ने कहा—इस दुराचारिणी शहजादी ने मेरे खानदान को बदनाम कर दिया है। अब खीवसीजी बोले—जहापनाह, आप थोडी सी खामोशी रखिये। शहजादी से भूल हो सकती है। परन्तु उसे छिपाने की भी कोशिश करनी चाहिए। बादशाह बोले—ऐसा नही हो सकता। तब खीवसीजी ने कहा—हुजूर, मेरी प्रार्थना है कि एक बार मुझे उसे देखने का मौका दिया जाय। पहिले तो बादशाह ने कहा—उस नापाक का क्या मुह देखते हो? परन्तु अधिक आग्रह करने पर मिलने के लिए इजाजत दे दी। वे शहजादी के महल मे गये और उन्होने उसके सब अगो के ऊपर नजर डाली तो देखा कि किसी भी अग मे कोई विकार नही है। अगो की जाच से उन्हे विश्वास हो गया, कि इसके गर्भ किसी के साथ हराम करने से नही रहा है किन्तु किसी दूसरे ढग से रहा है। उन्होंने इसके बाबत शहजादी से भी पूछताछ की। मगर उसने कसम खाकर कहा कि मैंने कोई दुराचार नही किया है। तब भडारीजी ने आकर बादशाह से कहा—हुजूर, उसने कोई अनाचार नही किया है। बादशाह ने कहा—यह तुम कैसे कहते हो? भडारी जी ने कहा—मैंने उसके सर्व अगो की परीक्षा करके देख लिया है कि यह हराम का गर्भ नही है, किन्तु किसी अन्य कारण से रहा हुआ गर्भ है। जब बादशाह ने इसका प्रमाण मागा तो उन्होने कहा—हुजूर, मैं इसका शास्त्रीय प्रमाण सेवा मे पेश करूगा।

इसी बीच मालवा की ओर जाने का कोई जरूरी काम आगया तो खींवसीजी दो हजार सवार लेकर उधर जा रहे थे। रास्ते म पादरल नाम का गाव आया। वहा पूज्य धन्नाजी महाराज विराजे हुए थे और भूधरजी भी उनकी सेवा मे थे। खीवसीजी ने वहा डेरा डलवा दिया और उसी फौजी वेष म कुछ जवानो के साथ उनके दर्शन-वन्दन के लिए गये। भूधरजी महाराज की दृष्टि उन पर पडी। उन्होने कहा—अरे, भडारी जी, आप यहा कैसे?

उन्होंने कहा महाराज, आप मुझे कैसे पहिचानते हैं ? उन्होंने कहा—भंडारी जी आप मुझें पहिचानते हैं और मैं आपको पहिचानता हूं। परन्तु वेष का परिवर्तन होने से आपने मुझ नहीं पहिचाना। तब खींवसीजी बोले—महाराज, आपका परिचय ? तब भूधरजी महाराज बोले—जब साधु हो गया; तब क्या परिचय देना ? मेरा भी जन्म मारवाड़ का है। तब खींवसीजी बोले—महाराज, परिचय तो पीछे लूंगा। परन्तु पहिले मुझे यह बतलाइये कि क्या पुरुष के भोग के बिना भी स्त्री के गर्भ रह सकता है ? उन्होंने कहा—हां भंडारीजी, पांच कारणों से गर्भ रहता है। यह सुनते ही उनकी आंखों में रोशनी आगई। उन्होंने पूछा—वे पांच कारण कौन से हैं ? तब धन्नाजी महाराज ने कहा—

पहिला यह कि जिस तालाब, नदी, हौज आदि के स्थान पर पुरुष स्नान करते हों, उस स्थान पर स्त्री के स्नान करने से स्त्री के गर्भ रह जाता है। क्योंकि उस स्थान के जल में यदि पुरुष के वीर्य-कण मिले हुए हों और यदि स्त्री वहां पर नग्न होकरके स्नान करे तो वे वीर्य-कण योनिमें प्रवेश कर जाते हैं और उससे उसे गर्भ रह सकता है।

दूसरा यह कि स्त्री को खुली छत पर नहीं सोना चाहिए। क्योंकि वायु से उड़कर आये हुये वीर्य-कण यदि अन्दर प्रवेश कर जावे तो गर्भ रह सकता है।

तीसरा यह कि किसी स्थान पर पुरुष का वीर्य पड़ा हो और उसी स्थान पर ऋतुमती स्त्री बैठ जाय, तो भी गर्भ रह सकता है।

चौथा यह कि दैवयोग से भी गर्भ रह सकता है। और पांचवां कारण तो सभी जानते हैं कि पुरुष के साथ संयोग होने पर गर्भ रहता है।

ये सब बातें बिलकुल नवीन थीं। इससे पहिले कभी उन्होंने ऐसी बातें नहीं सुनी थी। अतः खीवसीजी बोले—महाराज, इन बातों का कोई शास्त्रीय आधार भी हैं, या केवल सुनी-सुनाई कह रहे है। तब भूधरजी ने कहा—स्थानाङ्ग सूत्रजी के पांचवें ठाणे में यह वर्णन आया है। और वेद-स्मृति के पांचवे श्लोक में भी यह वर्णन है। तब आनन्द से विभोर होकर खीवसीजी बोले—महाराज, यह बात तो आपने बड़े मार्के की बताई। मेरी जो शंका थी, वह आपने दूर कर दी। परन्तु प्रमाण पक्का होना चाहिए। भूधरजी महाराज बोले—प्रमाण पक्का ही है, इसमें आप किसी प्रकार की शंका नहीं करें। उन्होंने आगे बताया कि प्रारम्भ के तीन कारणों से यदि गर्भ रहता है, तो उसके शरीर मे हड्डियां नहीं होती हैं। अन्तिम दो कारणों से गर्भ रहने पर हड्डियां होती हैं। यह सुन कर खीवसी जी बोले—यह बात आपने

और भी अधिक मार्के की बताई है। इससे मैं अब शहजादी के गर्भ का यथार्थ निर्णय कर सकूंगा। फिर कहा—महाराज, आप भक्तो के साथ प्रतिदिन माथापच्ची करते हैं फिर भी इने-गिने चेले बनते हैं। किन्तु यदि आपकी उक्त बात सत्य सिद्ध हो गई, तो मैं आपके हजारो चेले बनवा दूंगा।

इसके पश्चात् खीवसीजी सरकारी काम करके सीधे दिल्ली पहुंचे और काम का सारा ब्यौरा सुना दिया। तत्पश्चात् कहा—जहापनाह—मैंने कहा था कि पाच कारणो से गर्भ रहता है। यह सुनकर बादशाह बोला—तुम चाहे कुछ भी कहो, मगर मुझे तुम्हारी यह बात नही जचती है। फिर तू जोधपुर का मुसद्दी है। कही से धड करके यह बात कह रहा है। तब खीवसीजी बोले—जहापनाह, बिना भोग के जो गर्भ रहता है, उसमे हड्डिया नही होती हैं, केवल रुई के थैले के समान मास का पिण्ड होता है। तब बादशाह बोला—यदि यह बात है, तो मैं शहजादी को नही मारूंगा। इसके पश्चात् बादशाह ने शहजादी के महल के चारो ओर सगीन पहरा लगवा दिया। यथा समय प्रसूति होने पर जब उसे बादशाह के हाथ पर रखा गया तो वह उन्हे वह रुई के थैले के समान हलका प्रतीत हुआ। बादशाह यह देखते ही बोल उठे गजब !! यदि भडारी खीवसी नही होता, तो मैं खुदा के घर मे गुनहगार हो जाता। और बेचारी शहजादी बेकसूर ही मारी जाती। तब खीवसीजी को बुलाकर कहा - तू तो बडी अजीब बात लाया है। अरे, बता, यह कहा से लाया ? तब उन्होंने कहा—हुजूर, मैं अपने गुरु के पास से लाया हू। बादशाह बोला—तेरे गुरु ऐसे आलिम-फाजिल है जो ऐसी भी बाते बता देते हैं। ऐसे गुरु के तो हम भी दर्शन करना चाहते हैं। तब खीवसीजी ने कहा—जहापनाह, आप बादशाह हैं और वे बादशाहो के भी बादशाह हैं। वे किसी के बुलाये नही आते है। और यदि उनके जच जावे तो स्वय आ भी जाते हैं। तब बादशाह बोले—एक बार तू उनके पास जाकर के कह तो सही। अन्यथा हम चलेंगे। तब भडारीजी उनके पास गये। उन्हें वन्दन नमस्कार करके बैठ गये और कि मैं आपका श्रावक हू, अत मुझे श्रावकधर्म सुनाओ। तब गुरु महाराज ने गुरु मत्र सुनाकर श्रावक-धर्म का उपदेश दिया। तत्पश्चात् भडारीजी ने प्रार्थना की कि महाराज, आप दिल्ली पधारो। बादशाह आपका इन्तजार कर रहा है। तब उन्होने कहा-जब जैसा अवसर होगा, वैसा ही जायगा। परन्तु फरसने का भाव है। तब भडारीजी वहा पर ठहर गये और विहार मे उनके साथ हो लिये। तब गुरु महाराज ने कहा—'नो कप्पइ' अर्थात् गृहस्थ के साथ विहार नही कल्पता है। तब भडारीजी ने सोचा कि गुरु महाराज के साथ मे नही रहना। किन्तु तीन

कोस आगे या पीछे रहना ठीक होगा। क्योंकि ठौर-ठौर पर धर्म के द्वेषी भी पाये जाते हैं। उन्हें कोई कष्ट न हो, इसलिए इनके आगे या पीछे चलना ठीक रहेगा।

रास्ते में जाते हुए सन्तों को अनेक कष्ट भी सहन करने पड़े। जाते हुए जब भरतपुर पहुंचे तो वहां पर गुरु महाराज ने पालीवाल जैनी नारायणदासजी को दीक्षा दी। आगे चलते हुए जब तीन मुकाम ही दिल्ली पहुंचने के रहे तब भंडारीजी चले गये और जाकर बादशाह से निवेदन किया कि मेरे गुरु आ रहे है। तब बादशाह ने कहा—उनके स्वागत के लिए खूब जोरदार तैयारी करो और धूम-धाम से उन्हें लेकर आओ। बड़े लोगों के मन में कोई बात जंचनी चाहिए। ये मोटापना नहीं रखते हैं। बादशाह के हुक्म से सब प्रकार की तैयारी की गई और लवाजमे के साथ खीवसीजी गुरु महाराज को लेने के लिए सामने गये। जब कोस भर गुरु महाराज दूर थे, तब भंडारीजी सवारी से उतर कर पैदल ही उनके पास पहुंचे और उन्हें नमस्कार किया। सामने आये हुए लवाजमे को देखकर गुरु महाराज बोले—भंडारीजी, यह क्या फितूर है? हमें ऐसे आडम्बर की आवश्यकता नहीं है। हम तेरे साथ नहीं आवेंगे। तब उन्होने जाकर बादशाह को इत्तिला कर दी। तब बादशाह भी पेशवाई को गये। गुरु महाराज ने वहीं चौमासा कर दिया—जहां पर कि बारहदरी वाला मकान है। चौमासे भर खूब धर्म को दिपाया।

एक दिन अवसर पाकर भंडारीजी ने कहा—गुरु महाराज, आपने बाहिर प्रकाश किया। परन्तु जन्मभूमि मारवाड़ में अंधेरा क्यों? तब उन्होंने कहा—वहां पर जती लोग बहुत तकलीफ देते हैं। फिर वहां जाकर क्यों व्यर्थ क्लेश में पड़ा जाय। जब भंडारीजी के आग्रह पर चौमासे के बाद उन्होने दिल्ली से मारवाड़ की ओर विहार किया तो बादशाह का फरमान बाईस रजवाड़ों में चला गया कि आपके उधर पूज्य महाराज विहार करते हुए आ रहे हैं, अतः उनकी सर्व प्रकार से संभाल रखी जावे। यदि किसी प्रकार की कोई शिकायत आई तो राज्य जब्त कर लिया जावेगा। बादशाह की ओर से शाही फरमान के निकल जाने पर भी गुरु महाराज ने कोई फैलाव नहीं कराया। उन्हें मारवाड़ जाते हुए अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़े। परन्तु वे सबको सहन करते हुए संवत् १७८१ मे मेड़ते पधारे। धन्नाजी को कई कष्ट उठाने पड़े। वे एक चादर ओढ़ते थे और निरन्तर एकान्तर करते थे। जब शारीरिक शिथिलता अधिक आ गई तो वहां विराजना पड़ा। वहां एक वालीवाला उपासरा कहलाता है, वहां पर १७८४ की साल आपका स्वर्ग वास हो गया। उनके दिवंगत होने के पश्चात् भूधरजी महाराज आगे बढ़े

और अनेक गांवों को फरसते हुये कालू पधारे। वहां पर सैंकड़ों घर दिगम्बरियों के और ओसवालों के थे। वहां पर पाटनियों की एक हताई थी, वे वहां पर आतापना लेते थे। कालू के चारों ओर नदी और तीन चौक हैं। एक-बार आप लीलडिये चौक की ओर पधारे और नदी में आतापना ले रहे थे। उनके त्याग और तपश्चरण का वर्णन नहीं किया जा सकता है। जब वे आतापना ले रहे थे तब रामा नाम का जाट अपने वेरे पर जा रहा था। उसके हाथ में रस्सी थी और देवला कंधे पर था। उसने इन्हें नदी में लौटते हुये देखा तो सोचा कि ये नदी में तपस्या कर रहे हैं और महाजनों के पास धन है तो ये उनका ही भला करते हैं। ये तपस्या करते हैं. तो हमारे किस काम के हैं? ऐसा विचार कर उन्हें रस्सी से पीटा और देवले से टांग पकड़ कर घसीट कर-कांटों में डाल दिया। परन्तु वे तो समता के सागर और दया के पुंज थे। तभी तो कहा है—

राख सके तो राख, क्षमा सुखकारी।
ये पाप तापकर दग्ध देख शिवपुर सुखकारी॥

जो ऐसे फौजी अफसर थे और जान को जोखम में डाल सकते थे तो वे ही ऐसे दुःख को सहन करते थे। ढीली धोती के बनिये नहीं सहन कर सकते हैं।

उधर से जाते हुए एक पुरोहितजी की दृष्टि उन पर पड़ी, तो उसने गांव में जाकर महाजनों से कहा—अरे महाजनों, तुम लोग यहां दुकानों पर आराम से बैठे हो और रामा जाट तुम्हारे गुरु को मार रहा है। सुनते ही सब महाजन वहां पहुंचे, तब तक रामा जाट वहां से चला गया था। गुरु महाराज के शरीर से खून बह रहा था और वे कांटों पड़े थे। लोगों ने पास जाकर कहा—अन्नदाता, यह क्या हुआ? गुरु महाराज ने कुछ उत्तर नहीं दिया। तब हवलदार आया। उसने रामा जाट को बुलाया और उसे जूतों से पीटा। लोग गुरु महाराज को उठाकर के हताई में ले गये और उनकी मलहम पट्टी की। लोग बोले कि उसने गुरु महाराज को बड़ा कष्ट पहुंचाया, तो वह भी सुख में नहीं है, उसके जूते पड़ रहे हैं। तब पूज्यजी ने कहा—मेरे अन्न-जल का त्याग है। तब जाकर लोगों ने हवालदार से उसे छुड़वाया। वह रामा जाट आकर के पूज्यजी के पैरों में पड़ा और कहने लगा—मैंने आपको बहुत कष्ट दिया। मुझे आप माफ करें। तब पूज्यजी ने कहा—तू दारू पीने और मास को खाने का त्याग कर दे, तो तेरे सब प्रकार से आनन्द हो जायगा। इस प्रकार उसे नियम दिलाकर पीछे उन्होंने अन्न-जल ग्रहण किया।

वि० सं० १७८७ में आपने आगे विहार किया और रघुनाथजी को अपना शिष्य बनाया। जेठवदी तीज की दीक्षा रघुनाथजी की थी और १७८७ में ही जेतसीजी की दीक्षा थी। सं० १७८३ के मगसिर वदी तीज को जयमलजी उनके शिष्य बने। श्रीभूधरजी के नौ चेले हुए। वे नवों ही नौ निधान के समान थे। इन्होंने दीक्षा स० १७५४ में ली थी। संवत् १८०४ की साल विजयादशमी के दिन ही वीर पुरुष की सज्झाय करते हुये वे स्वर्गगामी हुए। जब वे सज्झाय कर रहे थे तब सन्तों ने आकर कहा कि पारणा करेंगे? तब आपने कहा—पारणा नहीं करूँगा। हमारे तो संथारा है। अन्तिम समय सज्झाय करते-करते ही रहे हो गये और भीत का सहारा लेते ही प्राण-पखेरू उड़ गये। वे नीचे बैठे नहीं।

भाइयो, उनका जन्म भी आज के ही दिन सं० १७१२ की विजयादशमी को हुआ था और सं० १८०४ मे आज के ही दिन उनका स्वर्गवास हुआ था। उन महापुरुष के जीवन का यह दिग्दर्शन आप लोगों को संक्षेप में कराया है। हमें आज के दिन से ऐसे ही वीर बनकर कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

वि० सं० २०२७ आसोजसुदि १०
जोधपुर

७ | मन भी धवल रखिए !

भाइयो, अभी आप लोगो के सामने श्रीपाल का कथानक चल रहा था। उसी जमाने मे धवल सेठ हुआ। उसकी छल-प्रपच भरी कुटिलनीति से आज दिन तक उसकी अपयश-भरी बातें आप लोगो के सामने आ रही हैं। विचारने की बात यह है कि उस जमाने मे धवल सेठ तो एक ही हुआ था। परन्तु आज उस धवल सेठ के दुर्गुणो के धारक यदि हम टटोलें और छान-बीन करें तो क्या कम मिलेंगे ? नहीं; किन्तु बहुत मिलेंगे। उस धवल सेठ को हम बुरा कहते है। परन्तु आज छिपे और चौडे हमको अनेक धवल सेठ मिल रहे है। क्यो मिल रहे है ? क्या कारण है कि उस जमाने मे एक ही वह इतना प्रख्यात हो गया ? भाई, बात यह है कि जब शान्ति का वातावरण होता है, धर्म का प्रसारण होता है और भले आदमी हमे दृष्टिगोचर होते है, तब यदि एक-आध इस प्रकार का दुराचारी मिल जाय तो वह सर्वत्र प्रख्यात हुए बिना नही रहता है। जैसे यह सुन्दर मकान है, उत्तम-उत्तम वस्तुए यथास्थान रखी हुई हैं और चारो ओर से सौरभमय वातावरण का प्रसार हो रहा है। अब यदि यहा पर किसी कोने में किसी जानवर का मृत कलेवर पडा हो और उसकी दुर्गन्ध आती हो तो क्या वह सहन होगी ? कभी नही होगी। दुनिया तुरन्त कहेगी कि यह दुर्गन्ध कहा से आरही है। यह सुरम्य स्थान तो दुर्गन्ध योग्य नही है। अत उस दुर्गन्ध फैलाने वाले कलेवर को वहा से निकाल कर तुरन्त बाहिर फेक देते हैं। परन्तु जहा सारा मकान ही दुर्गन्ध से भरा हुआ

हो, तो वहा क्या किसी को उस विपय मे कहने का मौका आता है ? नही आता। उस जमाने मे धवल सेठ जैसे बहुत कम पैदा होते थे। उस समय को लोग सतयुग या सुपम-सुपमा काल कहते थे। परन्तु आज मनुष्य की प्रकृति और उसका जीवन लोभ-लालच से इतना ओत-प्रोत है कि जिसका कोई पार नही है। मनुष्य की ज्यो ज्यो तृष्णा बढती जाती है, त्यो त्यो उसमे अत्याचार-अनाचार आकर के समाविष्ट होते जाते हैं। किन्तु जिसकी तृष्णा कम है, जिसने अपने ममत्व भाव पर अधिकार कर लिया है और यह समझता है कि अब मुझे और अधिक की क्या आवश्यकता है ? इस मिट्टी के पुतले को पालना है—इसे भाडा देना है, तथा इस पुतले के साथ जिस-जिसका सम्बन्ध है और जिस-जिसका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर आकर पडा है, तो मुझे उनका पालन-पोषण करना है। इसके लिए मुझे भोजन और वस्त्रो की आवश्यकता है। जितने से इसकी पूर्त्ति हो जाती है, उतने से अधिक मुझे धन की तृष्णा नही है। यदि मैं अधिक धन की तृष्णा करता हू तो यह मेरे लिए बेकार ही नही है, अपितु जजाल है और धन अशान्ति-कारक है। आप बताइये कि ऐसे विचारो का आदमी क्या अनावश्यक धन को बढाने के लिए घोर दुष्कर्म करेगा ? कभी नही करेगा। किन्तु जिसकी तृष्णा उत्तरोत्तर बढ रही है और जिसकी यह कामना है कि मुझे तो अरावली के पहाड और आबू के पहाड जैसा धन का ढर करना है, तो क्या वह दुर्योधन की नीति नही अपनायेगा और क्या वह धवल सेठ जैसा नही बनेगा ? उसके लिए तो कोई मरे, या जिये, या बर्बाद हो जाय, इसकी उसे कोई चिन्ता नही है। जिसे तृष्णा का भूत लगा हुआ है, वह इन बातो का कोई विचार नही करेगा। यदि लोग उससे कुछ कहते भी हैं, तो भी क्या उसे कुछ लाज-शर्म आती है ? नही आती है। क्योकि उसके सिर पर तृष्णा का भूत सवार है। नीतिकार कहते हैं कि—

अति लोभो न कर्तव्यो लोभेन परित्यज्यते।
अति लोभप्रसंगेन सागर सागरं गतः॥

अधिक लोभ नही करना चाहिए, क्योकि लोभ का फल बहुत ही खराब होता है। देखो—पूर्व काल मे सागर नामका सेठ सागर (समुद्र) मे ठडा रह गया। मम्मण सेठ जिसके पास ६६ करोड की पूंजी थी और रत्नो के बने हुए बैल थे। परन्तु वह लोभ के कारण उडद के बाकुले ही तेल के साथ खाता था। पहिनने के लिए मदारियो का कबल—वह भी आधा पहिनता और आधा ओढता था। इतनी अधिक पूजी होने पर भी वह इतना अधिक कजूस था कि स्वय के भोगने मे भी वह खर्च नही कर सकता था। तब क्या

पड़ौसी उसकी पूंजी का आनन्द ले सकते थे ? नहीं। तब क्या ऐसा लोभी मनुष्य ४८ मिनिट की सामायिक करेगा ? क्या वह धर्मस्थान में बैठ कर स्थिरता से व्याख्यान सुन सकेगा ? और क्या संवर-पौषध आदि कर सकेगा ? नहीं। उसके तो केवल एक ही धुन है कि यदि एक भी मिनिट इन धर्म-कार्यों में लगा दिया तो धन कमाने मे कमी रह जायगी। उसे रात-दिन, चौबीसों घंटे ही धन कमाने का भूत सवार रहता है। स्वप्न भी वह ऐसे ही देखता है। यदि भाग्यवश कोई अड़चन पैदा हो गई, या कोई रुकावट आगई तो उसकी पूर्ति मे ही लगा रहता है। उसे एक क्षण को भी सुख-शान्ति नसीब नहीं है। जो धन के लिए स्वयं दुःख उठाता है वह दूसरों के दुःखों की क्या परवाह करेगा ? उसे दूसरों से क्या लेना देना है ?

अनीति का बोलवाला

भाइयो, आज आपके सामने देश की माली हालत का यथार्थ चित्र उपस्थित है। एक भाई जिस पर किसी ने मुकद्दमा दायर किया हुआ है, वह घर के सब काम छोड़ कर मुकद्दमे की पैरवी करने के लिये सर्दी, गर्मी, वर्षा के होते हुए भी अदालत जाता है और हाजिर होता है। जज कहता है— आज मुझे अवकाश नहीं है, अतः आगे पेशी बढ़ा दो। यह सुनकर उसे कितना दुःख होता है। इस प्रकार वह एक-दो बार नही, अनेक बार तारीखों पर हाजिर होता है, मगर उसका मुकद्दमा पुकारा ही नही जाता है और उसे अपना बयान देने का अवसर ही नहीं प्राप्त होता है। अन्त मे वह अत्यन्त दुःखी होकर लोगों से पूछता है कि अब मैं क्या करूं ? कुछ लोग जज के मुर्गे बने हुये घूमते रहते हैं, वे कहते हैं कि क्या करो। अरे, कुछ भेंट-पूजा करो। जब वह भेंट-पूजा कर आता है तब कहीं मुकद्दमे की कार्यवाही शुरू होती है। कार्यवाही शुरू होने पर भी अनेक तारीखें रखी जाती है। क्योंकि अभी पूजा में कमी रह गई हैं, अतः पेशियां बढ़ा-बढ़ा करके परेशान किया जाता है। यदि निर्लोभी जज हो तो एक-दो पेशी में ही फैसला सुना देता है। परन्तु जहां रिश्वत खाने की आदत पड़ी हुई है वहां जल्दी फैसलाकर देना कहां संभव है ? भाई ऐसे जजों को भी धवल सेठ के भाई-बन्धु ही समझना चाहिये, जो नाना प्रकार के अनीति मार्गो से धन-संचय करने में संलग्न रहते हैं।

धवल सेठ के सामने थे श्रीपाल जैसे उपकारी, दयालु और सरल स्वभावी व्यक्ति। परन्तु लोभ के वशीभूत होकर वह उनको भी मारने के लिए तैयार हो गया। फिर वह दूसरों की तो क्या दया पालेगा ? आज लोगों में धवल

सेठ की यही दुष्प्रवृत्ति घर कर रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि आज के धन-लोलुपो के शरीरो मे धवल सेठ की आत्मा मानो प्रवेश कर गई है। भाई, यदि आप लोगो के दिलो पर उसका कुछ असर आ गया हो तो उसको दूर कर दो, जिससे कि आप लोगो का जीवन श्रीपाल के समान सुन्दर बन जाय।

हा, तो मैं आप लोगो से धवल सेठ के ऊपर कह रहा हू। उसका नाम था धवल। धवल कहते हैं उज्ज्वल सफेद को, कि जिसमे किसी भी प्रकार का कोई दाग या धब्बा न हो। उस सेठ का नाम तो धवल था, परन्तु भीतर से वह बिलकुल काला था। जो वस्तु ऊपर से धोली और भीतर से काली होती है वह क्या हमारे लिये लाभ-दायक होती है? नही होती है। वह तो सदा हमारे लिए हानि-कारक ही होती है। कहा भी है कि है कि—

मन मैला तन ऊजला, जैसे बगुवा देख।
बगुवा से कगवा भला, बाहिर भीतर एक।।

अर्थ, जिसका मन तो मैला है, भीतर से काला है और ऊपर से उजला है, ऐसा बगुला किस काम का। उसकी दृष्टि तो सदा मछली के पकडने मे रहती है। उससे तो कागला भला है जो बाहिर और भीतर एक सा काला है। वह बाहिर अपना सुन्दर रूप दिखा करके दूसरो को धोखा तो नही देता है। परन्तु जो ऊपर से अपना धवल रूप दिखा करके भीतर से धन-घात, प्राण-घात आदि की ताक में रहता है, ऐसा व्यक्ति तो भारी खतरनाक होता है, ऐसे लोगो से सदा दूर रहना चाहिए। जो कहते कुछ और हैं और करते कुछ और ही है—इस प्रकार जिनकी कथनी और करनी में अन्तर है, जिनके विचार और हैं और आचार और है, वे लोग स्वय तो विनष्ट होते ही हैं, साथ मे औरो का भी सत्यनाश कर जाते हैं।

मेरे सज्जनो, आप लोगो को यह जैन धर्म मिला, जो भीतर बाहिर सब ओर से उज्ज्वल है। और यह महाजन जाति मिली वह भी उज्ज्वल है। महाजन नाम बडे आदमी का है। और फिर आपको निर्लोभी त्यागी गुरु मिले हैं, तो ये भी उज्ज्वल,आपका खाना-पीना भी उज्ज्वल है। जब इतनी बातें आपके पास उज्ज्वल हैं, तब फिर यदि मन मे मैलापन रह जाय, तो क्या यह लज्जा की बात नही है? जिनके पास सर्व प्रकार के उत्तम साधन है फिर भी यदि वे काले रह जावे, तो हम कैसे उन्हे अच्छा कह सकते हैं और कैसे उन्हे उत्तम उपाधि दे सकते है? हम यदि पूर्व काल की पौराणिक कथाओ का और वर्तमान काल की कथाओ का तुलनात्मक अध्ययन करे तो दोनो मे आकाश-

पाताल जैसा अन्तर दृष्टिगोचर होगा। फिर कैसे उनका मिलान और समन्वय किया जाय ? उस काल में जो लोग कोयले से भी अधिक काले थे, रग-रग में जिनके दुराचार भरा हुआ था और जो किसी भी संत पुरुष की संगति में जाने को तैयार नहीं थे और न किसी महापुरुष के वचन ही सुनना चाहते थे, ऐसे लोग भी अवसर मिलने पर और महापुरुषों का जरा सा प्रसाद पाने पर कोयले से एक दम हीरा बन गए। आज के वैज्ञानिक कहते हैं कि कोयला ही एक निश्चित ताप मान पाकर के हीरा रूप से परिणत हो जाता है। भाई, मनुष्य काले से उज्ज्वल बने कब ? जब कि उनके बनने की हार्दिक भावना हो। जब तक स्वयं को उज्ज्वल बनाने की हार्दिक भावना नहीं हो, तब तक कोई भी व्यक्ति उज्ज्वल नहीं बन सकता है।

दस्युराज रौहिणेय

भाइयो हमारे सामने ऐसा पौराणिक उदाहरण (रौहिणेय का) उपस्थित है कि पिता पुत्र से कहता है —बेटा, अपन लोग जन्म-जात चोर हैं और अपना जीवन-निर्वाह चोरी से ही होता है। यदि चोरी न करेंगे तो चोर कुल के कलंक कहे जायेंगे। अतः मेरे बाद तुम अपने घराने की परम्परा को भली प्रकार निभाना। पुत्र कहता है—पिताजी, मुझे आपके वचन शिरोधार्य हैं, मैं कुल-परम्परागत धर्म का भली भांति से निर्वाह करूंगा। पुत्र से बाप कहता है कि देख, यदि कभी आते-जाते निर्ग्रन्थ ज्ञातृ पुत्र भगवान् महावीर मार्ग में मिल जायें तो भूल करके भी उनके दर्शन कभी मत करना। न उनके वचन ही सुनना। यदि तू सचमुच में मेरा पुत्र है तो मेरी इस शिक्षा को सदा ध्यान में रखना और उस पर सदा अमल करना। पुत्र कहता है—पिताजी, मुझे आपकी ये सब शिक्षाएं और आज्ञाएं मान्य हैं। मैं कभी भी इनके प्रतिकूल नहीं चलूंगा। इस प्रकार वह चोर अपने पुत्र को शिक्षा देकर मर गया। आप लोग बतायें कि उसकी इन शिक्षाओं को भली कहा जाय, या बुरी ? ये पुण्योपार्जक हैं या पापास्रवकी कारण हैं ? ये बुरी है और पापास्रव की कारण हैं। परन्तु जिन्हें पर-भव का भय ही नहीं है तो उनको कहने का कुछ अवसर भी नहीं है।

बाप के मरने के बाद उसका लड़का चोरों का सरदार बन गया। और अपने बाप से भी बढ़कर खूंख्वार डाकू हो गया। उसके पास ऐसी तरकीबें और विद्यायें थीं कि उसे कोई पकड़ नहीं पाता था। वह प्रति दिन राजगृह नगर में डांके डालता और लोगों को लूट कर चला जाता था। सारे नगर में खलबली ही मच गई। जहां राजा श्रेणिक जैसे प्रतापी, तेजस्वी और न्यायमूर्ति

नरेश हो और बुद्धि के निधान और परमकुशल अभयकुमार जैसे मन्त्री हो, फिर भी आये दिन उस नगर मे चोरियाँ हो और डाके पडे, और फिर भी चोर पकडा न जाये ? यह सर्वत्र चर्चा होने लगी। और धीरे-धीरे यह बात श्रेणिक के कान तक जा पहुँची। श्रेणिक ने अभयकुमार को बुलाकर कहा —कुमार, नगर मे एक लम्बे समय से चोरियाँ हो रही है और डाके पड रहे हैं। फिर भी तुमने अब तक चोर को नही पकडा ! सारे राज्य मे मेरी बदनामी हो रही है। अब तुम उसे पकड कर शीघ्र मेरे सामने हाजिर करो। अन्यथा तुम्हारे साथ भी न्यायोचित व्यवहार किया जायगा। भाई, राजा न्यायमूर्ति होता है। वह न्याय की तुला पर पुत्र मित्र और शत्रु सबको समान रूप से तोलता है, वह किसी का लिहाज नही करता है। श्रेणिक का आदेश सुनते ही अभयकुमार उसे शिरोधार्य करके अपने स्थान पर आये और उन्होने नगर के सब कोटवालो और अधिकारियो को बुलाकर के आज्ञा दी कि प्रति दिन चोरी करने वाले और डाका डालने वाले डाकू का तत्काल पता लगाया जाय। अन्यथा अच्छा न होगा। यह कह कर अभयकुमार ने सबको विसर्जित किया और स्वय भी उसका पता लगाने के लिए सन्नद्ध हो गये।

नगर-रक्षको ने सब ओर से नाकाबन्दी कर दी और प्रत्येक दरवाजे और खिडकी पर पहरेदार बैठा दिये गये। रात भर गुप्तचर नगर मे गुप्त वेष से घूमने लगे। इस प्रकार अनेक दिन बीत जाने पर भी चोर का कोई पता नही चला। तब अभयकुमार बडे चिन्तित हुए और गुप्तवेष मे स्वय ही रात भर नगर के चक्कर काटने लगे। पर भाई, वह चोर भी बडा सतर्क और कुशल था। उसका नाम रोहिणिया था, क्योकि उसका जन्म रोहिणी नक्षत्र मे हुआ था। यदि रोहिणी नक्षत्र हो और साथ मे मगलवार का दिन हो तो उस दिन का जन्मा हुआ पुरुष अवश्य चोर होता है। भले ही वह कितने ही बडे घराने मे क्यो न उत्पन्न हुआ हो, पर उसमे चोरी की आदत आये बिना नही रहेगी। श्री कृष्णचन्द्र भी रोहिणी नक्षत्र मे जन्मे हुये थे तो उन्होने भी बचपन मे गोपालो के घरो से दूध दही की चोरिया की हैं। चोरी चाहे छोटी हो, चाहे बडी ? वह तो चोरी ही है। कहावत भी है कि **'तृण चोर सो मणि चोर'** अर्थात् जो तिनके की भी चोरी करता है, वह भी मणि की चोरी करने के समान ही चोर है। इसी प्रकार जिसके जन्म कुडली मे सातवे भवन मे राहु और केतु आ जायें और फिर दृष्टि लग्न मे पड रही हो तो वह मनुष्य भी आला दर्जे का कुतर्की होगा। उसके कुतर्कों का खडन करना बडे-बडे बुद्धिमानो के लिए भी सभव नही है। भाई, यह

तो ग्रहों की बातें हैं। दुनियां कहती है कि आज ज्योतिष का जमाना लद गया। अब तो वैज्ञानिक चन्द्रमा तक जा पहुंचे हैं। परन्तु मैं कहता हूं कि वे भले ही कहीं पहुंच जावें, पर जन्म-समय के पड़े ग्रहमानों को कोई भी अन्यथा नहीं कर सकता है। ये ग्रह-नक्षत्र किसी को भला या बुरा कोई फल नहीं देते हैं ? वे तो मनुष्य के प्रारब्ध के सूचक है और जो व्यक्ति जैसा प्रारब्ध संचित करके आता है, वह वैसे फल को भोगता ही है।

प्रभु के वचन कानों में

हां, तो एक बार वह रोहिणिया चोर कहीं जा रहा था। मार्ग में भगवान् महावीर का समवसरण आ गया। प्रभु की वाणी विना लाउडस्पीकर के ही चार-चार कोस तक चारों ओर बराबर सुनाई दे रही थी। अतः वह रोहिणिया चोर के कानों तक भी पहुंची। उसने किसी आने-जाने वाले व्यक्ति से पूछा कि यह किसकी आवाज सुनाई दे रही है ? उसने उत्तर दिया—यह भगवान महावीर की आवाज है। वे समवसरण में उपदेश दे रहे हैं। यह सुनते ही उसे याद आया कि मरते समय मेरे पिता ने इनकी वाणी को नहीं सुनने की प्रतिज्ञा कराई थी। अतः उसने तुरन्त अपने दोनों कानों में अंगुलियां डाल दीं। इस प्रकार कानों में अंगुली डाले हुये कुछ दूर आगे चला कि एक ऐसा तेज कांटा लगा कि उसके जूते को चीर कर वह पैर के भीतर घुस गया। भाई, कांटा भी एक भारी बला है। मारवाड़ी में कहावत है कि चोर की माँ ने चोर से कहा—तेरे शरीर में कहीं घाव लग जायें तो कोई बात नहीं, परन्तु पैर में कांटा नहीं लगना चाहिये। पैर में कांटा लगते उसे बैठना पड़ा। वह कान में से एक हाथ को हटा कर कांटे को खींचने लगा। मगर वह इतना गहरा घुस गया था कि प्रयत्न करने पर भी कांटा नही निकला। तब दूसरे हाथ को भी कान के पास से हटा कर दोनों हाथों से जोर लगाकर उसे खींचा। इस समय उसके दोनों कान खुल गये थे, अतः भगवान की देशना नहीं चाहते हुए भी उसके कानों में पड़ गई। उस समय भगवान् कह रहे थे कि देवताओं की पहिचान के चार चिन्ह हैं—एक तो उनके शरीर की प्रतिच्छाया नहीं पड़ती है, दूसरे वे भूमि का स्पर्श नहीं करते हैं, तीसरे उनके नेत्रों की पलकें नही झंपती हैं और चौथे उनकी पहिनी हुई माला कभी मुरझाती नही है। यदि ये चारों चिन्ह दृष्टिगोचर हों तो उसे देव मानो। अन्यथा पाखंडी समझो। ये चारों ही बातें उसके हृदय में उतर गई। वह कांटा निकालकर वहां से चल दिया और मन में सोचने लगा कि आज तो बहुत बुरा हुआ जो बाप की शिक्षा से विपरीत

कार्य हो गया। यद्यपि मैंने अपनी इच्छा से उनकी वाणी नहीं सुनी, अनिच्छा पूर्वक पर-वश सुनने में आ गई। पर हुआ तो यह कार्य पिता की आज्ञा के प्रतिकूल ही है। अब वह ज्यों-ज्यों उन सुनी बातों को भूलने का प्रयत्न करने लगा, त्यों-त्यों वे हृदय में और भी अधिक घर करने लगीं। भाई, मनुष्य की प्रकृति ही ऐसी है कि वह जिस बात को याद करना चाहे, वह याद नहीं होती। और वह जिसे भूलना चाहे, तो उसे भूल नहीं सकता। अतः उसे वे चारों बातें याद हो गई।

इस प्रकार वह रोहिणिया चोर जब दुविधा में पड़ा हुआ जा रहा था, तभी अभयकुमार घोड़े पर चढ़े हुए भगवान के दर्शन को आये। उनकी दृष्टि सहसा रोहिणिया चोर पर पड़ गई, मानों परिन्दों को दाना दृष्टि गोचर हो गया हो। उसे देखते ही उन्हें विश्वास हो गया कि नगर-भर में तहलका मचानेवाला चोर यही है। अत वे तुरन्त घोड़े पर से उतरे और उसका हाथ पकड़ लिया। और उससे पूछा—तेरा नाम क्या है ? कहां रहता है और क्या धन्धा करता है ? रोहिणिया मन में विचारने लगा कि आज तो मैं चक्कर में आगया हूं। मेरे बापने मुझे शिक्षा दी थी कि भगवान महावीर की वाणी मत सुनना। परन्तु नहीं चाहते हुए भी वह मेरे कानों में पड़ गई है, अतः आज मैं अभयकुमार के हाथ पकड़ा गया ! अरे, अन्य पुरुष तो दूध में से मक्खन निकालते हैं। परन्तु ये तो पानी में से भी मक्खन निकालते हैं। अब वह संभला और उसने कहा कि मैं गांव में रहता हूं। इसी प्रकार उसने अपना नाम, बाप का नाम और धंधा भी बता दिया। अभयकुमार उसे पकड़ कर अपने स्थान पर ले आये। और उन्होंने गुप्त रीति से आदमी भेजकर तपास कराया, तो जैसा उसने बतलाया था, सब बातें वैसी की वैसी मिल गई। अब अभयकुमार बड़े विचार में पड़ गये। वे सोचने लगे कि चोर तो यही है। परन्तु जांच करने पर तो यह साहूकार सिद्ध हो रहा है। क्योंकि इसने जैसा अपना परिचय दिया, वह तपासने पर बिलकुल सही पाया गया है। परन्तु इसे छोड़ना नहीं है। तब रोहिणिया ने कहा—कि आपने मेरे विषय में सब कुछ तपास कर लिया है, तब मुझे तंग क्यों करते हैं और छोड़ते क्यों नहीं हैं ? अभयकुमार ने कहा—भाई, तुम बहुत होशियार आदमी हो। अतः मैं तुम्हें राज्य का कोई अच्छा विभाग सौंपना चाहता हूं। उसके पहिले तुम्हें योग्य शिक्षा (ट्रेनिंग) देना पड़ेगी। इसलिए तुम्हें रोक रहा हूं। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। इस बीच में अभयकुमार ने उसकी और भी उपायों से जांच-पड़ताल की। परन्तु वह उनमें भी खरा सिद्ध हुआ। तब अभयकुमार ने एक नया महल बनवाया। उसकी सजावट बहुत सुन्दर देव-लोक जैसी करायी।

महल के मध्य वाले बड़े कमरे में बढ़िया गादी-तकिये लगवा दिये गये। उन्होंने उस चोर को एक दिन बढ़िया भोजन कराके चन्द्रहास नाम की मदिरा पिला दी और उस महल में सोने के लिए भेज दिया। वहां पर उसकी सेवा के चार वारांगनाएं जो नवीन सुन्दरी और नवयौवना थीं—भेज दीं। वह रोहिणिया चोर उस महल में जाते ही मदिरा के नशे में सो गया। अभयकुमार उसका भेद जानने के लिए महल के बाहिर बैठ गये।

रोहिणिया को गहरी नींद में सोते हुए रात के तीन पहर बीत गये। चौथे पहर में उसकी नींद खुली, और उसका नशा उतरा, तो क्या देखता है कि ओह, यह तो बड़ा सुन्दर महल है और देवांगनाएं जैसी रूपवती चार वारांग-नाएं मेरे चारों ओर खड़ी हैं? उन्हें देखकर वह कुछ विस्मित हुआ और सोचने लगा कि मैं कहां हूं और ये स्त्रियां कौन हैं? तभी उन स्त्रियों ने पूछा कि आपने पूर्वभव में क्या दान दिया है? अथवा शील का पालन किया है, अथवा तपस्या की है, अथवा जिन धर्म की आराधना की है, जिससे कि आप इस स्वर्ग लोक में आये हैं? और हमारे स्वामी बने हैं? यह सुनकर रोहिणिया सोचने लगा कि क्या मैं मरकर स्वर्ग लोक में उत्पन्न हुआ हूं और ये अप्सराएं मेरी सेवा के लिए उपस्थित हैं? इतने में उसका नशा बिलकुल उतर गया और वह पूरे होश में आगया। तब उसने अपने दिमाग को स्थिर करके सोचा कि यह स्वर्ग नहीं है और न ये अप्सराएं ही हैं किन्तु यह तो अभयकुमार का षड्यंत्र सा ज्ञात होता है। तभी उसे भगवान महावीर की देशना में सुनी हुई वे चारों बातें याद आईं कि देवता भूमि का स्पर्श नहीं करते। सो ये तो चारों ही भूमि पर खड़ी हुई हैं। देवता नेत्र नहीं टिमकारते, सो ये तो नेत्रों को टिमकार रही हैं। देवताओं के शरीर की प्रतिच्छाया नहीं पड़ती है, सो इनके शरीर की प्रतिच्छाया भी पड़ रही है और इनके गले की मालाएं भी मुरझा रही है। अतः निश्चय से ये देवियां नहीं हैं, किन्तु मनुष्यनी ही हैं। मैंने लोगों से सुना है कि भगवान महावीर के वचन अन्यथा नहीं होते हैं। इसलिए न मैं मरा हूं, नहीं यह स्वर्ग है और न ये देवियां ही हैं। मैं वही रोहिणियां चोर ही हूं। न मैंने कभी दान दिया है, न शील पाला है और नहीं धर्म की आराधना ही की है। तब निश्चय ही मेरा भेद लेने के लिए अभय-कुमार ने यह कपट जाल रचा है। यह सोचकर वह प्रकट में उन देवियों से बोला—मैंने हजारों व्यक्तियों की सेवा की है, तब यह स्वर्ग मिला है और आप लोगों को पाया है। तब उन स्त्रियों ने पूछा—स्वामिन्, आपने पूर्वभव में कभी कोई भूल भी तो की होगी? रोहिणिया बोला—देवियो, मुझे कभी ऐसा अवसर ही नहीं आया कि मैं उत्तम कार्य को छोड़कर जघन्य कार्य करता। इस प्रकार

देवियो के द्वारा पूछे गये प्रश्नो का वह पूरी सावधानी के साथ उत्तर देता रहा और किसी भी प्रकार से उनके चगुल मे नही फसा। अभयकुमार महल के बाहिरी दरवाजे पर बैठे हुए यह सब वार्तालाप सुनते रहे। वे मन मे सोचने लगे कि है तो यह बहुत होशियार। इसकी होशियारी के सामने मेरी सारी चतुराई बेकार सिद्ध हुई।

प्रात काल होने पर महल के दरवाजे खोल दिये गये। अभयकुमार ने उसे अपने पास बुलाया और उससे पूछा—कहो भाई रात मे नीद तो आराम से आई ? उसने कहा हाँ, मैं रात भर खूब आराम से सोया। फिर कुछ रुक कर बोला—कुमार, मैं रात मे स्वर्ग चला गया। वहाँ पर चार देवियाँ मिली। उन्होंने पूछा कि तुम मर कर स्वर्ग आये हो ? अथवा इसी शरीर के साथ आये हो ? मैंने कहा इसी देह के साथ आया हूँ। उनसे मेरी नाना प्रकार की मीठी-मीठी बाते भी हुई हैं। अब मैं स्वर्ग से लौट कर आ रहा हूँ। अभय कुमार उसकी ये बाते सुनकर समझ गये कि इसे चक्कर मे डाल कर भेद पाना कठिन है। उधर वह चोर भी मन में सोचने लगा कि वाहरे भगवान् महावीर, तेरी वाणी कैसी अद्‌भुत है। मैंने उस दिन आपकी वाणी को विना मन के भी सुना तो आज अभयकुमार के चक्कर से बाल-बाल बच गया हूँ। यदि मैं आपकी वाणी को हृदय से श्रद्धा पूर्वक सुनू तो अवश्य ही मेरे जन्म-जन्मान्तरो के कोटि-कोटि पाप झड जायेगे इसमे कोई आश्चर्य नही है। मेरे पिता तो महान् पातकी थे। उन्होने जीवन भर चोरियाँ की और डाके डाले। तथा मरते समय मुझे भी वही पाप करने की शिक्षा दे गये। मैंने आज तक असख्य पाप करके अपना जीवन व्यर्थ गवा दिया। अब मैं यदि अभय कुमार के चगुल से निकल सका तो अवश्य ही इस पाप भरी वृत्ति को छोड कर निर्दोष जीवनयापन करूँगा।

भाइयो, कहो, वह जो कोयला सा काला था, अब हीरा-सा निर्मल बन रहा है, या नही ? उसने अभयकुमार से पूछा कुमार, सच बताइये, आपका इरादा क्या है ? आपने क्यो इतने दिनो से रोक रखा है ? यदि आप यथार्थ जानकारी चाहते हैं, तो मैं सत्य-सत्य बात कहने को तैयार हू। तब अभय कुमार ने कहा— रोहिणिया मेरा हृदय कहता है कि इस राजगृह नगर मे और सारे मगध देश मे जो चोरियाँ हो रही ह और डाके पड रहे है, उनमे निश्चय से तुम्हारा हाथ है। तब वह बोला—कुमार, यदि आपका ऐसा विश्वास है और आपका हृदय ऐसा कहता है, तब मुझ दड क्यो नही देते हो ? अभय कुमार ने कहा—भाई कानून बीच म अडता है। जब तक तुम अपने

मुख से अपराध को स्वीकार नहीं कर लेते हो, तब तक तुम्हें दंड कैसे दे सकता हूँ। मेरा मन अवश्य कहता है कि तुम चोर हो। तब रोहिणिया बोला—कुमार आपका विचार बिलकुल सत्य है। आप जिस चोर को पकड़ने के लिए इतने दिनों से परिश्रम उठा रहे हैं और दौड़-धूप कर रहे हैं, वह रोहिणिया चोर मैं ही हूँ। राजगृह नगर में और सारे मगध देश में जितनी चोरियाँ हुई हैं और डाके पड़े हैं उन सब में मेरा पूरा-पूरा हाथ है। मैं दंड का पात्र हूँ। आप मुझे निःसंकोच अवश्य दंड दीजिए। अभयकुमार बोले—भाई, मैं तुम्हें चोर सिद्ध नहीं कर पाया हूँ। तुमने चोरी को स्वीकार किया, यह देख मुझे बड़ा आश्चर्य है। वह बोला—मैंने आप जैसे अनेक चतुरों को चक्कर में डाला है और अच्छे होशियारों की आँखों में धूल झोंकी है। परन्तु आज तक कोई भी मुझे पकड़ नहीं सका है। तब आज मैं स्वयं ही आपको आत्म-समर्पण कर रहा हूँ और अपने को अपराधी घोषित करता हूँ। यह कार्य मैं किसी के आतंक या भय से नही, किन्तु स्वेच्छा से कर रहा हूँ। यह भगवान् महावीर की वाणी का ही प्रताप है। भाई, देखो—भगवान् की वाणी की प्रशंसा एक महापापी डाकू और चोर भी कर रहा है। तब अभय कुमार ने कहा—तुमने भगवान् की वाणी कब सुनी तब उसने कहा—मैंने हृदय से, श्रद्धा या भक्ति से नहीं सुनी। किन्तु पैर का कांटा निकालते हुए अकस्मात् उनकी वाणी कानों में पड़ गई। मैंने उसे भूलने का बहुत प्रयत्न किया। परन्तु भूल नहीं सका। आज उसी के प्रताप से मैं आप जैसे बुद्धिमानों के चक्कर से बच गया हूं। अब आप मुझे सहर्ष महाराज श्रेणिक के समीप ले चलिये। वे जो दंड देंगे, उसे लेने के लिए मैं तैयार हूं।

अब अभयकुमार उसे लेकर राज-सभा में गये। श्रेणिक महाराज को नमस्कार करके बोले—महाराज आपके सामने एक विशिष्ट व्यक्ति को उपस्थित कर रहा हूं। भाईयो, देखो अभयकुमार के हृदय की महत्ता। उसे चोर नही कहकर एक विशिष्ट व्यक्ति कहा। श्रेणिक ने उससे पूछा—भाई, तुम कौन हो? उसने कहा—महाराज, मैं रोहिणिया चोर हूं, जिसने आपके राज्य में और सारे नगर में अशान्ति मचा रखी है। राजा श्रेणिक उसे तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए बोले- अच्छा, तू ही रोहिणिया चोर है? तूने ही हमारे सारे राज्य में आतंक फैला रखा है। वह बोला—हा महाराज, मैं वही रोहिणिया चोर हूं। तब श्रेणिक ने अभयकुमार से पूछा—तुमने इसे विशिष्ट व्यक्ति कैसे कहा? उन्होंने उत्तर दिया—महाराज, मैंने इसे चोरी करते हुए नहीं पकड़ा है। यह स्वयं ही अपने मुख से अपने को चोर कह रहा है।

श्रेणिक ने आदेश दिया—अच्छा इसे ले जाओ और इसका सारा धन-माल लेकर इसे शूली पर चढ़ा दो । तब अभयकुमार ने कहा—महाराज, यह कैसा न्याय है ? इसे आपने या मैंने चोरी करते हुए नहीं पकड़ा है । यह तो अपने मुख से ही अपना अपराध स्वीकार कर रहा है । फिर इसे शूली पर क्यों चढ़ाया जावे । मैं इस दंड से सहमत नहीं हूं । पहिले आप चल कर इसके घर का धन माल देखें । यह तो देने को तैयार है । मगर इसके घर का पता नहीं चलेगा । मैं छान-बीन करते करते थक गया हूं । पर अभी तक इसके घर का पता नहीं लगा सका हूं । यह तो यों ही रास्ते चलते पकड़ में आगया । तब श्रेणिक ने पूछा—अरे रोहिणिया, तू अपने घर का पता ठिकाना बतायगा ? वह बोला—हां महाराज, मैं बताऊंगा, आप मेरे साथ चलिये । राजा श्रेणिक दल-बल और अभयकुमार के साथ उसके पीछे चले । उसका मकान अत्यन्त घुमावदार स्थान पर था और उसने मकान के अनेक गुप्त स्थानों पर धन को रख छोड़ा था । राजा श्रेणिक ने उसका सब धन उठवा करके राज्य के खजाने में भिजवा दिया । फिर उससे पूछा—तू क्या चाहता है । वह बोला—महाराज आप जो भी दंड मुझे देना चाहें, वह दे दीजिए । मैं उसे सहने को तैयार हूं । यदि नहीं देना चाहते तो जो मैं चाहता हूं, उसे करने की आज्ञा दीजिए । श्रेणिक ने पूछा—तू क्या चाहता है ? रोहिणिया ने कहा—महाराज, मैं अब संसार में नहीं रहना चाहता हूं । इसे छोड़कर भगवान् महावीर के चरणों की शरण में जाना चाहता हूं । श्रेणिक आश्चर्य-चकित होकर बोले - अभयकुमार, यह क्या कह रहा है ? अभयकुमार ने कहा—महाराज, आप स्वयं ही सुन रहे हैं । परन्तु मैं तो इसे चोर मानने के लिए तैयार नहीं हूं । मैं तो इसे साहूकार कहता हूं, क्योंकि इसने अपना अपराध स्वयं ही स्वीकार किया है । अब जैसी आपकी इच्छा हो सो कीजिए । यदि मेरे से ही पूछते हैं, तो मैं यही निवेदन करूंगा कि आप मुझे मंत्री पद से अवकाश दीजिए और इसे मंत्री बना दीजिए । इसके द्वारा देश की बड़ी भारी उन्नति होगी । यह सुनते ही रोहिणिया बोला—महाराज, मुझे मंत्री पद नहीं चाहिए । मैं तो भगवान की चरण-शरण में जाना चाहता हूं । राजा श्रेणिक ने सहर्ष उसे जाने की आज्ञा दे दी । वह भगवान के समवसरण में पहुंचा और भगवान से प्रार्थना करके और उनकी अनुज्ञा पाकर के अपने हाथ से केश-लुंचन करके साधु बन गया और रोहा मुनि के नाम से प्रसिद्ध होकर तपस्या करने लगा ।

भाइयो, बताओ, वह कोयले जैसा काला रोहिणिया हीरा जैसा निर्मल

पुरुष रत्न बना, या नहीं बना ? वह धवल जैसा नही था। धवल सेठ तो ऊपर से ही धोला था, परन्तु अन्दर से काला था। यहां पर उपस्थित आप लोगों में से तो किसी ने धवल सेठ की विद्या नहीं सीखी है ? या सीखना तो नही चाहते हैं ? अथवा श्रीपाल के समान बनना चाहते हैं ? बनने को तो सब लोग ही श्रीपाल बनना चाहेंगे। धवल कोई नहीं बनना चाहेगा। मुख से तो यही कहेंगे। परन्तु दिल तो यही कह रहा होगा कि मजा तो धवल सेठ बनने में है : श्रीपाल तो अपना माल गंवाता था। किन्तु धवल सेठ तो माल जमा करता था। मैंने तो दोनों बातें आपके सामने रख दी हैं। अब आप लोग जैसा बनना चाहें, यह आपकी इच्छा पर निर्भर है। जो बात आपको अच्छी लगे उसे स्वीकार कर लेना। परन्तु थोड़ी सी शिक्षा हमारी भी मानना कि यदि श्रीपाल न बन सको तो दो-एक गुण उन जैसे अवश्य सीख लेना। किन्तु धवल सेठ का एक भी दुर्गुण मत सीखना। यदि सीख लिये हों तो उन्हें छोड़ देना। उसके गुण आप लोगों की जाति, समाज और खानदान के योग्य नहीं हैं। कहना और उचित सलाह देना हमारा काम है और मानना या न मानना आपका काम है। यदि मानोगे तो आपका ही भला होगा और हमे भी प्रसन्नता होगी।

आप लोग कहेंगे कि महाराज, आपका कथन सर्वथा सत्य है और मानने के योग्य है। तथा हम मानने को भी तैयार हैं। परन्तु आज का जमाना तो ऐसा नही है। यदि आज धवल सेठ के गुण नहीं सीखें तो हमारा जीवन निर्वाह होना भी कठिन हैं। एक भाई आया और कहने लगा—मुझे अपना मकान बेचना है। दूसरा बोला—मैं लेने को तैयार हूं। परन्तु मैं तो रजिस्ट्री पूरी कराऊँगा। तब वह कहता है कि मुझे क्यों डुबोता है। मेरे घर में तो उसकी आधी कीमत भी घर में नहीं रहेगी। सरकार आधी ले लेगी। भाई, बात यह है कि जिधर भी देखते हैं, उधर धवल ही धवल सेठ नजर आते हैं। अरे, धवल की विद्या सीखना छोड़ दो। नीति धर्म तो यह कहता हैं कि ये अन्याय और छलबल से जो धन कमाया जाता है, वह अधिक दिन नही ठहरता है। नीतिकार कहते है—

> अन्यायोपार्जितं वित्तं दशवर्षाणि तिष्ठति।
> प्राप्ते त्वेकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति॥

अर्थात् अन्याय से-छलबल से कमाया हुआ धन अधिक से अधिक दस वर्ष तक ठहरता है। किन्तु ग्यारहवां वर्ष लगते ही अपनी मूल पूंजी को भी साथ में लेकर के विनष्ट हो जायगा।

इसलिए भाइयो, न्यायमार्ग से धन कमाओ। यदि न्याय मार्ग से चलने पर कम भी द्रव्य प्राप्त होता हो, तो भी कोई चिन्ता मत करो और मत घबडाओ। न्याय पर चलने वाला कभी धोखा नही खा सकता। यदि कोई उसके साथ धोखा करगा भी, तो वही उलटा धोखा खायगा। जो दूसरे का बुरा सोचता है और दूसरे को खोटी सलाह देता है, उसका दड उसे ही भोगना पडेगा। एक वार एक ऊट को काटा लग गया। अत दर्द से पीडित होकर वह बैठ गया। इतने मे एक बन्दर वहा आ गया। उसने पूछा ऊट बाबा, ऐसे क्यो पडे हो ? उसने कहा—मेरे पैर म काटा लग गया है, इससे चल नही सकता। बन्दर बोला—यदि मैं काटा निकाल दू तो तुम मुझे क्या दोगे ? ऊट बोला—जिस दिन तुझे खाना न मिले तो मेरे शरीर पर एक बट का भर लेना और भोजन कर लेना। बन्दर ने कहा—समय पर इनकार तो नही करोगे ? ऊट ने कहा—नहीं करूगा। बन्दर ने उसका काटा निकाल दिया। ऊट अपने स्थान को चला गया और बन्दर भी जगल मे चला गया। वहा पर उसे एक सियाल मिला। उससे पूछा कि तुमने ऊट का काटा निकाल दिया है। उसने कहा—हा निकाल दिया है। सियाल बोला—तुमने बहुत बुरा काम किया। यदि ऊट मर जाता, तो हम, तुम और गिद्ध बहुत दिन तक मजा मारते। बन्दर ने कहा—भाई दुखी के दुख को दूर करना तो इन्सान का काम है। सियाल बोला—देख, मैं जैसा कहता हू, तू वैसा ही करना। जाकर के उससे कह कि मैं तो आज ही भूखा हू, अत मुझ बटका भरने दे। जब वह बटका भर लेने को तैयार हो जाय तो कहना कि तेरे दूसरे अग तो कठोर हैं, मैं उनका बटका नही भर सकता हू। मुझे तो तू अपनी जीभ का ही बटका भरने दे। बन्दर ने कहा—भाई, यह बात गलत है। उसने तो शरीर के बटका भरने की बात कही थी। सियाल बोला—तू जाकर कह तो सही। मैं आकर गवाही दे दूगा। बन्दर भोला था, अत उस सियाल की बातो मे आगया। भाई, ये भोले प्राणी ही दूसरो के माया जाल मे फस जाते है। बन्दर ऊट के पास पहुचा और पीछे से सियाल भी वहा जा पहुचा। बन्दर ने ऊट से कहा—भाई, तुम मेरे बडे उपकारी हो। ऊट बोला—क्या आज भोजन नही मिला। बन्दर बोला—हा भाई, यही बात है। तब उसने कहा—अच्छा तुम मेरे शरीर का बटका भर लो। तब बन्दर बोला—मेरे साथ शरीर का कौल नही है। मैं तो जीभ का बटका भरूगा। ऊंट बोला—भाई, जीभ का कौल नही है। शरीर का कौल है। तुम अपनी नीयत मत बिगाडो। तब सियाल बीच मे आकर बोला—नीयत तो तुम बिगाड रहे हो। जो तुमने कहा था, वह मैंने सुना है। मैं ईश्वर की साक्षी से कहता हू कि तुमने जीभ के

बटका भर लेने की बात कही थी। तब ऊंट बोला—ठीक है भाई, मैं भूल गया होऊं। जब तू गवाही देता है, तब यह जीभ के बटका भर लेवे। यह कह कर ऊंटने अपना थोड़ा सा मुख खोला। उसमें बन्दर का मुख जीभ को पकड़ने के लिए नहीं जा सकता था। अतः वह बोला—अरे इसमें तो मेरा मुख नहीं जाता है। ऊंट बोला—इसके लिए मैं क्या करूं? तब सियाल ने बन्दर से कहा—तू अलग हो। मैं बटका भरता हूं। तब ऊंटने कहा—चाहे तू बटका भर चाहे यह बटका भरे मुझे इसमें कोई इनकार नहीं है। तब जैसे ही ऊंट के मुख में अपना मुख डाला वैसे ही ऊंट ने अपने ओंठ बन्द कर लिये। अब सियाल का शरीर अधर लटकता रह गया। बन्दर बोला—भगवान्, खूब सुनी। इसे झूठी गवाही का फल आपने तुरन्त ही दे दिया।

भाइयो, याद रखो—झूठी गवाहियां देना, झूठे लेख, दस्तावेज लिखना और दूसरे के साथ छल-कपट कर उसे अपने जाल में फंसाना बहुत भारी पाप है। आखिर में सच, सच ही रहता है और झूठ, झूठ ही रहता है। कहा है कि—

> जो जाके मारे छुरी, उसके ही लगता है छुरा।
> जो औरो को चिते बुरा, उसका ही होता है बुरा॥

देखो, धवल सेठ ने श्रीपाल का बुरा चाहा, तो अन्त में उसका क्या हाल हुआ, यह बात मुनिजी आगे आपको सुनावेंगे ही और आप लोग सुनेंगे भी कि अन्त में श्रीपाल का मनचाहा होता है, अथवा धवल का मनचाहा होता है? वहां तो अपने आप दूध का दूध और पानी का पानी हो जायगा। आप लोग सोच लो, विचार लो, खूब विचार लो। मैं जो कहता हूं, वह आप सुनते हैं। परन्तु जब उसे मंजूर कर ग्रहण करो, तभी लाभ है।

मैंने संवत्सरी के दिन एक बात आप लोगों से कही थी संघ के हित में। वह आप लोगों ने सुनी और आपने कहा था—महाराज, करेंगे। परन्तु पीछे आप लोगों ने उस पर ध्यान नहीं दिया है। और ध्यान भी क्यों रखेंगे? भाई, जो बात संघ के लिए हितकर है, उसे तो याद रखना चाहिए। अब भी आप लोग उस पर विचार करना और ध्यान देना कि मैंने क्या कहा था? और हमें क्या करना है? संभवतः उस दिन आप के श्री संघ के अध्यक्षजी भी यहां उपस्थित थे। आप लोग उनसे भी पूछ लेना और उस पर ध्यान देना। अच्छी बात को सदा याद रखने और बुरी बात को भूलने में ही मनुष्य का कल्याण है। मेरा तो आप लोगों से यही कहना है कि लोभ को छोड़ो और

बटका भर लेने की बात कही थी। तब ऊंट बोला—ठीक है भाई, मैं भूल गया होऊं। जब तू गवाही देता है, तब यह जीभ के बटका भर लेवे। यह कह कर ऊंटने अपना थोड़ा सा मुख खोला। उसमें बन्दर का मुख जीभ को पकड़ने के लिए नहीं जा सकता था। अतः वह बोला—अरे इसमें तो मेरा मुख नहीं जाता है। ऊंट बोला—इसके लिए मैं क्या करूं? तब सियाल ने बन्दर से कहा—तू अलग हो। मैं बटका भरता हूं। तब ऊंटने कहा—चाहे तू बटका भर चाहे यह बटका भरे मुझे इसमें कोई इनकार नहीं है। तब जैसे ही ऊंट के मुख में अपना मुख डाला वैसे ही ऊंट ने अपने ओंठ बन्द कर लिये। अब सियाल का शरीर अधर लटकता रह गया। बन्दर बोला—भगवान्, खूब सुनी। इसे झूठी गवाही का फल आपने तुरन्त ही दे दिया।

भाइयो, याद रखो—झूठी गवाहियां देना, झूठे लेख, दस्तावेज लिखना और दूसरे के साथ छल-कपट कर उसे अपने जाल में फंसाना बहुत भारी पाप है। आखिर में सच, सच ही रहता है और झूठ, झूठ ही रहता है। कहा है कि—

> जो जाके मारे छुरी, उसके ही लगता है छुरा।
> जो औरो को चिंते बुरा, उसका ही होता है बुरा॥

देखो, धवल सेठ ने श्रीपाल का बुरा चाहा, तो अन्त में उसका क्या हाल हुआ, यह बात मुनिजी आगे आपको सुनावेंगे ही और आप लोग सुनेंगे भी कि अन्त में श्रीपाल का मनचाहा होता है, अथवा धवल का मनचाहा होता है? वहां तो अपने आप दूध का दूध और पानी का पानी हो जायगा। आप लोग सोच लो, विचार लो, खूब विचार लो। मैं जो कहता हूं, वह आप सुनते हैं। परन्तु जब उसे मंजूर कर ग्रहण करो, तभी लाभ है।

मैंने संवत्सरी के दिन एक बात आप लोगों से कही थी संघ के हित में। वह आप लोगों ने सुनी और आपने कहा था—महाराज, करेंगे। परन्तु पीछे आप लोगों ने उस पर ध्यान नहीं दिया है। और ध्यान भी क्यों रखेंगे? भाई, जो बात संघ के लिए हितकर है, उसे तो याद रखना चाहिए। अब भी आप लोग उस पर विचार करना और ध्यान देना कि मैंने क्या कहा था? और हमें क्या करना है? संभवतः उस दिन आप के श्री संघ के अध्यक्षजी भी यहां उपस्थित थे। आप लोग उनसे भी पूछ लेना और उस पर ध्यान देना। अच्छी बात को सदा याद रखने और बुरी बात को भूलने में ही मनुष्य का कल्याण है। मेरा तो आप लोगों से यही कहना है कि लोभ को छोड़ो और

दिल खोल कर दान दो। देने से कभी लक्ष्मी घटती नहीं है। बल्कि उत्तरोत्तर बढ़ती ही है। क्योंकि शास्त्रकार भी कहते हैं कि **'लक्ष्मी दानानुसारिणी'** अर्थात् लक्ष्मी तो दान का अनुसरण करती है। जो भी जैसा दान करता है वह भी उसके पीछे-पीछे उसी के अनुसार जा पहुंचती है। इसलिए दिल को और हाथ को सदा ऊंचा रखो। मन को पवित्र रखो, नीति को साफ रखो। किसी के साथ भी कपट व छल पूर्ण व्यवहार मत करो, यही मानव देह पाने का सार है।

वि० सं० २०२७ कार्तिक वदि ३
जोधपुर

८ स्वच्छ मन : उदार विचार

नवीनता मे रस

सज्जनो, हमारे विचारो मे सदा नवीनता आनी चाहिए। ससार का यह अटल नियम है कि कोई वस्तु कितनी ही उत्तम से उत्तम क्यो न हो, परन्तु कुछ दिनो के पश्चात् उसका आकर्षण समाप्त हो जाता है और यदि कोई नवीन वस्तु दृष्टिगोचर होती है तो उस ओर आकर्षण हो जाता है। संस्कृत की एक उक्ति है कि 'लोको ह्यभिनवप्रिय' अर्थात् ससार को नयी वस्तु प्रिय होती है। आप लोग प्रति दिन गर्म फुलके और बढिया साग खाते हैं। यदि किसी दिन आपकी थाली मे थूली या बाजरे-मक्की की रोटी आती है, तो पहले आप उसे खाते है, क्योकि वह नवीन है। इसी प्रकार नवीन वस्त्र पहनने मे भी अधिक आकर्षण होता है। नया मकान, नया मित्र, नया शस्त्र और नया शासन भी हस्तगत होने पर आनन्द प्राप्त होता है। इसी प्रकार हमारे भीतर आध्यात्मिकता के भी नये-नये भाव आने चाहिए। आप प्रतिदिन सामायिक करते है, नवकारसी-पोरसी करते हैं और उपवास आयबिल भी करते हैं, परन्तु यदि इनमे नित्य नवीनता नही आवे तो उनके करने मे आकर्षण नही रहता है। अब एक विशेष ज्ञानी ने आपसे कहा—भाई, आप सामायिक करते है, यह तो बहुत अच्छी बात है। परन्तु यदि एक आसन लगाके बैठकर या खडे होकर करोगे तो आनन्द आयेगा। आपने उसकी बात को स्वीकार करके तदनुसार सामायिक करनी प्रारम्भ कर दी, तो आपको अवश्य आनन्द आयेगा,

क्योंकि प्रतिदिन की अपेक्षा आज उसमें कुछ नवीनता आई है। दूसरे ने कहा— यदि आप प्रतिदिन णमोकार मंत्र की माला फेरते हैं तो अतिपरिचय से मंत्र पदों को बोलते हुए भी आपका ध्यान कहीं का कहीं चला जाता है। अब यदि आप उसे आनुपूर्वी से फेरेंगे तो अनुभव करेंगे कि आप का चित्त एकाग्र और स्थिर होकर नवकार पदों का उच्चारण कर रहा है। अब तीसरे ने कहा— भाई, पुस्तक से क्यों पढ़ते हो ? मैं तुम्हें एक पद, दोहा या श्लोक बताता हूं, तुम मुख से ही बोला करो। दस पांच दिन के अभ्यास से वह कंठस्थ हो जायगा। उसके कहने के अनुसार यदि आपने उसे कंठस्थ कर लिया तो आप अनुभव करेंगे कि पुस्तक बांचने की अपेक्षा अधिक रस उसके मौखिक बोलने में आ रहा है। चौथे व्यक्ति ने कहा—आप जो कुछ सामायिकादि करते हैं, वह तो ठीक है। परन्तु यदि नवीन ज्ञान का अभ्यास करोगे तो आपको नया प्रकाश मिलेगा। आपने उसके कथानुसार नित्य कुछ न कुछ समय नवीन ज्ञान के उपार्जन में लगाया तो आप स्वयं अनुभव करेंगे कि हृदय में कितना आनन्द आ रहा। अब पाँचवें व्यक्ति ने कहा—भाई, जो नया ज्ञान उपार्जन कर रहे हो तो उसके अर्थ का मंथन, मनन और चिन्तन भी करो। फिर देखो कितना रस आता है। अब आप पढ़ी और सीखी बात का मनन-चिन्तन करने लगे तो और भी नवीन-रस का संचार आप के हृदय में होगा। इन सब बातों के कहने का सार यही है कि मनुष्य ज्यों ज्यों नवीनता को प्राप्त करता है त्यों त्यों ही उसके हृदय में एक अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती जाती है।

बचपन में जब आप लोग पौना, सवाया, ड्योढ़ा आदि पढ़ते थे, तब उनका भाव न समझने से रस नहीं आता था। अब जब व्यापार करने मे और हिसाब-किताब करने मे उनका उपयोग आता है, तब आपको बचपन में पढ़े हुए उस पौना-सवाया का आनन्द आता है। बचपन में वह जंजाल प्रतीत होता था और आज वह एक महत्त्वपूर्ण कार्य प्रतीत होता है। बचपन में कोई हिसाब पट्टी-पेंसिल के सहारे करते थे और अब मौखिक ही करते हैं। एक पंसारी से अनेक लोग अनेक प्रकार की वस्तुएँ देने के लिए कहते हैं, वह सब को देता भी जाता है। और सबसे उनका निश्चित मूल्य भी लेता जाता है, उसे हिसाब करने के लिए पट्टी-पेंसिल नहीं लेनी पड़ती है, क्योंकि उसके दिमाग मे गणित का पाठ अच्छी तरह रमा हुआ है। इसी प्रकार आप लोगों को अपना दिमाग आत्मा के व्यापार में भी लगा देना चाहिए। फिर आप आनन्द का अनुभव करेंगे और उससे कभी दूर नहीं होना चाहेंगे।

देखो, आपने रामायण और महाभारत को कई बार सुना है। उसे यदि

कोई मनुष्य कुछ नवीनता के साथ सुनाता है, तो आपको सुनने में आनन्द आता है, क्योंकि सुनने में नवीन बात मिल रही है। इसका अर्थ यही है कि मनुष्य का हृदय सदा नवीनता की खोज में रहता है और नवीनता में वह आनन्द या रस का अनुभव करता है।

योग्यता की परीक्षा

ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में एक ऐसा अध्ययन आया है जो कहानी के रूप में नही है, बल्कि शास्त्र का अंग है। एक सेठजी के चार लड़के थे। जवान और पढ़ लिखकर होशियार होने पर सेठजी ने उनका यथासमय विवाह कर दिया। सभी बहुए अच्छे ठिकानो की थी। पहिले जमाने के मनुष्य स्त्री को साक्षात् लक्ष्मी समझते थे और अपने पुत्र के योग्य लड़की से ही उसका विवाह सम्बन्ध करते थे। आज तो लोग गुणो को नही देखकर धन और रूप को देखते हैं। फिर भले ही वह आकर अपने घर का तीन तेरह क्यों न कर देवे। हा तो सेठजी ने बहुत सोच-विचार करके अच्छे घरानो की योग्य लड़कियो के साथ ही अपने पुत्रो का विवाह कर दिया और घर मे सर्व प्रकार से आनन्द छा गया।

जब सेठ का बुढापा आया तो उसके मन मे विचार आया कि लड़के तो मेरे ही जाये हुये हैं और सर्वप्रकार से हैं योग्य अत उनकी ओर से तो मुझे कोई खतरा नहीं है। परन्तु ये जो चारो बहुए हैं, ये भिन्न-भिन्न घरानो से और भिन्न-भिन्न देशो से आई है, अत ये मेरे और सेठानी जी के पीछे घर को कैसा चलावेंगी, इसका पता नही है। अत. इनकी परीक्षा करके गृहस्थी की व्यवस्था तदनुसार ही करना उचित होगा। क्योकि घर की इज्जत-आबरु, मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा स्त्रियो के ऊपर ही निर्भर रहती है। यह विचार करके उसने एक दिन सारी समाज को भोजन के लिए निमत्रण दिया। जब सब लोग खा-पी चुके तो कुछ प्रमुख पचो को सेठ ने अपनी बैठक मे बैठाया। तभी उसने सभी बहुओ को बुलाया। वे हर्षित होती हुई आई कि आज तो ससुरजी कोई आभूषण देने वाले दिखते हैं। सेठ ने उन्हे शालि-धान्य के पाच-पाच दाने देकर कहा—बहुरानियो, देखो-मैं तुम लोगो को ये धान्य के दाने अमानत के रूप मे देता हूं। तुम लोग इन्हे सभाल करके रखना और जब मैं मागू, तब मुझे वापिस दे देना। वे चारो बहुए उन दानो को लेकर अपने अपने कमरो मे चली गई।

अब बडी बहू ने विचार किया कि इन दानो को कहा रखू और कहा सभालू ? और ससुरजी ने कहा ऐसे—जैसे कोई बडी कीमती वस्तु हो ?

भंडार में धान्य की क्या कमी है। जब वे वापिस मांगेगे, तब उठाकर दे दूंगी। यह विचार कर उसने उन दानों को निरादरपूर्वक फेंक दिया। दूसरी बहू ने सोचा कि संभाल कर रखने में तो दिक्कत है। इन्हें खाकर देखूं कि किस जाति की धान्य के ये दाने हैं, उसी जाति के दाने मैं मांगने पर भंडार में से निकाल करके दे दूंगी। ऐसा विचार कर उसने छिलके छीलकर उन्हें खा लिया। तीसरी बहू ने सोचा ससुरजी बड़े होशियार हैं, समाज में शिरोमणि हैं। इतने लोगों के सामने इन दानों के देने मे अवश्य ही कोई रहस्य होगा। अतः इन्हें संभाल करके रखना चाहिए, जिससे कि मांगने पर मैं ज्यों के त्यों उन्हें संभला सकूं? ऐसा विचार कर के उसने एक डिब्बिया में बन्द करके उसे तिजोड़ी में रख दिया। सबसे छोटी चौथी बहू ने सोचा कि ससुरजी ने इन्हें मांगने पर देने को कहा है, सो ज्यों के त्यों वापिस करने में क्या कुशलता है। इन्हें बढ़ा करके देने में ही चातुर्य है। ऐसा विचार करके उसने अपने पीहर उन दानों को भेजकर कहला दिया कि इन दानो को बोकर आगे-आगे बढ़ाते जाना। इस प्रकार पांच वर्ष बीत गये।

एक दिन सेठानीजी ने सेठजी से कहा—आपने अपना सब कारोबार दो पुत्रों को संभला दिया और वे अच्छी रीति से उसे संभाल भी रहे है, सो आप तो निःशल्य हो गये है। पर अब मुझे भी तो निःशल्य करो, ताकि मैं भी धर्म-साधन कर सकूं? सेठ ने कहा—बहुओं की परीक्षा के लिए ही तो उस दिन धान्य के दाने दिये थे। अब वापिस मांगने पर उनकी परीक्षा हो जायगी और तदनुसार तुम्हारा भार भी उन्हें संभलवा करके तुम्हें निःशल्य कर दूंगा।

जब पूरे पांच वर्ष बीत गये, तब सेठजी ने सब समाज को पुनः भोजन के लिए बुलाया। खान-पान के पश्चात् पंचों को बैठक मे बिठाया और अमानत लेकर बहुओ को बुलाया। बड़ी बहू झट से भंडार में से धान के पांच दाने लेकर ससुर के पास पहुँची और दाने दिये। ससुर ने कहा—ईश्वर की साक्षी पूर्वक कहो कि ये वे ही दाने हैं? तब वह बोली—ये वे दाने नहीं हैं। सेठ ने पूछा—उनका तूने क्या किया था? वह बोली—मैंने उन्हें इधर-उधर फेंक दिया था। यह सुनकर सेठ ने उसे एक ओर बैठ जाने को कहा। दूसरी बहू आते समय भंडार मे से शालि धान्य के पांच दाने लेती आई और ससुर को दे दिये। सेठ ने ईश्वर की साक्षीपूर्वक पूछा कि क्या ये वे ही दाने है? तब वह बोली—ये वे तो नहीं हैं। सेठ ने पूछा - फिर तूने उनका क्या किया? वह बोली—मैंने उन्हें छील करके खा लिया था—यह सोच कर कि ये जिस

जाति की धान्य के दाने होंगे, आपके मांगने पर वैसी ही जाति के दाने आपको दे दूगी, सो भडार मे से निकाल करके ला रही हू । सेठ ने उसे भी एक ओर बैठा दिया । तीसरी बहू ने तिजोडी मे से डिबिया निकाल कर दाने निकाले और लाकर ससुर को दिये । जब उससे ईश्वर की साक्षीपूर्वक पूछा गया तो उसने कहा कि मैं ईश्वर की साक्षी से कहती हू कि ये वे ही दाने है । मैंने उनको इस प्रकार से तिजोडी मे अभी तक सुरक्षित रखा है । सेठ ने उसे भी एक ओर बैठा दिया । जब चौथी—सबसे छोटी बहू को अमानत देने के लिए बुलाया गया तो उसने आकर के सेठजी से कहा —उस अमानत को लाने के लिए गाडियाँ भिजवाइये । सेठजी ने कहा—अरी बहू रानी, मैंने तो पाच दाने दिये थे, फिर उनको लाने के लिए गाडियो की क्या आवश्यकता है ? उसने कहा – मैंने वे दाने अपने पीहर बोने के लिए भिजवा दिये थे । पाच वर्ष मे वे बढकर एक कोठा भर हो गये है अत वे गाडियो के विना नहीं आ सकते है । सेठ ने उसे भी बैठ जाने को कहा ।

अब सेठ ने सब पचो को सम्बोधित करते हुए कहा—भाइयो, आप लोगो को याद होगा कि आज से पाँच वर्ष पूर्व जीमनवार के पश्चात् आप लोगो के सामने इन बहूरानियो को धान्य के पाच दाने देकर सुरक्षित रखने को कहा था । आज मैंने अपनी अमानत सबसे वापिस मांगी है । और आप लोग सुन ही चुके हैं कि किसने किस प्रकार अपनी अमानत वापिस की है । यह कार्य मैंने इतनी परीक्षा के लिए किया था कि कौन कितनी कुशल है और कौन घर बार को सभालने मे योग्य है । अब हम दोनो वृद्ध हो गये हैं । अत घर का भार इन लोगो को सौप करके नि शल्य हो धर्मसाधन करना चाहते है । कोई यह न समझे कि मेंने बहुओ के साथ कोई अन्याय किया । इसलिए ही मैंने इनकी परीक्षा ली है । सबसे छोटी बहू ने मेरी अमानत को बढाया है, अत मुझे विश्वास है कि यह हमारे पीछे घर-बार को बढाती रहेगी । इसलिए मैं इसका नाम रोहिणी (बढिया) रखता हू और इसे घर की मालकिन बनाता हू । जिस बहू ने अपने दानो को तिजोडी मे सुरक्षित रखा है उसका नाम रक्षिता रखता हू और घर के आभूपण और रोकडवाली तिजोडी की और खजाने की चाबी इसे सोपता हू । मुझे विश्वास है कि यह सौपी हुई सम्पत्ति को सुरक्षित रखेगी । जिस बहू ने मेरी अमानत को खाकर देखा है वह खान-पान मे चतुर मालूम पडती है, अत उसका नाम भक्षिता रखता हू और आज से रसोई का काम इसे सौपता हू । सबसे बडी बहू ने मेरी अमानत के दाने इधर-उधर फेंक दिये है, अत. इसका नाम उज्झिता रखता हू और चूँकि यह

कोई वस्तु संभाल कर नहीं रख सकी अत इसे घर-भर की झाडा-बुहारी का काम सोपता हू । यह घर की सफाई करके कचरे को बाहिर डाला करेगी, क्योकि इसने डालना ही सीखा है । इस प्रकार सेठ ने सब पचो और कुटुम्बी जनो के समक्ष अपने घर की व्यवस्था करके और सब का पान-सुपारी से सत्कार करके विदा कर दिया ।

वृद्धि करते रहो !

भाइयो, यह रूपक है । हमारे गुरुदेव ने भी हमें अहिंसादि पाच व्रत रूप धान्य के दाने सौंपे हुए है । अब जब वे वापिस मागेगे तब उन्हे सभलाना पडेगा । अब आप लोगो को यह देखना है कि हमने उन व्रतो को बडी बहू के समान इधर-उधर तो फेंक करके उन्हे नष्ट तो नही कर दिया है । यदि कर दिया है, तो विश्वास रखिये कि आप लोगो को भी कहा पर जन्म लेकर कूडा-कचरा झाडना पडेगा । यदि आपने खाने पीने मे मस्त होकर के उन व्रतो की परवाह नही की है, तो परभव मे आपको भी रसोई-बनाने या भाड भूजने का काम मिलेगा । जो अपने व्रतो को ज्यो का त्यो सुरक्षित पालन कर रहे है, वे परभव मे भी इसी प्रकार के श्री सम्पन्न महापुरुष बनेंगे । और जो अपने व्रतो को उत्तरोत्तर उस छोटी बहू के समान बढा रहे हे वे स्वर्ग लोक मे असख्य देवी-देवताओ के स्वामी बनेंगे ।

आज प्राय देखा जाता है कि व्रत-नियमादि को लेकर कितने हो पुरुष तो खाने मे रहते है, और कितने ही फेकने मे रहते हे । कई सम्भालने मे सावधान हैं और कई बढाते भी है । इनमे से तीसरा और चौथा नम्बर तो ठीक हैं । पर पहिला और दूसरा नम्बर ठीक नही । चौथे नम्बर के पुरुष भाग्यशाली हैं जो कि लिये हुये व्रतो को बढा रहे है । ऐसे पुरुष ही सघ के मुखिया, अधिकारी और समाज के अधिपति बनते हैं । उनके कन्धो पर सब का उत्तर दायित्व रहता है । वे ससार-पक्ष को सम्भालते है और धर्म पक्ष को भी सम्भालते हैं । उनका कार्य घर, समाज, राज्य और देश मे प्रशसनीय रहता है ।

दूसरो का पोषण करनेवाला

आप लोगो ने सुना होगा कि राजा श्रणिक सो भाई थे । उनके पिता राजा प्रसेनजित् ने सोचा कि इन सबमें कौन सा पुत्र राज्य को सम्भालने के योग्य है ? कौन मेरी राज्यगद्दी का भले प्रकार से निर्वाह करेगा ? कौन सबमे तेजस्वी और बुद्धिमान् है । ऐसा विचार कर उन्होने उन सबकी परीक्षा के लिए एक दिन उद्यान म भोजन का आयोजन किया और अपने सर्व पुत्रो को

जीमने के लिए बैठा दिया। जब परोसगारी हो गई और उन्होंने जीमना प्रारम्भ किया, तभी राजा ने शिकारी कुत्ते लाकर छुड़वा दिये। जैसे ही कुत्ते भोजन खाने को झपटे, वैसे ही ९९ भाई तो उनके डर से भोजन छोड़कर भाग गये। किन्तु श्रेणिक कुमार भोजन पर जमे रहे। उन्होंने दूसरे भाइयों की थालियों को अपने समीप खींच लिया और उनमें का भोजन कुत्तों को फेंकते हुए स्वयं अपनी थाली का भोजन खाते रहे। यह देखकर राजा ने निश्चय कर लिया कि यह श्रेणिक कुमार ही राज्य करने के योग्य है। भाई, पहिले राजा लोग इस प्रकार से परीक्षा करके ही राज्य के उत्तराधिकारी का निर्णय करते थे और उत्तीर्ण होनेवाले को राज्य-पाट संभलवाते थे। यदि हमें भी समाज में मान-सम्मान प्राप्त करना है और ऊंचा पद पाने की इच्छा है तो उसके योग्य त्याग करना चाहिए और उत्तम गुणों को धारण करना चाहिए। जो विना गुणों के ही पद पाना चाहते है, ऐसे पद के भूखों को पदवी नही मिलती है। जो समाज और धर्म का कार्य करते हैं, उनका मूल्यांकन समाज करती है और उन्हें उच्च पदों पर आसीन करती है।

आप लोगों ने कल के समाचार-पत्र में पढ़ा है कि राष्ट्रपति ने तीन व्यक्तियों को बुलाकर उन्हें 'प्राणि-मित्र' की पदवी से विभूषित किया है। उनमें से एक तो आपके ही शहर के प्रतिष्ठित व्यक्ति सेठ आनन्दराज जी सुराना हैं, जिन्हें यह पदवी प्राप्त हुई है। ये बूचड़खानों से जीवों को बचाने के लिए तन, मन और धन से लगे हुए हैं। नये खुलने वाले कसाई खानों को नहीं खोलने के लिए सरकार के विरुद्ध आन्दोलन का संचालन करने में संलग्न हैं। तभी उन्हें यह पदवी मिली। लोग धर्म और समाज की सेवा तो कुछ करना नहीं चाहें और पदवी लेना चाहें तो कैसे मिल सकती है? हम देखते हैं कि आज हमारे लोगों में से कितने ही व्यक्तियों में ऐसी आदतें पड़ी हुई हैं कि बाहिर से आनेवाले नये व्यक्ति के जूते और चप्पलें ही पहिनकर चले जाते हैं। कोई भाई थैला नीचे रखकर आता है और थोड़ी देर में वापिस जाकर देखता है, तो थैला ही गायब पाता हैं। तो क्या यहां थानक में मीणे, भील, बांभी, भंगी या चमार आते हैं? अब आप बतावें कि जिन लोगों की नीयत ऐसी खराब है, वे क्या उच्च पदवी पाने के योग्य हैं? ऐसे लोग यदि यहां आकर सामायिक पौषध करलें और भक्त बनकर बैठ जायें तो क्या उनको धर्मात्मा कह सकते हैं? और क्या उनको महाजन और ओसवाल कह सकते हैं? कभी नहीं कह सकते। शास्त्रकार कहते हैं कि—

अन्यस्थाने कृतं पापं धर्मस्थाने विनश्यति।
धर्मस्थाने कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति॥

अरे भाई, अन्य स्थान पर किये गये पाप तो धर्मस्थान पर आकर धर्म-साधन करने से विनष्ट होते हैं। किन्तु जो धर्मस्थान पर ही पाप कार्य करेगा, उसके पाप कहां विनष्ट होंगे ? ये तो वज्र लेप हो जायेंगे, जो आगे असंख्य भवों तक दुःख देंगे।

परन्तु आज के ये जूते चोर तो समझते हैं कि जूते चुरा कर ही हम धाप कर रोटी खायेंगे। परन्तु भाइयो, याद रखो, ऐसे लोग तो अनेक दिनों तक भूखो मर कर ही मरेंगे। अरे, मजदूरी करके पेट भर लो, पर ऐसे नीच और निंद्य कार्य मत करो। ऐसे कार्य करने से पहिले तो धर्मस्थान वदनाम होता है। फिर स्थानीय समाज की इज्जत जाती है और जिसकी वस्तु जाती है, उसकी आत्मा दुःख पाती है। धर्मस्थान पर तो सदा देने का ही भाव रखना चाहिए, लेने का नहीं। यहां पर किया हुआ पाप असंख्य जन्मों तक दुःख देता है।

लोग कहते हैं कि हमारी सलाह नहीं लेते। भाई, जिनमें इतना भी विचार नहीं है, उनसे क्या सलाह ली जाय ? ऐसे लोगों में तो मनुष्यता का ही अभाव है। उन्हें रात-दिन धर्म की बात सुनाई जाती है, परन्तु फिर भी उनमें विवेक जागृत नहीं हुआ है। उससे धर्म-प्रचार में भारी हानि होती है। यहां पर पहिले भी चौमासे हुए हैं, आज भी है और आगे भी सन्त-महात्मा आयेंगे। इसलिए हमें अपने नगर के सम्मान में बट्टा लगाने वाला कोई भी कार्य कभी नहीं करना चाहिए। जो ऐसा कार्य करते है चाहे देश में रहें और चाहे परदेश में जावे, उनके लिए तो कांटे और खीलें सर्वत्र तैयार है। क्योंकि उनके मनमें स्वयं कांटे और खीलें हैं। वे दूसरों को क्या गड़ेंगे ? प्रत्युत उनके ही पैरों में गड़ेंगे।

भाइयो, आज ही क्या रामायण बांचते हैं ? अरे, रामायण सुनाते-सुनाते बूढ़े हो गये। क्या कभी सुना नहीं कि सीता को सोकोंने खराव कहा और उसकी वदनामी उड़ाई, या नहीं ? धोबी ने भी कहा, या नही कहा ? भाई, कवि के अपने शब्द नही होते हैं। वे तो 'रावण कह रहा है' हम नहीं कह रहे हैं। और जब राम के लिए कहते हैं, 'तब राम कह रहा है' हम नहीं कह रहे हैं। फिर यदि दुनिया अनुचित व्यवहार करती हैं तो क्यो करती हैं ? यह पुस्तक का दोप नही, परन्तु आपके हृदय का दोप है। हम दूसरों के साथ जैसा व्यवहार करेंगे, वैसा ही दूसरे भी हमारे साथ करेंगे। पहिले दूसरों के साथ अनुचित व्यवहार करके पीछे कहो कि हम माफी मागते हैं तो इसका यही अर्थ है कि आपका कार्य अनुचित था। सेठ सुदर्शन ने क्या माफी मांगी ? वह शूली

पर चढ़ गया, पर माफी नहीं मांगी। अन्त में सत्य की विजय हुई और शूली का सिंहासन हो गया। आज आप जो अमरसिंह और वीरसिंह की कथा सुन रहे है उसमें भी आया कि वे माफी मांग लें। परन्तु उन्होंने कहा कि माफी कैसे मांग लेवें ? यद्यपि उन्हें बाप से ही मांगनी थी। पर बाप हो या और कोई हो। जब गलती की ही नहीं तो माफी क्यों मांगे। परन्तु जिसने गलती की, तभी तो हजारों के सामने उसे मंजूर किया। इस प्रकार से माफी मांगने वाला तो सारी रामायणकार का गुनहगार हो गया। आज जैसे उस जब्त हुई पुस्तक को लेकर उनके लिए सवाल खड़ा हुआ है, वैसे ही कल दूसरों के लिए क्यों नही खड़ा होगा ? इस प्रकार से तो इतिहास के पन्ने ही खराब हो गये। जो इतिहास की बातें हैं उनके विषय में हमें कुछ भी कहने का हक नही है। ऐसे समय तो यही कहना चाहिए कि विवाद-ग्रस्त पुस्तक विद्वानों के सामने रख दो। वे जो निर्णय देगे, वही मान्य करेंगे। जिसके भीतर धार्मिक द्वेष नही होगा और निष्कपट भाव होगा वही सत्य निर्णय होगा।

आज का विषय यह है कि हमें सदा शुद्ध, पवित्र-और उदार विचार रखना चाहिए, क्योंकि उत्तम व उदार विचारवाले ही संसार में कुछ काम कर सकते हैं।

वि० स० २०२७ कार्तिक वदी ४
जोधपुर

●

९ | वाणी का विवेक

भाइयो, जिस व्यक्ति की भाषा शुद्ध और सुन्दर है उसे सुन्दर वस्त्र आभूषण पहिन कर अपनी शोभा दिखाने की आवश्यकता नही है। हमारे साहित्यकारो ने कहा है कि 'वाग्भूषणं भूषणम्' अर्थात् सुन्दर वचन ही श्रेष्ठ आभूषण हैं। मनुष्य की प्रतिष्ठा वचन के द्वारा ही बढती है। जैन आगमो मे भाषा के विषय मे अनेक बडे-बडे सूत्र हैं। सबसे छोटा दशवैकालिकसूत्र जो मुनियो के आचार गोचरी का खजाना है—उसके सातवें अध्ययन मे स्वतत्र रूप से भाषाशुद्धि पर प्रकाश डाला गया है। जिसके वचनो की शुद्धि है, वह महान् पुरुष है। और जिसे भाषा का भी ज्ञान नही है उसको साधुपना भी नही कल्पता है। भाषा की अशुद्धि से कभी-कभी भारी अनर्थ हो जाता है।

अनर्थों की जननी भाषा की अशुद्धि

आज से कुछ समय पूर्व की बात है। आपके पास में यह जो विसलपुर गाव है, वहा पर पहिले ओसवाल जैनियो के चार सौ घर थे। आज तो चार-पाच ही घर है। पहिले वहा पर तीन स्थानक थे और व्याख्यान भी तीनो स्थानो पर होते थे। शोभाचन्द्रजी महाराज के अनुयायी लोगो का जो धर्मस्थान था, वहा पर पाच-दस सामायिकें प्रतिदिन होती थी। वहा पर एक सन्त आये उनका आचार अच्छा था, देखने मे व्यक्तित्व भी प्रभावक था और पढे-लिखे भी ठीक थे। वहा के श्रावको ने उनकी समुचित सेवा भक्ति की। इस प्रकार

चार-पाच दिन निकल गये। एक दिन जब स्थानक के किवाड खुले नही थे—प्रातःकाल चार-साढे चार बजे एक भाई आकर बाहिर सामायिक करने को बैठ गये। सन्त भीतर पाटिये पर सो रहे थे। जब वे जागे, तो बोलते है—'अरी, तू कहा चली गई? (तू कठे चली गई?) यह शब्द सुनते ही सामायिक करनेवाला भाई सोचता है—अरे, महाराज यह क्या बोल रहे हैं? हम तो इन्हे क्रियावान् समझ रहे थे। पर ये महाराज क्या बोल रहे है? इनके पास कौन है? उस भाई के हृदय पर उक्त वचनो का बहुत गहरा असर पडा। वह सामायिक करके वहा से उठा और उसने दूसरो से जाकर कहा—महाराज तो 'जाणवा जोगा हैं' बाकी कुछ नही है। थोडी देर मे यह बात चारो ओर फैल गई। और श्रावक लोग सबेरे स्थानक मे सामायिक करने को नहीं आये। वे सन्त प्रातःकाल का प्रतिलेखन करके पानी के लिए निकले। उन्होने सामने मिलने वालो से कहा—श्रावकजी, आज सामायिक करने को भी नही आये? पर लोगो ने न कुछ उत्तर ही दिया और न हाथ ही जोडे। महाराज यह देखकर बड चकित हुए कि रात भर मे ही यह क्या रचना हो गई हैं? वे धोवन लेकर और बाहिर से निवट जब स्थानक मे आये तो लोगो से फिर पूछा कि भाई, क्या बात है? लोगो ने उत्तर दिया महाराज, पूजा वेष की नही होती, किन्तु गुणो की होती है। तब उन्होने पूछा— कि आप लोगो ने मेरे मे क्या कमी देखी है? लोगो ने कहा—महाराज, कमी देखी है, तभी तो यह बात है। कुछ देर के बाद पाच सात श्रावक लोग उक्त बात का निर्णय करने के लिए आये। उन लोगो ने भी वन्दना नही की और आकर बैठ गये। तब महाराज ने उन लोगो से पूछा कि क्या बात है? उन्होंने कहा—महाराज, सवेरे उठते समय क्या बोल रहे थे? 'अरी, रात को थें कठे गई? महाराज ने कहा भाई, पूजनी थी और वह कही पड गई थी। पूजनी स्त्री लिंग शब्द है, उसके लिए मैंने कहा—'अरी थे कठे गई'। सब लोग सुनकर हस पडे और क्षमा-याचना करके अपने-अपने घर चले गये। भाई, यह भाषा का प्रयोग ठीक नही करने का उदाहरण है। जिनको बोलने का विवेक नही होता, वे समय पर इस प्रकार अपमानित होते हैं। किन्तु जिन को भाषा बोलने का विवेक होता है, अनेक प्रकार के पाप और कलह आदि से बचे रहते हैं। वचन की शुद्धि एक बहुत बडी बात है। इसलिए मनुष्य को वचनो के विषय मे सदा सावधानी बरतनी चाहिए। क्योकि छह बातो से मनुष्य का मान-सन्मान घटता है। कहा है—

बालसखित्वमकारणहास्यं, स्त्रीषु विवादमसज्जनसेवा।
गर्दभयानमसंस्कृतवाणी षट्सुनरो लघुतामुपयाति॥

इन छह बातों में मनुष्य लघुता को प्राप्त होता है—प्रथम यह है कि जो मनुष्य बालकों के साथ मित्रता करता है। जो अपनी उम्र में, आचार-विचार में और जाति में हीन है, ऐसे पुरुष के साथ मित्रता या संगत करने पर मनुष्य अपमान को पाता है। यदि हमें अपने कार्य में दो-चार घंटे का अवकाश मिले तो अपने से अधिक उत्तम आचार-विचार वाले और सिद्धान्त के जानकार लोगों के पास उठना-बैठना चाहिए। यह देख करके दूसरे लोग भी कहेंगे कि वह भली संगति करता है। नीतकार कहते हैं कि—

बाल से आल, बुढ्डे से विरोध, कुलच्छन नारि से न हंसिये।
ओछे की प्रीति गुलाम की संगत, अघट घाट में न धंसिये॥

इसलिए बालक के साथ मित्रता अच्छी नहीं है। वृद्धों से विरोध भी अच्छा नहीं है। कुलक्षण व्यभिचारिणी स्त्री के साथ हंसना भी उचित नहीं। ओछे पुरुष की प्रीति और गुलाम की संगति भी अच्छी नहीं और जिस नदी-तालाव आदि के घाट की गहराई आदि का पता नहीं हो तो उसमें भी नही घुसना चाहिए।

अपमान का दूसरा उदाहरण है अकारण हंसना। कोई हंसी की बात आ जाय तब तो हंसना ठीक है। मगर दस आदमियों के बीच में बैठे हुए यदि बिना किसी कारण के कोई हंसेगा तो वह अवश्य ही अपमान को प्राप्त होगा। अपमान का तीसरा कारण है स्त्रियों के साथ वाद-विवाद करना। मनुष्य यदि कहीं किसी स्त्री के साथ विवाद करता होगा तो दर्शक लोग उसे मूर्ख समझेंगे और उसका तिरस्कार करेंगे। अपमान का चौथा कारण है दुर्जन मनुष्य की सेवा करना। यदि कोई दुष्ट पुरुष की सेवा करता है, तो उसमें दुष्टता ही आयेगी और देखने वाले भी उसे दुष्ट समझकर उसका अपमान करेंगे। अपमान का पाचवा कारण है गधे की सवारी करना। यदि कोई भला आदमी गधे पर सवार होकर बाजार में से निकले तो सभी उसका तिरस्कार करेंगे। अपमान का छठा कारण है संस्कार-रहित वाणी का बोलना। जो गंवारू या ग्रामीण भाषा बोलते हैं, वे अपमान पाते है। इस प्रकार उक्त बातों से मनुष्य अपमान को प्राप्त होता है। यदि हमें अपमान से बचना है तो उक्त पांच कारणों के साथ असंस्कृत या असभ्य वचन बोलने से भी बचना चाहिए। जो बुद्धिमान् होते है, वे थोड़े से ही हित-मित प्रिय वचनों के द्वारा अपनी बात कह देते हैं और सुननेवाले उसकी बात को सुनकर प्रसन्न होते हैं और उसे स्वीकार करते हैं। देखो—अच्छा वकील, बैरिस्टर या सोलीसीटर दो चार वाक्य ही जज के सामने रखता है और जज उसके अनुसार अपना फैसला दे देता है। जो भाषा के विद्वान् होते हैं वे थोड़े से शब्दों में ही अपनी सारी बात

कह देते हैं। भगवान् की भाषा अर्धमागधी है वह कितनी महत्त्वपूर्ण होती है कि सर्व श्रोताओं के संशय दूर हो जाते हैं और हृदय कमल खिल जाते हैं। कहा भी है—

भाषा तो बड़ी बड़ी अर्धमागधी अक्षर मेल हैं छन्द के।
संशय ना रहे बोलतां उठे पर छन्द के॥
अरिहंता दीपंता ए।

भगवान की अर्धमागधी भाषा का यह महत्व है कि पढ़ते हुए ही उनका सार तुरन्त हृदयंगम हो जाता है। जो उस भाषा में प्रवीण बन जाय, तब तो किसी प्रकार की शंका को स्थान ही नहीं रहता है। भगवान की वाणी को सुनते ही सबको आनन्द प्राप्त होता है जैसे कि पनिहारी को सुनते ही सांप मस्त हो जाता है।

मन से निकली वाणी का असर

आप लोग कहेंगे कि महाराज, आप हमको प्रतिदिन इतना सुनाते हैं, फिर भी हम लोगो के ऊपर असर क्यो नहीं होता है ? भाई, हम भी वैराग्य उधार मांगा हुआ लेते हैं। यदि हमारे भीतर वैराग्य होवे तो अवश्य असर पड़ेगा। हा, पहिले के सन्तों की वाणी का अवश्य असर पड़ता था। ज्ञानी पुरुषों के वचनों में बड़ी ध्वनि निकलती है। उनकी वाणी सुनकर अनेक बड़े से बड़े दुराचारी, पापी भी पार हो गये। जिनके उद्धार की लोग कल्पना भी नहीं करते थे, उनका भी कल्याण हो गया।

पूज्य अजरामरजी स्वामी हो गये हैं। उनके शिष्य थे मूलचन्दजी स्वामी और धनराजजी स्वामी। धनराजजी का परिवार तो मारवाड़ में है और मूलचन्दजी का गुजरात में हैं। एक बार लीवड़ी में मूलचन्दजी महाराज ने भगवती सूत्र सुनाना प्रारम्भ किया। वहां के राजा ने दीवान से पूछा कि तेरे गुरु ने यहां पर चौमासा किया है। उसने उत्तर दिया—हा महाराज, किया है। राजा ने पूछा कि वे व्याख्यान में क्या वांचते हैं ? दीवान ने कहा—महाराज, भगवती वाचते हैं। राजा ने कहा—हमारे गुरु तो भागवत वांचते हैं। इन दोनों में क्या फर्क हैं ? दीवान ने कहा—भगवती सर्वज्ञ देव की वाणी है। राजा बोला—क्या भगवती में ऐसी शक्ति है कि मैं ठूंठा रोपू तो उसमें फल लग जायें ? यदि ठूंठे के फल लग जावें तब तो भागवत से भगवती बड़ी है। अन्यथा नहीं। अब दीवान साहब क्या उत्तर देवें। जिसके आश्रित आजीविका हो, उसे यद्वा-तद्वा उत्तर भी तो नहीं दिया जा सकता। अतः

उन्होंने कहा महाराज, मैं निवेदन करूंगा। इसके बाद वे गुरु महाराज के पास गये और कहा—महराज, आज यहां के राजा ने ऐसी बात कही है, सो मैंने कोई उत्तर नहीं दिया है और ऐसी बात पर मैं कहता भी क्या ? तब गुरु महाराज बोले—अरे क्या तुझे भगवान की वाणी पर विश्वास नहीं है ? जिसके द्वारा असंख्य प्राणियों के असंख्यभवों के पाप भी नष्ट हो जाते हैं तो उसके द्वारा ठूंठ के फल लगना क्या कठिन बात है ? दीवान जी बोले—महाराज, कहीं ऐसा न हो कि आपका और मेरा डेरा ही यहां से उठ जाय ! क्योंकि यह राजा की बात है। गुरु महाराज ने कहा—तू कोई चिन्ता मत कर सब ठीक होगा। तत्पश्चात दूसरे दिन व्याख्यान के समय भागवत बांचने वाले व्यासजी समीप में आकर बैठे और पूछा कि महाराज, भगवती में ऐसी क्या बात है जो भागवत से बढ़कर है। भागवत की वचनावली और भगवती की वचनावली इन दोनों में से कौन सी अच्छी है ? तब गुरु महाराज ने कहा—मैं किसी भी ग्रन्थ की निन्दा नहीं करता हूं। फिर भी भगवती भगवती ही है। यह सुनकर व्यासजी बोले—क्या ठूंठे के भी उनके प्रभाव से फल लग जायेंगे ? आचार्य महाराज ने कहा कि लगने वाले होंगे तो लग जायेंगे।

दूसरे दिन गुरु महाराज के व्याख्यान में राजा साहब जब पहुंचे, तब भगवतीजी का प्रवचन हो रहा था। सुनकर उन्होंने सोचा कि इसमें तो भागवत से भिन्न ही विषयों का वर्णन है। अतः उन्होंने उपाश्रय के बाहिर धूल मे एक लकड़ी गड़वा दी और चार आदमी उसकी देख-रेख के लिए नियुक्त कर दिये। जैसे ही यह बात जैन समाज को ज्ञात हुई तो बड़ी खलमच गयी कि कही गुरु महाराज की बात न चली जाय। संयोग से उसी दिन पानी बरसा और तीसरे दि ठूंठ मे से अंकुर निकल आये। पहरेदारों में से एक ने जाकर राजा से कहा—महाराज, लकड़ी में से अंकुर निकल आये है। राजा साहब ने स्वयं जाकर देखा तो बात को सत्य पाया। इधर व्याख्यान में भगवती सूत्र का प्रवचन चलता रहा और उधर वह डंडा बड़ा और हरा-भरा होता गया। तीन वर्ष में भगवतीजी का प्रवचन समाप्त हुआ। इस बीच वहां पर अनेक बड़े सन्तों का भी पदार्पण हुआ। लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि तीन वर्ष के पूरे होते ही उस ठूठ मे आम भी लग गये हैं। जैसे ही लीबड़ी-नरेश को यह पता लगा तो वे आकर गुरु महाराज के चरणों में नत मस्तक हुए। जैनधर्म की बड़ी भारी प्रभावना हुई। उस समय से आज तक लीबड़ी, मोरवी और लखतर-दरबार जैनधर्म पर श्रद्धा रखते है और जैन सन्तों का समुचित आदर करते हैं।

आप लोगों को ज्ञात होगा कि जब लींबड़ी में जैन कान्फ्रेन्स का अधिवेशन हुआ और सेठ चांदमलजी अध्यक्ष बनकर के वहां गये, तब वहां के नरेश ने उनका स्वागत-सत्कार किया। इससे वहां जैनधर्म का महत्व बढ़ा। जिन्हें जैनधर्म पर और भगवान की वाणी पर श्रद्धा और भक्ति होती है, वे बड़ी भक्ति और विनय के साथ आगमसूत्रों का अध्ययन, श्रवण और मनन करते हैं। पहिले बड़े विधान के साथ भगवती सूत्र का वाचन होता था। इसके वाचन के प्रारम्भ में, मध्य में और अन्त में सब मिलाकर १२३ आयंबिल करने पड़ते हैं। जप-तप भी चलता है और महापुरुषों का आशीर्वाद भी रहता है। तब सिद्धि और चमत्कार दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु आज तो इन बातों की ओर किसी का ध्यान ही नहीं है। और हर कोई कहता है कि हम भगवती या अन्य सूत्र बाँचते हैं।

अर्थज्ञान शून्यता से अनर्थ

एक स्थान पर एक सतीजी मोक्षमार्ग बांच रही थी। उसमें पाठ आया—'कयरे मग्गे अक्खाए' इसका उन्होंने अर्थ किया कि 'कए भुंजते कहतां केर, मूंग आखा नहीं खाना'। यह अर्थ सुनकर एक श्रावक ने कहा—आप यह कैसा अर्थ कर रही हैं? इसका अर्थ तो यह है कि 'मोक्ष का मार्ग कौन सा है? भाई, अर्थ तो यह था और उन्होंने अर्थ कर दिया कि आखे कैर और मूंग नहीं खाना। इस प्रकार से यदि कोई शब्द बांच भी लेवे और गुरु-मुख से उसके अर्थ की वाचना नहीं लेवे तो ऐसे लोग अर्थ का अनर्थ कर देते हैं। परन्तु जिन्होंने गुरु-मुख से अर्थ की वाचना ली है, और जिनमें साधुपना है, वे इस बात को भली-भांति जानते हैं कि शास्त्र के किस वचन का क्या अर्थ कहना अपेक्षित है। वक्ता का लक्षण कहते हुये शास्त्रकारों ने कहा है कि **'प्राप्त समस्तशास्त्रहृदयः'** अर्थात् वक्ता को समस्त शास्त्रों के हृदय का—रहस्य का बोध होना चाहिए। ऐसा कुशल वक्ता क्षेत्र-काल के अनुसार कथन का संक्षेप और विस्तार से व्याख्यान करता है। इसलिए एक नीतिकार कहते हैं—

> **पोथी तीन प्रकार की, छोटी बड़ी मझोल।**
> **जहां जैसा अवसर दिखे, तहां तैसी को खोल॥**

भाई, वक्तापने का यह चातुर्य गुरु-मुख से सुने बिना और भाषा की शुद्धि का ज्ञान हुए बिना नहीं प्राप्त होता। वचन-शुद्धि के लिए आवश्यक है कि मनुष्य अकारण हंसे नहीं। साधु के लिए और श्रावक के लिए हंसने का निषेध किया गया है, फिर अनवसर

है, फिर अनवसर तो हंसना ही नहीं चाहिए। पूर्वजों ने कहा है कि **'रोग की जड़ खांसी और लड़ाई की जड़ हांसी।'** विश्व में अनेक लड़ाईयां केवल हंसी के ही कारण से हुई हैं। यदि कोई पुरुष शान्ति में बैठा है और यदि उससे कोई हंसी-मजाक भी करे तो वह सहन कर लेता है। किन्तु यदि किसी की प्रकृति उग्र है, अथवा कहीं बाहिर से किसी पर चिढ़ा हुआ आया है और उस समय यदि कोई उससे हंसी-मजाक कर दे, तो लड़ाई हुए विना नहीं रहेगी। इसलिये मनुष्य को सदा बोलने में सावधानी रखनी चाहिए। और अशुद्ध भाषा का कभी प्रयोग नहीं करना चाहिए।

बोलने में सदा मीठे और कर्ण-प्रिय वचन ही बोलना चाहिए। कहा भी है—

> प्रियवाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
> तस्मात् प्रियं च वक्तव्यं वचने का दरिद्रता॥

भाई, प्रिय वचनों के बोलने से सभी प्राणी सन्तुष्ट होते है। अरे, मनुष्यों की तो कहे कौन, पशु-पक्षी और हिंसक जानवर भी मीठे वचन सुनकर प्रसन्न होते हैं और अपनी क्रूरता छोड़ देते हैं। इसलिए मनुष्य को सदा प्रिय वचन ही बोलना चाहिए। नीतिकार कहते हैं कि वचन में दरिद्रता क्यों करना? क्योंकि मीठे वचन बोलने में पूंजी खर्च नहीं होती है और कटुक बोलने में कोई धन की बचत नहीं होती है। अरे भाई, अन्य बातों में भले ही पैसे की कंजूसी करो, पर बोलने में तो वचनों की कंजूसी नहीं करनी चाहिए।

भगवान ने सन्ध्याकाल में मौन रखने और सामायिक-प्रतिक्रमण आदि करने का जो विधान किया है, उसमें एक रहस्य भी है। वह यह कि प्रातः, मध्याह्न, सायंकाल और अर्धरात्रि के समय इन्द्र के चारों लोकपाल और दशों दिग्पाल अपने-अपने क्षेत्र की रक्षा करने के लिए घूमते रहते हैं। उस समय यदि कोई पुरुष किसी के लिए अन्धा, लंगड़ा आदि निकृष्ट और निन्द्य वचन का प्रयोग कर देवे और वे उनके सुनने में आजावें — तो बोलनेवाला पुरुष वैसा ही हो जाता है। इसीलिए जैन सूत्रों में त्रिकाल सन्ध्या करने का विधान किया गया है।

प्रायः देखा जाता है कि जन्म देनेवाली माता भी अपनी प्यारी बच्ची से 'राड' कह देती है। भले ही वह प्रेम से कहती हो। पर ऐसे वचन नहीं

निकालना चाहिए। कर्मों की गति को कोई नहीं जानता। यदि भाग्यवश जैसा कहा और वैसा ही हो गया तो पीछे कितना दुःख होता है।

अनेक पुरुष और स्त्रियों के वचनों में इतना विष भरा होता है कि उनके वचन सुनने से कितने ही आत्मघात तक कर बैठते हैं। इसलिए मनुष्य को सदा विचार पूर्वक प्रिय वचन ही बोलना चाहिए और भाषा के जानकार होते हैं, वे सदा हित-मित और प्रिय वचन ही बोलते हैं। इसलिए बुद्धिमान पुरुषों को वाणी का विवेक सदा रखना चाहिए।

वि० सं० २०१७ कार्तिकवदी ६
जोधपुर

१० | मनुष्य की शोभा-सहिष्णुता

सज्जनो, मनुष्य का सहनशीलता एक बड़ा भारी गुण है। जीवन में कष्ट और यातना, वेदना और पीड़ा आती हैं, वह कहने के लिए नहीं, किन्तु सहने के लिए होती है। इस सहनशीलता गुण के कारण ही असंख्य महर्षि, देव, मनुष्य-तिर्यंचकृत और आकस्मिक अनेक उपसर्गो और यातनाओं को सहन करके निर्वाण पद को प्राप्त हुए हैं। गृहस्थी जीवन में भी जो पुरुष सहनशील होता है, उसके सामने कैसी भी परिस्थिति आकर खड़ी हो जाय, उनका वह शान्तिपूर्वक निर्वाह कर लेता है। उसके कारण उसके चित्त में किसी प्रकार का विक्षेप या डांवाडोलपना पैदा नहीं होता है, क्योंकि वह सहनशील है और उसने हर एक प्रकार के कष्ट और आपत्ति को सहन करना सीखा है। उसने अमृत पीना भी सीखा है और विष-पान करना भी सीखा है। निन्दा और बुराई सुनना भी उसे प्रिय है। वह जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, यश-अपयश, सधन और निर्धन आदि सभी दशाओं में वह समभावी बना रहता है। वह जानता है कि ये सब अपने पूर्वकृत कर्मों के परिपाक से प्राप्त हुई हैं। अतः शान्ति से सहन करने पर ही इन से मुक्ति मिलेगी। अपनी इस दृढ़तम श्रद्धा के कारण ही वह अपने ध्येय से जरा भी विचलित नहीं होता है। सहनशील पुरुषों को असहिष्णु बनाने के लिए लोग कितना ही प्रयत्न क्यों न करें, पर वह उससे विचलित नहीं होता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि सहनशील पुरुषों को अपनी धारा से चल-विचल

करने के लिए कितने ही मनुष्यो ने अनेक प्रकार के छल-प्रपच किए और अनेक प्रकार के वितण्डावाद भी उसके सामने रखे परन्तु वे अपनी दृढता से डिगे नही और अपने सहनशील स्वभाव मे स्थिर रहे। आप लोगो ने देखा होगा कि बडी बडी आधियो के अधड आने पर अनेक मकान गिर जाते हैं। छप्पर उड जाते हैं, और पोले दीमक-भक्षित वृक्ष उखड जाते हैं। परन्तु जो वृक्ष सारवान् है और जिनके भीतर सहनशीलता है, वे ज्यो के त्यो खडे रहते हैं। हवा के वेग के अनुसार वे झुक जाते हैं। जो झुकना नही चाहता है और जिसमे सहन करने की शक्ति भी नही है, उसे तो नष्ट ही होना पडता है। कौन सा वृक्ष गिरता है? जिसके मूल मे पोल है—जिसकी जड ठोस और गहरी नही है, वह वृक्ष हवा का झोका लगते ही गिर जाता है। परन्तु जो वृक्ष मजबूत और निगोट है, वह नही गिरता है। उसे गिरने की आवश्यकता भी नही है।

अभी यह प्रकरण चल रहा है कि सहनशील पुरुष की आप कितनी भी हसी कर लेवें, वह उसे शान्ति से सहन कर लेगा। वह सोचता है, यदि इससे इनका मनोरजन होता है और इससे आनन्द लेते है तो लेवें, इसमे मेरी क्या हानि है? कितने ही व्यक्ति ऐसे होते है जो दूसरो की तो हंसी-मजाक उडायेंगे। परन्तु यदि कोई उनसे हसी-मजाक करे, तो उन्हे वह सहन नही होता। कहावत है कि 'एक हसी को सौ गाल'। इतनी सहन करने की शक्ति होवे तो हसी करो। अन्यथा नही।

हसी मे विनाशी

कभी-कभी मनोविनोद के लिए की गई हसी के भयकर परिणाम देखने मे आते हैं। जैतारन पट्टी मे एक खराडी नाम का गाव है। वहा के एक ब्राह्मण के घर उसका जवाई आया। भाई जब चार-छह महीने का विवाहित जवाई अपनी ससुराल जाता है, तब वहा के लोग प्राय हसी-मजाक करते है। जब वह टोलिया पर सो रहा था, तब चार मसखरो ने उसे टोलिया समेत और रस्सी से बाधकर तालाब मे डाल दिया। वे चारो व्यक्ति तमाशा देखने के लिए किनारे पर खडे हो गये। जब उसकी नीद खुली, पर अपने को बधा और पानी मे पडा देखा तो निरुपाय होने से दम घुटकर भय से उसके प्राण-पखेरू उड गये। अब की तो उन लोगो ने हसी थी मगर बेचारे के प्राण चले गये! जब बहुत देर तक उन लोगो को कोई हलचल नही दिखाई दी, तो उसे मरा पाया। यह देखकर वे लोग घबडाये। जैसे ही यह समाचार गाव मे पहुचा तो अनेक लोग जोश मे आगये और पुलिस को बुलाने लगे। तब उस मरे हुए व्यक्ति के सुसर ने आकर कहा—भाई अब पुलिस को बुलाने

से तो मेरा जवाई जिन्दा नही हो सकता है। मेरे भाग्य मे जो कुछ लिखा था, वह हो गया। इस प्रकार उत्तेजित लोगो को समझा बुझा करके उमने शान्त किया। पर भाई, यह उन मसखरो की भयकर मसखरी है, जिसने कि बेचारे के प्राण ले लिये। और एक बेचारी अबला कन्या के माथे का सिन्दूर सदा के लिए पोछ दिया। उस ब्राह्मण ने अपने जमाई के बापको भी बुलाकर के समझाया और कहा कि जो चला गया है वह तो लौट कर आ नही सकता, भले ही आप कुछ कर ले। अब तो मामले को आगे बढाने मे अपनी बदनामी ही होगी। उस ब्राह्मण मे सहनशीलता थी, तो ऐसे दारुण दुख को सह लिया और दूसरो को भी जेल जाने से बचा दिया। अन्यथा मसखरो को अपनी मसखरी का अच्छा मजा मिलता और जेलखाने की हवा खानी पडती।

भाइयो, साधु हो, या श्रावक हो, अथवा साधारण जैन हो। किसी भी पदवी का धारक हो सहनशीलता सबका मुख्य गुण है। यदि सहनशीलता है, तो उस पदकी शोभा है और यदि वह नही है तो उस पदकी कोई शोभा नही है। सहनशील पुरुष अपने विचारो पर दृढ रहता है। जरासी परिस्थिति बदलते ही कायर पुरुष जैसे वाचाल हो उठते है, सहनशील पुरुष वैसा वाचाल कभी नही होता। जो सहनशील बनकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति मे लगा रहता है, वह अवश्य सफलता प्राप्त करता है। किन्तु जो असहिष्णु होकर इधर-उधर भटकता है, वह कभी अपने उद्देश्य मे सफल नही होता। असहनशील व्यक्ति न मित्र-मडली मे बैठने के योग्य है और न व्यापारियो के बीच मे ही बैठने के योग्य है। वह शेखचिल्ली के समान क्षण मे रुष्ट और क्षण मे सन्तुष्ट दिखता है, इसलिए उस पर कोई विश्वास नही करता है। लोग कहते भी हैं कि इसे मत छोडो, नही तो यह व्यर्थ मे बखेडा खडा कर देगा। इससे अपनी भी इज्जत-आबरू जायगी। जो सहनशील व्यक्ति होता है, उसकी सब लोग प्रशसा करते है और उसके लिए कहते है कि यह तो हाथी पुरुष है, नगाडे का ऊट है। इसे कुछ भी कह दो, परन्तु यह कभी आपसे बाहिर नही होगा। ऐसा व्यक्ति अपने हर काय को हर प्रकार मे सर्वत्र सफल कर लेता है।

समर्थ बनकर साहसी बनें!

भाई, आज लोगा मे से सहनशीलता के अभाव से ही कितन बिगाड हो रहे हैं। देखो—लडके पढने के लिए स्कूल-कालेजो मे जाते है। सहनशीलता के न होने से वहा भी दलबन्दी होती देखी जाती है। वह राजपूत-दल है तो यह जाट-दल है। एक दल सदा दूसरे दल को पछाडने के लिए उद्यत रहता है। उनके बीच आप की समाज के भी लडके पढते है, वे उनसे रात दिन मार

खाते रहते है। परन्तु आपने कभी यह प्रयत्न नही किया कि हम अपनी समाज के बालको मे चेतना लावे, जागृति उत्पन्न करें और उन्हें बलवान् बनावें। उन्हे आपने कभी यह पाठ पढाया ही नहीं कि वे डट कर शैतानो का सामना कर सकें। कभी क्षणिक जोश आता है, मगर वह दूध के उफान के समान जरा सी देर मे ठडा हो जाता है। आप लोगो के यहां पर हजारो घर होने हुए भी कोई अखाडा या व्यायामशाला तक नही है। यदि आपके लडके अखाडे के पहलवान होते, तो क्या किसी की मजाल थी जो वह आपके लडके को हाथ लगा देता। यही पर देखो—आर्यसमाज के लडकों को कोई हाथ भी लगाने का साहस नही करता है। कभी अवसर आने पर उनके दस-पाच नौजवान चले जाते हैं तो अनेको को पछाड कर आते है। परन्तु आपके बच्चे तो मार खाकर ही आते है और आप लोगो से अपना दुःख कहते हैं। यदि आपके भी अखाडे होते और यहा जाकर आपके लडके व्यायाम करते तो बलवान होते और उनके भी हौसले दूसरो के साथ मुकाबिला करने के होते तो किसी की हिम्मत नही थी—जो उन्हे कोई छेड सकता। परन्तु इस ओर आप लोगो का कुछ भी ध्यान नही है। जब ये बालक इस उम्र मे बलवान और हिम्मतदार नही बनेंगे तो भविष्य मे उनसे धर्म और समाज पर सकट आने के समय रक्षा की क्या आशा की जा सकती है। जैसे आप कमजोर है, किसी का मुकाबिला नही कर सकते, वैसा ही आप अपनी सन्तान को बना रहे हैं। जब आपके लडको के ही बलवान बनने की चिन्ता नही है तब लडकियो की तो बात ही बहुत दूर है। इनमे तो आपने कायरता ही प्रारम्भ से भर दी है कि ये तो चूडिया पहिनने वाली हैं। जब जन्म से ही आपने कायरता की जन्म घुटी पिलाई है तब ये बचारी आततायी का क्या सामना कर सकती हैं और कैसे अपने शील और धर्म का बचा सकती हैं। जब आप लोगो मे ही साहस नही है और कायर बने हुए हैं, तब सन्तान के बलवान् और साहसी बनने की आशा ही कसे की जा सकती है। आप लोगो मे यह कायरता आई क्यो? क्या कभी आपने इसका भी विचार किया है? भाई, बात यह है कि आप लोगो की शक्ति पडौसियो से लडने और बाल-बच्चो के साथ चिडचिड करने मे ही नष्ट हो जाती है। परन्तु जो पुरुष सहनशील होते हैं तो उनमे रोग बढते ही नही है और अवसर आने पर वे कुछ करके भी दिखा देते हैं। यह शक्ति मनुष्य के भीतर होना आवश्यक है।

प्रथम तो वैश्य वर्ग यो ही भीरु है। फिर दूसरे हमे पाठ पढानेवाले गुरु भी ऐसे मिले है कि हर बात मे पाप का भय बताकर उन्हे और भी कायर बना देते हैं। अरे, क्या क्रोध करने मे और अनीति का धन ग्रहण करने मे

पाप नहीं है ? परन्तु इन पापों को छोड़ने की बात नहीं कहेंगे। पर आततायी के आक्रमण से आत्मरक्षार्थ शस्त्र उठाने और मुकाबिला करने में पाप-पाप चिल्ला करके उन्हें कायर बना देंगे। मैं पूछता हूं कि कसरत करने में कौनसा पाप है ? आप जैन हैं, तो क्या व्यायाम करने के भी अधिकारी नहीं रहे ? अरे, शास्त्रों को पढ़ो — जहां किसी भी जैन राजा का वर्णन आता है, वहां पर साफ लिखा है कि प्रातःकाल शारीरिक बाधाओं से निवृत्त होकर आयुध शाला में व्यायामशाला में जाता है और वहां पर नाना प्रकार के व्यायाम करके, अनेक मल्लों के साथ कुश्ती करके और नाना प्रकार के तैलों से शरीर मर्दन करके हृष्ट-पुष्ट होकर बाहिर निकलता है। जब ऐसे जैन राजा होते थे तभी वे और उनकी सन्तान साधु बनने पर भयंकर से भयंकर उपसर्गो और परीषहों के आने पर अडोल और अकम्प होकर उनको सहन करते थे। भाई, जो सहनशीलता साधुपने में अपेक्षित है उसे हमारे धर्म-गुरु गृहस्थ श्रावकों के लिए बता रहे हैं, यह एक आश्चर्य की बात है। साधु तो घर-भार से मुक्त हो गया, अतः उनकी साधना तो एक मात्र आत्मोपकार की रहती है। परन्तु गृहस्थ के ऊपर तो सारे घर का भार है। यदि-वह साधु जैसा विचार करने लगे तो सारा गृहस्थपना ही समाप्त हो जाय। हमारी इस कायरता के कारण ही दुनिया को यह कहने का मौका मिल गया कि ये तो ढीली धोती पहिनने वाले बनिये हैं। यही कारण है कि चोर और डाकू सभी आप लोगों को लूटते रहते हैं। आप लोगों में जो कायरता के भाव भर दिये गये हैं, यह उन्हीं का परिणाम है कि आप लोगों की जाति का जो गौरव था, वह चला गया है। और अपना शेरपना छोड़कर सियारपना आपने अंगीकार कर लिया है।

भाइयो, आप लोग तो केवल योजनाएं बनाने में ही लगे रहते हैं, पर करते-धरते कुछ नहीं हैं। आप से तो ये छोटे-छोटे गाँव वाले अच्छे हैं, जो कि कुछ न कुछ करते रहते है क्योंकि उनके शरीर में शक्ति है। इसीलिए अवसर आने पर उन के खून में जोश आये बिना नहीं रहता है।

निर्भीक बनो !

जैतारन-पट्टी में देवली गांव है। वहां माहेश्वरी और ओसवालों के अनेक घर थे। एक बार एक माहेश्वरी भाई अपनी स्त्री के साथ किसी बाहिर गांव से आरहा था, तो रास्ते में डाकू मिल गये। उन्होंने इन दोनों को रोककर स्त्री के सारे गहने उतार लिये। किन्तु पैरों में जो कड़ें थीं, वे मजबूत थी, अतः नहीं खुल सकीं। तब एक डाकू ने कहा कि कुल्हाड़ी से पैर काट कर

निकाल लो। जैसे ही एक डाकू ने कुल्हाडी उठाई, वैसे ही स्त्री को गुस्सा आ गया उसके खून मे जोश दौड गया। उसने अपने धणी से कहा—अरे मौलिए, तेरे होते हुए ये मेरे पैर काटते हैं? स्त्री के शब्द सुनते ही आदमी को भी जोश आगया तो उसने अपने दोनो हाथो से दो डाकूओ को दबा लिया। स्त्री ने शोर मचाया और उसकी आवाज सुनकर इधर-उधर मे लोग आगये। तब वे डाकू किसी प्रकार से उससे अपने को छुडाकर के भाग गये। भाई, उस मनुष्य मे जोश कब आया? जब स्त्री ने ताना मारा। पर जिनके चलते हुए ही धोती खुल जाती है, उन्हे एक क्या, दस ताने भी सुना दो, तो भी वे क्या कर सकेंगे। सारे कथन का अभिप्राय यह है कि आपको अपने बच्चो को निर्भय बनाना है। इसके लिए उनकी शारीरिक शक्ति का विकास करना होगा। इसके लिए आपको अखाडे और व्यायामशाला खोलना चाहिए और उनमे अपने बच्चो को भेज कर शारीरिक सामर्थ्य से सम्पन्न बनाना चाहिए। जो गरीब बालक है, उन्हे प्रोत्साहन देना चाहिए और उनको दूध पिलाने का भी प्रबन्ध करना चाहिए। आज अखबारो मे पढते हैं कि कही कोई शिव-सेना बना रहा है और कही कोई वानर-सेना बना रहा है। जो ऐसा पौरुष दिखाते हैं तो सरकार को भी उनके सामने झुकना पडता है और उनकी मागो को स्वीकार करना पडता है। परन्तु क्या आप लोगो ने कही ऐसा भी सुना है कि ओसवालो ने, या अग्रवाल ने या माहेश्वरियो ने ऐसी कोई सेना बनाई हो! अरे, सेना बनाना तो दूर की बात है, परन्तु हमारे समाज का हृदय तो सेना को देखते ही धक-धक करने लगता है। यो तो आप लोग एक पैसा भी निकाल करके नही देंगे। परन्तु जब ऊपर से मार पडती है, तो तिजोरी की चाबिया भी चुपचाप दे देते हैं। भाई, जब तक आपमे शारीरिक बल नही आयगा, तब तक आपमे पौरुष और साहस भी नही आ सकता और सहनशीलता भी नही आ सकती है। सहनशीलता के आये बिना न मनुष्य अपने विचारो पर दृढ रह सकता है और न व्रत सयम और तप मे ही स्थिर रह सकता है।

शक्तिशाली ही समझा सकता है

सोजत की एक लडकी पाली मे अच्छे ठिकाने विवाही हुई थी। उसका पति कुसगत से शराब पीने लगा। स्त्री के बार-बार मना करने पर उसने उसे मारना शुरू कर दिया। जब उसके बाप को पता चला तो वह उसे लिवा ले गया। उसके ससुर ने उसके साथ ऐसा कठोर व्यवहार किया और कहा कि यदि तू शराब पीना नही छोडेगा तो मैं तुझे जान से मार दूगा। तब वह शराब क्या, भग पीना तक भूल गया।

भाइयो, व्रत, नियम और तपादिक का परिपालन तभी ठीक रीति से हो सकता है, जबकि शरीर में शक्ति हो। शास्त्रकारों ने कहा है कि शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्'। अर्थात् धर्म का सबसे प्रधान और पहिला साधन शरीर ही है। जिनका शरीर निर्बल है, उनका मन भी निर्बल होता है। ऐसे निर्बल मनुष्य क्या धर्म साधन कर सकते हैं ? जिनके शरीर में जान होती है, वे ही नियम के पाबन्द रह सकते हैं। वे अपने नियम की रक्षा के लिए मरने की भी परवाह नहीं करते हैं। सहनशीलता बहुत उच्चकोटि की वस्तु है। सहनशील व्यक्ति कभी आपे से बाहर नहीं होता। वह समुद्र के समान गम्भीर और सुमेरु के समान स्थिर बना रहता है। वह अपनी शक्ति को व्यर्थ के कार्यों में नष्ट नहीं करता है। हाँ, जिस समय धर्म, जाति और देश पर संकट आता है उस समय वह अपनी शक्ति का उपयोग करता है। हमारे पूर्वज महा-पुरुष अपनी शक्ति को बहुत सावधानी से संचित रखते थे। उन्हें अनेक ऋद्धि सिद्धियां प्राप्त होने पर भी वे अनावश्यक व्यय नहीं करते थे। उन्हें प्राप्त हुई लब्धियों का उनको स्वयं भी पता नहीं होता था। किन्तु जब धर्म पर संकट आ जाता था, तो विष्णु कुमार मुनि के समान वे उसका उपयोग कर धर्म और समाज के ऊपर आये संकट को उस लब्धि के द्वारा दूर करते थे। ऐसे महा पुरुषों के गौरव की गाथाएँ आज तक गाई जाती हे।

सहन करो, पर पुरुषार्थ के साथ

आज हमारी समाज में जो बड़े-बड़े आचार्य कहलाते हैं और संघ के स्वामी माने जाते हैं, वे भी संघ के संकट के समय सहन करने की तो कहते हैं, परन्तु पुरुषार्थ द्वारा उसे दूर करने की नहीं कहते है। कहावत है कि 'आप बलें बलवन्त कहावें'। भाई, मनुष्य अपने बल के भरोसे पर ही बलवान कहा जाता है। समय पर अपना बल ही काम देता है। इससे अन्य मतावलम्बियों पर प्रभाव भी पड़ता है और अपना भी कार्य सिद्ध हो जाता है।

एकबार श्री रूपचन्द जी स्वामी एकलिंगजी पधारे। ठंडी हवा के झोखे से उन्हें नींद आ गई और नींद में उनका पैर नांदिया के ऊपर पड़ गया। इतने में पंडे लोग आये और कहने लगे नांदिया को खराब कर दिया। स्वामी जी ने कहा— क्या बोलते हो ? मुझे नीद लेने दो। पंडे बोले—हमारा नांदिया है। स्वामी जी ने कहा—यह तुम्हारा नांदिया कब से आया ? हम अपनी वस्तु पर कुछ भी कर सकते हैं। तुमको इससे क्या प्रयोजन है। यह सुनकर पंडे लोग उन्हें धक्के देकर निकालने लगे। तब उन्होंने खड़े होकर कहा—चल भाई, मेरे नांदिये ! यह सुनते ही वह पत्थर का नांदिया चलने लगा। यह

चमत्कार देख वे पंडे उनके पैरों में गिर पड़े और बोले स्वामी जी, हमने आपको पहचाना नहीं था, हमें क्षमा करो। भाई, समय आने पर वे संत महात्मा लब्धि को प्रकट भी कर देते थे और पीछे प्रायश्चित्त लेकर अपनी शुद्धि भी कर लेते थे। सहनशील पुरुष अपने को और समाज को भी बचाता है और धर्म का गौरव भी बढ़ाता है। अतः हम सबको सहनशील होना चाहिए।

वि० सं० २०२७ कार्तिक वदि ७
जोधपुर

११ | उत्साह ही जीवन है

भाइयो, जिनेश्वर देव की वाणी में अभी आप क्या सुन रहे थे ? क्या बात आई है ? भगवान ने कहा है कि भव्य जीवो, अपना उत्थान स्वयं करो। उत्थान का अर्थ है मन, वचन और कायर से अपनी आत्मा का उद्धार करना। आत्म-उद्धार के लिए आवश्यक है कि अपने भीतर उत्साह प्रकट किया जाय और स्फूर्ति जागृत की जाय। जिसके मन में उत्साह प्रकट हो जाता है उसके वचन में भी उत्साह आ जाता है और काया में भी उत्साह आ जाता है। यदि मन मे उत्साह नहीं होगा शरीर में भी उत्साह नहीं होगा।

जिन मनुष्यों के हृदय में लौकिक या सांसारिक कार्यों के करने में उत्साह होता है, समय आने और निमित्त मिलने पर उनके हृदय में पारलौकिक, आध्यात्मिक और धार्मिक कार्यों में भी उत्साह प्रकट हो जाता है। इसीलिए कहा गया है कि 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा'। अर्थात् जो कर्म करने में शूरवीर होते हैं। जिस व्यक्ति के हृदय में स्वाभिमान होता है वह कहता है कि मैं कौन हूं, मेरा कुल, जाति और वंश कौन सा है ? फिर मैं आज क्यों पतन की ओर जा रहा हूं ? भाई, भगवान् महावीर के वचन तो उत्साह-वर्धक ही हैं। निरुत्साही होना, निरुद्यमी होना और भाग्य के भरोसे बैठे रहना, ये महावीर के वचन नही, किन्तु कायरों के वचन हैं।

दया करना वीर का धर्म है

कितने ही लोग कहते हैं कि यदि मनुष्य में उत्साह अधिक होता है तो

बस दया कैसे पालेगा ? नही पाल सकेगा ? अरे भाई, तुम लोगो ने दया का मतलब ही नही समझा है ! तुम लोगो की दया तो ओठो तक ही सीमित है । अभी आपके सामने कोई बदमाश किसी स्त्री को उडा ले जाता है और उसके साथ बलात्कार करके उसे खराब करता है, तो तुम क्या करोगे ? बैठे रहोगे, भाग जाओगे, या आँखे बन्द कर लोगे ? क्या यह वीरता है ? अथवा मैं मर मिटू गा, पर उस स्त्री के सतीत्व की रक्षा करूँगा, ऐसा कहने वाला वीर है ? जब तक मनुष्यो मे धर्म, देश, जाति और समाज की रक्षा का भाव जागृत नही होगा, तब तक वीरपने का भाव आ नही सकता । अरे कायर बन कर और दया-दया का नाम लेकर तो आप लोगो ने दया का अर्थ ही बिगाड दिया है । हाँ, दया पाली राजा मेघरथ ने । वे कायर थे क्या ? नही ? वे शूरवीर थे । उन्होने तुरत छुरी से अपने शरीर का मास काट कर उसे दे दिया और दीन पक्षी की रक्षा की । क्या आप ऐसा कर सकते हैं ? क्या आप मे ऐसी शक्ति है । आप लोगो के हाथ मे तो अगुली को चीरा देना भी समव नही है, तो अपने शरीर का मास काट कर देना कैसे सम्भव है ? देने-लेने की बात छोड दो । अरे, एक भूख से मरता भिखारी आया और चालीस दिन के भूखे हरिश्चन्द्र ने जिन्होने दातुन तक नही की थी कहा कि मैं भूखा हू, मुझे खाना दो । तो वे स्वय भूखे रह गये, परन्तु उसे उन्होने अपने लिए आये हुए भोजन को दे दिया । पर आपकी आखो से आँसू आ रहे हो, भूखे मर रहे हो यदि कोई आकर के कहे कि हमको दो, तो क्या दे दोगे ? अरे, जैसे तुम वैसे ही तुम्हारे गुरु भाई । वीर की सोहबत (सगति) वीर पुरुष ही करेगा और कायर की सगति कायर ही करेगा ।

देखो—धर्मरुचि नामक अनगार हलाहल विष पी गये । पर आज यदि हमारे यहाँ अलूना आगया, तो कहते हैं कि नमक लाओ । भाई, महावीर स्वामी कहते हैं कि स्याग दोप लगता है । पर आज कहते हैं कि यदि दोष लगता है, तो लगने दो । भाई, वीरो के गुरु वीर होते हैं और कायरो के गुरु कायर होते है । किन्तु जिसके भीतर काम करने का साहस ही न हो, वे लोग ससार मे क्या काम कर सकते हैं ? परन्तु मनुष्य को अपने उत्कर्ष और उत्थान की भावना तो होनी ही चाहिए ताकि अवसर आने पर हृदय मे स्फूर्ति आ जाय । पर भाई, यदि देने का काम पडे तो—है, बावजी ! ढाई लाख रुपये, पाच लाख रुपये दिये जावें ? देखो – शिवाने मे अभी मन्दिर की प्रतिष्ठा हुई । उनके आकर के बोली हुआ करती है । उसकी बोली प्रारम्भ हुई । एक भाई यहा बैठे है दुबले-पतले । उन्होने ढाई लाख की बोली बोली । वे सबर मे आगे

हैं। दया का बड़ा वृक्ष है। उन्होंने पांच के सामने ढाई लाख की बोली बोली तो यह नहीं कि हुं नही दूंगा। मनुष्य को देने की हिम्मत चाहिए। हिम्मत हो तो मनुष्य सब कुछ कर सकता है। किसी ने कहा—अमुक भाई पहिले लिख देवें, लाखों की कमाई है। लोग उनको लक्ष्य करके कहते हैं—सेठ साहब! इधर आइये। वे कहते हैं—नाड़ा छोड़ करके अभी आता हूं। लोग मुख से कहते हैं कि पैसा हाथ का मैल है और फिर भी देते नही हैं। जब देने की भावना नहीं है, तो भाई, झूठ क्यों बोलते हो?

भाइयों, जोधपुर पीछे नहीं और सिवाना भी पीछे नही। सब महावीर की सन्तान कहलाते हो? परन्तु हृदय के भीतर उत्साह की कमी है। जिस व्यक्ति में उत्साह भरा हुआ है वह सब कुछ कर सकता है। मैं पूछता हूं कि हाथी बड़ा है या सिंह? हाथी से बड़ा कोई जानवर नहीं है। और सिंह कैसा? तीन-चार फुट ऊँचा गधेड़े जैसा। परन्तु जब वह दहाड़ता है, तो सैकड़ों हाथी भयभीत होकर इधर-उधर भागते नजर आते हैं। इसलिए किसी को देखकर ऐसा विचार नहीं करना चाहिए कि यह दुबला-पतला है। पुराने आदमी कहा करते थे कि दुबला देखकर के लड़ना नही।' भाई, मन उत्साह से भरा होना चाहिए और भीतर वीरता होनी चाहिए। पहिले के लोग उत्तम श्रेणी के भद्र भी होते थे और शूर-वीर भी होते थे। उनमें सर्व प्रकार की योग्यता होती थी। उनमें अटूट उत्साह होता था। इसलिए वे जो भी काम करना चाहते थे, उसे सहज में ही कर लेते थे। शूरवीर पुरुष जब तक नीद में रहते और ध्यान नही देते हैं, तब तक घोटाला हो जाता। परन्तु जब वे आंखें खोल देते हैं तो फिर सब घोटाला साफ हो जाता है।

धन्नाजी की बत्तीस स्त्रियां थीं। अपार वैभव था। उनके सुख का क्या कहना? जिनको यह भी पता नही था कि सूर्य का उदय कब और किधर से होता है, तथा वह अस्त कब और किधर होता है। इसी प्रकार शालिभद्रजी भी परम सुखी थे कि जिन्हें अपने घर की अपार सम्पत्ति का पता तक भी नही था। उन्हें घर का कुछ काम नहीं करना पड़ता था। उनकी मां ही घर का सारा कारोबार संभालती थी। एक समय उन्होंने नगर के जन-समुदाय को बाहिर जाते हुए देखा तो पूछा कि आज यह जन-समुदाय कहां जा रहा है। लोगों ने बताया कि उद्यान में भगवान महावीर पधारे हैं और सब लोग उनके दर्शनार्थ जा रहे है। उन्होंने देखा कि सपरिवार राजा और सारा नगर जा रहा है तो विचारने लगे कि मैं कैसा पुण्यहीन और मन्दभागी हूं कि मैंने आज तक उन महाप्रभु के दर्शन तक नही किये? आज तो

हमको भी दर्शन करना चाहिये। वे अभी तक ऐसे सुकुमार बने हुए थे कि कभी उन्होंने गादी से नीचे भूमि पर पैर ही नहीं रखे थे। परन्तु आज उनमें नयी स्फूर्ति उत्पन्न हुई, नया जोश आया और चलने का ऐसा उत्साह जागा कि बिना सवारी के और घर के नौकर-चाकरों के बिना ही अकेले नंगे पैर भगवान के दर्शनार्थ चल दिये। लोग देखकर चकित हुए।

भाइयो, आज यदि कोई धन्ना सेठ जैसा व्यक्ति नंगे पैर बाहिर निकले तो क्या लोगों को आश्चर्य नहीं होगा। आज राजाओं के राज्य चले गये, प्रिवीपर्स बन्द हो गये। परन्तु महाराज गजसिंहजी जैसे व्यक्ति यदि बाजार में नंगे पैरों आवें तो क्या लोगों को आश्चर्य नहीं होगा? भाई, नर है तो घर बसाते भी देर नहीं लगती है। वह भी अपने समय का सबसे बड़ा धनी सेठ था। बत्तीस करोड़ सुवर्ण दीनार उसके घर में थी। उसके पिता के नाम से एक टकसाल भी थी। राजा-महाराजा लोग उनसे मिलने के लिए उनके ही घर पर आते थे, पर धन्ना सेठ किसी के यहां नहीं जाते थे। वे सदा अपने महल में ही रहते थे और उसके चारों ओर के उद्यान में ही घूमते-फिरते थे। कभी उससे बाहिर जाने का काम ही नहीं था। किन्तु जब धर्म भावना जागी तो धूल-धूसरित पदों से ही भगवान के समवसरण में पहुंचे। वहां की दिव्य छटा और अलौकिक वैभव देखकर, तथा भगवान की परम अमृतमयी वाणी को सुनकर दंग रह गये। वे विचारने लगे—ओं हो, मैं तो समझता था कि मेरे बराबर अतुल वैभव किसी के पास नहीं है। परन्तु यहां के वैभव की छटा तो निराली ही है। इसके सामने मेरा महल तो कुछ भी नहीं है। जिसके समवसरण में सोने और रत्नों के कंगूरे और कोट हैं, तो उनके वैभव और ऋद्धि का क्या कहना है? भगवान को स्फटिक-रत्नमय सिंहासन पर विराजमान देखकर धन्ना सेठ ने तीन प्रदक्षिणाएं देकर नमस्कार किया और भगवान के सामने जाकर बैठ गये।

भाइयो, कौन सिखाता है नम्रता? और जड़ता भी कौन सिखाती है। आत्मा ही सिखाती है। भगवान के समवसरण में बारह सभाएं थीं। चतुर्निकाय देवों की चार सभाएं, मुनियों की आर्याओं की, श्रावकों की और पशुओं की। भगवान की देशना चालू थी। धन्ना के पहुंचते ही उनकी देशना उनको लक्ष्य करके होने लगी। क्योंकि वह हुंडी सिकारने-वाला आया था। भाइयो, आप लोगों को भी तो कमाई देने वाला ग्राहक अच्छा लगता है यदि आप दस आदमियों से बातें कर रहे हों और इतने मे ही यदि कोई ग्राहक आजाय, तो आप भी तुरन्त उससे पहिले बात करेंगे। आपकी गायें और भैंसे

सब वाड़े में आगई, परन्तु हाथ की थपकी सबसे पहिले दूध देने वाली गाय को देंगे। कहीं भी जाओ—धर्म पक्ष में या संसार पक्ष में, सर्वत्र यही बात है।

भगवान की दिव्य-देशना सुनने और अनुपम वचनामृत पान करने में ऐसे मग्न हुए कि वे वाहिरी संसार को भूल गये। उन्हें लगा कि हाय, मनुष्य भव की इतनी बहु मूल्य घड़ियों को मैंने आज तक इन विपय-भोगों में फंस कर व्यर्थ गवां दिया। ये संसार के भोग स्वयं तो क्षण भंगुर है, किन्तु जीव को अनन्त काल के लिए दुःखों के समुद्र में डालनेवाले हैं। फिर इस मनुष्य भव का पाना भी सरल नहीं है। अब जो हो गया, सो तो लौटनेवाला नहीं है, किन्तु अब जितना जीवन शेप है, उसे व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिए। यदि अब चूक गया तो मनुष्यभव का पाना वैसा ही कठिन हैं, जैसा कि अगाध समुद्र में गिरी हुई मणि की कणी का पाना बहुत कठिन है। इस प्रकार विचार करते करते उनके हृदय में आत्म-ज्योति जग गई। भगवान की दिव्य देशना समाप्त होते ही प्रसादिये भक्त तो 'मत्थएण वंदामि' कहकर रवाना होने लगे कि महाराज, आप सुख-शान्ति से विराजे, हम तो जाते हैं। किन्तु धन्नाजी वहीं चित्र-लिखित से बैठे रह गये, लोगों ने और साथ में आये स्व-जन-परिजनों ने देखा कि धन्नाजी नहीं उठ रहे हैं, क्या बात है? यह सोच विचार कर कोई उनके समीप खड़े रहे और कुछ लोग कुछ दूर पर आपस में बातें करते उनके उठने की प्रतीक्षा करने लगे। जब सारी सभा के लोग उठ गये और वातावरण शान्त हो गया, तब धन्नाजी उठकर खड़े हुए और भगवान से कहने लगे—

> सरद्धचा अरू परतीतिया सरे, रुच्या तुम्हारा वैण।
> अनुमति ले अम्मा तणी, संजम ले स्यूं सैण॥
> जिमि सुख होवे तिम करो सरे, या भगवंतरी कैण।
> काकंदी का धन्ना, वलिहारी जाऊं थांरा नाजरी॥

हे भगवन, मैंने आपके वचनों पर श्रद्धा की है, रुचि आई है और है और प्रतीति हुई है। आपके वचन सर्वथा सत्य है, तथ्य हैं और अवितथ हैं। इनमें लेशमात्र भी झूठ नहीं है। यह मेरी आत्मा गवाही दे रही है। अब अन्तरंग दृष्टि के पलक खुल गये हैं, हृदय के वन्द कपाट उद्‌घाटित हो गये हैं। अतः हे भगवन्, अब मैं माता की आज्ञा लेकर के संयम लूंगा।

भाइयो, बताओ—आप लोगों ने भी कितने ही बार व्याख्यान सुने है और यह भगवद् वाणी कर्णगोचर हुई है—श्रवण की हैं। पर क्या कभी आप में से

किसी ने धन्नाजी के समान यह कहा है कि मैं घरवालों की आज्ञा लेकर संयम ग्रहण करूंगा ? आप कहेंगे कि हम क्या, हमारे पड़ोसी भी नहीं कहते हैं।

धन्नाजी की बात सुनकर भगवान ने कहा—'अहा सुहं देवाणुप्पिया, मा पडिबंध करेह' जैसा तुमको सुख हो, आनन्द हो और जो मार्ग तुमको अच्छा दीखे, वैसा करो।

भाइयो, देखो—भगवान ने पहिले तो कह दिया कि तुमको जैसा सुख हो, वैसा करो। परन्तु पीछे से कह दिया कि 'मा पडिबंध करेह' अर्थात् हे धन्ना, उत्तम काम में प्रमाद मत करो। भगवान ने इधर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को भी साध लिया और उधर प्रेरणा भी दे दी। भाई स्याद्वाद का मार्ग तो यही है।

भगवान के वचन सुनकर धन्नाजी को बड़ी खुशी हुई। उनके आनन्द की सीमा नही रही। वे सोचने लगे कि आज मेरे लिए कितना सुन्दर समय आया है। ऐसा सुअवसर तो आज तक कभी नहीं आया है। वे भगवान को 'मत्थएण वदामि' करके जैसे आये थे, उससे लाखों गुणित हर्ष के साथ घर को चल दिये। उस समय उनके मनमें अपार आनन्द हिलोरें ले रहा था। उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो मैंने संसार-समुद्र को पार ही कर लिया है। वापिस जाते समय तक धूप तेज हो गई थी और भूमि तप गई थी। जब वे बाजार मे होकर नंगे पैर जा रहे थे, तब लोग बोले—सेठ साहब, धूप से आपका शरीर और पैर जल रहे हैं, तब उन्होंने कहा—भाई, मेरा कुछ नही जल रहा है।

धन्नाजी सीधे घर पहुंचे और माता को नमस्कार किया। माता ने कहा—प्रिय पुत्र, आज तो तेरे चेहरे पर बहुत प्रसन्नता दीख रही है ? बेटा, आज आनन्द की ऐसी क्या बात है ? धन्नाजी बोले—माताजी, आज मैंने भगवान के दर्शन किये हैं, आज मेरे नेत्र सफल हो गये है, भगवान का उपदेश सुनकर मेरे कान पवित्र हो गये हैं, उनके चरण-वन्दन करके मेरा मस्तक पवित्र हो गया है। हे माता, अब तो मैं भगवान की सेवामें ही रहना चाहता हूं। अब मैं इस दुःखों से भरे ससार में नही रहना चाहता हूं। यह सुनते ही माता के ऊपर क्या बीती ?

'वज्रपात-सम लागियो सरे धरणी परी मुरझाय'

बुड्ढे है, उनके जीवन का बीमा करीब-करीब समाप्त हो चुका है। परन्तु मां की ममता धनी मे, बेटे-बेटी में है, घरबार में और धन-धाम में लग रही

है। वह सोचने लगी— हाय, हाय ! ये भगवान् कहां से आगये ? हाय, आज मेरे बेटे ने उनकी वाणी कहां से सुन ली ? हाय, मेरे बेटे को—मेरे लाड़ले एक मात्र पुत्र को उन्होंने मोह लिया । यह कहती हुई वह मूच्छित हो गई। जब होश में आई तो कहने लगी—

'हियड़ो लागो फाटवा सरे, ते दु.ख सह्यो ना जाय।
नीर झरै नयनां थकी सरे मुक्ताहार तुड़ाय।।
सुन पुत्र हमारा संजम मत लीजे मां ने छोड़के।।

जैसे मोतियों के हार में से एक-एक मोती गिरता है वैसे ही उनकी आंखों से आंसू टपकने लगे। रुदन करती हुई माता बोली—बेटा, यह साधुपना कोई खाने का लड्डू नहीं है, और खेलने का खिलौना नहीं है। यह तो भारी कठिन तपस्या है। वे कहने लगी—

संयम नहीं छे सोयलो सरे, खड्ग धार सी चाल।
घर घर करनी गोचरी सरे, दूषण सगला टाल।।
बाईस परीषह आकरा सहे, किम सहसी सुकुमाल रे।
सुन पुत्र हमारा, संजम मत लीजे मांने छोड़के।।

हे बेटा, तू साधुपना-साधुपना की क्या बात कर रहा है ? यह तो तलवार की तेज धार के ऊपर चलने के समान है। अलूनी शिला चाटने के समान है, आराम छोड़ना और अपमान को सहना है, सारी ऋद्धि-सिद्धि छोड़ कर दरिद्रता को अंगीकार करना है। बेटा, तेरे क्या कमी है ? एक से एक बढ़कर और देवांगनाओं से भी सुन्दर बत्तीस कन्याओं के साथ तेरा विवाह किया है। यदि इनसे मन उतर गया हो, तो इनसे बढ़कर बत्तीस और परणा दूं ? घर में क्या कमी है ? फिर तू क्यों यह सब छोड़कर और मेरे से मुख मोड़ कर साधुपना लेने की सोच रहा है ?

भाइयो, मां ने तो कहने में कोई कसर नहीं रखी। पर धन्नाजी ने कहा— माता जी, आप कहती हैं कि साधुपना दोरा (कठिन) है। परन्तु मैं कहता हूं कि सोरा (सरल) है। सुनो माताजी—

नरक वेदनी सही अनन्ती, कहूं कहां लग माय !
परमाधामी वश पड्यो सरे मेरी करवत वैरी काय।।
जन्म जरा दुख मरणमा सरे, सुणता जी थर्राय हो।
मां जी म्हांरा आज्ञा देवो तो संजम आदरूं।।

माता, मने नरक के भाव सुने है, नारकी एक दूसरे को कैसे-कैसे दुख देते है, यह याद करके मेरा जी थर्र-थर्र कापने लगता है। वे लकडी के समान करवत से शरीर को चीर डालते हैं, और अथाने मे जैसे मसाला भरते हैं, वैसे ही उस चिरे हुए शरीर मे नमक मिर्च भरते है। मा, उस नरक के दुखो के सामने *साधुपने का दुख क्या है ? कुछ भी नहीं है।* इस जीव ने जन्म जरा, मरण के अनन्त दुःखो से भरे इस ससार मे महा भयकर कष्टो को भोगते हुए अनन्ता काल बिता दिया है। इसलिए हे मेरी प्यारी माता ! उन दुखो से छूटने के लिए आप मुझे सयम लेने की आज्ञा दीजिए। यह सुनकर माता बोली—बेटा, साधुपन मे तुझ कौन कलेवा करायेगा और बीमार पडने पर कौन तेरी परिचर्या करेगा ? तब धन्नाजी ने कहा—माताजी, इनकी क्या आवश्यकता है ?

वन मे छै इक मिरगलो जी रे, कुण करे उणरी सार।
मृगनी परै विचरस्यूं जी एकलड़ो अनगार ॥

हे माता, तुम मेरे लिए पूछती हो कि वहा तेरी सार-सभाल कौन करेगा ? परन्तु देखो—जगल मे बेचारा एक अकेला हिरण रहता है, वह भूखा-प्यासा है, सर्दी-गर्मी लगती है और रहने का भी ठिकाना नही है, सो उसकी भी कोई सार-सभाल करता है ? कोई नही पूछता है। फिर वह मरता है, या जीता है ? कोई उससे सुख-दुख की बात पूछता है ? कोई भी नहीं पूछता। फिर भी वह जीवित रहता है, या नही ? तब फिर मेरे लिए इतनी चिन्ता क्यो करती हो ? उनकी जैसी आत्मा है, वैसी ही मेरी है। जैसे वह हरिण सुख दुख की परवाह नही करता है। वैसे ही अब मुझे भी अपने सुख दुख की परवाह नही है। निर्ग्रन्थ अनगार तो इस दुखो से भरे ससार से और उसके अलीते-पलीते से अलग होकर स्वतन्त्र और निराकुल रहने मे ही सुख मानते हैं। इस प्रकार समझा करके धन्नाजी ने मा को निरुत्तर कर दिया।

धन्नाजी के वैराग्य की चर्चा धीरे-धीरे सारे नगर मे फैल गई। जब वहा के राजा को इसका पता लगा तब वे भी आये और कहने लगे—धन्नाजी, तुम्हारे से ही हमारे सारे राज्य का काम-काज चलता है और तुम्हारे द्वारा ही हमारे राज्य की शोभा है। फिर तुम्हे घर छोडकर साधुपना लेना शोभा नही देता। नगर के अन्य भी प्रमुख सेठ लोग आये और उन लोगो ने भी कहा कि *सेठ साहब, यह क्या विचार कर रहे हो ? तब धन्नाजी ने सब से कहा*—बस, जो कुछ धारना था, सो धार लिया। यदि आप लोग घर मे ही रहने का

आग्रह करते हैं, तो एक प्रबन्ध कर दीजिए कि मेरे पास बुढापा न आवे, रोग न आवे, और मौत न आवे। बस, आप इन तीनो के नही आने की व्यवस्था कर देवे, तो मैं घर को छोडकर नही जाऊँगा। राजा साहब भी मौजूद हैं और आप सब पच लोग भी उपस्थित है। कहावत है कि पचो मे परमेश्वर रहता है और राजा साहब तो परमेश्वर हैं ही। जब दो-दो परमेश्वर मेरे सामने उपस्थित हैं, तो दोनो जने ही मिलकर जरा, रोग और मौत से बचने का प्रबन्ध कर दो। फिर मैं घर छोडकर कभी नही जाऊगा। धन्नाजी की यह बात सुनकर राजा ने शिर नीचा कर लिया और पच लोग भी अवनत-मुख रह गये। धन्नाजी बोले—आप लोग चुप क्यो रह गये हैं? तब सब लोग एक साथ बोले—धन्नाजी, उन तीन बाता के नही आने का प्रबन्ध करने मे हम लोग असमर्थ है। तब धन्नाजी ने कहा—यदि ऐसी बात है, तो फिर आप लोग मुझे उन तीनो दुखो से छूटने के लिए क्यो रोकते हैं? मैंने तो इन तीनो को जड-मूल से नाश करने का निश्चय किया है। अन्त मे सबने उनकी माता से कहा—अब आप के ये लाडले बेटे घर म रहने वाले नही हैं। इसलिए अब इन्हे सहर्ष साधु बनने की आज्ञा प्रदान करो। भाई, जिसके हृदय मे उत्साह प्रकट हो जाता है, फिर उसे ससार का त्याग करते देर नही लगती है।

भाइयो परिग्रह किसको माना है? शास्त्रकार कहते है कि **'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो'** अर्थात् भगवान् ने मूर्च्छा को ममता भाव को परिग्रह कहा है। रत्नो से जडे हुए सोने के महलो मे रहते हुए भी यदि उनमे ममता नही है तो उसे अपरिग्रही कहा है। और जिसके झोपडी रहने को भी नही है, केवल फूटे ठीकरे और फटे पुराने चीथडे ही पहिनने को है, यदि ऐसे भिखारी की उन पर मूर्च्छा और ममता है, तो उसे परिग्रही कहा है।

एक सन्त गोचरी के लिए किसी घर मे प्रविष्ट हुए। उसकी जर्जरित दशा देखकर करुणा से द्रवित हो उठे।

> **टूटा सौ छप्पर घर, बिल हैं अनेक ठौर,**
> **मौल कौल मूसा जाणो जीवा ही समेत है।**
> **खाट एक पायी उणो, गूदडो बिछायो जूनो,**
> **चाचड माकड़ जूंबा लीखा ही समेत है।**
> **काणी सी कुरूपा, देह ऐसी प्रिया सेती नेह,**
> **खाडी हाडी बांडी चाटू मौंजा मान लेत है।**
> **ताही मे अलूझ रह्यो, मानै ना गुरु को कह्यो,**
> **मान को मरोड्यो, जीव, तिरन को न बेत है॥**

भाइयो, पाप का फल ऐसा है कि सोते हुए तारे दिखते हैं। और ईस कैसी कि आकडे की और सोते भी कूदे। फिर उसकी झोपडी कैसी कि बरसात बरसे एक घडी, छाण चवे बारा घडी'। कभी इधर से काला साप निकल पडता है, तो कभी उधर से बिच्छू निकल रहे हैं। खाट का एक पाया टूटा हुआ है, बिछाने को एक पुराना गूदडा है, जिसमे चाचड, माकड, जूवा और लीखे भरी हुई हैं। जिन के कारण एक क्षण को भी रात मे नीद नही ले सकते। फिर स्त्री कैसी ? काली-कलौटी और कर्कशा। बोले तो बिजली सी कडके। रसोडा कैसा कि एक भी साबित हडी तक भी उसमे नहीं हैं। ऐसी घर की दशा को देखकर सन्त ने कहा अरे भाई, अब तो धर्म साधन करो। पूर्व बुरी करनी के फल से तुम्हें ऐसी सामग्री मिली है। अब कुछ दिन भली करनी कर लो तो इससे छुटकारा मिल जाय। और अगले जन्म मे सब सुखमयी सामग्री मिल जाय। यह सुनकर वह बोला --मेरे घर मे क्या कमी है ? सब प्रकार की सुख-सामग्री है। आप किसी और को उपदेश दीजिए और मेरे ऊपर कृपा कीजिए। यह सुनकर वे सन्त चुपचाप वापिस चले आये।

भाइयो, जिनकी होनहार बुरी है उन अभागियों के लिए मुनि जन भी क्या कर सकते हैं ? उनसे भली बात भी कही जाय तो वे बुरा मानते हैं। अमृत तुल्य भी शिक्षा उन्हे विष-तुल्य प्रतीत होती है। ऐसे लोगो के लिए समझना चाहिए कि अभी तक इन के दिन अच्छे नही हैं। जिन की होनहार अच्छी होती है, वे राजसी वैभव को भी छोडकर धन्नाजी के समान घर-बार छोडकर आत्म-कल्याण मे लग जाते हैं। इसलिए हमको अपने भीतर उत्साह जागृत करने की आवश्यकता है।

वि० स० २०२७ कार्तिक वदी ८
जोधपुर

१२ सर्वज्ञवचनों पर आस्था

चार औषधियां :

भाइयो, संसार में अनन्त वस्तुए हैं, उनमें जो वस्तु किसी रोग का विनाश करती है, उसे औपधि कहते हैं। उनमें कोई औपधि ऐसी भी होती है कि जिसके रोग हो उसका तो रोग मिटा दे और जिसके रोग नहीं हो, उसके रोग की उत्पत्ति कर दे। एक औपधि ऐसी होती है कि उसे लगातार सेवन करने पर भी न कुछ लाभ पहुंचाती है और न हानि ही करती है। तीसरी औपधि केवल हानि ही पहुंचाती है, परन्तु लाभ कुछ भी नही करती है। और चौथी औपधि ऐसी है कि यदि रोग हो तो उसे मिटा दे और नहीं हो तो शरीर में शक्ति बढ़ावे। अब मैं पूछता हूं कि इन चार प्रकार की औपधियों में से अपने लिए लाभकारी औपधि कौन सी है ? वही है, जो कि रोग मिटाने वाली हो और यदि रोग नहीं है तो बल देनेवाली हो। यही मंगलमयी सर्वोपधि है। शेष तीनों प्रकार की औषधिया तो निरर्थक हैं—बेकार हैं।

उक्त औपधियों के समान ही, संसार में चार गतियां हैं—नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति। इनमें तीन गतियां तो तीन जाति की औषधियों के समान है। वे हैं-- नरकगति, तिर्यचगति और और देवगति। परन्तु चौथी मनुष्य गति सर्वरोगापहारी औपधि के समान है। मानव का जीवन ही ऐसा जीवन है कि जिसके द्वारा भव-रोग मिट सकता है और नया बल एवं नव जीवन प्राप्त हो सकता है। परन्तु इस प्रकार की औपधि को देनेवाले और रोगी

के रोग का ठीक-ठीक निदान करनेवाला चिकित्सक भी चतुर एव कुशल होगा। औषधि उत्तम है, लेते ही रोग मिटाने की सामर्थ्य रखती है। परन्तु वह यदि रोग को भले प्रकार समझे विना और रोग का ठीक निदान किये विना रोगी को दी जाय तो क्या लाभ करेगी ? नही करेगी। अरे, रोगी को आवश्यकता है पथ्य भोजन की और पिलाया जाय पानी ? तो क्या वह शक्ति प्राप्त करेगा ? और यदि रोगी अजीर्ण रोग से ग्रस्त है तो उसे आवश्यकता है भोजन बन्द करके पानी पिलाने की। किन्तु उसे भोजन कराया जाय, तो अपने जीवन से ही हाथ धोवेगा। इस सर्व कथन का सार यह है कि सर्वप्रथम भव रोग का निदान करने वाला उत्तम वैद्य के समान योग्य गुरु होना चाहिए। फिर औषधि रोग-हर और बल वर्धक होना चाहिए। और रोगी को पथ्य-सेवी, श्रद्धालु और दृढ विश्वासी होना चाहिए। आप देखेंगे कि यदि भव-रोग का चिकित्सक गुरु योग्य है—विद्वान् है औषधि भी उत्तम है और रोगी भी पथ्य सेवी है तब क्या वह नीरोग नही होगा ? लाभ नही करेगा ? अवश्य ही स्वास्थ्य-लाभ करेगा, इसमे रत्तीभर भी शका को लाने की आवश्यकता नही है। इसलिए आवश्यकता है उक्त तीनो योगो के मिलाने की। यदि गुरु रूपी वैद्य योग्य है, किन्तु रोगी अपथ्य-सेवी है, अथवा रोगी तो पथ्य-सेवी है, किन्तु वैद्य योग्य नही है अथवा दोनो ही ठीक हैं, परन्तु औषधि ठीक नहीं है तो बताओ रोगी कैसे नीरोग हो सकता है। इसलिए उक्त तीनो के ही योग्य होने की आवश्यकता है, तभी भवरूपी रोग दूर होगा।

आज हम लोगो को सर्वगतियो मे श्रेष्ठ मानव जीवन मिला है, सद्‌गुरु का भी सुयोग मिला है और भगवान की वाणी रूपी सर्वरोगापहारी औषधि भी प्राप्त है। ऐसे उत्तम सयोगो के मिलने पर हमारा भव-रोग मिट सकता है, जीवन मगलमय हो सकता है और आत्मा का कल्याण हो सकता है। उक्त तीनो सयोग कितने मूल्यवान है, इसका क्या कोई अनुमान लगाया जा सकता है ? मारवाडी मे कहावत है कि 'मैंदा लकडी का क्या भाव कि पीडा जाने है ? ऐसे तो वह घर-घर मे पडी हुई है, परन्तु कौन पूछता है। परन्तु जब चोट लगती है, तभी मैंदा लकडी याद आती है। औषधि का मूल्य कब है ? जब कि रोग हो और उसे दूर करने की इच्छा हो।

त्रिरोग नाशिनी जिनवाणी :

ससार के प्रत्येक प्राणी को अनादि काल से जन्म, जरा और मृत्यु ये तीन रोग लग रहे हैं। जब कोई प्राणी अपने इन रोगो को मिटाना चाहे, तभी प्रभु की वाणी की कीमत है। जो प्राणी अपने रोगो को नही मिटाना चाहे, उसके लिए उसका क्या मूल्य है ?

यहां पर कोई पूछे कि भगवान् तो कभी के मोक्ष में चले गये हैं और उनकी वाणी तो बहुत समय के पश्चात् शास्त्र-निबद्ध हुई है। तब इन्हें भगवान के वचन कैसे माना जा सकता है? भाई, मैं आप लोगों से पूछता हूं कि किसी व्यक्ति का जन्म बाप की मृत्यु के छह मास बाद हो तो वह पुत्र किसका कहलायगा? वह उस बाप का ही तो कहलायगा न? क्या वह उसके घर का मालिक नहीं बनेगा? वह अपने बाप का है, तभी तो उसका अधिकारी है। आप लोग फिर कह सकते हैं कि शास्त्र तो भगवान् के मोक्ष में जाने के कई शताब्दी बाद ही लिखे गये हैं, फिर उनको कैसे प्रमाण माना जाय? भाई, यह बात ठीक है कि शास्त्र कई शताब्दी बाद लिखे गये हैं मगर जब और जिसने लिखे, तब तक भगवान् के वीतरागी ज्ञानी शिष्यों की परम्परा तो अविच्छिन्न रूप से चलती। भगवान महावीर के मोक्ष में जाने के पश्चात् अनेक धुरन्धर महापुरुष हुए हैं। भगवान महावीर के बाद गौतमस्वामी केवली हुए, उनके मोक्ष में जाते ही सुधर्मास्वामी केवली हुए और उनके मोक्ष में जाते ही जम्बूस्वामी केवली हुए। इस प्रकार कितने ही वर्षो तक केवल ज्ञान के द्वारा भगवान महावीर के समान ही यथावत् उपदेश होता रहा। तत्पश्चात् द्वादशांग वाणी के वेत्ता पांच श्रुतकेवली हुए, जिनमें अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी थे। पश्चात् ग्यारह अंग और दश पूर्वो के वेत्ता स्थूलभद्रादि अनेक आचार्य हुए हैं, जिनके क्रमवार नामों का उल्लेख नन्दीसूत्र के प्रारम्भ में किया गया है। इस प्रकार निर्दोष आचार्यो की परम्परा से आया हुआ श्रुत ही पुस्तकारूढ़ किया गया है। अतः उसमें किसी भी प्रकार के मिलावट होने की शका करना निर्मूल है भले शास्त्र पीछे लिखे गये हैं, परन्तु उनमें वे ही उपदेश संग्रहीत किये गये हैं, जो भगवान महावीर ने दिये थे और जो गुरु-शिष्य रूप आचार्यो की परम्परा से लिखने के समय तक अनवच्छिन्न रूप से आ रहे थे। उस समय के आचार्यो ने जब यह अनुभव किया कि काल के दोष से लोगों की स्मरणशक्ति उत्तरोत्तर कम होती जा रही है, भगवान की वाणी का लोप न हो जाय, इस श्रुत-वात्सल्य से प्रेरित होकर समस्त संघ ने एकत्र हो उनका संकलन कर उन्हें लिपि-बद्ध कर दिया, जो आज तक उसी रूप में चले आ रहे है।

कोई तलवार राजा के शस्त्रागार मे पांच सौ वर्ष से पड़ी हुई चली आ रही है। अब कोई कहे कि उसका बनानेवाला तो पांच सौ वर्ष पहिले मर गया है। तो क्या वह तलवार उसकी बनाई हुई नहीं कहलायगी? फिर भाई, उसके नयी पुरानी होने के गीत गाते हो, या तलवार की धार देखते हो कि वह धार करती है, या नहीं? भगवान् के वचन तो वही के वही हैं। भले ही

वे नौ सौ वर्ष के बाद लिखे गये हो, परन्तु वे असत्य नहीं हैं। भगवान महावीर भी कहते हैं कि ये ज्ञानियों के वचन हैं। उन्होंने कहा—'मृषावाद मत बोलो, चोरी मत करो, तो क्या ये वचन नये हैं? कुशील सेवन मत करो, या ममता को कम करो, तो क्या ये वचन नये है? ये तो उनके समय में भी थे और आज भी वही हैं। कोई उन्हे झूठा नही कह सकता है। अब रहा सवाल कि छह काया कि हिंसा नहीं करना। भगवान् ने कहा—हे साधु छह काया का आरम्भ-समारम्भ मतकर। खडी, गेरु हरताल, सोना, चादी, हीरा पन्ना ये सब पृथ्वीकाय मे हैं, उनका तू सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ हिंसा मत करना। नदी, तालाब, झरना, कुआ आदि के समारम्भ-आरम्भ मे भी जल काया के जीवो की विराधना होती है। अब यदि कोई कहे कि बरसात के पानी मे जीव है, परन्तु झरने के पानी मे जीव नही हैं। ऐसे कहनेवालो से पूछो कि उस पानी से प्यास बुझती है और उसमे नही बुझती है क्या? प्यास तो दोनो से बुझती है। फिर यह कैसे कहते हो कि झरने के पानी मे जीव नही है? प्रतिक्रमण पाठ में सब बाते आई हुई हैं। सब प्रकार की अग्नि सचित्त है। फिर भी आज अपने को ज्ञानी मानने वाले कहते है कि बिजली सचित्त नही है। अरे, जैसे चूल्हे की लकडी-छाने वाली अग्नि से आग लगती है वैसे ही भट्टी और बिजली के करेण्ट से भी आग लगती है। फिर कैसे कहते हो कि बिजली मे अग्नि काया के जीव नही है? कारखानो में जितनी भी मशीनरी चल रही है, वह सब अग्नि, पानी और हवा से ही चल रही है।

अब दवाओ को लीजिए लोग कहते हैं कि हम तो इजेक्शन लेंगे, गोली लेंगे, काढा, रस और चटनी लेंगे। परन्तु कहिये कि ये सब दवाएं हैं, या नहीं? किसी ने सरलता से निगली जा सकने वाली गोली बना ली, किसी ने मीठी बना ली और किसी ने चरकी-कडवी बना दी। परन्तु मूल भूत वस्तुएं तो वही की वही हैं। आप ऐसा नही कह सकते कि अमुक ही दवा है और अमुक नही है। थोडी देर के लिए मान भी लिया जाय कि बिजली मे जीव नही है परन्तु उससे चलने वाले पखे मे तो वायुकाया के जीव मरते है, या नही? भगवान के ये वचन है कि जहा एक काय की हिंसा हो रही हैं, वहा छह काय का हिंसा हो रही है। इस प्रकार भगवान के वचन तो पृथ्वी, जल, अग्नि आदि एक-एक काया की हिंसा म छहो काया की हिंसा को पुष्ट कर रहे है। फिर भी यदि कोई कहे कि हम तो नही मानेंगे, तो उनके कहने से क्या भगवान के वचन असत्य हो जावेंगे?

भगवान की वाणी तो त्रिकाल में वही की वही है, जो पहिले थी, वही आज है। यह कहना व्यर्थ है कि आज केवली नहीं हैं, पूर्वधर नहीं हैं। अरे भाई, भगवान के वचन अबाधित हैं, त्रिकालसत्य है। परन्तु मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए कितने अनर्थ कर रहे हैं? आपके सामने से सैंकड़ों आदमी निकल रहे हैं एक व्यक्ति ने दूसरे को मारा है और सब जानते हैं कि मारा है। वह पकड़ा भी जाता है तो अदालत यह कहकर छोड़ देती है कि प्रत्यक्षदर्शी गवाह नहीं है। अब उसे छोड़ तो दिया, परन्तु हृदय तो भीतर यही कह रहा है कि मारा है। इसीप्रकार जो अपने स्वार्थ-साधन के लिए उत्सूत्र-प्ररुपणा करते हैं और श्रद्धा से भ्रष्ट होकर अपनी मनमानी बात कहते हैं और समझते हैं कि संसार को हमारा काम अच्छा लग रहा है। ऐसे लोग सीधा ही क्यों नहीं कह देते कि वर्तमान के आगम-शास्त्र सूत्र ही नहीं है। फिर घर-घर क्यो गोचरी के लिए फिरते हो? घर पर जाकर बैठो। समाज पर यह भार क्यों? समाज का खर्च कराना और ऊपर से राजशाही ठाठ-बाट दिखाना क्यों? कहा तो यह है कि—

गृहस्थी केरा टूकड़ा, चार चार आंगुल दांत।
ज्ञान-ध्यान से ऊबरे, नहिं तो काढ़े आंत॥
पूज कहो पूजावियो, नित को खायो आछो।
परभव होसी पोठियो, वह वे देसी पाछो॥

भाई, वहां तो सारी बातों का हिसाब होता है—माप-दंड होता है। वहां मनमानी बात नहीं चलती है, किन्तु न्याय ही की बात चलती है। यदि भव-रोग से छूटना है और जन्म, जरामरण से मुक्त होना है तो भगवान की बतलायी हुई सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूपी परम औषधि का सेवन करना होगा। और यह रत्नमय परमौषधि भी उस सद्-गुरु रूपी वैद्य से लेनी होगी, जो स्वयं निर्मल आचार-विचारवाला हो, जिसके चारित्र में किसी प्रकार का कोई दोष नहीं लगा हो। यदि कदाचित् लगा हो तो जिसने उसकी शुद्धि करली हो, जो धर्म के लिए सर्वस्व समर्पण करनेवाला हो। अन्यथा आप डुबन्ते पांडे, ले डुबन्ते जजमान' वाली कहावत सत्य सिद्ध होगी। लोभी और स्वार्थी गुरु शुद्ध को अशुद्ध और अशुद्ध को शुद्ध कर देते हैं, जैसा कि आज प्रायः देखा जाता है।

देखो—एक मुनिराज तपस्या करने के लिए ज्येष्ठमास की प्रचण्ड गर्मी के समय जंगल में पधारे। उन्होने अपने वस्त्र खोलकर एक वृक्ष के नीचे रख दिये, शरीर पर केवल लज्जा ढंकने का वस्त्र रहने दिया। पानी के पात्र के

ऊपर भी कपडा बाधकर छाया मे रख दिया और अपनी आखो पर पट्टी बाधकर और धूप मे बैठकर आतापना लेने लगे। इसी समय शिकार के लिए निकला हुआ एक राजा प्यास मे व्याकुल होकर पानी की खोज मे घोडे को दौडाता हुआ वहा पहुचा, जहा पर कि मुनिराज आतापना ले रहे थे। उसने वृक्ष के नीचे वस्त्र से ढके जल के पात्र को देखा—और तुरन्त वस्त्र हटाकर जल को पी लिया। उसने यह भी विचार नही किया कि यह किसका पानी है और पीने योग्य भी है या नही। भाई, भूख-प्यास की वेदना ही ऐसी तीव्र होती है, कि फिर उस समय उसे कुछ विचार नही रहता है। इसीलिए कहा गया है कि

'भूखा गिने न जूठा भात, प्यासा गिने न धोबी-घाट'

राजा को पानी पीने पर शान्ति मिली और वह वही छाया मे बैठ गया। थोडी देर मे उसके दूसरे साथी भी घोडे दौडाते हुए वहा आ गये। राजा ने उन लोगो से कहा—प्यास से पीडित होकर मैंने इस पात्र का पानी पिया है, अब अपने साथ जो पानी है उसमे से पात्र को भरकर और कपडे से ढककर रख दो। राजा की आज्ञानुसार पात्र मे पानी डाल कर उसे ढक दिया गया और सबके साथ राजा अपने नगर को चला गया। मुनिराज तो आतापना लेने मे मग्न थे, उनको इस घटना का कोई पता नही था। जब वे आतापना लेकर उठे और वृक्ष के नीचे गये तो उन्होंने अपना पसीना पोछा और वस्त्र पहिने। जब पात्र की ओर दृष्टि गई तो देखा कि जैसा मैंने कपडा बाधा था, वह वैसा बधा हुआ नही है। फिर सोचा—सभव है—हवा से खुल गया होगा, ऐसा विचार कर उन्होने वह पानी पी लिया। और पात्र लेकर नगर की ओर चल दिये। चलते-चलते उनके मन मे यह विचार आने लगा कि स्वर्ग और नरक कहा है ? मैं किस चक्कर मे पड गया ? लोगो के कहने से धोखे मे आकर व्यर्थ ही माथा मु डा लिया है। मैंने घर को बर्बाद किया और बाप दादो का नाम भी डुबा दिया है। अब तो मुझे यह साधुपना नही पालना है। इस प्रकार विचारो मे तूफान आगया। सयम से परिणाम विचलित हो गये। जब व बाजार मे होकर उपाश्रय को जा रहे थे, तो ईर्या समिति का भी ध्यान नही था, लोगो ने सामने आकर वन्दन किया तो 'दया पालो' भी नही कहा। लोग विचारने लगे कि आज इनकी गति-मति कैसी हो रही है। कुछ लोग उनके पीछे हो लिये। तब वे उपाश्रय मे पहुचे तो लोगो ने पूछा—महाराज, क्या आज आपका जीव सोरा नही है ? उन्होने उत्तर दिया—कैसे नही है ? सोरा ही है। फिर बोले—देखो, यह साधुपना कुछ नही है, सब ढोग है। हम तो अब इस वेप का परित्याग करके जाना चाहते है। य

सभालो अपने ओघा-पात्र । श्रावक लोग विचारने लगे—'अहो कम्मे' कर्मो की लीला पर आश्चर्य है ? हजारो को तारनेवाला यह जहाज डूब रहा है, साधु अपने मार्ग से गिर रहा है । तब लोगो ने हाथ जोड कर बडी विनय के साथ कहा—महाराज, यह आप क्या कह रहे हैं । साधु बोले मे ठीक कह रहा हू । में अभी तक धर्म का घोटक था—अगला ठिकाना नही था । अब कुछ सुध बुध आई है, इसलिए इस वाने को छोडकर जारहा हू । लोगो ने सोचा—ये महात्मा तो पहुचे हुए हैं, शास्त्रो के ज्ञाता हैं । परन्तु ज्ञात होता है कि आज अग्राह्य-अकल्प्य-आहार-पानी इनके खाने-पीने मे आगया है जिससे इनकी बुद्धि आज चल-विचल हो रही हे ठिकाने नही है । क्योकि कहावत है कि—

जैसा खाये अन्न, वैसा होवे मन ।
जैसा पिये पानी, वैसी बोले वानी ।।

यह सोचकर उन लोगो मे से एक मुखिया उठकर वैद्यराज जी के पास गया और लोगो से कह गया कि इनको बाहिर कही जाने मत देना । यदि ये चले गये, तो धर्म का वडा भारी मकान ढह जावेगा ।

मुखियाजी वैद्यराजजी को लेकर आये । उन्होने साधुजी की नाडी और बोले—नाडी तो ठीक चल रही है शरीर मे तो कोई रोग नही है । तब वहा उपस्थित कुछ लोगो ने कहा—इनका रोग हम जानते हैं। यह आपको ज्ञात नही हो सकता । आप तो इन्हे ऐसी दवा दीजिए कि वमन-विरेचन के द्वारा सारा खाया-पिया निकल जावे, पेट मे उसका जरासा अश भी न रहे । वैद्यराजजी ने भी सारी स्थिति समझकर एक विरेचक चूर्ण बनाकर दिया और महात्माजी ने भी उसे ले लिया । थोडी देर के वाद ही उनके पेट मे खल-वली मची और तीन-चार बार बडी नीति के द्वारा उनका पेट साफ हो गया । उनके वस्त्र मल से लिप्त हो गये । श्रावको ने उनका शरीर साफ किया, दूसरे वस्त्र पहिनाये । उनका शरीर एकदम शिथिल हो गया था, अत उन्हे पाटे पर सुला दिया ।

इधर तो महात्माजी का यह हाल हुआ और उधर राजा जगल से महात्माजी का पानी पीकर जब नगर को आ रहा था, तब उसके मन मे ये विचार उठने लगे, कि मैं प्रजा का रक्षक होकर भी आज तक उनका मारक और भक्षक बना रहा । मैंने कितने निरपराधी लोगो को जेल मे डाला है, कितनो का धन लूटा है और न जाने कितनी वहिन-बेटियो की इज्जत-आवरू को नष्ट किया है । पता नही, मुझे मेरे इन दुराचारो का कहाँ जा कर कैसा

फल भोगना पड़ेगा। यह मानव देह बार बार नहीं मिलती है। अब यह अवसर हाथ लगा है, तो मुझे इसका सदुपयोग करना चाहिये, इत्यादि विचार करते हुए वे राज-महल में पहुंचे और जिन निरपराधी लोगों को जेलखाने में डाल रखा था, उनको छोड़ देने की आज्ञा दी। जो सदा खोटी सलाह देने वाले हाकिम-हुक्काम थे, उनको तुरन्त नौकरी से अलग कर दिया और उनके स्थान पर भले आदमियों को नियुक्त किया। नगर के लोगों को बुलाकर कहा—भाइयो, आज तक मैंने आप लोगों के साथ जो जोर-जुल्म किये हैं, उनके लिए मैं आप लोगों से क्षमा याचना करता हूं। लोग आश्चर्य से चकित होकर सोचने लगे —आज राजाजी में यह परिवर्तन अचानक कैसे हो गया जो पापी से एक धर्मात्मा बन गये। तत्पश्चात् वे रनवास में पहुंचे और रानी को भी सम्बोधन करके ज्ञान-वैराग्य की बातें सुनाने लगे। रानी भी विस्मित होकर सोचने लगी—आज महाराज को यह क्या हो गया है ? आज तक तो इन्होंने कभी ज्ञान ध्यान की बातें नहीं की है। फिर यह परिवर्तन सहसा क्यों हो रहा है। जब रानी इस प्रकार के विचारों में निमग्न हो रही थी, तभी राजा बोले—रानी जी, आज तो मैं बिना मौत के ही प्यास से मर जाता। जंगल में चारों ओर घोड़ा दौड़ाने पर भी कहीं पानी नहीं मिला। जब मैं निराश होकर एकदम मरणोन्मुख हो रहा था, तभी एक स्थान पर एक साधु को ध्यान करते देखा और उनके समीप ही वृक्ष की शीतल छाया में उनका पात्र जल से भरा दिखा तब उसे पिया और मेरी जान में जान आई। यदि जंगल में उनका पानी पीने को न मिलता तो आज मैं जीवित नहीं लौट सकता था। कल तुम भी उनके दर्शनों के लिए चलना।

भाइयो, इधर तो राजाजी की यह परिणति हो रही है और उधर जब साधुजी के शरीर से विरेचन द्वारा सारा रस-कस निकल गया, तब बोले—अरे, मुझे आज यह क्या हो गया और मैं क्या बकने लगा था ! वे श्रावकों को सम्बोधित करते हुए बोले—आज जब मैं जंगल में आतापना लेकर उठा, तब अपने जल के पात्र को जैसा बांधकर रखा था, वैसा नहीं पाया। ज्ञात होता है कि कोई उसका पानी पीकर पीछे से मेरे लिए अकल्पनीय पानी उसमें डाल कर चला गया है ! यह कह कर उन्होंने अपने आप की आलोचना, निन्दा और गर्हा की, अपनी आत्मा को बार बार धिक्कारा। लोग महात्माजी की बात सुनकर धन्य धन्य कहने लगे। ठीक इसी समय राजा साहब भी अपने दल-बल के साथ उपाश्रय में पधारे और महात्माजी को नमस्कार करके बोले—भगवन्, आज आपकी कृपा से मुझे नया जीवन मिला है। महात्माजी ने पूछा—कैसे ? राजा ने जंगल की सारी घटना सुनाकर कहा—महाराज, आज

आपका जल पी लेने से मेरे प्राण निकलने से बचे और उसके बाद मेरे हृदय में विवेक जागृत हुआ है. मेरा मन संसार से उद्विग्न हो गया है, अब मैं आपके पास दीक्षा लेकर आपके ही चरणों की शरण में रहना चाहता हूं। मुझे अत्यन्त दुःख है कि मेरा झूठा पानी आपके काम मे आया होगा। इसके लिए मैं आप से क्षमा-याचना करता हूं। लोग राजाजी की बातें सुनकर सोचने लगे-- तभी इधर का उधर और उधर का इधर असर हुआ है।

बन्धुओ, कहने का सारांश यह है कि भले-बुरे खान-पान का भी कैसा तत्काल असर पड़ता है, यह बात आप लोगों ने साधुजी और राजाजी की बदली हुई मनोवृत्ति से भली भांति जान ली है। मनुष्य के मन पर खान-पान और भली-बुरी संगति का अवश्य प्रभाव पड़ता है। धर्म और शासन के प्रेमी उन श्रावकों ने अपनी दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता से साधु के गिरते हुए भावों को संभाल लिया! परन्तु आज तो धर्म, शासन और समाज की सेवा नहीं है, सर्वत्र स्वार्थ की सेवा है! स्वार्थ सधता है तो महाराज अच्छे हैं और यदि स्वार्थ की साधना नहीं होती है तो महाराज अच्छे नहीं है। आज धनिक श्रावक आते हैं तो कोई न कोई कामना लेकर के आते हैं कि महाराज का आशीर्वाद मिल जाय तो कामना पूरी हो जाय। आत्म-कल्याण की भावना से कोई नहीं आता है। अरे भाई, महाराज ने साधुपना लिया है तो अपने लिए लिया है, पर आज के स्वार्थी भक्तों को इसकी चिन्ता नहीं है। उन्हें तो अपने स्वार्थ-साधने की ही चिन्ता है, फिर भले ही महाराज कल डूबते हों तो आज ही डूब जावें। भाई, ऐसे स्वार्थी भक्त सच्चे भक्त नहीं हैं, वे तो बगुला भक्त हैं। सच्चा भक्त श्रावक तो वही है जो कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र और संयम की आराधना करनेवाला हो, धर्म और समाज की सेवा करनेवाला हो। आज यदि ऐसे भक्त मिलने लगें तो साधुओं को भी सहारा मिले। साधुओं का तो श्रावकों को सहारा मिलता ही रहता है। जहां पर साधु-सन्तों का आवागमन कम होता है, वहां पर धार्मिक प्रवृत्तियां भी कम होने लगती है और श्रावक भी अपने कर्त्तव्य को भूलने लगते हैं। साधु-सन्तों के आवागमन से श्रावकों के संस्कार पुनरुज्जीवित होते रहते हैं। उन्हें देखकर ही धार्मिक संस्थाएँ बनती हैं। और लोगों को भगवान की पवित्र वाणी को सुनने का सुअवसर मिलता है। सद्-गुरु का सहयोग जीवन-निर्माण के लिए परम औषधि है। जब उत्तम और गुणकारी औषधि मिलती है, तब अनादि काल से लगे इन जन्म जरा और मरणरूपी महा-रोगों से मुक्ति मिलती है और अजर, अमर आनन्दमय परम पद प्राप्त होता है।

वि० सं० २०२७ कार्तिक वदी ६

जोधपुर

१३ समता और विषमता

भाइयो, आपके सामने दो धाराएँ बह रही हैं – एक है सरल धारा और दूसरी है विषम धारा। सरल धारा में आनन्द है और विषम धारा में कष्ट और दुःख है। देखो—जो सीधा राजमार्ग जा रहा है, उस पर चलने में आप को कष्ट नही होता है। परन्तु जो विषम मार्ग है, टेढ़ा-मेढ़ा, ऊँचा-नीचा और कांटे वाली झाड़ियों से व्याप्त हैं, उस पर चलने में निरन्तर शंका बनी रहती है कि कहीं ठोकर न लग जाय, डाकू और लुटेरे न आ जायें, अथवा हिंसक जन्तु न मिल जाय। इसलिए हमें विषम धारा से दूर रहना और सम-धारा में प्रवेश करना चाहिए। व्याख्यान सुनने और शास्त्र-स्वाध्याय करने का भी खास उद्देश्य यही है कि हम पूर्ण आध्यात्मिक बनें और परम धाम को प्राप्त करें। परम धाम (मोक्ष) कब प्राप्त होगा, यह हमारे ध्यान में नही, वह तो सर्वज्ञ के ध्यान में है और किस व्यक्ति का कल्याण होगा, यह उनसे छिपा हुआ नहीं है। हाँ, अपने से छिपा हुआ है। परन्तु परम धाम का जो मार्ग और उसके प्राप्त करने के जो कर्त्तव्य भगवान ने बताये हैं और जो महापुरुष उस पर चल रहे है, वे उत्तम हैं, क्योंकि वे समधारा में चल रहे हैं।

समता की वृत्ति

जीव के अनादिकाल से कर्मो का प्रसंग बन रहा है और उनके उदय-वश क्रोध आ गया, तब उनके आते ही हमें विचार करना चाहिए कि हे आत्मन्, तूने ये कटुक वचन क्यों कहे, इतनी अनर्गल बातें क्यों कहीं ? हमें

किसी से कुछ लेना नहीं और देना नहीं। उनका भाग्य उनके साथ है और तेरा भाग्य तेरे साथ है। तू उनका बुरा नहीं कर सकता है और वे तेरा बुरा नहीं कर सकते हैं। सबका भला-बुरा अपने-अपने उदय के अधीन है, दूसरे व्यक्ति तो उसके निमित्त मात्र बनते हैं। मुझे ऐसे अनर्गल कटुक वचन कहने की क्या आवश्यकता थी। ऐसा विचार कर सरल हृदयवाला उस व्यक्ति के पास जायगा और उससे कहेगा कि भाई साहब, मुझे क्षमा कीजिए, मैंने क्रोध में ऐसा कह दिया जो मुझे नहीं कहना चाहिए था। आपके ये वचन सुनकर उस व्यक्ति के भी हृदय मे बड़ा असर पैदा होगा और वह सोचेगा कि इसने मुझसे जो कहा, वह उचित ही कहा है, मेरे हित के लिए ही कहा है। फिर भी ये स्वयं मेरे पास आकर क्षमा-याचना कर रहे हैं, यह इनका कितना बडप्पन है, ये कितनी उच्च श्रेणी के व्यक्ति है। इनका सत्संग तो हमें निरन्तर ही करना चाहिए। इनके सत्संग से मेरे में जो त्रुटिया है, वे बाहिर निकल जायेंगी। इस प्रकार आपके सरल व्यवहार से उस व्यक्ति पर उत्तम प्रभाव पड़ा। इससे दोनों को लाभ हुआ, आपकी आत्मा में भी शान्ति आई और उसकी आत्मा को भी शान्ति मिली। दोनों के हृदय में जो अशान्ति की आग जल रही थी, वह शान्त हो गई।

इसके विपरीत यदि कोई विषम प्रकृति का मनुष्य है तो वह कहेगा कि मैंने उससे जो कहा है वह ठीक ही कहा है, बुरा नहीं कहा है। यदि वह बुरा मानता है तो मान ले। और बुरा मानेगा तो उसे दंड देने का उपाय भी मेरे पास है। मैं उससे किसी प्रकार भी दबनेवाला व्यक्ति नहीं हूँ। मैं उसे ऐसा फंसाऊंगा कि वह अपने आप पछाड़ खा जायगा। इस प्रकार से विचारने वाला विषम धारा का व्यक्ति है। अरे, वह पछाड़ खा जायगा, ऐसा तू पहिले से ही निश्चय करके कैसे बैठ गया? इस प्रकृति का व्यक्ति अपनी विषम धारा में ऐसा फंसा हुआ है कि वह स्वतन्त्र विचार और सरल व्यवहार नही कर सकता है। इस प्रकार की विषम धारा वाले व्यक्ति दूसरो को लड़ाकर अपना स्वार्थ-साधन करने में कुशल होते है। क्योंकि वे लोग जानते हैं कि जब तक दूसरों को लड़ाया नहीं जायगा, तब तक हमारा स्वार्थ-साधन नहीं होगा। और जब यह दूसरों से लड़ेगा, तब मैं उसे मार्ग दिखाऊंगा और इससे मुझे लाभ उठाने का अवसर प्राप्त होगा। जब यह फन्दे में फंस जायगा तब आकर कहेगा कि साहब, मेरा यह मामला सुलझाओ। उस समय मैं इससे कुछ न कुछ हस्तगत कर ही लूंगा। इस प्रकार मनुष्य अपनी कुटिल प्रवृत्तियों से अपना ही अनर्थ करता है। मारवाड़ी में कहते हैं कि 'सलू के लिए (घास के

लिए)—गैंस को मार देता है और एक तृण के लिए महल को गिरा देता है।' कितना बडा अज्ञान है और कितनी तीव्र कषाय है कि मनुष्य अपने क्षुद्र स्वार्थ-साधन के लिए बड़े से बड़ा अनर्थ करने के लिए उद्यत हो जाता है। परन्तु नीचवृत्ति वालों लोगों को कुटिल प्रवृत्ति में ही आनन्द आता है। कहा भी है कि—

'न हि नीचमनोवृत्ति रेकरूपा स्थिरा भवेत्' ।

अर्थात् नीच मनुष्य की मनोवृत्ति कभी एक रूप नहीं रहती। वह सदा चंचल बनी रहती है।

आचार्यों ने सममनोवृत्ति और विषममनोवृत्ति वाले मनुष्यों के स्वभाव का वर्णन करते हुए कहा है कि—

'मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।
मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यद्धि पापिनाम् ॥

अर्थात् जो सम मनोवृत्ति के धारक महात्मा होते हैं उनके मन में, वचन में और कर्म मे एक बात होती है। किन्तु विषम मनोवृत्ति वाले पापियों के मन में कुछ और होता है, वचन से कुछ और कहते हैं और कर्म में कुछ और ही होता है।

इस विषम मनोवृत्ति वाला अपने एक रुपये के लिए दूसरे को पांच रुपयों का नुकसान पहुंचा देगा। अपने पांच सौ रुपये वसूल करने के लिए दूसरे को हजार रुपये की हानि पहुंचायगा। किन्तु जो सममनोवृत्ति के धारक होते है, वे जब देखते हैं कि मेरे पचास रुपयों के पीछे दूसरे का यदि सौ रुपयों का नुकसान हो रहा है, तो वे अपने पचास रुपये ही छोड़ देते हैं। वे सोचते हैं कि यदि इसके पास से मेरे पचास रुपये नहीं आयेंगे तो मेरे क्या कमी हो जायगी। पर यदि इसके सौ रुपयों का नुकसान हो जायगा तो बेचारे के बाल-बच्चे भूखों मर जावेंगे। इस प्रकार समधारा वाले के हृदय में करुणा की धारा सदा प्रवाहित रहती है। ऐसे पुरुष स्वयं हानि उठाकर के भी दूसरों को *लाभ पहुंचाते रहते हैं। उनकी सदा यही भावना रहती है—*

अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूं,
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या भाव धरूं।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं,
बने जहां तक इस जीवन में औरों का उपकार करूं ॥

सज्जनों की तो भावना ही सदा ऐसी रहती है कि भले ही मुझे दुःख उठाना पड़े, तो उठा लूंगा, परन्तु मेरे निमित्त से किसी दूसरे व्यक्ति को रंच

मात्र भी दुःख न पहुंचे। किन्तु जो दुर्जन होते हैं, उनकी प्रवृत्ति विषम और कुटिल ही होती है। यदि कोई मनुष्य अपना मकान बेच रहा है और दूसरा व्यक्ति खरीद रहा है तो सम प्रकृति का व्यक्ति सोचेगा कि अपने को ऐसा चलना चाहिए कि अगले व्यक्ति को लाभ हो। किन्तु विषम प्रकृतिवाले को मकान लेना नहीं है फिर भी वह बोली बढ़ा-चढ़ा करके बोलेगा, जिससे कि लेने वाले को अधिक दाम देना पड़ें। इस प्रकार सम प्रकृति और विषम प्रकृति वाले मनुष्य संसार में सदा से होते आये है और होते आवेंगे। सम प्रकृति वाले थोड़े ही होते हैं भगवान की वाणी का असर सम प्रकृति वाले मनुष्यों पर ही पड़ता है, विषम प्रकृति वालों पर नही पड़ता है बल्कि उनको जितनी भी अधिक भगवद्-वाणी सुनाई जायगी, उतना ही उलटा असर होगा, क्योंकि उनकी प्रकृति ही विषम है। पिता ने पढ़ा-लिखा करके होशियार बनाया तो उसका उत्तम फल निकलना चाहिए था, किन्तु बुरा निकलता है। वह पढ़ी हुई पुस्तकों मे से भली बातो को ग्रहण नही करेगा, किन्तु चोरी-जारी और जासूसी की घटनाओं को पढ़कर उन्हे ही अपनायेगा। वह यदि सन्तो के व्याख्यान भी सुनेगा, तो उसमें से आत्म-कल्याणकारी बात को ग्रहण नही करेगा, किन्तु यदि कोई कलह-कथा का प्रसग सुनने में आ गया तो उसे ही ग्रहण करेगा। सम-प्रकृति वाला व्याख्यान सुनते समय सामायिक को स्वीकार करेगा। यदि लाज-शर्म वश दिखाऊ-सामायिक भी करने बैठेगा, तो भी मन की कुटिल प्रवृत्ति उस समय भी चालू रखेगा। भाई, ऐसी सामायिक में क्या रखा है? कहा भी है कि—

> कर्म कमावे भारी, काम करे दुराचारी,
> नयननिसों करे यारी, नाम से समाई को।
> भूखते मंजारी जैसे, चोट-करे दृष्टिधारी,
> कैसे अविचारी, काम करत अन्यायी को॥
> ऊपर से धर्म धारी, मांहि पाप की कटारी,
> पीछे होयगी खुवारी, लेखो लेत राई-राई को।
> वह्म में करत जारी, कहे मजो अनगारी,
> ऊवां हित होत नाहीं, राज पोपा बाई को॥

सामायिक में समता रखो!

भाई, विषम प्रकृति वाले बातें तो धर्म की करते हैं और कर्म अन्याय का करते हैं। मायावी आखो से बातें करेंगे और नाम लेंगे—सामायिक का। एक स्थानक मे कुछ स्त्रियां सामायिक करने को बैठी। इन लोगों की जबान

(जीभ) वश में नहीं रहती है सो सामायिक में बैठते ही बातों का चर्खा चालू हो गया। एक ने दूसरी से कहा कि तेरी बींदणी ने ऐसा कर दिया। अब दोनों में वाक्-युद्ध आरम्भ हुआ और लड़ाई चली। पास में बैठी स्त्री के घर के चाबियों का गुच्छा समीप मे रखा था, वह उठ कर एक ने दूसरी स्त्री के शिर में दे मारा और उसके शिर से खून निकलने लगा। अब तो स्थानक में धूम मच गई। समीप ही थाना था। समाचार मिलते ही पुलिस के जवान आये और सामायिक मे ही लड़ने वाली स्त्रियों को गिरफ्तार करने लगे। सारे शहर में समाचार फैल गया कि सामायिक करते हुए स्त्रियां लड़ीं। भाई, यह सामायिक की, या कर्मों की कमाई? भगवान् ने सामायिक तो समभाव मे बतलाई है। पूछा जाता है कि सामायिक करते समय कपड़े क्यों खोले जाते हैं। भाई, ये सामायिक के परिकर्म हैं—ऊपरी काम है। जैसे दुकान खोलते हो, तो पाल भी बांधना पड़ता है, गादी लगानी पड़ती है और तकिये भी रखने पड़ते हैं। तभी दुकानदार कहलाता है। यदि दुकान नहीं है और कपड़ों की गठरी बांधकर घर-घर और गली-गली फिर कर बेचते हो, तो वह फेरी वाला कहलाता है। भाई, व्यापार तो दो पैसे कमाने के लिये किया जाता है। यदि कोई दुकान लगाकर बैठे और दिन भर में पांच रुपये का घाटा पड़ा, तो वह घाटे में रहा। और यदि फेरी लगाने पर पांच रुपये कमावे तो वह मुनाफे में रहा। इसी प्रकार कपड़े खोलकर सामायिक करने को बैठे और लड़ाई-झगड़ा कर आर्त्त-रौद्रध्यान किया, तोक्या वह सामायिक कही जायगी? नहीं कही जायगी। आप सामायिक करने को बैठे, कपड़े खोल दिये और बैठ का बिछा दिया। इतने में एक ग्राहक आ गया और कहने लगा कि माल लेना है। उसकी बात को सुनते ही आप दुपट्टा ओढ़ कर चल दिये, तो बताओ आपकी भावना सामायिक मे रही, या कमाई में रही? इसके विपरीत एक व्यक्ति सामायिक करने को बैठ गया और इतने में ही आड़तिया आया और बोला कि दुकान पर चलो। वह कहता है कि मैं तो यहां से व्याख्यान सुनकर और सामायिक-काल पूरा होने पर ही उठूंगा। तब तक ठहर सकते हो तो ठीक है, अन्यथा फिर दूसरे से ले लेना। इसी का नाम सामायिक है। आचार्यों ने तो कहा है कि—

सामायिके सारम्भाः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि।
चेलोपसृष्ट मुनिरिव गृही तदा याति यतिभावम्॥

अर्थात्— सामायिक करते समय गृहस्थ सभी आरम्भ और परिग्रह का त्याग करता है, इसलिए वह सामायिक के काल में चेल (वस्त्र) से लिपटे हुए

मुनि के समान यति भाव (साधुपना) को प्राप्त होता है। भाई, इसीका नाम सामायिक है।

जो नियमवाले श्रावक होते हैं वे तो प्रातः दस बजे से पहले दुकान खोलते ही नही है। और शाम को चार बजे दुकान उठा देते हैं, क्योंकि, रात्रि में भोजन नहीं करना है। जिसके ऐसा दृढ नियम होता है, उसके ग्राहक भी दुकान-खुलने के समय पर ही आते है। जो मनुष्य अपने नियम पर स्थिर रहते है, वे ही सामायिक आदि व्रतों के पालने का यथार्थ लाभ उठाते हैं। वे सोचते है कि यदि इस समय हम व्याख्यान सुनना छोड़कर चले जावेंगे तो फिर गुरु के ये अनमोल वचन सुनने को नही मिलेंगे। अतः हमे ऐसा अमूल्य अवसर नही खोना है। ग्राहक फिर भी मिल जायगा, किन्तु गया हुआ अवसर फिर हाथ नहीं आयगा। सच्ची सामायिक करनेवाले की तो ऐसी भावना रहती है। किन्तु जो लोग सामायिक का भेप धारण करके पोल में पड़े बूटों और जूतों पर दृष्टि रखते हैं और जाते समय अच्छे से बूट, चप्पल आदि को पहिन कर या थैली मे डालकर ले जाने की भावना रखते हैं और अवसर मिलने पर ले भी जाते है, तो क्या ऐसी चोरी करने की भावना रखने वालों की कपड़े खोलकर और मुख-पट्टी बांधकर बैठने को सामायिक कहा जायगा? कभी नही? ऐसा व्यक्ति तो धर्म का द्वेषी और वैरी है। जो कपड़े खोलकर और सामायिक नही ले करके भी व्याख्यान सुनने को बैठता है, उस समय यदि किसी के गले-से सोने की चैन खुलकर नीचे गिर जाती है, तो वह उस व्यक्ति को इशारा करता है कि भाई जी, आपकी है क्या? जरा ध्यान कर लेना। भाइयो, बताओ—कपड़े खोलकर भी जूतों और चप्पलो को ले जाने वाले की सामायिक कही जायगी? अथवा कपड़े नही खोल करके भी सोने और पाषाण मे, तृण और मणि मे समभाव रखने वाले के सामायिक कही जायगी? समभाव सर्वत्र सर्वदा उत्तम है, चाहे वह कपड़े पहिने हो और चाहे खोलकर बैठा हो? और यदि समभाव नहीं है, परिणामो मे विषमभाव है, आर्त्त-रौद्रध्यान है, पापमय मनोवृत्ति है, तो चाहे वह साधु हो और चाहे वह श्रावक हो सर्वत्र सर्वदा बुरा ही है। आचार्यों ने सामायिक का स्वरूप बतलाते हुये कहा है—

> समता सर्वभूतेषु, संयमे शुभभावना।
> आर्त्त-रौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकव्रतम्॥

अर्थात्—सर्वप्राणियों पर समभाव हो, संयम में शुभ भावना हो और आर्त्त-रौद्र भावों का परित्याग हो, वही सामायिक व्रत है।

मैं एक गाँव मे पारकर फाउन्टेन पेन से लिख रहा था। प्रसग-वश श्री हजारीमल जी स्वामी से बात करने के लिए उस पेन को वही छोडकर चला गया। जब वापिस आया तो देखा, पारकर तो पार होगया। छान-बीन की,तो पता चला कि एक बावरी जाति का व्यक्ति साधु बना लिया गया था। किसी सत ने अपनी शिष्य सख्या बढाने के लिए बिना कोई परीक्षा किये उसे मूड लिया, चादर उडा दी और ओघा-पात्रा दे दिया। एक-दो दिन तक उस पर दृष्टि रखी तो ज्ञात हुआ कि इसी ने वह पारकर फाउन्टेन पेन पार कर दिया है। मैंने कहा—अरे बावरी अभी तक भी तेरी जाति का असर नही गया है? वह बोला—हा, महाराज, मैं तो बावरी हू। भाई, कोई व्यक्ति किसी भी वेष को धारण कर ले, परन्तु जाति का असर मिटना कठिन है। अरे, जिसने मन को शुद्ध नही किया, उसको कोरे घर छोडने से क्या लाभ हो सकता है। वैसे त्याग उत्तम वस्तु है, उस पर जब शुद्ध मन से अमल किया जाय अन्यथा सब व्यर्थ है। आपके पास केशर की पुडिया है, किन्तु वह कीचड मे गिर पडी तो वह लेने के योग्य नही रही इस प्रकार केशर की बर्बादी हुई। इसी प्रकार त्याग, व्रत आदि उत्तम हैं, परन्तु वे जब कुपात्रो के पास पहुचे तो त्यागी व्रती लोगों की महिमा घट गई। वे ही त्याग व्रत जब सुपात्र से पास पहुचते है, तो उनका महत्व बढ जाता है। सूत्र (धागा) साधारण वस्तु है, किन्तु वही फूलो मे पिरोया जाकर राजा-महाराजाओ का गले का हार बन कर शोभा पाता है। छोटी भी वस्तु सुपात्र के ससर्ग से महत्व को प्राप्त कर लेती है। योग्य स्थान से व्यक्ति का महत्व बढता है और स्थान का उल्लघन करने से उसका महत्व घट जाता है।

समभावी-गुणानुरागी

समभाव मे रहने वाला व्यक्ति अपनी श्रद्धा से अलग नही होता है। वह जहा भी जाता है, वहा पर नवीन वस्तु को देखता है और उस पर विचार करता है, उसके गुण-दोषो की छान-बीन करता है और निर्णय करता है कि मेरी जो वीतराग देव पर, निर्ग्रन्थ साधु पर और अहिंसामयी दया धर्म पर जो श्रद्धा है, वह सर्वथा योग्य है। अब मुझे अन्यत्र जाने की क्या आवश्यकता है। मेरे सभी उद्देश्य की पूर्ति इन देव, गुरु और धर्म के प्रसाद से ही होगी, ऐसा उसके हृदय मे दृढश्रद्धान होता है अत उसका चित्त किसी भी पर वस्तु के बाह्य प्रलोभन से प्रलोभित नही होता है। यह ससार का स्वभाव है कि मनुष्य को नवीन वस्तु प्रिय लगती है। कहा भी है कि **'लोको ह्यभिनवप्रिय.'** अर्थात् लोगो को नवीन वस्तु प्यारी लगती है। परन्तु पर

वस्तु किसको प्यारी लगती ? जो कि बाल स्वभाव के होते हैं। जैसे बालक किसी भी वस्तु को देखते ही उसे पाने के लिए मचल जाते हैं। इसी प्रकार जिन्हें आत्म-बोध नहीं, वे ही पर वस्तु की अभिलाषा करते हैं। किन्तु जिन्हें *आत्म-ज्ञान हो जाता है, उन्हें अपनी आत्मा के सिवाय* कोई दूसरी वस्तु प्रिय नहीं लगती है। समभावी व्यक्ति दूसरों के विशिष्ट गुण देखकर उन्हें अपनाने का प्रयत्न करता है और अपनी कमियों को दूर करने का प्रयत्न करता है। इसके विपरीत विषमभावी व्यक्ति सोचता है कि यदि मैं विषम दृष्टि हूं-काना हूं—तो औरों की भी एक-एक आंख फूट जाय तो अच्छा हो—सब मेरे समान ही हो जायें तो फिर कोई मुझे काना नहीं कह सकेगा। विषमभावी सदा पराया उपकार करने की सोचता है, तो समभावी पर-उपकार करने की भावना रखता है।

आप लाखों का व्यापार करते हैं और महलों में रहते हैं। परन्तु दूसरी ओर एक गरीब व्यक्ति है झोंपड़ी या झुग्गी मे रहता है और दो आना के रंगीन कागज खरीद करके उनसे चिड़िया, हार, फूल आदि और नाना प्रकार की आकर्षक सुन्दर वस्तुएँ बना करके बाजार में बेचता है तो उन्हें देखते ही बच्चे दौड़कर उन्हें लेते है। वह सुन्दर बनाकर लाता और अपने परिश्रम और बुद्धिचातुर्य में दो आने के रुपये बनाकर वापिस अपनी झोंपडी पर लौटता है। वह चोरी करके नहीं ले जाता है किन्तु अपने परिश्रम से कमाकर ले जाता है और इस प्रकार वह अपनी बुद्धि का विकास करते-करते एक बहुत बड़ा कलाकार हो जाता है और एक दिन ऐसे ऐसे यंत्रों का आविष्कार करने लगता है कि यंत्रोत्पादक और यंत्र-निर्माता भी उन्हें देखकर आश्चर्य-चकित हो जाते हैं। तब वह कलाकार यश के साथ धन भी कमाता है और लखपति बन जाता है। परन्तु कोई विषमभावी मनुष्य आज लखपति है और उसकी अच्छी चलती हुई दुकान है अथवा उसके पास कोई बहुमूल्य वस्तु है। यदि वह उसकी ठीक प्रकार से सार-संभाल नही करता है और दूसरों के छिद्रान्वेषण और दोष-दर्शन करने में ही अपना समय बिताता है, तो एक दिन उसका व्यापार चौपट हो जाता है और निर्धन बन जाता है—दूसरो का मुँहताज हो जाता है और फिर अवैध उपायों से धन कमाने की सोचता है। इसी प्रकार किसी अल्पज्ञानी किन्तु समभावी व्यक्ति को धर्म तत्व प्राप्त होता है, तो वह उत्तरोत्तर अपनी उन्नति करता हुआ एक दिन महान् ज्ञानी और धर्मात्मा पुरुष बन जाता है और संसार में नाम चारों ओर फैल जाता है। किन्तु यदि विषमभावी व्यक्ति को धर्म तत्व प्राप्त होता है और वह दिन मे तो इधर-उधर गप्पें लगाता रहता है और रात में रोशनी करके

शास्त्र-स्वाध्याय करता है, तो वह छह काया के जीवों की हिंसा करता है, या नहीं ? भाई, धर्म में तो हिंसा का काम नहीं है। इस प्रकार दीपक-बिजली आदि की रोशनी में बैठकर स्वाध्याय नहीं कर रहा है किन्तु अनाध्याय कर रहा है। यदि उसे धर्म से रुचि है, तो दिन में इधर-उधर गप्पें मारना छोड़े, प्रमाद छोड़े और-शास्त्र-स्वाध्याय करने में लगे तभी उसे वास्तविक लाभ होगा और वह स्वात्मोन्नति कर सकेगा। दिन में—सूर्य के प्रकाश में—छोटे-छोटे जन्तु अंधकार वाले स्थानों में जाकर छिप जाते हैं, अत. उस समय स्वाध्याय करने में किसी प्रकार की हिंसा नहीं होती है। रात में वे छोटे-छोटे जन्तु दीपक-बिजली आदि के प्रकाश से आकर्षित होकर उस पर झपटते हैं और मारते है। इस प्रकार उस प्रकाश का उपयोग करनेवाला व्यक्ति उस होने वाली जीव-हिंसा के पाप का भागी होता है। परन्तु धन के लोलुपी मनुष्य दिन में तो स्वार्थ त्याग करके शास्त्र-स्वाध्याय नहीं करेंगे और धनोपार्जन में लगे रहेंगे। और रात्रि में रोशनी के सामने बैठकर शास्त्र स्वाध्याय करके पाप का उपार्जन करते हुए समझेगे कि हम धर्म और ज्ञान का उपार्जन कर रहे हैं।

आज संसार में अन्धभक्ति और मूढ़ताएँ इतनी अधिक बढ़ गई है कि लोग काली-दुर्गा आदि के ऊपर अपने पुत्र तक को मार कर चढ़ा देते है। ऐसा व्यक्ति क्या उसका भक्त कहा जायगा ? यदि वह उसका सच्चा भक्त है तो अपने शरीर को क्यों नहीं चढ़ाया ? यदि वह अपना बलिदान करता तो सच्चा भक्त कहा जाता और संसार में उसकी प्रशंसा भी होती। परन्तु दूसरे का शिर काट कर चढ़ाना तो भक्ति नहीं, किन्तु राक्षसी वृत्ति है। भक्ति तो हृदय की वस्तु है। 'भ' नाम भय का है जो उससे सर्वथा मुक्त हो, वही सच्चा भक्त कहलाता है। भक्ति कोई बाहिर दिखाने की वस्तु नहीं हैं। हां उसकी ईश्वर में तन्मयता और धर्म-परायणता को देख कर दुनिया उसे भक्त कहे, तो कह सकती है। भक्ति के लिए तो कहा है कि **'चित्त प्रसन्ने रे पूजा करे'**। जब चित्त में प्रसन्नता है, स्वस्थता है, निर्विकारीपना और निष्कपायता है, तभी प्रभु की सच्ची भक्ति हो सकती है और तभी वह सच्चा भक्त कहा जा सकता है। भाई, समभावी व्यक्ति के हृदय में ही सच्ची भक्ति आती है, विपमभावी के हृदय में वह नहीं आ सकती है। समभावी अपने कार्य को करते हुए सदा यह विचार करेगा कि मेरे इस कार्य को करते हुए किसी भी प्राणी को कष्ट तो नही पहुंच रहा है। भाई, जब इस प्रकार समभाव में रहते हुए प्रभु की भक्ति करोगे, तभी आत्मा का कल्याण हो सकेगा, अन्यथा नहीं।

वि० स० २०२७ कार्तिककृष्णा १०

जोधपुर,

१४ | धनतेरस का धर्मोपदेश

तुभ्य नमः सकलदोष विवर्जिताय, तुभ्यं नम सकलमर्मप्रदर्शकाय ।
तुभ्यं नम परमसेवक तारकाय, तुभ्यं नमो रतिपतेर्मदनाशकाय ॥

बन्धुओ, आज धनतेरस है। धन दो प्रकार का है—एक वह जिसे ससार रुपये-पैसे आदि के रूप मे मानता है और दूसरा है ज्ञानधन। पहिला धन भौतिकवादी, अज्ञानी और मिथ्या-दृष्टियो को प्रिय होता है और वे लोग सतत उसकी प्राप्ति के लिए सलग्न रहते हैं। किन्तु दूसरा धन आत्मानन्दी, सद्ज्ञानी और सम्यग्दृष्टि जीवो को प्रिय होता है। लौकिक जन आज के दिन भौतिक धन की पूजा—उपासना करते हैं। किन्तु पारलौकिक सुख के इच्छुक आत्मानन्दी पुरुष आज के दिन अपने ज्ञानधन की उपासना और आराधना करते हैं, क्योकि वे जानते हैं कि—

धन समाज गज वाजि राज तो काज न आवे,
ज्ञान आपको रूप भये थिर अचल रहावे।
ज्ञान समान न आन जगत मे सुख को कारन,
यह परमामृत जन्म जरा मृति रोग-नशावन ॥

भाई, यह हाथी घोडे वाला राज-पाट और दुनिया का ठाट-बाट बढाने वाला लौकिक धन सब यही पडा रह जाता है, मरते समय जीव के साथ नही जाता और परभव मे दुखो से छुडाने मे सहायक नही होता है। किन्तु ज्ञानधन अपनी आत्मा का स्वरूप है, वह प्राप्त हो जाने

पर स्थिर और अचल रहता है, फिर उसका कभी विनाश नहीं होता है। इसलिए ज्ञान के समान अन्य कोई भी लौकिक धन जीव को सुख का कारण नहीं हैं। यह ज्ञानरूपी धन परम अमृत है जो कि अनादिकाल से लगे हुए जन्म, जरा और मरणरूप रोगों को नाश करने वाला है। इसीलिए ज्ञानी जन और आध्यात्मिक पुरुष अनादिकाल से बंधे हुए कर्मों को दूर करके शुद्ध ज्ञानस्वरूप को पाने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं। आज का दिन हम उसी अभीष्ट धन को प्राप्त करने के लिए प्रेरणा देता है।

ज्ञानधन की वर्षा

यहां पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि प्रत्येक मास के दोनों पक्षों में तेरस का दिन आता है, फिर आज के दिन को ही 'धनतेरस' क्यों कहा ? इसका उत्तर यह है कि इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के अन्त में जैन-शासन के उन्नायक और महान् प्रवर्तक भगवान महावीर स्वामी हुए हैं। उन्होंने आत्मा के परम धन केवलज्ञान को प्राप्त कर तीस वर्ष तक धर्म की दिव्य देशना दी और साधु-साध्वी, श्रावक श्राविकाओं के भीतर धर्म का संचार करते रहे। उस समय सारे संसार में जो अज्ञान और मिथ्यात्व का प्रचार हो रहा था, लोग पाखण्डों में फंस रहे थे, दीन-निरपराध प्राणियों को यज्ञों में होम रहे थे और देवी-देवताओं की बलि चढा रहे थे तब भगवान महावीर ने अपनी सहज मधुर वाणी से लोगों को धर्म का सत्य और सुख-कारक मार्ग बताया जिस पर चल करके अनेक प्राणियों ने अपना उद्धार किया। उनकी दिव्य देशना रूप वचन-गंगा में अवगाहन कर महा मिथ्यात्वी गौतम जैसे पुरुष भी उनकी धर्म-ध्वजा को फहराने वाले बन गये। जब भगवान ने देखा कि अब हमारे आयुष्य के केवल दो दिन ही शेष रह गये है, तब आज के दिन उन्होंने अपने आज तक के उपदेशों से उपसहार रूप अपृष्ट वागरणा प्रारम्भ की। इसके पूर्व तो जब कोई जिज्ञासु व्यक्ति पूछता था, तब भगवान् उत्तर देते थे। किन्तु आज अपने आयुष्य का अन्तिम समय समीप आया जान कर उन्होंने बिना किसी के पूछे ही उपदेश देना उचित समझा। और ज्ञानधन की अपूर्व वर्षा की। उन्होंने कार्तिककृष्णा अमावस्या के प्रभातकाल तक निर्वाण होने तक जो दिव्य देशना दी, वह उत्तराध्ययन के नाम से प्रसिद्ध हुई। भगवान ने अपने तीस वर्ष के देशनाकाल में चरणानुयोग द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग और धर्मकथानुयोगरूप चार अनुयोगों के द्वारा उपदेश दिया था। जिसका भारी विस्तार द्वादशांगवाणी के रूप में आज भी उपलब्ध है। आज के दिन भगवान ने उक्त चारों अनुयोगों के उपसहार रूप

जो देशना प्रारम्भ की उसमें चारो ही अनुयोगों का समावेश हुआ है। उस ज्ञानरूपदिव्य देशनारूप धन की प्राप्ति की स्मृति में यह तेरस 'धन तेरस' के नाम से प्रसिद्ध हुई है।

उत्तराध्ययन का उपदेश

उत्तराध्ययन के जिन अध्ययनों में आचार का प्रतिपादन किया गया है, वह चरणानुयोग रूप है। जिनमें जीवादि द्रव्यों का और उनके भावो एवं लेश्याओं आदि का वर्णन है, वे अध्ययन द्रव्यानुयोग रूप हैं। जिनमें जीवों के भवादि की संख्या का वर्णन किया गया है, वे गणितानुयोग रूप हैं और जिनमें अरिष्टनेमि आदि महापुरुषों की जीवन-कथाओं का चित्रण किया है उन्हें धर्म कथानुयोग रूप समझना चाहिए। इस प्रकार भगवान ने अपने जीवन के अन्त में जो कुछ शेष ज्ञानरूप धन सुरक्षित रख छोड़ा था, वह सब गौतम के माध्यम से सर्व शिष्य परिवार को संभला दिया।

उत्तराध्ययन का प्रथम अध्ययन विनय सूत्र है। इसमें बताया गया है कि हे भव्यजीवो, तुम विनयवान् बनो, विनयशील बनो और विनयी होकर उत्तम गुणों का उपार्जन करो, आचार्य के गुरु के समीप शान्त चित्त होकर, चंचलता और वाचालता छोड़कर उनके पास अर्थ-युक्त पदों को सीखो एवं निरर्थक बातों को मत कहो।

निसन्ते सियाऽमुहरी बुद्धाणं अन्तिए सया।
अट्ठजुत्ताणि सिक्खेज्जा, निरट्ठाणि य वज्जए॥

गुरु के समीप बिना पूछे कुछ भी नही बोले, पूछे जाने पर असत्य न बोले, क्रोध न करे। जो गुरु की आज्ञा पालन नहीं करता, गुरु की सेवा-शुश्रूषा नहीं करता, गुरु के प्रतिकूल वर्तन करता है, वह अविनीत कहलाता है। अतः शिष्य को उक्त कार्य छोड़कर विनीत होना चाहिये।

दूसरा परीषह अध्ययन है। इसमें बतलाया गया है जो विनीत होगा, वही परीषहों को सहन कर सकेगा। परीषहों को क्यों सहन करना चाहिये, इसका उत्तर देते हुए वाचक-प्रवर उमास्वाति ने कहा है—

मार्गाच्यवन निर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः।

अर्थात्—धारण किये हुए धर्म मार्ग से च्युत न होने के लिए और संचित कर्मों की निर्जरा के लिए परीषहों को सहन करना चाहिये।

भगवान महावीर की धर्म-प्ररूपणा के दो मुख्य अंग हैं अहिंसा और कष्ट-सहिष्णुता। कष्ट सहन करने का अर्थ है कि अहिंसा धर्म की भर-पूर

रक्षा की जाय, भले ही हमें कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े। परन्तु मेरे निमित्त से किसी भी प्राणी को कोई कष्ट न पहुंचे। भगवान ने कहा है कि—

जे भिक्खू सोच्चा नच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विहन्नेजा।

अर्थात्—इन क्षुधा, तृषा आदि परीषहों को जानकर अभ्यास के द्वारा परिचित होकर भिक्षाचर्या के लिए पर्यटन करता हुआ साधु उनसे स्पृष्ट होने पर धर्म-मार्ग से विचलित नही होता है। जिन महापुरुषों से सर्वप्रकार के परीषहों को, कष्टों को, सहन किया है, वे संसार से तिर गये।

तीसरे अध्ययन का नाम 'चतुरङ्गीय' है। इसमें बताया गया है कि संसार की नाना योनियों में परिभ्रमण करते हुए जीव को ये चार पद मिलना बहुत कठिन हैं—

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जन्तुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा संजमम्मि य वीरियं॥

अर्थात् इस संसार में प्राणियों के लिए ये चार अंग पाना परम दुर्लभ है—मनुष्यत्व, धर्म-श्रवण, श्रद्धा और संयम में पराक्रम प्रकट करना।

कितने ही प्राणियों को मनुष्य जन्म प्राप्त भी हो जाता है तो धर्म का सुनना नही मिलता। यदि धर्म सुनने का अवसर भी मिल जाता है तो उस पर श्रद्धा नहीं करता। और यदि श्रद्धा भी करले तो तदनुकूल आचरण रूप संयम को नहीं धारण करता है। भगवान ने कहा—

माणुसत्तम्मि आयाओ जो धम्मं सोच्च सद्दहे।
तवस्सी वीरियं लद्धुं संवुडे निद्धुणे रयं॥

अर्थात्—मनुष्यत्व को प्राप्त कर जो धर्म को सुनता है, उसमें श्रद्धा करता है और वीर्य शक्ति को प्रकट करता है, वह तपस्वी कर्मरज को धो डालता है।

चौथे अध्ययन का नाम 'असंस्कृत' है। भगवान ने कहा है कि—

असंखयं जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु णत्थि ताणं।
एवं वियाणाहि जणे पमत्ते, कण्णू विहिंसा अजया गहिन्ति॥

हे भव्यो, यह जीवन असंस्कृत है अर्थात् बड़ा चंचल है—सांधा नही जा सकता, इसलिए प्रमाद मत करो। बुढ़ापा आने पर कोई शरण नही होता।

प्रमादी, हिंसक और असंयत मनुष्य मरण काल उपस्थित होने पर फिर किसकी शरण लेंगे ?

भगवान् ने कहा—जो मनुष्य पाप करता है, उसे उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है, क्योंकि किये हुए कर्मो का फल भोगे विना उनसे छुटकारा नही मिलता है। इसलिए साधु को चाहिए कि—

चरे पयाइं परिसंकमाणो, जं किंचि पासं इह मण्णमाणो।
लाभंतरे जीविय वूहइत्ता, पच्छा परिन्नाय मलावधंसी ॥

पग-पग पर दोषों से भय खाता हुआ और थोड़े से भी दोष को पाप मानता हुआ चले। जव तक शरीर से धर्म-साधन होता रहे और नये-नये गुणों की प्राप्ति होती रहे, तव तक जीवन को पोषण दे। जब देखे कि अव इस देह से धर्म-साधन संभव नही है और जीवन का रहना असंभव है, तव विचार-पूर्वक इस शरीर का परित्याग कर देवे।

पांचवें अध्ययन का नाम 'अकाम मरणीय' है। इसमें वताया गया है कि मरण दो प्रकार के होते हैं—सकाम मरण और अकाममरण। भगवान् ने कहा है कि—

वालाणं अकामं तु मरणं असइं भवे।
पंडियाणं सकामं तु उक्कोसेण सइं भवे॥

विना इच्छा के परवश होकर—मरने को अकामरण कहते है और स्वेच्छा पूर्वक स्वाधीन होकर-मृत्यु के अंगीकार करने को सकामरण कहते हैं। अज्ञानी और मिथ्या दृष्टियों के अकामरण वार-वार अनादि काल से होता चला आ रहा है। किन्तु सकाम मरण पंडितों के—ज्ञानी जनों के उत्कर्षतः एक वार होता है।

छठे अध्ययन का नाम 'क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय' है। इसमें वतलाया है कि—

विविच्च कम्मणो हेउं कालकंखी परिव्वए।
मायं पिंडस्स पाणस्स कडं लद्धूण भक्खए॥

साधु को चाहिए कि वह कर्म के हेतुओं को दूर कर समयज्ञ होकर विचारे। संयम-निर्वाह के लिए आहार और पानी की जितनी मात्रा आवश्यक हो, उतनी गृहस्थ के घर में सहज निष्पन्न वस्तु प्राप्त कर भोजन करे। इस प्रकार इस अध्ययन में साधु की गोचरी आदि कर्त्तव्यों को वतलाया गया है।

सातवें अध्ययन का नाम 'उरभ्रीय' है। इसमें एक मेंढ़ा और गाय के वछड़े का दृष्टान्त देकर वतलाया गया है कि जो रसों में गृद्ध होता है, वह मेंढ़े के समान मारा जाकर दूसरों का भक्ष्य वनता है। इसका संक्षेप मे कथानक इस प्रकार है—

एक ठाकुर के पास एक गाय और उसका एक बछड़ा और एक मेंढा था। वह मेंढे को खूब बढ़िया खाना खिलाता-पिलाता और उसे प्रतिदिन सहलाता-धुलाता था। बछड़ा प्रतिदिन यह देखता और मन ही मन में सोचता कि मालिक इस मेंढे को तो बढ़िया खाना देता है और मुझे यह सूखी घास खाने को देता है। एक दिन उस बछड़े ने अपनी माता से कहा—तब माता ने कहा—वत्स, तू नहीं जानता, इसे मार कर खाने के लिए मोटा-ताजा किया जा रहा है, किसी दिन इसके गले पर छुरी चलेगी और यह ठाकुर के मेहमानों का भक्ष्य बन जायगा। कुछ दिन बाद ठाकुर के घर कुछ मेहमान आये और वह ठाकुर छुरी लेकर उसे मारने आया। यह देखकर बछड़ा बहुत भयभीत हुआ। तब उसकी मां ने कहा—"बेटा, तू मत डर। जिसने माल खाये हैं, वही मारा जायगा।' थोड़ी देर में बछड़े के देखते-देखते ठाकुर ने उसके गले पर छुरी चलाकर उसे मार डाला और उसका मांस पका कर मेहमानों को परोस दिया।

इस दृष्टान्त का अभिप्राय यह है कि जो साधु रस का लोलुपी होता है भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार न करके अपने शरीर को पुष्ट करता रहता, उसे भी एक दिन दुर्गति में जाकर दूसरों का भक्ष्य बनना पड़ता है। भगवान् ने कहा—

जहा खलु से उरब्भे आएसाए समीहिए।
एव बाले अहम्मिट्ठे ईहई नरयाउयं॥

अर्थात्—जैसे मेहमानों के लिए माल खानेवाला मेढा मारा जाता है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव अभक्ष्य-भक्षण कर और शरीर को पुष्ट कर नरक के आयुष्य की इच्छा करता है। इसलिए हे भव्य पुरुषों, तुम्हें रसका लोलुपी, और परिग्रहक संचय करने वाला नहीं होना चाहिए।

जहां लाभ वहाँ लोभ

आठवां कापिलीय अध्ययन है। इसमें बतलाया गया है कि कपिल नामक एक ब्राह्मण दो माशा सोना प्राप्त करने के निमित्त राजा के पास सर्व प्रथम पहुंच कर आशीर्वाद देने के लिए रात को ही राज महल की ओर चल दिया और राज पुरुषों के द्वारा पकड़ा जाकर राजा के सामने उपस्थित किया गया। राजा ने उससे रात्रि में राजमहल की ओर आने का कारण पूछा। कपिल ने सहज व सजल भाव से सारा वृत्तान्त सुना दिया। राजा उसकी सत्यवादिता पर बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला—ब्राह्मण, मैं तेरे सत्य बोलने पर बहुत प्रसन्न हूं। तू जो कुछ मांगेगा, वह तुझे मिलेगा। कपिल ने कहा—राजन्, सोचने के

लिए कुछ समय दिया जाय। राजा ने कहा—अच्छा। कपिल खड़ा-खड़ा सोचता है—दो माशा सोने से क्या होगा? क्यों न मैं सौ मोहरें मांगू? चिन्तन-धारा आगे बढ़ी और हजार मांगने की सोचने लगा। धीरे-धीरे लोभ की मात्रा और बढ़ी और सोचने लगा—हजार से भी क्या होगा? लाख मोहरें मांगना चाहिए? फिर सोचने लगा लाख से भी क्या होगा? करोड़ मोहरें मांगना चाहिए। इसी समय उसे पूर्वभव का जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हो गया और उसका लोभ शान्त हो गया। वह राजा से बोला—महाराज, मुझे अब कुछ भी नही चाहिए। अब मेरी तृष्णा शान्त हो गई है। मेरे भीतर करोड़ से भी अधिक मूल्यवान् वस्तु प्रकट हो गई है। इस अवसर पर भगवान् ने कहा है—

जहा लाहो तहा लोहो लाहा लोहो पवड्ढई।
दो मासकयं कज्जं कोडीए वि न निट्ठियं॥

मनुष्य को जैसे-जैसे लाभ होता जाता है, वैसे-वैसे ही लोभ बढ़ता जाता है। देखो, कपिल ब्राह्मण का दो माशा सोने से पूरा होने वाला कार्य करोड़ मोहरें से भी पूरा नहीं हुआ।

जो पुरुष कपिल के समान उस लोभ का परित्याग करता है, वह अपना और धर्म का नाम दिपाता है।

नमिप्रव्रज्या नाम का नवम अध्ययन है। नमिराज मिथिला नगरी के राजा थे। उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हुआ और वे पुत्र को राज्य-भार सौंप कर प्रव्रज्या के लिए निकले। उनकी परीक्षा के लिए इन्द्र ब्राह्मण का वेष बनाकर आया और बोला—राजन्! हस्तगत रमणीय प्रत्यक्ष उपलब्ध भोगों को छोडकर परोक्ष काम भोगों की इच्छा करना क्या उचित है? नमिराज बोले—ब्राह्मण, ये काम-भोग त्याज्य हैं, वे शल्य के समान दुःखदायी है, विष के समान मारक और आशीविष सर्प के समान भयंकर हैं! तब ब्राह्मण वेषी इन्द्र कहता है—राजन्, तुम्हारे अनेक राजा शत्रु हैं, पहिले उन्हें वश मे करो, पीछे मुनि बनना। नमि ने कहा—जो संग्राम में लाखों योद्धाओं को जीतता है, उसकी अपेक्षा जो केवल अपनी आत्मा को जीतता है वह श्रेष्ठ विजेता है। इसलिए दूसरों के साथ युद्ध करने से क्या लाभ है? अपने आपको जीतने वाला मनुष्य ही सुख पाता है। पांच इन्द्रियां क्रोध, मान, माया, लोभ और मन ये दुर्जेय हैं। जो अपनी आत्मा को जीत लेता है, वह इन दुर्जेय शत्रुओं पर सहज में ही विजय पा लेता है। इस सन्दर्भ की ये गाथायें स्मरणीय है।

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥
अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण वज्झओ ।
अप्पाणमेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए ।
पंचिदियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च ।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वं अप्पे जिए जियं ॥

इस प्रकार इन्द्र नाना प्रकार से फुसलाकर उनकी परीक्षा करता है, किन्तु नमिराज उसके प्रश्नों का ऐसा युक्ति-युक्त उत्तर देता है कि वह स्वयं निरुत्तर हो जाता है और अपना रूप प्रकट कर उनकी स्तुति और वन्दन करके स्वर्ग चला जाता है। नमिराज भी प्रव्रजित होकर तपस्या करके संसार से मुक्त हो जाते हैं। इस अवसर पर भगवान ने कहा है—

एवं करेन्ति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टन्ति भोगेसु, जहा से नमीरायरिसि ॥

जो सबुद्ध, पंडित और विचक्षण बुद्धि वाले पुरुष इस प्रकार काम भोगों से विरक्त होकर आत्म-साधना करते हैं वे नमिराजर्षि के समान संसार से निवृत्त होते हैं, अर्थात् मुक्तिपद प्राप्त करते हैं।

दशवां द्रुमपत्रक नामक अध्ययन है। इसमें भगवान महावीर गौतम स्वामी को सम्बोधन करते हुए कहते हैं—

दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए ।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम मा पमायए ॥

हे गौतम, जैसे अनेक रात्रियों के बीतने पर वृक्ष का पका हुआ पीला पत्ता गिर जाता है, उसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी एक दिन समाप्त हो जाता है। इसलिए तू क्षणभर भी आत्म-साधन करने में प्रमाद मत कर।

इस प्रकार भगवान अनेक दृष्टान्तों के द्वारा संसार की अनित्यता और असारता का दिग्दर्शन कराते हैं और बतलाते हैं कि किस प्रकार यह जीव पृथ्वी कायादि में असंख्य और अनन्त भवों तक परिभ्रमण करते इस मनुष्य भव में आया है। इसमें भी आर्यपना, इन्द्रिय-सम्पन्नता, उत्तम धर्म श्रवण, आदि का सुयोग बड़ी कठिनता से मिलता है। जब यह सब सुयोग तुझे मिला है और अब जब कि तेरी एक-एक इन्द्रिय प्रतिक्षण जीर्ण हो रही है, तब ऐसी दशा में तुझे एक क्षणभर भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। अन्त मे भगवान् कहते हैं—

तिण्णो हु सि अण्णवं महं, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ।
अभितुर पारं गमित्तए, समयं गोयम, मा पमायए ।।

हे गौतम, तू महासमुद्र को तैर गया, अब किनारे के पास पहुंच कर क्यों खड़ा है ? उसको पार करने के लिए जल्दी कर और एक क्षण का भी प्रमाद मत कर।

भगवान् की ऐसी सुललित वाणी को सुनकर ही गौतम राग द्वेष का छेदन करके सिद्धि को प्राप्त हुए हैं।

ग्यारहवें अध्ययन का नाम 'बहुश्रुत पूजा' है। इसमें बताया गया है कि जो बहुश्रुती—द्वादशाङ्गवाणी का वेत्ता और चतुर्दश पूर्वधर होता है, वह कम्बोज देश के घोड़े के समान शील से श्रेष्ठ होता है, पराक्रमी योद्धा के समान अजेय होता है, साठ वर्षीय हस्ती के समान अपराजेय होता है, यूथाधिपति वृषभ के समान गण का प्रमुख होता है, सिंह के समान अन्य तीर्थिकों में दुष्प्रधर्ष होता है, वासुदेव के समान अबाधित पराक्रमी होता है, चतुर्दश रत्नों के स्वामी चक्रवर्ती के समान चतुर्दश पूर्वों का धारक होता है, उदीयमान सूर्य के समान तप के तेज से प्रज्वलित होता है, पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान सकल कलाओं से परिपूर्ण होता है, धान्य से भरे कोठों के समान श्रुत से भरा होता है, जम्बूवृक्ष के समान श्रेष्ठ होता है, विदेह-वाहिनी सीता नदी के समान निर्मल एवं अगाध पांडित्य वाला होता है, मन्दर (सुमेरु) के समान उन्नत होता है और स्वयम्भूरमण समुद्र के समान अक्षय ज्ञान से परिपूर्ण होता है।

बहुश्रुतता का प्रधान कारण विनय है। जो व्यक्ति विनीत होता है उसका श्रुत सफल होता है और जो अविनीत होता है, उसका श्रुत फलवान् नहीं होता। इसलिए भगवान ने सर्व प्रथम कहा—

अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्भई।
थम्भा कोहा पमाएणं, रोगेणाऽलस्सएण य ।।

मनुष्य पांच स्थानों के कारण शिक्षा को प्राप्त नहीं कर सकता है—मान से, क्रोध से, प्रमाद से, रोग से और आलस्य से।

शिक्षा-प्राप्ति के लिए बतलाया गया है कि वह हास्य का त्याग करे, इन्द्रिय और मन को वश में रखे, किसी की मर्म की बात को प्रकट न करे, चरित्र से हीन न हो, कुशीली न हो, रस-लोलुपी न हो, क्रोधी न हो और सत्यवादी हो। इस प्रकार इस अध्ययन में अविनय के दोष बताकर उसके छोड़ने का और विनय के गुण बता कर उसके धारण करने का उपदेश देकर कहा गया है कि विनय गुण के द्वारा ही साधु बहुश्रुतधर बनकर जगत्पूज्य

होता है। इसलिए साधु को सदा विनयपूर्वक श्रुत का अध्ययन करना चाहिए।

सच्चा यज्ञ

बारहवा 'हरिकेशीय' अध्ययन है। इसमें चाण्डाल के कुल में उत्पन्न हुए हरिकेश बल नामक एक महान् तपस्वी साधु का वर्णन किया गया है। मास क्षमण की तपस्या के पश्चात् पारणा के लिए वे नगर में आये। एक स्थान पर ब्राह्मण लोग यज्ञ कर रहे थे। भिक्षा लेने के लिए वे यज्ञमण्डप में पहुंचे। उनके मलिन एवं कृश शरीर को देखकर जातिमद से उन्मत्त, अजितेन्द्रिय, अब्रह्मचारी और अज्ञानी ब्राह्मण उनकी हंसी उड़ाते हुए बोले—अरे, यह बीभत्स रूपवाला, काला काला और बड़ी नाकवाला, अधनंगा पिशाच-सा कौन आ रहा है? जब हरिकेशबल समीप पहुंचे तो ब्राह्मण बोले—यहा क्यो आये हो? तुम पिशाच जैसे दिख रहे हो, यहा से चले जाओ। तिन्दुक वृक्षवासी यक्ष से साधु का यह अपमान नही देखा गया और वह उनके शरीर मे प्रवेश कर बोला मैं श्रमण हूं, सयमी हू, ब्रह्मचारी हूँ, खान-पान के पचन-पाचन से और परिग्रह से रहित हूं अत भिक्षा के लिए यहा आया हू। तब यज्ञ करने वाले वे ब्राह्मण बोले—यहा जो भोजन बना है, वह केवल ब्राह्मणो के लिए है, अब्राह्मणो के लिए नही? अतः हम तुम्हे नहीं देंगे। दोनो ओर से धर्म पात्र कौन हैं और कौन नहीं, इस पर वार्तालाप होता है और साधु के शरीर मे प्रविष्टयक्ष उन ब्राह्मणों से कहता है—

> तुब्भेत्थ भो भारधरा गिराणं, अत्थ ण जाणाह अहिज्ज वेए।
> उच्चावयाइं मुणिणो चरंति, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं॥

हे ब्राह्मणो, तुम लोग इस ससार मे वाणी का केवल भार ढो रहे हो? वेदो को पढकर भी उनका अर्थ नही जानते हो? जो मुनि भिक्षा के लिए उच्च और नीच सभी प्रकार के घरो मे जाते है, वे ही पुण्य क्षेत्र और दान के पात्र है। इसलिए हमे आहार दो।

इस पर क्रोधित होकर यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण बोला—अरे, यहा कौन है, इसे डडे मारकर और गलहत्था देकर यहा से बाहिर निकाल दो। यह सुनते ही कुछ ब्राह्मणकुमार मुनि की ओर दौडे और डडो, बेतो और चाबुको से उन्हे मारने लगे। तब उस यक्ष ने सर्व ब्राह्मण कुमारो को अपनी विक्रिया शक्ति से भूमि पर गिरा दिया और उनके मुख से खून निकलने लगा। तब वहा पर जो राजकुमारी भद्रा उपस्थित थी, उसने सब ब्राह्मणो से कहा — अरे, ये मुनि उग्रतपस्वी है, अनेक लब्धि-सम्पन्न है। इनका अपमान करके

तुम लोगों ने वहुत बुरा काम किया है। जाओ, इनसे क्षमा मांगो। अन्यथा कुपित होने पर ये समस्त संसार को भस्म कर सकते हैं। तब उन लोगों ने जाकर मुनि से क्षमा-याचना की। यक्ष ने उन ब्राह्मण कुमारों को स्वस्थ कर दिया। अन्त में मुनि ने उन ब्राह्मणों को सत्यार्थ धर्म का उपदेश दिया और कहा—

> छज्जीवकाए असमारभंता, मोसं अदत्तं च असेवमाणा।
> परिग्गहं इत्थिओ माणमायं, एयं परिन्नाय चरंति दंता ॥
> सुसंवुडो पंचहिं संवरेहिं, इहजीवियं अणवकंखमाणो।
> वोसट्ठकाओ सुइचत्तदेहो, महाजयं जमई जन्नसिट्ठं ॥

जो छह कायावाले जीवों की हिंसा नहीं करते हैं, झूठ नहीं बोलते, अदत्त वस्तु नही लेते, स्त्री के और परिग्रह के त्यागी हैं, क्रोध, मान, माया आदि को जीतते हैं, जितेन्द्रिय हैं, पांचों संवरों से सुसंवृत हैं, काय से भी ममत्व-रहित हैं, वे ही सच्चा महान् यज्ञ करते है।

उन्होंने बतलाया कि उस सत्यार्थ यज्ञ में तप ही अग्नि है, जीव ही उसका हवनकुण्ड है, योग ही शुचिस्रवा घी डालने की करछियां है, शरीर ही समिधा है, कर्म ही ईंधन हैं और संयम ही शान्ति पाठ है इस प्रकार के यज्ञ को जो करते हैं, वे ही परम पद को प्राप्त करते हैं। इसलिए तुम लोग इस पाप यज्ञ को छोड़कर धर्मयज्ञ को करो। इस प्रकार वे हरिकेशबल मुनि ब्राह्मणों को धर्मोपदेश देकर चले गये और उन ब्राह्मणों ने सत्यधर्म स्वीकार कर लिया।

तेरहवें अध्ययन का नाम चित्तसम्भूतीय है। इसमें बताया गया है कि चित्त और सम्भूत ये दो भाई थे। दोनों साधु बनकर साधना करने लगे। सम्भूत ने एक चक्रवर्ती की विभूति को देखकर निदान किया कि तप के फल से मुझे भी ऐसी ही विभूति प्राप्त हो। चित्र ने उसे ऐसा निदान करने से रोका। परन्तु वह नहीं माना। मरण करके दोनों स्वर्ग गये। वहा से चव कर सम्भूत का जीव ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती हुआ और चित्त का जीव स्वर्ग से आकर एक सेठ का पुत्र हुआ। पूर्व भव का स्मरण हो जाने से वह युवावस्था में ही साधु बन गया। ग्रामानुग्राम विचरते हुए वे काम्पिल्य पुर आये। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती उनकी वन्दना को गया। चक्रवर्ती को भी जातिस्मरण हो गया। अतः उसने चित्त साधु से दोनों के पूर्वभव कहे। तत्पश्चात् पूर्वभव के भ्रातृ-स्नेह से उसने चित्त साधु से कहा—तू क्यों प्रव्रज्या के कष्ट भोगता है ? अतः इसे छोड़कर और मेरे पास आकर सर्व प्रकार के सांसारिक सुखों को भोग।

नट्टेहि गीएहि य वाइएहि, नारीजणाइं परिवारयंतो।
भुंजाहि भोगाइं इमाइं भिक्खू, मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्खं ॥

अर्थात्—हे भिक्षु, तू नाट्य, गीत और वाद्यों के साथ नारीजनों को परिवृत करता हुआ इन भोगों को भोग। यह मुझे रुचता है। प्रव्रज्या तो वास्तव में दुःखकारी है।

यह सुनकर चित्त भिक्षु ने उत्तर दिया—

सव्वं विलविय गीयं, सव्वं नट्टं विडंवियं।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥

हे राजन्, सब गीत विलाप हैं, सब नाट्य विडम्बना हैं, सब आभरण भार हैं और सब काम भोग दुःखदायी हैं।

इस प्रकार दोनों में राग और विराग की विस्तृत चर्चा होती है। परन्तु चक्रवर्ती अपने काम-भोगों को नही छोड़ सका। क्योंकि जो निदान करता है, उसकी काम-भोगों में तीव्र वृद्धि होती है। अतः वह मरकर नरक गया और चित्त मुनि संयम पालन करके मुक्ति को प्राप्त हुआ। इस अध्ययन का सार यह है कि मनुष्य को चाहिए कि वह धर्म-सेवन करके उसके फल पाने को निदान नही करे। किन्तु कर्म-जाल से छूटने के लिए ही तपस्या करे।

त्याग के मार्ग पर

चौदहवें अध्ययन का नाम 'इपुकारीय' है। इसमें बताया गया है कि कुरुदेश में इपुकार नाम का एक नगर था उसके राजा का नाम भी इपुकार था। उसी नगर में भृगु पुरोहित था। सन्तान के न होने से वह और उसकी स्त्री दोनों चिन्तित रहते थे। अन्त में बहुत दिनों के पश्चात् एक साधु के आशीर्वाद से दो युगल पुत्र उत्पन्न हुए। साधु ने कह दिया था कि ये पुत्र साधु को देखते ही साधु बन जावेंगे, अतः तुम उनको रोकने का प्रयत्न मत करना। समय पर उसकी स्त्री के गर्भ रहा और दो पुत्र एक साथ उत्पन्न हुए। जब वे कुछ बड़े हुए तो भृगु ब्राह्मण ने उनसे कहा—पुत्रो, साधुओं से दूर रहना। ये बच्चों को पकड़कर जंगल में ले जाते हैं और उन्हें मार डालते हैं। एक दिन जब ये खेलते हुए किसी वन में पहुंचे तो सामने से आते हुए कई साधु दिखाई दिये। वे भयभीत होकर एक वृक्ष पर चढ़ गये। वे साधु आकर उसी वृक्ष के नीचे ठहर गये और अपनी झोली में से पात्र निकाल कर भोजन करने लगे। उन साधुओं की गतिविधि को देखते-देखते उनको जातिस्मरण हो गया और वृक्ष पर से उतरकर उन दोनों ने साधुओं की वन्दना की और अपने घर आकर

संसार की असारता और अनित्यता का वर्णन कर साधु वनने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा—

असासयं दट्ठु इमं विहारं, वहु अंतरायं न य दीहमाउं।
तम्हा गिहंसि न रइ लहामो, आमंतयामो चरिस्सामु मोणं॥

हमने देख लिया कि यह मनुष्य जीवन अनित्य है, उसमे भी विघ्न वहुत हैं और आयु अल्प है इसलिए हमे घर मे कोई आनन्द नही है। हम मुनि वनने के लिए आपकी अनुमति चाहते है।

पुत्रों की यह वात सुनकर पिता ने वहुत कुछ समझाया और कहा—

अहिज्ज वेए परिविस्सविप्पे, पुत्ते पडिट्ठप्प गिहंसि जाया।
भोच्चाण भोए सह इत्थियाहिं, आरण्णगा होह मुणी पसत्था॥

हे पुत्रो, पहिले वेदो को पढ़ो, ब्रह्मणों को भोजन कराओ, स्त्रियों के साथ भोग करो, पुत्रो को उत्पन्न करो। उनका विवाह कर और उन पर घर का भार सौंपकर फिर अरण्यवासी उत्तम मुनि वन जाना।

इस प्रकार उनको समझाने और वैदिक धर्मानुसार गृहस्थ वनकर घर में रहने के लिए वहुत कुछ कहा। पर उन दोनों पुत्रों ने अपने अकाट्य उत्तरों से माता-पिता को निरुत्तर कर दिया और उनको संवोधित करते हुए कहा—

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइयो॥

अर्थात् जो जो रात वीत रही है, वह लौटकर नही आती है। अत: धर्म की आराधना करनी चाहिए। क्योकि धर्म करनेवाले की ही रात्रियां सफल होती हैं।

अन्त में पुत्रों के उपदेश से प्रभावित होकर भृगुपुरोहित ने अपनी स्त्री को समझाया और दोनों पुत्रों के साथ उनके माता-पिता ने भी दीक्षा ले ली। उनकी सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी नही था, अत. जव इपुकार राजा उनके धन को अपने खजाने मे भिजवा रहा था, तव उसकी रानी ने कहा—

वन्तासी पुरिसो रायं, न सो होइ पसंसिओ।
माहणेण परिच्चत्तं धणं आदाउमिच्छसि॥

हे राजन्, वमन की हुई वस्तु को खाने वाला पुरुप प्रशंसा को नही पाता। तुम ब्राह्मण के द्वारा छोड़े गये इस धन को लेने की इच्छा करते हो?

रानी के द्वारा इस प्रकार संवोधित किये जाने पर राजा का मन भी संसार से विरक्त हो गया और वह भी अपनी रानी के साथ ही गुरु के पास

जाकर दीक्षित हो गया। अन्त में उस पुरोहित-परिवार के साथ राजा-रानी भी तपस्या करते हुए मुक्त हो गये। इषुकार राजा के नाम से ही इस अध्ययन का नाम 'इषुकारीय' प्रसिद्ध हुआ है।

पन्द्रहवां 'सभिक्षुक' अध्ययन है। इसमें बतलाया गया है कि भिक्षु (साधु) वह है जो धर्म को स्वीकार कर काम-वासना का छेदन करता है; रात्रि में भोजन और विहार नहीं करता है, परीषहों को जीतता है, आत्मा को सदा संवृत रखता है, हर्ष और विषाद से दूर रहता है, कुतूहलों से दूर रहता है, छिन्न, स्वर, भौम, अन्तरिक्ष, स्वप्न, लक्षण दंड, वास्तु विद्या, अंग विकार आदि सामुद्रिक विद्या का उपयोग नहीं करता है, वमन, विरेचन और धूमने आदि का प्रयोग नहीं करता है, जो लाभ-अलाभ में समभावी रहता है, देव, मनुष्य और तिर्यक्-कृत उपसर्गों को शान्ति से निर्भय होकर सहन करता है, जो सबको अपने समान समझता है और जो राग-द्वेष से रहित है, वही भिक्षु है।

ब्रह्मचर्य की सुरक्षा :

सोलहवें अध्ययन का नाम ब्रह्मचर्य-समाधिस्थान है। इसमें ब्रह्मचर्य की साधना के लिए अति आवश्यक दश स्थानों का वर्णन किया गया है—१ निर्ग्रन्थ साधु स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त स्थान पर शयन और आसन न करे। २ स्त्रियों के बीच में बैठकर कथा न करे। ३ स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे। ४ स्त्रियों के सुन्दर अंगों को न देखे। ५ स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, विलास और विलाप आदि को न सुने। ६ पूर्व में भोगे हुए भोगों का स्मरण न करे। ७ गरिष्ठ रसों वाला आहार न करे। ८ मात्रा से अधिक न खावे-पीवे। ९ शरीर का शृंगार न करे। और १० मनोज्ञ रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द में आसक्त न हो। अन्त में कहा गया है कि—

देव दाणव गंधव्वा, जक्ख रक्ख सकिन्नरा।
बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करन्ति तं॥

अर्थात् जो इस दुष्कर ब्रह्मचर्य का उक्त प्रकार से पालन करते हैं, उस ब्रह्मचारी साधु को देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, और किन्नर नमस्कार करते हैं।

अन्त में कहा गया है कि—

एस धम्मे धुवे निअए, सासए जिणदेसिए।
सिद्धा सिज्झन्ति चाणेण, सिज्झिस्संति तहापरे॥

यह ब्रह्मचर्य धर्म ध्रुव, नित्य, शाश्वत और जिनोपदिष्ट है। इसका पालन कर अनेक जीव भूतकाल मे सिद्ध हुए है, वर्तमान मे सिद्ध हो रहे है और भविष्य काल मे सिद्ध होगे।

सत्तरहवे अध्ययन का नाम 'पापश्रमण' है। श्रमण अर्थात् साधु दो प्रकार के होते हैं—धर्मश्रमण पापश्रमण। जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य इन पाच आचारो का विधिवत् पालन करता है वह धर्मश्रमण है। इसका विस्तृत स्वरूप पन्द्रहवें अध्ययन मे बताया गया है। जो ज्ञानादि आचारों का सम्यक्प्रकार से पालन नही करता है वह पापश्रमण कहलाता है। जो प्रव्रजित होकर अधिक नीद लेता है, खब पीकर सुख मे सोता है, जो गुरुजनो की निन्दा करता है, उनकी सेवा नही करता है, जो अभिमानी है, जो द्वीन्द्रियादि प्राणियो का तथा हरित बीज और दूर्वा आदि का मर्दन करता है, जो सस्तर, फलक, पीठ, आदि का प्रमार्जन किये बिना उन पर बैठता है, जो द्रुति गति से चलता है, असावधानी से प्रतिलेखन करता है, गुरु का तिरस्कार करता है, छल-कपट करता है, वाचाल एव लालची है, विवादी एव कदाग्रही है, स्थिर आसनवाला नही है जो दूध, दही आदि विकृतियो का निरन्तर आहार करता है, जो सूर्योदय से लेकर के सूर्यास्त तक बार-बार खाता रहता है, जो जल्दी जल्दी गणपरिवर्तन करता है, पाखडियो की सेवा करता है, जो गृहस्थ की शय्या पर बैठता है, जो पार्श्वस्थ कुशील आदि साधुओ के समान असवृत है और हीनाचारी है, वह 'पापश्रमण कहलाता है। अन्त मे बताया गया है कि—

> जे वज्जए एए सया उ दोसे, से सुव्वए होइ मुणीण मज्झे।
> अयंसि लोए अमय व पूइए, आराहए दुहओ लोगमिण ॥

जो उपर्युक्त दोपो का सदा वर्जन करता है, वह मुनियो के मध्य मे सुव्रती कहलाता है। वह इस लोक मे अमृत के समान पूजित होता है और इहलोक-परलोक का आराधक होता है।

अठारहवा 'सजयीय' अध्ययन है। इसमे बताया गया है कि काम्पिल्य नगर का राजा सजय एक बार सेना के साथ शिकार खेलने को जगल मे गया और उसने वहा पर मृगो को मारा। इधर-उधर देखते हुये उसे गर्दभाली मुनि दिखायी दिये। उन्हें देखकर राजा के मन मे विचार आया कि यहा पर हरिणो को मारकर मैंने मुनि की आशातना की है। वह उनके पास गया और वन्दना करके बोला—'भगवन्', मुझे क्षमा करे। मुनि ध्यान-लीन थे, अत कुछ नही बोले। पुन उसने कहा—'भन्ते, मैं राजा सजय हू, आप

मौन छोड़कर मुझ से बोलें। मुनि ने ध्यान पारा और अभयदान देते हुये बोले—

अभओ पत्थिवा तुब्भं अभयदाया भवाहि य।
अणिच्चे जीव लोगम्मि किं हिंसाए पसज्जसि ॥
जया सव्वं परिच्चज्ज, गंतव्वमवसस्स ते।
अणिच्चे जीव लोगम्मि, किं रज्जम्मि पसज्जसि ॥

हे राजन्, तुझे अभय है और तू भी अभयदाता बन। इस अनित्य जीव लोक में तू क्यों हिंसा में आसक्त हो रहा है? तू पराधीन है और एक दिन सब कुछ छोड़कर तुझे अवश्य चले जाना है, तब तू इस अनित्य राज्य में क्यों आसक्त हो रहा है।

इस प्रकार से उन मुनि ने राजा को सम्बोधित किया और जीवन की अस्थिरता, जाति-कुटुम्बादि की असारता और कर्म-भोग की अटलता का उपदेश दिया। राजा का वैराग्य उभर आया और वह राज-पाट छोड़कर मुनि बन गया। राजा संजय की जीवन-दिशा के परिवर्तित होने के कारण ही इस अध्ययन का नाम 'संजयीय' प्रसिद्ध हुआ है।

मृगापुत्र का उद्बोधन

उन्नीसवें अध्ययन का नाम 'मृगापुत्रीय' है। इसमें मृगावती रानी के पुत्र के वैराग्य का चित्रण बहुत सुन्दर ढंग से किया गया है। जब मृगापुत्र युवा हुए तो अनेक राजकुमारियों के साथ उनकी शादी कर दी गई। एक बार जब वे महल में अपनी पत्नियों के साथ मनोविनोद कर रहे थे तब झरोखे से उन्हें मार्ग पर आते हुए एक साधु दिखे। उनके तेजस्वी रूप को देखते हुए मृगापुत्र को जातिस्मरण हो गया और साधु बनने का भाव जागृत हुआ। उन्होंने अपने माता-पिता के पास जाकर कहा—

सुयाणि मे पंच महव्वयाणि, नरएसु दुक्खं च तिरिक्ख जोणिसु।
निव्विण्णकामो मि महण्णवाओ, अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो ॥

अम्मताय मए भोगा, भुत्ता विसफलोवमा।
पच्छा कडुयविवागा, अणुबन्ध दुहावहा ॥

हे मात-तात, हमने पांच महाव्रतों को सुना है। जो उन्हें धारण नहीं करते हैं और पाप करने में संलग्न रहते हैं उन्हें नरकों में और तिर्यंच योनियों में महादुःख सहन करने पड़ते हैं। मैंने संसार के इन विषफल के सदृश कटुक विपाकवाले भोगों को अनन्त बार भोगा है। अब मैं संसार-सागर से विरक्त हो गया हूं। अब मैं प्रव्रजित होऊंगा, इसलिए आप मुझे अनुज्ञा दें।

पुत्र के इन वचनों को सुनकर माता-पिता साधुचर्या की कठिनाइयों का वर्णन करते हैं और वह मृगापुत्र सबका समाधान करके उनको निरुत्तर करता है। जब माता-पिता ने उन्हे काम भोगों की ओर आकृष्ट करने का उपक्रम किया, तब मृगापुत्र ने संसार की असारता को बताते हुए विस्तार से नरकों के दारुण दुःखों का वर्णन कर भोगों के दुःखद परिपाक को दिखाया। जब माता-पिता ने कहा कि वन में तेरी कौन परिचर्या करेगा, कौन तेरा इलाज करेगा और कौन तेरे खाने-पीने की व्यवस्था करेगा? तब मृगापुत्र ने उत्तर दिया—

जहा मिगस्स आयंको, महारण्णम्मि जायई।
अच्छंतं रुक्खमूलम्मि, को णं ताहे तिगिच्छई ॥
को वा से ओसहं देई, को वा से पुच्छई सुहं।
को से भत्तं च पाणं च, आहरित्तु पणामए ॥

जब महावन में हरिण के कोई रोग उत्पन्न होता है, तब वृक्ष के नीचे अकेले बैठे उसकी कौन चिकित्सा करता है? कौन उसे औषधि देता है? कौन उससे सुख की बात पूछता है और कौन उसे खान-पान लाकर देता है?

इसीप्रकार मैं भी मृग की चर्या का आचरण करूंगा। अन्त में जब मृगापुत्र का दृढ आग्रह देखा, तब माता-पिता ने प्रव्रजित होने की अनुज्ञा दे दी। और मृगापुत्र ने दीक्षित होकर श्रामण्य का पालन कर सिद्धि प्राप्त की। इस अध्ययन में वर्णित नरक के दुःखो को पढ-सुनकर महा मोही पुरुष का भी मोह गले बिना नही रहेगा, ऐसा कारुणिक चित्रण इसमे किया गया है।

अनाथी अपने नाथ

बीसवें अध्ययन का नाम 'महानिर्ग्रन्थीय' है। इसी का दूसरा नाम अनाथी मुनि चरित भी है। इसमे बतलाया गया है कि एकबार श्रेणिक राजा उद्यान में घूम रहे थे, तब उनकी दृष्टि एक ध्यानस्थ मुनि पर गई। वे उनके पास गये और वन्दना की। उनके रूप—लावण्य को देखकर श्रेणिक बहुत विस्मित हुए। मुनि से पूछा—आपने इस भरी जवानी में दीक्षा क्यों ले ली? मुनि ने कहा—राजन्, मैं अनाथ हूं, इसीलिए मुनि बना हूं। श्रेणिक ने कहा—आप रूप-सम्पदा मे तो ऐश्वर्यशाली प्रतीत होते हैं, फिर अनाथ कैसे? फिर कहा—आप मेरे साथ चलें, मैं आपका नाथ बनता हूं और आप को सब सुखों के साधन देता हू। मुनि बोले—राजन्! तुम स्वयं अनाथ हो? फिर मेरे नाथ कैसे बन सकते हो? श्रेणिक को यह बात बहुत खटकी और बोले—मेरे पास अपार सम्पत्ति है, हाथी, घोडे रथ और पैदल सेना है और मैं लाखो व्यक्तियों

का नाथ हूं। आप मुझे अनाथ कैसे कहते हो? तब मुनि ने कहा—आप अनाथ का मतलब नहीं जानते हैं। सुनिये—मैं कौशाम्बी नगरी में रहता था। मेरे पिता अपार धन के स्वामी थे। एक बार मेरी आंख में भयंकर दर्द हुआ। उसे दूर करने के लिए पिता ने बहुतेरे उपाय किये और धन को पानी के समान बहाया। परन्तु मेरी आंख का दर्द नहीं मिटा। सभी सगे सम्बन्धियों ने भी बहुत प्रयत्न किये और आंसू बहाये। मगर कोई भी मेरी पीड़ा को बटा नहीं सका। तब मुझे ध्यान आया कि मैं अनाथ हूं। पीड़ा से पीड़ित होकर एक दिन सोते समय मैंने विचार किया कि यदि मैं इस रोग से मुक्त हो जाऊँगा तो मुनि बन जाऊंगा। पुण्योदय से जैसे-जैसे रात्रि व्यतीत होती गई वैसे-वैसे ही मेरी पीडा भी शान्त होती गई। सवेरा होते-होते मैं बिलकुल स्वस्थ हो गया। अतः मैं साधु बन गया। अब मैं अपना नाथ हूँ और अपना तथा त्रस-स्थावर जीवों का रक्षक भी हूं। मैं अपनी आत्मा पर शासन कर रहा हूं, अतः मैं सनाथ हूं। मुनि के ये बचन स्मरणीय हैं –

त तो हं नाही जाओ, अप्पणो य परस्स य।
सव्वेसिं चेव भूयाणं, तसाण थावराण य॥

श्रेणिक राजा सनाथ और अनाथ की यह परिभाषा सुन कर बहुत विस्मित हुए। उनके ज्ञान नेत्र खुल गये और मुनि से बोले—भगवन्, आप वास्तव में सनाथ है। पुनः राजा ने धर्म-देशना के लिए प्रार्थना की। तब मुनिराज ने धर्म का बड़ा मार्मिक उपदेश दिया और साधु कर्तव्यों का विस्तृत विवेचन किया। जिसे सुनकर श्रेणिक बोले –

तं सि नाहो अणाहाणं, सव्वभूयाणं संजया।
खामेमि ते महाभाग इच्छामि अणुसासणं॥

आप अनाथों के नाथ हो, सब जीवों के नाथ हो। हे महाभाग, मैं आपसे क्षमा चाहता हूं और आपसे अनुशासन चाहता हूं। यह कह कर और उनकी वन्दना करके श्रेणिक अपने स्थान को चले गये।

इक्कीसवां 'समुद्रपालीय' अध्ययन है। इसमें समुद्रपाल नामके एक श्रेष्ठि पुत्र की कथा है, जिसमें बताया गया है कि एक बार जब वह अपने महल के झरोखे में बैठा हुआ था, तब उसने देखा कि एक पुरुष को बांध कर राजपुरुष वध्यभूमि को ले जारहे हैं। उसे देखकर सहसा उसके हृदय में वैराग्य का संचार हुआ।

तं पासिऊण संविग्गो, समुद्दपालो इणमब्बवी।
अहोऽसुभाण कम्माणं, णिज्जाणं पावगं इमं॥

उसके मुख से ये वचन निकले—अहा, किये हुए अशुभकर्मों का यह दुखद अन्त है। इस घटना से वह बोधि को प्राप्त हुआ और माता-पिता से अनुज्ञा लेकर साधु बन गया। इस स्थल पर बतलाया गया है कि साधु को किस प्रकार परीषह और उपसर्गो को शान्तिपूर्वक सहन करना चाहिए। देश-देशो मे विचरण करते हुए किस प्रकार सिंह वृत्ति रखे और आत्म-निग्रह करे। कहा गया है कि—

पहाय रागं च तहेव दोसं, मोहं च भिक्खू सयय वियक्खणो।
मेरुव्ववाएण अकंपमाणो, परीसहे आयगुत्ते सहेज्जा॥

अर्थात्—विचक्षण भिक्षु राग द्वेष और मोह का त्याग करके आत्म-गुप्त बनकर परीषहो को इस प्रकार अविचल भाव से सहे और अकम्प बना रहे, जैसे कि वायु के प्रबल वेग से सुमेरु पर्वत अकम्प बना रहता है।

इस प्रकार बडे मनोयोग के साथ परीषह और उपसर्गो को सहन करते हुए कर्मो का क्षयकर वे भवसागर से पार हो गये।

वमन को मत पीओ!

बाईसवें अध्ययन मे 'रथनेमि' और राजमती के उद्बोधक सवाद का चित्रण है। इसमे बताया गया है कि जब भगवान् अरिष्टनेमि ने भय से सत्रस्त, बाडों और पिंजरो मे निरुद्ध दीन-दुखी प्राणियो को देखा, तब सारथी से पूछा कि ये पशु-पक्षी यहा क्यो रोके गये हैं। सारथी बोला—

अह सारही तओ भणइ, एए भद्दा उ पाणिणो।
तुज्झं विवाहकज्जम्मि, भोयावेउं बहुं जणं॥

नाथ, ये भद्र प्राणी आपके विवाह मे आये हुए मेहमानो को खिलाने के लिए यहा रोके गये हैं।

सारथी के ये वचन सुनकर भगवान अरिष्टनेमि सोचने लगे—

जइ मज्झ कारणा एए, हम्मिहिंति बहू जिया।
न मे एयं तु निस्सेसं, परलोगे भविस्सई॥

यदि मेरे निमित्त से ये बहुत से जीव मारे जायेंगे तो यह परलोक मे मेरे लिए श्रेयस्कर न होगा।

यह विचार आते ही उन्होने सर्व वस्त्राभूषण सारथी को दे दिये और आपने रैवतपर्वत (गिरिनार) पर जाकर जिन दीक्षा ले ली। जब राजमती ने यह समाचार सुना तो वह मूर्च्छित होकर गिर पडी। परिजनो के द्वारा

शीतलोपचार किये जाने पर जब वह होश में आई, तो अपने जीवन को धिक्कारने लगी, अन्त में उसने भी प्रव्रज्या अंगीकार कर ली।

एक बार जब वह रैवतक पर्वत पर जा रही थी तब पानी बरसने से वह भींग गई। वह वस्त्र सुखाने के लिए एक गुफा में जा पहुंची और यथाजात होकर वस्त्र सुखाने लगी। अंधेरे के कारण उसे यह पता नहीं चला कि यहां पर कोई बैठा हुआ है। रथनेमि जो कि अरिष्टनेमि का छोटा भाई था, वह साधु बन गया था और उसी गुफा में ध्यान कर रहा था। जब उसने नग्न रूप में राजमती को देखा तो कामान्ध होकर और अपना परिचय देकर बोला—

एहि ता भुंजिमो भोए, माणुस्सं खु सुदुल्लहं।
भुत्तभोगा तओ पच्छा, जिणमग्गं चरिस्सिमो॥

आओ, हम भोगों को भोगें। निश्चय ही मनुष्य जीवन अति दुर्लभ है। *भोगों को भोगने के पश्चात् फिर हम लोग जिनमार्ग पर चलेंगे।*

रथनेमि का यह प्रस्ताव सुनकर राजमती ने उसे डाटते हुए कहा—

धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा।
वन्तं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे॥

हे अयशकामिन्, तुझे धिक्कार है जो तू भोगी जीवन के लिए वमन की हुई वस्तु को पीने की इच्छा करता है। इससे तो तेरा मरना ही अच्छा है।

राजमती ने कहा—तू गन्धन सर्प के समान वमित भोगों को भोगने की इच्छा करके अपने पवित्र कुल को कलंकित मत कर। अन्त में जैसे मदोन्मत्त हाथी महावत के अंकुश-प्रहार से वश में आ जाता है, उसी प्रकार राजमती के युक्ति-युक्त उद्बोधक वचनों से रथनेमि धर्म में स्थिर हो गए और उत्तम श्रमण धर्म का पालन कर अनुत्तर पद को प्राप्त हुए।

तेवीसवां अध्ययन केशी और गौतम के संवाद का है। केशी मुनि पार्श्व परम्परा के साधु थे और गौतम भगवान महावीर के प्रधान शिष्य थे। एक-बार ग्रामानुग्राम विचरते हुये दोनो सन्त अपने संघ परिवार के साथ श्रावस्ती नगरी पहुंचे। केशीश्रमण तिन्दुक उद्यान मे ठहरे और गौतम स्वामी कोष्टक उद्यान में ठहरे। दोनों शिष्य आपस मे मिलते और पारस्परिक भेदों की चर्चा करते। इन दोनों मे केशी श्रमण ज्येष्ठ थे, अतः गौतम अपने शिष्य-परिवार के साथ उनसे मिलने के लिये गये। केशी ने सर्व संघ के साथ उनका सत्कार किया और दोनों मे कुशल-प्रश्न के पश्चात् तात्त्विक चर्चा होने लगी। केशी ने

पूछा—अहो गौतम, भगवान पार्श्वनाथ ने चातुर्याय धर्म की प्ररूपणा की और भगवान महावीर ने पंचयाम धर्म की। जब दोनों का लक्ष्य एक है, तब यह प्ररूपणा भेद क्यों ? गौतम ने कहा—भन्ते, प्रथम तीर्थंकर के श्रमण ऋजु जड़ अन्तिम तीर्थंकर के वक्र जड़ और मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरो के श्रमण ऋजु प्राज्ञ होते हैं। प्रथम तीर्थंकर के लिये मुनि के आचार को यथावत् ग्रहण करना कठिन है, अन्तिम तीर्थंकर के श्रमणों के लिये आचार का पालन करना कठिन है और मध्यवर्ती तीर्थंकरों के मुनि उसे यथावत् ग्रहण करते हैं, तथा सरलता से उसका पालन भी करते है। इस कारण यह प्ररूपणा-भेद हैं। यह सयुक्तिक उत्तर सुनकर केशी बहुत प्रसन्न हुए और बोले—

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे ससओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा॥

हे गौतम, तुम्हारी प्रज्ञा बहुत उत्तम है। तुमने मेरा यह संशय नष्ट कर दिया। मुझे एक और भी संशय है, उसे भी दूर करो। ऐसा कह कर केशी ने एक-एक करके अनेक प्रश्न गौतम के सम्मुख उपस्थित किये और गौतम ने सबका सयुक्तिक समुचित समाधान किया। जिसे सुनकर केशी बहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने गौतम का अभिवन्दन करके सुखावह पंचयामरूप धर्म को स्वीकार कर लिया।

प्रवचनमाता

चौवीसवा अध्ययन 'प्रवचन-माता' का है। इसमें वतलाया गया है कि अहिंसा की, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वरूप रत्नत्रय-धर्म का और साधुत्व की रक्षा करने वाली पांच समिति और तीन गुप्ति माता के समान रक्षा करती है अतः इन्हें प्रवचन माता कहा जाता है। समिति का अर्थ है— सम्यक् प्रवर्तन। जीवों की रक्षा करने वाली अहिंसक एव सावधान प्रवृत्ति को समिति कहते हैं। समितियां पांच होती हैं —

१ ईर्यासमिति—गमनागमन के समय जीव-संरक्षण का विवेक।
२ भाषा समिति बातचीत के समय अहिंसक वचनों का उपयोग।
३ एषणासमिति—निर्दोष आहार पात्रादि का अन्वेषण।
४ आदानसमिति—पुस्तक-पात्रादि के उठाने-रखने मे सावधानी।
५ उत्सर्गसमिति—मल-मूत्रादि के विसर्जन मे सावधानी।

इन पांच समितियों का पालन करनेवाला साधु जीवों से भरे हुए इस संसार में रहने पर भी पापों से लिप्त नहीं होता है।

योग-निग्रह को गुप्ति कहते हैं। गुप्तियां तीन हैं—

१ मनोगुप्ति—मन के असद् प्रवर्तन का निग्रह।

२ वचनगुप्ति—वचन के असद्-व्यवहार का निवर्तन।

३ कायगुप्ति—शरीर की असद् चेष्टाओं का नियंत्रण।

जिस प्रकार हरे-भरे खेत की रक्षा के लिए बाड़ की, नगर की रक्षा के लिए कोट और खाई की आवश्यकता होती है उसी प्रकार श्रामण्य की सुरक्षा के लिए एवं कर्मास्रव—निरोध के लिए उक्त तीनों गुप्तियों का परिपालन अत्यन्त आवश्यक है। इस अध्ययन में उक्त आठों प्रवचन माताओं का द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है और अन्त में कहा गया है कि —

एया पवयणमाया, जे सम्मं आयरे मुणी।
से खिप्पं सव्वसंसारा विप्पमुच्चइ पंडिए॥

जो विद्वान् मुनि इन प्रवचन माताओं का सम्यक् आचरण करता है, वह शीघ्र ही संसार से मुक्त हो जाता है।

पच्चीसवां 'यज्ञीय' अध्ययन है। इसमें बतलाया गया है कि एक बार जयघोष मुनि मासक्षमण का पारणा के लिए वाराणसी नगरी में गये। वहां पर विजयघोष ब्राह्मण ने यज्ञ का प्रारम्भ किया हुआ था अतः वे मुनि वहां पहुंचे। विजयघोष ने कहा—जो वेदों को जानते हैं, तदनुसार यज्ञादि करते हैं और जो अपने वा दूसरों के उद्धार करने में समर्थ हैं, मैं उन्हीं को भिक्षा दूंगा, तुम जैसे व्यक्तियों को नहीं। इस बात को सुनकर मुनि रुष्ट नहीं हुए, प्रत्युत उसको समझाने के लिए बोले—

न वि जाणसि वेयमुहं, न वि जन्नाण जं मुहं।
नक्खत्ताण मुहं जं च, जं च धम्माण वा मुहं॥

तुम वेद के मुख को नहीं जानते, यज्ञों के मुख को भी नहीं जानते हो।

मुनि के ऐसा कहने पर यज्ञकर्ता ब्राह्मण बोला—आप ही बतलाइये कि वेदों का मुख क्या है, यज्ञ का, नक्षत्रों का और धर्म का मुख क्या है? उसके ऐसा पूछने पर मुनि ने उक्त प्रश्नों का अध्यात्म-परक बड़ा ही सुन्दर उत्तर देते हुए बताया कि ऐसे यज्ञ का कर्ता वही ब्राह्मण हो सकता है जो कि इष्ट वस्तु की प्राप्ति में राग नहीं करता, अनिष्ट संयोग में द्वेष नहीं करता, जो सर्वप्रकार के भय से रहित है, शान्त है, जितेन्द्रिय है, त्रस-स्थावर जीवों का रक्षक है, असत्य नहीं बोलता, अदत्त वस्तु को नहीं लेता, ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करता है, सांसारिक परिग्रह में लिप्त नहीं होता है,

जो रसोका लोलुपी नही है, गृहत्यागी है, अकिंचन है, अनासक्त है और सर्व कर्मो से रहित है, मै उसी को ब्राह्मण कहता हू। अन्त मे उन्होने कहा—

> न वि मु डिएण समणो, न ओकारेण बभणो।
> न मुणी रण्णवासेण, कुसचीरेण न तावसो ॥
> समयाए समणो होइ, बम्भचेरेण बंभणो।
> नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥

अर्थात्—केवल सिर मुडा लेने से कोई श्रमण नही होता, 'ओ' का उच्चारण करने से ब्राह्मण नही होता, अरण्य म रहन स कोई मुनि नही होता और कुशा का चीवर पहिनने मात्र से कोई तापस नही होता। किन्तु समभाव की साधना करने से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य के पालन से ब्राह्मण होता है, ज्ञान की आराधना से-मनन करने से मुनि होता हे और तप करने से तापस कहलाता है।

> एवं गुण समाउत्ता जे भवंति दिउत्तमा।
> ते समत्था उ उद्धतु पर अप्पाणमेव य ॥

इस प्रकार के गुणो से सम्पन्न जो द्विजोत्तम होते है, वे ही अपना और पराया उद्धार करने मे समर्थ होते हैं।

साधु के ऐसे मार्मिक वचनो को सुनकर वह विजयघोप ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ और उसने भी जिन-प्रवज्या स्वीकार करली और वे जयघोप विजयघोप मुनि सयम और तप के द्वारा सचितकर्मो का क्षय करके अनुत्तर सिद्धि को प्राप्त हुए।

छब्बीसवा अध्ययन 'समाचारी' का है। साधुओ के आचार-व्यवहार को समाचारी कहते हैं। यह समाचारी दश प्रकार की होती है। उनके नाम और स्वरूप सक्षेप मे इस प्रकार है—

१. आवश्यकी — अपने स्थान से बाहिर जाते समय की जाती है।
२. नैषेधिकी अपने स्थान मे प्रवेश करते समय की जाती है।
३ आपृच्छना कार्य करने से पूर्व गुरु से पूछना।
४ प्रतिपृच्छना — कार्य करने के लिए पुन पूछना।
५. छन्दना—पूर्व गृहीत द्रव्यो से गुरु आदि को निमत्रण करना।
६. इच्छाकार—साधुओ के कार्य करने या कराने के लिए इच्छा प्रकट करना।

७, मिथ्याकार—अपने दुष्कृत की निन्दा करना।
८. तथाकार—गुरु-प्रदत्त उपदेश के लिए अपनी स्वीकृति प्रदान करना।
९. अभ्युत्थान—गुरुजनों के आने पर खड़ा होना।
१०. उपसम्पदा—दूसरे गण वाले आचार्य के समीप रहने के लिए उनका शिष्यत्व स्वीकार करना।

इस दश विध समाचारी के अतिरिक्त साधुओं के दैवसिक और रात्रिक कर्त्तव्यों का भी इस अध्ययन में वहुत विस्तार से वर्णन किया गया है।

सत्तावीसवां खलुंकीय' अध्ययन है। खलुंकीय नाम दुष्ट वैल का है। जैसे दुष्ट वैल गाड़ी और गाड़ीवान दोनों का नाश कर देता है, कभी जुए को तोड़कर भाग जाता है, कभी भूमि पर पड़कर गाड़ी वान को परेशान करता है, कभी कूदता है, कभी उछलता है और कभी गाय को देखकर उसके पीछे भागता है, उसी प्रकार अविनीत एवं दुष्ट शिष्य भी अनेक प्रकार से अपने गुरु को परेशान करता है; कभी भिक्षा लाने में आलस्य करता है, कभी अहंकार प्रकट करता है, कभी बीच में ही अकारण बोल उठता है और कभी किसी कार्य के लिए भेजे जाने पर उसे विना किये ही लौट आता है। तव धर्माचार्य विचार करते हैं कि ऐसे अविनीत शिष्यों से तो शिष्यों के विना रहना ही अच्छा है और इसी कारण वे दुष्ट शिष्यों का संग छोड़कर एकाकी ही तपश्चरणादि में संलग्न रहते हैं।

अट्ठाईसवें अध्ययन का नाम 'मोक्षमार्ग-गति' है। इसमें वतलाया गया है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप इन चारों के समायोग से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए इन चारों को विधिवत् धारण करना चाहिए। इस अध्ययन में सम्यग्दर्शन के निसर्गरुचि आदि दश भेदों का विस्तार से विवेचन किया गया है। सम्यग्ज्ञान के मतिज्ञानादि पांच भेदों का, सम्यक् चारित्र के सामायिक आदि पांच भेदों का और सम्यक्तप के वारह भेदों का वर्णन करके अन्त में कहा गया है कि—

नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाई, तवेण परिसुज्झई॥

जीव ज्ञान से पदार्थों को जानता है, दर्शन से श्रद्धान करता है, चारित्र से नवीन कर्मों का निग्रह करता है और तप से पूर्व संचित्त कर्मो का क्षय करके परिशुद्ध हो जाता है। इसलिए महर्षिगण सदा ही इन चारों को धारण कर सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

उनतीसवें अध्ययन का नाम 'सम्यकत्त्व पराक्रम' है। इसमें वर्णित ७३ प्रश्नों के उत्तरों-द्वारा सम्यक्त्व को प्राप्त करने की दिशा मिलती हे और साधक उसे प्राप्त करने के लिए पराक्रम करता हे। यह प्रश्नोत्तर रूप एक विस्तृत अध्ययन है, जिसके पठन-पाठन से जिज्ञासु जनो को मुक्तिमार्ग का सम्यक् बोध प्राप्त होता है।

तपोमार्ग

तीसवें अध्ययन का नाम 'तपोमार्ग-गति' है। उसमे वतलाया गया है कि राग-द्वेष से उपार्जित कर्म का क्षय तप से ही होता है। जिस प्रकार सरोवर कर जल सूर्य के तीक्ष्ण ताप से सूख जाता है, उसी प्रकार आत्मा कर्मरूप जल भी तपस्या की अग्नि से सूख जाता है। तप दो प्रकार का होता है—वहिरंग तप और अन्तरंग तप। वहिरंग तप के छह भेद हैं—अनशन, ऊनोदरिका, भिक्षा-चर्या, रसपरित्याग, कायक्लेश और संलीनता (विविक्त शय्यासनता)। अन्तरंग तप के भी छह भेद है—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग। इन दोनों प्रकार के तपो का वर्णन करके अन्त मे कहा गया है कि—

एवं तवं तु दुविहं, जे सम्मं आयरे मुणी।
से खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चई पंडिए॥

जो पडित मुनि दोनों प्रकार के तपों का सम्यक् प्रकार से आचरण करता है, वह शीघ्र ही समस्त संसार से मुक्त हो जाता है।

इकतीसवें अध्ययन का नाम 'चरणविधि' है। इसमें वतलाया गया है कि—

राग द्दोसे य दो पावे, पावकम्मपवत्तणे।
जे भिक्खू रुंभई निच्चं, से न अच्छई मंडले॥

राग और द्वेष ये दो पाप कर्म के प्रवर्तक पाप हैं। जो भिक्षु इनको रोकता है, वह संसार में नही रहता। किन्तु उसे पाकर मोक्ष को प्राप्त करता है।

इस अध्ययन में साधुओं के लिए नही आचरण करने योग्य कार्यों के परिहार का और आचरणीय कर्तव्यों को करने का वहुत सुन्दर वर्णन किया गया है। अन्त में वताया गया है कि जो अपने कर्तव्य मे सदा यतनाशील रहता है, वह संसार से शीघ्र मुक्त हो जाता है।

वत्तीसवें अध्ययन का नाम 'प्रमादस्थान' है। इसमें प्रमाद के कारण और उनके निवारण के उपायो का प्रतिपादन किया गया है। प्रमाद मोक्षमार्ग

की साधना में विघ्न करता है। अतः प्रमाद का त्याग करने के लिए, गुरुजनों एवं वृद्ध साधुओं की सेवा करना, अज्ञानीजनों से दूर रहना, स्वाध्याय करना, एकान्तवास करना, सूत्र और उसके अर्थ का चिन्तन करना तथा सदा सावधान रहना आवश्यक है। प्रमाद के स्थान मद्य मांस, मदिरा का सेवन, इन्द्रियों के विषयों मे प्रवृत्ति, कषायरूप परिणति, निद्रा-विकथा, द्यूत और राग-द्वेषादि हैं। अतः साधु को इन सर्व प्रमाद स्थानों से बचना चाहिए।

कर्मविज्ञान :

तेतीसवें अध्ययन का नाम 'कर्मप्रकृति' है। इसमें ज्ञानावरणादि आठों कर्मों का, उनके १४८ उत्तर भेदों का, उनकी स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्ध का वर्णन किया गया है। अन्त मे बताया गया है कि इन कर्मों के अनुभागों को जानकर ज्ञानी पुरुषों को इनके निरोध और क्षय करने में प्रयत्न करना चाहिए।

चौतीसवां 'लेश्याध्ययन' है। कषायों से अनुरंजित योगों की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। लेश्या के छह भेद हैं—कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल लेश्या। इनमे आदि की तीन लेश्याएं अशुभ हैं और अन्तिम तीन लेश्याएं शुभ हैं। इस अध्ययन में इन सब लेश्याओं का वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान, स्थिति, गति और आयुष्य के द्वारा विस्तृत वर्णन किया गया है। अन्त मे कहा गया है कि अशुभ लेश्याओं से जीव दुर्गति को जाता है और शुभ लेश्याओं से जीव शुभगति को प्राप्त करता है।

पैतीसवें अध्ययन का नाम 'अनगार-मार्गगति' है। इसमें बतलाया गया है कि अनगार साधु हिंसादि पांचों पापों का त्याग करे, काम-राग बढ़ाने वाले मकानों में रहने की इच्छा न करे, दूसरों से मकान न बनवाए न स्वयं बनावे, भोजन भी न स्वयं बनावे और न दूसरों से बनवावे, क्योंकि इन कार्यों में त्रस और स्थावर कायिक जीवों की हिंसा होती है। साधु को एकान्त, निराबाध, पशु-सभी से असंसक्त और निरवद्य स्थान में रहना चाहिए। सदा उत्तम ध्यान को शुक्लध्यान को ध्यावे और वीतरागता को धारण करे। क्योंकि शुक्लध्यानी वीतरागी साधु ही कर्मों से विमुक्त होकर शाश्वत पद को प्राप्त करता है।

छत्तीसवे अध्ययन का नाम 'जीवाजीव-विभक्ति' है। इसमें जीव और अजीव द्रव्य के भेद-प्रभेदों का- उनकी भवस्थिति और कायस्थिति का बहुत विस्तार से विवेचन किया गया है। सिद्धजीवों का वर्णन अवगाहन, लिंग, क्षेत्र,

वेपादि की अपेक्षा से सिद्धिस्थान का भी विवेचन किया गया है। एकेन्द्रिय पृथ्वीकायादि के अनेक भेदों का तथा द्वीन्द्रियादि त्रसकायों के भी अनेक भेदों का विस्तृत विवेचन इस अध्ययन में किया गया है। सारांश यह है कि जीव और अजीव द्रव्य सम्बन्धी प्रायः सभी ज्ञातव्य बातों का इस अध्ययन में वर्णन है। अन्त में कान्दर्पी, आभियोगी, किल्विषिकी आदि भावनाओं का वर्णन कर उनके त्याग का उपदेश दिया गया है।

आगम-ज्ञान की थाती

इस प्रकार उत्तराध्ययन के रूप में भ० महावीरस्वामी ने ज्ञान का यह विशाल भण्डार चतुर्विध सघ को आज के दिन संभलाया था। ज्ञान ही सच्चा धन है, इसी से आज का दिन 'धनतेरस' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। इस उत्तराध्ययन सूत्र के स्वाध्याय से कर्मों की निर्जरा होती है और महान् गुणों की प्राप्ति होती है। महापुरुषों के मुख-कमल से निकले हुए इन वचनों का हम सबको आदर करना चाहिए।

भगवान महावीर के ये दिव्य वचन उनके निर्वाण के पश्चात् ९८० वर्ष तक आचार्य-परम्परा में मौखिक रूप से चलते रहते। जब तात्कालिक महान् आचार्यों ने देखा कि काल के दोष से मनुष्यों की बुद्धि उत्तरोत्तर हीन होती जा रही है, तब उन्होंने तात्कालिक साधुओं का एक सम्मेलन किया और मौखिक वाचनाओं का संकलन कर उन्हें लिपिबद्ध करके पुस्तकारूढ किया। अब यदि कोई कहे कि लिखने और लिखाने की बात तो शास्त्रों में कही भी नहीं आई है। तो भाई, इसका उत्तर यह है कि उत्तमकार्य के लिए कहीं मनाई नही है। आपके पिता ने आपसे कहा कि बेटा, यदि सौ रुपये का मुनाफा मिल जाय तो व्यापार कर लेना। अब यदि आपको सौ के स्थान पर हजार रुपये मुनाफे में मिल रहे है तो इसके लिए पिता की आज्ञा ही है, उसके लिये पूछने की क्या आवश्यकता है? उत्तम कार्य के लिए पूछने की आवश्कता नहीं है। परन्तु यदि सौ रुपयों के ६५ होते हैं, या ७५ हो रहे हैं, तब पूछने की आवश्यकता है। इसी प्रकार जिस कार्य में धर्म की और ज्ञान की बढ़वारी हो, उसके लिए भगवान की आज्ञा ही है। जिन महापुरुषो ने भगवान के वचनों को पुस्तकों के रूप में लिखकर उन्हें सुरक्षित किया है, उन्होंने हम सबका महान् उपकार किया है। यदि आज ये शास्त्र न होते तो हमें किस प्रकार श्रावक और साधु के धर्म का बोध होता? और कैसे हम उनके बतलाये मार्ग पर चलते? कैसे हमे पुण्य-पाप का, हेय-उपादेय का और

भले-बुरे का ज्ञान होता। इसलिए हमें उन आचार्यों का सदा ही उपकार मान-कर कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए। भगवान महावीर का निर्वाण हुए आज लगभग २५०० वर्ष हो रहे हैं और उनके निर्वाण के ९८ वर्ष बाद ये शास्त्र लिखे गये हैं, अतः १५०० वर्षों से ज्ञान की धारा इन शास्त्रों के प्रसाद से ही बहती चली आ रही है। लेखक छद्मस्थ रहे है, अतः लिखते समय अक्षर-मात्रा की चूक सभव है, उसे पूर्वापर अनुसंधान से शुद्ध किया जा सकता है और उसे शुद्ध करने का ज्ञानी जनो को अधिकार भी है। परन्तु भगवान के वचनों को इधर-उधर करने का हमे कोई अधिकार नहीं है। आप रोकड़ मिलाते हैं और रोज-नामचे मे कच्ची रोकड़ में जोड़ की कोई भूल मालूम पड़ती है, तो उसे सुधार देते हैं। इसीप्रकार यदि कहीं पर लेखक के दोष से कोई अशुद्धि या भूल हो गई हो, तो उसे शुद्ध किया जा सकता है, परन्तु जो नामा सही हैं, उस पर कलम चलाने का अधिकार नही है। यदि सही तत्त्व-निरूपण को भी छिन्न-भिन्न किया जायगा तो फिर सारी प्रामाणिकता नष्ट हो जायगी। अतः जो आगम-निबद्ध तत्त्व हैं उनको *यथावत् ही अवधारण करना भगवान्* के प्रति सच्ची श्रद्धा वा भक्ति प्रकट करना है और यही उनकी आज्ञा का पालन करना है। आगम में अगणित जो अनमोल रत्न बिखरे पड़े हैं, हमें अपनी शक्ति के अनुसार ग्रहण कर लेना चाहिये। मनुष्य को सदा ज्ञानी की शिक्षा माननी चाहिये, अज्ञानी की नही। अन्यथा दुःख उठाना पड़ता है।

किसी कुम्हार के एक गधा था। वह उसके ऊपर प्रतिदिन खान से मिट्टी लादकर लाता था। एक दिन गधे ने सोचा कि यह प्रति दिन मुझे लादता भी है और डण्डे भी मारता है। इस झंझट से छूटना चाहिए। ऐसा विचार कर उसने खान पर ही मिट्टी से भरी लादी पटक दी और वहीं पड़ गया। इस पर खीज कर कुम्हार ने उसे खूब मारा और कान-पूछ काट कर वहीं पर छोड़ कर घर चला आया। गधे ने सोचा—अब मेरी झझट मिट गई और स्वतंत्र हो गया हूं, अतः वह जंगल मे चला गया और स्वच्छन्द घूमते-फिरते और घास खाते हुए कुछ दिनों में मोटा-ताजा हो गया। एक दिन जब वह सड़क के किनारे हरी-घास खा रहा था, तभी एक बग्घी आती हुई उसे दिखी, उसमें दो घोड़े जुते हुये थे। उनको देखकर गधे ने अपना मुख ऊंचा करके कहा –

रे रे अश्वा गले बद्धा, नित्यं भारं वहन्ति किं।
कुटिलं किं न कर्तव्यं, सुखं वने चरन्ति ते॥

अरे घोड़ो, तुम लोग मेरी जैसी कुटिलता क्यों नहीं करते ? यदि कुटिलता करोगे तो तुम भी स्वतन्त्र हो जाओगे। और मेरे जैसे खा-पीकर मस्त रहोगे क्यों नित्य यह बग्घी का भार ढोते फिरते हो ?

बग्घी के दो घोड़ों में से एक घोड़ा कुपात्र था। उसे गधे की बात अच्छी लगी और वह चलते हुये एक स्थान पर अड़ गया। सईस ने पहिले तो दो-चार चाबुक लगाये। पर जब चलता नहीं देखा तो उसने पिस्तौल से गोली मार दी। वह घोड़ा मर गया। अब एक घोड़े से बग्घी कैसे चले। अतः समीप में ही चरते हुये उस गधे को उसे बग्घी में जोत दिया और हंटर मार कर दौड़ाता हुआ बग्घी को घर पर ले आया। अब वह प्रतिदिन बग्घी में जोता जाने लगा और हंटरों की मार खाने लगा। तब एक दिन उसके साथ जुतने वाले घोड़े ने कहा—

कुट्टकर्ण्ण दुराचारी, मम मातुलघातकः।
कुटिलं किं न कर्त्तव्यं, सुखं वने चरन्ति ते॥

अरे बिना पूंछ-कान के गधे, तूने कुटिलता का पाठ पढ़ा कर मेरे मामा को मरवा दिया। अब तू कुटिलता क्यों नही करता है? तब गधा बोला—

कौटिल्यं तत्र कर्त्तव्यं, यत्र धर्मो प्रवर्तते।
रथवाहो महापापी, कण्ठच्छेदं करिष्यति॥

भाई, कुटिलता वहां करना चाहिए, जहां पर धर्म प्रवर्तता हो। परन्तु यह रथवाहक तो महापापी है। यदि इसके आगे मैं कुटिलता करूंगा तो यह अभी मेरा गला ही उड़ा देगा।

इस दृष्टान्त के कहने का अभिप्राय यह है कि जो मनुष्य अनुशासन में नहीं रह कर स्वच्छन्द-विहारी अनर्गलप्रलापी हो जाते हैं, वे उस गधे के समान दूसरो को भी धोखा देते हैं और उन्हें भी दुःखों का भागी बना देते हैं। जो भगवान का अनुशासन नहीं मानना चाहते और उत्सूत्र प्ररूपणा करके स्वयं पाप के गर्त में पड़ते है, वे दूसरों को भी अपने साथ दुर्गति के गर्त में ले जाते हैं। अतः सर्वज्ञ, वीतराग भगवान के वचनों में भी अवगुण निकालने वाले, स्वच्छन्द विचारवाले और उत्सूत्र-प्ररूपणा करने वाले मनुष्यों के बहकाने में नही आना चाहिए। किन्तु परभव में सुख के इच्छुक भव्यजनों को भगवद्-वचनों पर पूर्ण श्रद्धा और भक्ति रखनी चाहिए। उन्हें सदा यही बात हृदय में रखनी चाहिए कि 'नान्यथावादिनो जिनाः' अर्थात् जिन भगवान अन्यथावादी नहीं होते है। उन्होंने जो और जैसा वस्तु का स्वरूप कहा है, वही सत्य है और हमें उसी का श्रद्धान करना चाहिए।

वि० स० २०२७ कार्तिक कृष्णा १३
(धनतेरस)
जोधपुर

१५ | रूप-चतुर्दशी अर्थात् स्वरूपदर्शन

भाइयो, जिनेश्वर देव ने हमारे जीवन को सार्थक करने के लिए अनेकानेक उपाय बताये हैं। सरल उपाय भी बताये हैं और कठिन उपाय भी बताये हैं। जिन महापुरुषों में शक्ति है और जो अपने जीवन को शीघ्र ही सार्थक करना चाहते हैं, उनके लिए मुनिधर्म का कठिन मार्ग बताया है और जिनमें शक्ति की हीनता है और धीरे धीरे जीवन को सार्थक करना चाहते है, उनके लिए श्रावक धर्म का सरल मार्ग बताया है। अब जिसकी जैसी और जितनी शक्ति हो, वह उसके अनुसार अपने जीवन को सार्थक कर सकता है।

कल धनतेरस के विषय में आपके सामने प्रकाश डाला गया था। आज रूप चतुर्दशी है। रूप का अर्थ है—आत्म-स्वरूप। भगवान ने अपने स्वरूप को भली भांति से साक्षात्कार किया, देखा और जाना। पुनः जनता को दिखाने के लिए उन्होंने ज्ञान का दर्पण रख दिया। भगवान को अपना स्वरूप देखने के लिए सहस्रों कष्ट सहन करना पड़े तब कहीं जाकर उनको अपना रूप दिखाई दिया। परन्तु उन्होंने हम सब के उपकार के लिए ज्ञान का उत्तम दर्पण सामने रख दिया और कहा कि आओ और देखो कि तुम्हारा रूप कैसा है? भगवान के इस आमंत्रण को सुनकर अनेकानेक लोग उनके पास गये। किन्तु कितने तो समवसरण की शोभा को देखने में ही मस्त हो गये, कितने ही वहां के वन-उपवनों की सैर करने में लग गये, कितने ही

वहां होने वाले आनन्द-नाटकों के देखने में ही मग्न हो गये और कितने ही लोग किन्नर-किन्नरियों के नृत्य-संगीत में ही निरत हो गये। इस प्रकार अनेक लोग भगवान के समीप तक भी पहुंच कर आत्म-रूप के दर्शन से वंचित रहे। किन्तु जो केवल अपने रूप को निहारने के लिए गये, उनको आत्म-स्वरूप दृष्टिगोचर हुआ। उन्होंने आज तक की अपनी भूल को पहिचाना और उसे दूर कर वे तुरन्त भगवान के बताये मार्ग पर चलने के लिए प्रव्रजित हो गये। मुनि-धर्म अंगीकार किया और घोरातिघोर तपश्चरण कर आत्म साधना में संलग्न हो गये। जब उन्होंने देखा कि अब अपने को यहां से रवाना होना है, तब उन्होंने पंडितमरण को स्वीकार कर लिया। इसे अंगीकार करने वालों का मरण एक बार ही होता है और वे सदा के लिए जन्म-मरण के चक्र से विमुक्त हो जाते हैं। जिन्हें आत्मसाक्षात्कार हो जाता है और अपने अनन्त गुणों का भान हो जाता है, वे यह अनुभव करने लगते हैं कि जब तक इस शरीर के साथ मेरा राग रहेगा और स्नेह-सम्बन्ध बना रहेगा, तब तक सांसारिक दुःखों से छुटकारा नहीं मिल सकता। वे शरीर के निंद्य, जड़ और बन्धन-कारक यथार्थ स्वरूप को जानकर अपनी आत्मा को उसके बन्धन से मुक्त करने के लिए सदा ही प्रयत्नशील रहते है।

भगवान के द्वारा अपना रूप देखने के लिए ज्ञानरूपी दर्पण को सामने रख देने पर भी आज देखने में आता है कि जितना शौक हम लोगों को बातें करने का है और विकथा-वाद में जितना समय नष्ट करते हैं, उसका शतांश भी शास्त्र-स्वाध्याय करने में समय नहीं लगाते हैं। फिर भी आप लोग समझते हैं कि हम बहुत होशियार हैं। परन्तु यथार्थ में वे महामूर्ख हैं, जिन्हें प्रतिक्षण विनष्ट होती हुई अपनी यथार्थ सम्पत्ति के सँभालने की भी सुध-बुध नहीं है। जैसे सच्चे दुकानदार का ध्यान अपने व्यापार के हानि-लाभ पर रहता है और वह हानि के कारणों से बचता रहता है। उसके सामने कितने ही मेले-ठेले लगें और उत्सव हों, फिर भी वह उनकी ओर ध्यान नहीं देता, किन्तु अपनी दुकानदारी में ही दत्त-चित्त रहता है। इसी प्रकार ज्ञानी और आत्मस्वरूप-दर्शी व्यक्ति का चित्त भी सांसारिक बातों की ओर नहीं जाता है किन्तु वह सदा आत्मा के उत्थान करने वाले कार्यों में ही संलग्न रहता है।

जो दुकानदार अपने काम से काम रखता है और दुनिया के प्रपंचों में नहीं पड़ता है, वही सच्चा दुकानदार और व्यापारी कहलाता है। भले ही उसे कोई कहे कि यह तो कोल्हू के बैल के समान रात-दिन अपने काम में लगा रहता है। मगर वह इसकी चिन्ता नहीं करता। इसी प्रकार आत्म-साधना में

संलग्न व्यक्ति को भी कोई कुछ भी क्यों न कहे, पर वह भी उसकी चिन्ता नहीं करता। वह तो यही सोचता है कि—

मुझे है काम ईश्वर से तो दुनिया से है क्या मतलब !

भाई, जिसे अपना काम करना है, तो वह दुनिया की परवाह नहीं करेगा। जो आत्म-स्वरूप में आया है, उसे भले ही सारा संसार पागल कहे, पर वह उसकी ओर ध्यान नही देगा। यथार्थ बात यह है कि संसार की दृष्टि में ज्ञानी पुरुष पागल दिखता है और ज्ञानी को सारा संसार पागल-सा दिखता है। देखो—यदि कहीं पर पाच पुरुष भांग छानकर पी रहे हों, उस समय यदि कोई उसका त्यागी व्यक्ति आ जाता है और उसे पीने के लिए कहने पर वह नहीं पीता है, तो उसे वे पीनेवाले लोग कहते हैं कि यह कैसा गुरडा पग है ? भले ही वह दुनिया के लिए पागल प्रतीत हो, पर वह अपने भीतर समझता है कि मैं ठीक मार्ग पर हूं। और यही कारण है कि वह दूसरो के द्वारा कही गई किसी भी बात को बुरा नहीं मानता है।

लोग कहते है कि हमें सुख चाहिए। पर भाई, सुख की चाहना करने वालों को दुःख सहने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। भर-पेट खाने की इच्छा रखने वालों को कभी भूख सहन करने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। संसार की स्थिति ही ऐसी है कि जिस वस्तु की चाहना करोगे वह यदि मिल जायगी तो क्षणिक सुख का अनुभव होगा। और यदि वह नहीं मिली, या मिलकर विनष्ट हो गई तो दीर्घकाल तक दुःख का अनुभव करना पड़ेगा। किन्तु जो अपनी आत्मिक निधि है, उसकी प्राप्ति होने के पश्चात् वह कभी अपने से विलग नहीं होती है, अतः कभी भी उसके वियोग-जनित दुःख का अनुभव नही करना पड़ता है। जो आत्म-स्वरूप के दर्शन कर लेता है, वह अपने मे ही मस्त रहता है और अपने में सन्तुष्ट रहने वाला व्यक्ति सदा सुखी ही रहता है। जो निजस्वरूप में आया है, उसकी फिर सारे सांसारिक पदार्थों पर से इच्छा निवृत्त हो जाती है, अतः उनके आने पर न उसे सुख होता है और न जाने पर दुःख ही होता है। वह तो सदा यही विचारता है कि—

सुख-दुख, जीवन-मरण अवस्था, ये दस प्राण संघात रे प्राणी,
इनसे भिन्न विनयचन्द रहियो, ज्यों जल से जलजात रे।
श्री महावीर नमों वर वाणी।

भाइयो, विचार तो करो—ये सुख-दुःख, हानि-लाभ, जीवन और मरण आत्मा के साथ है, या शरीर के साथ में है ? जहां तक शरीर का साथ रहता है, वहा तक ही ये सब साथ हैं। जब यह जीव इन दस प्राणो से अलग हो

जाता है, तब सर्व प्रकार की बाधाओं से रहित निराकुलता मय अव्याबाध सुख ही सुख रहता है। इसलिए विनयचन्द जी कहते है कि हे प्राणी ! तू इन सब से दूर रह।

जब यह आत्मा द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित होकर अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेता है, तब वह शुद्ध-बुद्ध होकर सिद्ध कहलाने लगता है। तत्पश्चात् वह अनन्तकाल तक अपने स्वरूप में वर्तमान रहता हुआ आत्मिक सुख को भोगता रहता है। यही आत्मा का वास्तविक स्वरूप है और उस स्वरूप को प्राप्त व्यक्ति ही सिद्ध परमात्मा कहलाते है। उनके विषय में कहा गया है कि—

ज्ञान-शरीरी त्रिविध कर्म-मल-वर्जित सिद्ध महंता।
ते हैं अकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता ॥

इस प्रकार के सिद्ध स्वरूप को देखने का उपदेश आज के दिन भगवान महावीर ने दिया और बताया कि हे प्राणियो, तुम सब की आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्तवीर्य रूप अनन्त गुण है, यही तुम्हारा शुद्ध स्वरूप है। आज तक संसार में बहुत भटके और अपने स्वरूप को भूलकर अनन्त दुख भोगे। अब तो विषय-कषायो के चक्र में से निकलो और अपना रुप देखो। यह रूप चतुर्दशी हम सबको भगवान का यह पवित्र सन्देश आज भी सुना रही है।

अपनी पहचान क्या है ?

अब यहां आप पूछेंगे कि अपने रूप की पहिचान कैसे हो ? इसका उत्तर एक दृष्टान्त से दिया जाता है—किसी धनाढ्य सेठ के एक फोड़ा हो गया। उसकी भयंकर वेदना से वे रात-दिन कराहते रहते। कितने ही उपचार किये, परन्तु जरा-सा भी कष्ट कम नही हुआ। अन्त में अति दुखित होकर मुनीम से बोले—मुझ से अब यह कष्ट सहन नही होता है, इसलिए विष का प्याला लाओ जिसे पीकर मैं इस दुःख से सदा के लिये छूट जाऊँ ? मुनीम बोला—सेठ साहब, यह आप गजब की बात कह रहे है ? आप तो मरेंगे ही, और साथ में मुझे भी मरवायेंगे ? सेठ बोला—क्या करूं अब इसका कष्ट नही सहा जाता है। मुनीम ने कहा—सेठ साहब, जो शरीर धारण करता है, उसे उसके कष्ट भी सहन करना पड़ते हैं। फिर बीमारी हाथी बनकर आती है और कीड़ी बनकर जाती है। इसलिए धैर्यपूर्वक आप इसे सहन कीजिए। साता कर्म का उदय शान्ति होने पर यह कष्ट स्वयं दूर हो जायगा। जब असाता का उदय मन्द पड़ता है, तभी औषधि लाभ पहुँचाती है। यह कहकर

मुनीम चला गया। कुटुम्ब-परिवार के लोग भी दवा लगाकर सो गये। मगर सेठजी को कष्ट के मारे नींद कहाँ? तब पीडा से कराहते हुए, उन्होंने अपने इष्ट देवताओं के नामों का स्मरण कर और मनौती बोलते हुए कष्ट को कम करने की प्रार्थना की। परन्तु एक भी देव ने आकर उनके कष्ट को दूर नहीं किया। अन्त में उन्होंने कहा यदि मेरा यह फोडा फूट जावे तो मैं सौ गवारों को जिमाऊंगा। सौभाग्य से ये शब्द निकलते ही उनका फोडा फूट गया और कष्ट कुछ कम हो गया। तब सेठ मन में कहता है कि आखिर भगवान भी गवार ही हैं। आराम मिलते ही सेठजी को नींद आगई। दूसरे दिन जागने पर उनकी मलहम-पट्टी कराई और दो-चार दिन में फोडा बिलकुल ठीक हो गया। स्वस्थ होने पर वे दुकान पर गये और मुनीम से बोले सौ गवारों को इकट्ठा करो—उन्हें भोजन कराना है। मुनीम जी गवारों को ढूंढने के लिए नगर में गये। बाजार में अनेक काश्तकारों को देखकर सोचने लगे – इनसे बढकर और कौन गवार होगा। अत उन लोगों से कहा—हमारे सेठजी आप लोगों को याद कर रहे हैं। उन लोगों ने भी सोचा कोई खास काम होगा, अत बुलाया है। यह सोचकर वे सब मुनीमजी के साथ चल दिये। जब वे सब सेठजी के सामने पहुंचे, तब सेठजी ने उनका स्वागत करते हुए कहा—आओ पधारो, आप लोग तो जीते जागते साक्षात् देव हैं। मैं आप लोगों के चरण पूजूंगा। आपकी कृपा से आप लोगों के नाम का स्मरण करते ही मेरा असह्य दुख दूर हो गया। इसलिए मेरे तो आप लोग ही ईश्वर, पीर, पैगम्बर और देवता सब कुछ आप लोग ही हो। अब आप लोग आज्ञा कीजिए कि क्या भोजन बनवाया जाय? उन लोगों ने पूछा—सेठ सा०, क्या बात है? हमारे स्मरण से आपका कौनसा असह्य दुख दूर हो गया? तब सेठ ने अपने फोडे की कथा सुनाते हुए कहा—जब सब देवताओं की मनौतियां कर लेने पर भी मेरा कष्ट कम नहीं हुआ, तब अन्त में मैंने मनौती की कि यदि मेरा यह फोडा फूट जाय तो मैं सौ गवारों को भोजन कराऊँगा। बस, यह मनौती करते ही मेरा फोडा फूट गया। अत आप लोगों को भोजन के लिए बुलाया है। सेठजी के मुख से अपने लिए गवार शब्द को सुनते ही वे सब लोग नाराज होकर उठ खडे हुए और बोले—आप हमें गवार कहते हैं! तब सेठ ने पूछा—अच्छा तो बताओ फिर गवार कौन है? तब वे काश्तकार बोले—गवार तो वे लोग हैं जो कि गादी के ऊपर भैंसे पाडे के समान पडे रहते हैं। यह सुनकर सेठ बोला—अच्छी बात है उन्हें ही भोजन करायेंगे। आप लोग जा सकते हैं। यह कहकर सेठ ने उन सबको विदा कर दिया। तत्पश्चात् सेठ के मुनीम ने सौ मुनीम-गुमास्ते को

इकट्ठा किया। जब वे लोग सेठ के सामने उपस्थित हुए, तब उसने उनका स्वागत करते हुए कहा—कहिये गंवार-साहबानो, आप लोगों के लिए क्या भोजन बनवाया जाय। यह सुनते ही वे लोग बोले—सेठ सा०, हम लोग कैसे गंवार हैं? सेठ बोला—आप लोग गादी पर पड़े रहते हैं, और हजारों रुपया वार्षिक का वेतन पाते हैं, इसलिए गंवार ही है। मुनीम-गुमासते बोले—आप जितना वेतन देते हैं, उससे कई गुणा धन कमा कर आपको देते हैं। फिर हम लोग गंवार कैसे हो सकते है। तब सेठ ने पूछा—तो बताओ गंवार कौन हैं? उन्होंने कहा—गंवार तो दलाल लोग हैं, जो गांठ का एक पैसा भी न लगाकर कमाते है और हवेलियां बनवाते है। यह सुनकर सेठ ने उन लोगो को विदा किया और दलालों को बुलवाया। दलालों ने सोचा आज तो कोई बड़ा सौदा हाथ लगने वाला है, अतः वे हर्षित होते हुए सेठ के पास पहुंचे और बोले—कहिये सेठ सा०, क्या लेना बेचना है? सेठ ने कहा—भाई मुझे सौ गंवारों को जिमाना है, अतः आप लोगों को बुलाया है। कहिए—क्या भोजन बनवाया जाय? यह सुनकर दलाल बोले—सेठ सा०, आप हमें गंवार कहते हो! सेठ बोला—हां-हां आप लोग गंवार तो है ही? क्या सौदा करने मे घर का पैसा लगाते हो? दलाल बोले सेठजी, पैसा लगाकर तो गेली रांड भी कमा लेती है। परन्तु हम लोग तो बिना पैसा लगाये ही हजारों कमाते हैं। और कमाने का रुख दिखाकर आप लोगों को हजारों-लाखों दिलाते है। यदि हम लोग प्रतिकूल हो जावें तो आपको एक पैसे का भी लाभ नही होने दे। तब सेठ बोला—अच्छा तो बताओ गंवार कौन है? दलाल बोले—फौजदार, दीवान आदि जितने सरकारी आफिसर है, वे सब पक्के गंवार है। यह सुनकर सेठ ने दलालों को विदा किया और सौ आफिसरों को बुलवाया। मुनीमजी ने उन लोगों से जाकर कहा सेठ सा० ने आप लोगों को याद किया है। भाई, पैसे वाले के बुलावे पर सब पहुंचते हैं अतः सभी आफिसर लोग अपनी अपनी सवारियों पर सवार होकर सेठजी के घर पहुंचे। सेठ ने सबका स्वागत किया और उन्हें यथोचित स्थान पर बैठाया। उन्होंने पूछा—कहिये सेठ साहब, कौन सा ऐसा केश आ गया है, जिसके लिए आपने हम लोगों को याद किया है? सेठ ने कहा—केश तो माथे के ऊपर रखता हूं। और यदि कोई नया काम कराना होगा तो राजा साहब से कहकर करा लूंगा। तब उन्होने पूछा—फिर आपने हम लोगों को क्यों याद किया है? सेठ ने कहा—बात यह है कि मुझे एक बड़ा भारी फोड़ा हो गया था। उसके ठीक होने के लिए मैंने सौ गंवारो को जिमाने की मनौती बोली थी। अब कहिये—आप लोगों को खिलाने के लिए क्या बनवाया जाय! यह सुनते ही रुष्ट होकर

आफीसर लोग बोले - अरे बनिये, तू हम लोगों से भी मजाक करता है ? तब सेठ बोला—आप लोग जरा शान्त होकर मेरी बात सुनें। आप लोगों ने अमुक-अमुक व्यक्ति को बिना किसी कसूर के फांसी पर चढ़ाया है और अमुक-अमुक को जेलखाने में डाला है। क्या यह झूठ है ? तुम लोगों को ऐसा अन्याय करते हुए शर्म तक नहीं आई ? फिर गंवार नहीं हो तो क्या हो ? यह सुनते ही सब के मुख नीचे हो गये ? तब सेठ उन्हें शान्त करता हुआ बोला—ऐसी नौकरी से तो मजदूरी करना अच्छा है। तब वे लोग बोले—सेठजी, आपका कहना सत्य है। नौकरी के वश होकर हमें उक्त अनुचित कार्य करने पड़े हैं। तब सेठने हाथ जोड़कर सबसे पूछा—कहिये, क्या भोजन बनवाया जाय। उन लोगो ने कहा—जो आपकी इच्छा हो। तब सेठने बढ़िया मिष्ठान्न बनवा कर उन्हें भोजन कराया और पान-सुपारी से सत्कार करके उन्हें विदा किया।

भाइयो, इस कथा के कहने का भाव यह है कि जब तक मनुष्य अपने रूप को नहीं देखता है, तब तक वह इधर-उधर गोते खाता-फिरता है। हम लोगों ने भी आज तक अपने रूप को नहीं देखा है, इसलिए आज संसार में गोते लगाते फिर रहे हैं। अतः हमें अपना रूप आज देखना चाहिए कि हम तो सिद्धों के समान शुद्ध अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यमय हैं और उस स्वरूप को पाने के लिए अब प्रयत्न करना है। यही सन्देश यह रूप चतुर्दशी हम सबको देती है।

वि० सं० २०२७ कार्तिक कृष्णा १४
जोधपुर

१६ | महावीर निर्वाण-दिवस

भाइयो, आज भगवान महावीर का निर्वाण-दिवस है। भगवान ने बारह वर्ष की कठिन साधना करने के पश्चात् चार घातिकर्मों का नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त किया था। तत्पश्चात् लगातार ३० वर्ष तक सारे भारतवर्ष में भ्रमण कर धर्म का उपदेश दिया था। तदनन्तर अपने अन्तिम चौमासे में भगवान् अपापा नगरी पधारे और श्री हस्तिपाल राजा की दानशाला में ठहरे। यहीं पर आपने अपना अन्तिम उपदेश दिया। आज कार्तिक कृष्णा अमावस्या की रात्रि के अन्तिम पहर में स्वातिनक्षत्र के समय योग-निरोधकर चौदहवां गुणस्थान प्राप्त कर और शेष चार अघातिकर्मों का क्षय करते हुए मोक्ष प्राप्त किया और सदा के लिए शिवलोक के निवासी बनकर सिद्धालय में जाकर विराजमान हो गये।

पुरुषार्थ की पूर्णता

पुरुष के चार पुरुषार्थ बताये गये हैं। उनमें मोक्ष यह अन्तिम और सर्व श्रेष्ठ पुरुषार्थ है। जब तक यह प्राप्त नहीं होता है, तब तक मनुष्य का पुरुषार्थ पूर्ण हुआ नहीं समझा जाता है। जैसे कि किसी सुन्दर मन्दिर के बन जाने पर भी जब तक उसकी शिखर पर कलश नहीं चढ़ाया जाता है, तब तक वह पूज्य एवं पूर्ण नहीं माना जाता है। अथवा जैसे किसी राजा के सर्व वस्त्राभरणों से भूषित हो जाने पर भी जब तक वह शिर पर मुकुट नहीं धारण करता है, तब तक शोभा नहीं पाता है। इसी प्रकार भगवान् महावीर

ने जन्म लिया, बाल-क्रीडाएं की, सयम धारण किया, और घोर तपश्चरण किया और केवल ज्ञान पाकर अरिहन्त पद भी पाया। परन्तु तब तक भी उनकी साधना पूर्ण नहीं थी। आज के दिन निर्वाण प्राप्त करने पर ही उनकी साधना पूर्ण हुई। क्योंकि उन्होने अपने साध्यरूप शिवपद को आज ही प्राप्त किया।

दीपावली-महोत्सव

प्रसिद्ध जिनसेनाचार्य भगवान महावीर के निर्वाण काल का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

चतुर्थकालेऽर्ध चतुर्थमासकं विहीनताविश्चतुरब्दशेषके।
स कार्तिके स्वातिषु कृष्णभूत सुप्रभात सन्ध्यासमये स्वभावत ॥
अघातिकर्माणि निरुद्धयोगको विधूय घातीन्धनवद्विबन्धन.।
विबन्धनस्थानमवाप शङ्करो निरन्तरायोरु सुखानुबन्धनम् ॥
स पञ्च कल्याण महामहेश्वर प्रसिद्धनिर्वाणमहे चतुर्विधैः।
शरीर पूजा विधिना विधानतः सुरै समभ्यर्च्यत सिद्धशासन ॥
ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया सुरासुरैः दीपितया प्रदीप्तया।
तदा स्म पावानगरी समन्तत प्रदीपिताकाशतला प्रकाशते ॥
ततस्तु लोक. प्रतिवर्षमादरात्प्रसिद्ध दीपालिकयात्र भारते।
समुद्यतः पूजयितु जिनेश्वरं जिनेन्द्र निर्वाण विभूतिभक्तिभाक् ॥

—हरिवंशपुराण, सर्ग ६६, श्लोक १६-२०

अर्थात्—जब चतुर्थकाल मे तीन वर्ष साढे आठ मास शेष रहे तब स्वाति नक्षत्र मे कार्तिक अमावस्या के सुप्रभातकाल के समय स्वभाव से ही योग-निरोध कर घातिकर्मरूप ईन्धन के समान अघाति कर्मों को भी नष्ट कर बन्धन से रहित हो ससार के प्राणियो को सुख उपजाते हुए निरन्तराय-अव्याबाध-सुख वाले मोक्ष स्थान को भगवान महावीर ने प्राप्त किया। गर्भादि पाच कल्याणको के महान् अधिपति, सिद्धशासन भगवान महावीर के निर्वाण के समय चारो निकायो के देवो ने आकर विधिपूर्वक उनके शरीर की पूजा की। उस समय सुर और असुरो के द्वारा जलायी हुई देदीप्यमान दीपको की भारी मालिका से अपापानगरी का आकाश सर्व ओर से जगमगा उठा। उस समय से लेकर भगवान के निर्वाण कल्याणक की भक्ति से युक्त ससार के प्राणी इस भारतवर्ष म प्रतिवर्ष आदर-पूर्वक इस प्रसिद्ध दीपमालिका के द्वारा भगवान महावीर की पूजा करने के लिए उद्यत रहने लगे। अर्थात् उनकी स्मृति मे दीपावली का उत्सव मनाते हुए चले आ रहे हैं।

चउसट्ठि महापुरिसचरिय मे भी कहा है—

एवं सुरगण पहामुज्जयं तंस्सि दिणे सयलं महीमंडलं दट्ठूण तहच्चेव कीरमाणे जणवएणं दीवोसवो 'त्ति पासिद्धि गओ'।

—(च० म० पु० च० पृ० ३३४)

अर्थात्—भगवान् महावीर के निर्वाण-समय देवो के द्वारा किये गये उद्योतमय महीमडल को देखकर जनपदवासी लोगो ने भी यह दीपोत्सव किया और तभी से यह दीपोत्सव प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ।

गौतम को केवलज्ञान

आज के दिन ही गौतमस्वामी ने केवल ज्ञानरूपी अनन्तलक्ष्मी को प्राप्त किया था, अत लोग तभी से आज तक आज के दिन लक्ष्मी का पूजन करते चले आ रहे है। हा, इतना परिवर्तन आज अवश्य दिखाई देता है कि लोग ज्ञानरूपी भाव लक्ष्मी को भूलकर अब द्रव्यलक्ष्मी का पूजन करने लगे हैं।

आज जितने भी सवत् प्रचलित है, उनमे भगवान् महावीर के निर्वाण-दिन से प्रचलित यह वीर-निर्वाण सवत् ही सबसे प्राचीन है और सभी भारतवासी और खासकर जैन लोग आज के दिन से ही अपने वहीखातो को प्रारम्भ करते हैं।

भारतवर्ष मे चार वर्ण वाले रहते है और प्रत्येक वर्ण का एक-एक महापर्व प्रसिद्ध है। जैसे - ब्राह्मणो का रक्षाबन्धन, क्षत्रियो का दशहरा (विजयादशमी), वैश्यो की दीपावली और शूद्रों की होली।

बन्धुओ, आज के दिन बाहिरी दीपको के समान आप लोगो को अन्त-रग मे ज्ञान के भी दीपक जलाना चाहिए। बाहिरी दीपको के लिए तो बाहिरी तेल बत्ती आदि की आवश्यकता होती है। परन्तु अन्तरग ज्ञान ज्योति को जलाने के लिए किसी बाहिरी साधन की आवश्यकता नही है। इसके लिए केवल राग-द्वेष रहित होकर आत्म-चिन्तन की आवश्यकता है। जिन महापुरुषो ने अपने घट के भीतर इस ज्ञान ज्योति को जलाया, वे कर्म-शत्रुओ को जला कर सदा के लिए अनन्त सुख के धनी बन गये।

वि० स० २०२७ कार्तिक कृष्णा १५

जोधपुर

१७ | विचारों की दृढ़ता

भाइयो, जैनशासन में विचारों का बड़ा महत्व है। पुण्य-पाप और बन्ध-मोक्ष सब कुछ विचारों पर अपने भावों पर ही अवलम्बित हैं। शास्त्रों में प्रश्न उठाया गया है कि—

जलेजन्तुः स्थलेजन्तुराकाशे जन्तुरेव च।
जन्तुमालाकुले लोके कथं भिक्षुरहिंसकः।

अर्थात्—जल मे जीव हैं, स्थल में जीव है और आकाश में भी जीव है। यह सारा ही लोक जीवों की माला से आकुल है—भरा हुआ है? फिर इसमे विचरता हुआ साधु अहिंसक कैसे रह सकता है? इसका उत्तर देते हुए कहा गया है कि—

विष्वक् जीव चिते लोके क्व चरन् कोऽप्यमोक्ष्यत ?
भावैकसाधनौ बन्ध-मोक्षौ चेन्नाभविष्यताम् ॥

अर्थात्—हे भाई, तेरा कहना सत्य है। किन्तु कर्मो के बन्ध और मोक्ष की व्यवस्था भावों के ऊपर अवलम्बित है। यदि मनुष्य के भाव हिंसारूप हैं, तो वह अवश्य कर्मों से बंधेगा, और कभी भी संसार से नहीं छूट सकेगा। किन्तु जिसके भाव शुद्ध हैं, जीवों की रक्षा के हैं—यतनापूर्वक उठता है, बैठता है, और यतनापूर्वक ही भोजन, भाषण आदि करता है, तो वह जीव कर्मो से नही बंधता है।

भाव ही सब कुछ

इस शंका-समाधान से आप लोगों को समझ में आ गया होगा कि जैनधर्म में सभी कुछ भला-बुरा काम मनुष्यों के भावों पर ही है। यदि मनुष्य अपने भावों पर, शुद्ध विचारों पर दृढ़ है, तो वह अवश्य ही अपने लक्ष्यभूत मोक्ष को प्राप्त कर लेगा। यही नही, अपितु जो मनुष्य लौकिक कार्यो के साधन करने वाले विचारों पर भी दृढ़ रहता है, वह भी अपना लौकिक कार्य सहज में ही सम्पन्न कर लेता है। यदि मनुष्य अपनी विचार-धारा से इधर-उधर हो जाय, तो फिर उसका वह कार्य पार पड़ना कठिन होता है। देखो—आपने एक पौधा कहीं लगाया। अब यदि आप उसे प्रतिदिन वहां से उखाड़ करके इधर-उधर लगाते रहें, तो वह कभी वृक्ष नही बन सकेगा। अंडा है, उसमें पंचेन्द्रिय जीव है, यदि उसे भी आप इधर-उधर उठाकर रखते रहेंगे, या हिलाते-डुलाते रहेंगे, तो वह भी गल जायगा और उसमें का जीव मर जायगा। इसलिए मनुष्य को अपनी उत्तम विचार-धारा मे सदा एकरूप से दृढ़ रहना चाहिए। भले ही वह विचार-धारा व्रतरूप हो, या अव्रत रूप हो, सम्यक्त्वरूप हो, अथवा मिथ्यात्व रूप हो, धर्मरूप हो, अथवा अधर्मरूप हो। किन्तु यदि उसकी धारा एक रूप है और वह उसमें एक रस होकर वह रहा है तो ऐसे व्यक्ति की अव्रत रूप, अधर्मरूप या मिथ्यात्व रूप विचारधारा को सहज में ही व्रतरूप, धर्मरूप या सम्यक्त्व रूप में बदला जा सकता है, उसकी उस धारा को मोड़ देने में न अधिक समय लगता है और न विशेष कठिनाई ही होती है। परन्तु जिस व्यक्ति की विचार-धारा क्षीण है, जिसके विचार कभी इधर और कभी उधर बदलते रहते हैं, उसको बदलना या उत्तम दिशा की ओर मोड़ देना संभव नहीं है। इसलिए मनुष्य को सबसे पहिले अपने विचारों को दृढ़ बना लेना चाहिए।

सिद्धान्त का अर्थ-दृढ़ता

विचार कहो, चाहे सिद्धान्त कहो और चाहे लक्ष्य कहो एक ही बात है। हमारे—आपके विचार सदा बदलते रहते है, इसलिए इन्हें सिद्धान्त नही कहा जा सकता है। जिनके विचार सदा स्थिर हैं, अटल हैं और लक्ष्य को प्राप्त करने के है, उन्हें ही सिद्धान्त शब्द से कहा जाता है। जिन विचारों का लक्ष्य अन्त मे सिद्ध पद अर्थात् मुक्ति या शिव पद को प्राप्त करने का है, उन विचारो का नाम ही सिद्धान्त है। शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि—

सिद्धः सिद्धिपदप्राप्तिरूपः अन्त : धर्मो यस्यासौ सिद्धान्तः।

इस निरुक्ति के अनुसार यह अर्थ फलित होता है कि अपने अभीष्ट शिव-पद प्राप्ति के लक्ष्य भूत विचारों को सिद्धान्त कहते हैं। मनुष्य को सदा ही

अपने विचार उस अभीष्ट पद के पाने का रखना चाहिये और उस पर शक्ति भर दृढ़ रहना चाहिये ।

जो व्यक्ति अपने विचारों पर दृढ़ नहीं रहता है और बे-पेंदी के लोटे के समान या फुटबाल की गेद के समान जिसके विचार इधर-उधर लुढ़कते-डोलते रहते हैं, लोग उन्हें शेखचिल्ली कहते हैं । जैसे मन्दिर के ऊपर लगी हुई ध्वजा हवा के जोर से कभी इधर और कभी उधर उड़ती रहती है, वैसे ही अस्थिर चित्त वाले व्यक्ति के विचार भी सदा इधर-उधर घूमते रहते है ऐसा व्यक्ति न लौकिक काम ही सिद्ध कर पाता है और न पारलौकिक कार्य ही सिद्ध कर पाता है । इसलिए मनुष्य को सदा अपने विचारों पर और अपने ध्येय पर सदा दृढ रहना चाहिये । अनेक मानव कार्य करते हुए दीर्घसूत्री हो जाते है, और सोचा करते है कि यदि यह काम करेंगे तो कही ऐसा न हो जाय, वैसा न हो जाय ? पर भाई संस्कृत की एक उक्ति हैं कि—

'दीर्घसूत्री विनश्यति' अर्थात् जो विचार किया करते हैं कि हम आगे ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे, परन्तु करते-धरते कुछ भी नही है, वे कभी भी कोई कार्य सम्पन्न नही कर पाते हैं और अन्त मे विनाश को प्राप्त होते हैं । इसलिये मनुष्य को अपना ध्येय निश्चय करके उस पर दृढ़ता पूर्वक चलते रहना चाहिए, तभी मनुष्य अपने लक्ष्य पर पहुंच सकता है और सफलता प्राप्त कर सकता है ।

बन्धुओ, देखो जो मनुष्य अपने पुत्र के उत्पन्न होते ही विचारता है कि मुझे इसको ऐसा सुयोग्य बनाना है कि दुनिया देखती रह जाय और इसी भावना के साथ वह उसका भली भांति से लालन-पालन करता है, सुयोग्य शिक्षाएं देता है और प्रतिदिन उत्तम संस्कारों से संस्कारित करता है, तो वह एक दिन उसकी भावना के अनुरूप बन ही जाता है । हां, यदि कोई कदाचित् अपने इस प्रयत्न में सफलता न पा सके, तो लोग यही कहेंगे कि उस व्यक्ति ने तो इसे सुयोग्य बनाने का बहुत प्रयत्न किया, मगर इसका भाग्य ही खोटा था, जो यथेष्ट सफलता नही मिले, तो मनुष्य का उसमें कोई दोष नही है । इसलिए नीतिकारों ने कहा है कि—

'यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः'

अर्थात्—प्रयत्न करते हुये भी यदि मनुष्य का कार्य सिद्ध नही होता ह तो उसमें फिर उसका कोई दोष नहीं है । यह तो उस पूर्वोपार्जित दुर्दैव का ही फल है, जो कि उसके प्रयत्न करते रहने पर भी उसे सफलता नहीं मिली है । परन्तु मनुष्य ही तो अपने इस दुर्दैव या सुदैव का निर्माण करता है, इसलिए

पूर्वोपार्जित दुर्दैव को शान्ति के साथ भोगते हुए भविष्य के दैव को सुन्दर निर्माण करने के लिए मनुष्य को अपनी शक्ति भर सुन्दर प्रयत्न करते ही रहना चाहिये। उसका यह वर्तमानकालीन प्रयत्न उसको भविष्यकाल मे सफलता दिलाने के लिये सहायक होगा।

आषाढ़भूति को प्रबोध:

भाइयो, आप लोगों ने आषाढ़भूति का नाम सुना होगा। वे किसी देश के राजा के यहा प्रधानमंत्री, थे और राज्य का सारा कारोबार संभालते थे। एकबार वे जंगल में शिकार खेलने के लिए गये। वहा पर किसी मुनि को ध्यानावस्थित देखा, देखते ही घोड़े पर से उतर कर उनके पास गये उनके चरणो में नमस्कार किया। साधु ने पूछा – अहो भव्य, तूने क्या सोच कर मुझे नमस्कार किया है। आषाढ़भूति बोले—महात्मन्, आप त्यागी पुरुष हैं, घर-बार छोड़कर तपस्या करते है और मुझसे बहुत अच्छे हैं, इसलिए आपको नमस्कार किया है। साधु ने फिर पूछा—और तू बुरा कैसे है? आषाढ़भूति ने कहा—महाराज, मैं अनेक प्रकार के बुरे काम करता हूं, इसलिए बुरा हूं। महात्मा ने कहा – तू भी बुरे काम छोड़कर अच्छा मनुष्य बन सकता है, महात्मा बन सकता है और लोक-पूजित हो सकता है। बता अब तू क्या त्याग करना चाहता है? आषाढ़भूति मन मे सोचने लगे—यह क्या बला गले आ पड़ी। मैं सीधा ही चला जाता तो अच्छा था। फिर साहस करके बोला—महात्मन्, मैं तो संसार में पड़ा हूं, अतः आप जो कहें उसी के त्याग का नियम ले लेता हूं। महात्मा बोले—भाई मैं तो कहता हूं कि तू सब कुछ त्याग करदे। देख, यह ससार असार है, ये विषय-भोग क्षण-भंगुर है किंपाक-फल के समान प्रारम्भ मे खाते समय मिष्ट प्रतीत होते हैं, किन्तु परिपाक के समय अत्यन्त दुःखकारी है। यह कह कर महात्मा ने एक भजन गाया—

मत कीज्यो जी यारी, ये भोग भुजंग सम जानके। मत कीज्योजी यारी।

भुजंग डसत इक बार नसत है, ये अनन्त मृत्युकारी।
तिसना तृषा बढ़े इन से यें, ज्यों पीये जल खारी॥
मत कीज्यो जी यारी, ये भोग० ॥ १॥

रोग वियोग शोक वन को घन, समता-लता कुठारी।
केहरि करी अरी न देत ज्यों, त्यो ये दें दुख भारी॥
मत कीज्यो जी यारी, ये भोग० ॥ २॥

इन में रचे देव तरु पाये, पाये श्वभ्र मुरारी।
जे विरचे ते सुरपति अरचे, परचे सुख अविकारी॥
मत कीज्यो जी यारी, ये भोग०॥ ३॥

पराधीन छिन मांहि क्षीण ह्वै, पाप-बन्ध करतारी।
इन्हे गिन्हें सुख आक मांहि जिम, आम तनी बुधि धारी॥
मत कीज्यो जी यारी, ये भोग०॥ ४॥

मीन मतंग पतंग भृंग मृग, इन वश भये दुखारी।
सेवत ज्यों किंपाक ललित, परिपाक समय दुखकारी॥
मत कीज्यो जी यारी, ये भोग०॥ ५॥

सुरपति नरपति खगपति हू की, भोग न आस निवारी।
भव्य, त्याग अब, भज विराग-सुख, ज्यों पावै शिव नारी॥
मत कीज्यो जी यारी, ये भोग भुजंग सम जानके॥
मत कीज्यो जी यारी॥ ६॥

और इसका अर्थ समझाते हुये कहा—हे भव्य, तू इन पांचो इन्द्रियों के काम-भोगों से यारी (प्रीति) मत कर, इन्हें काले सांप के समान समझ। भुजग का डसा पुरुष तो एक बार ही मरता है किन्तु विषय भोग रूपी भुजंग से डसा जीव अनन्तभवो तक मरण के दुख पाता है। फिर इन इन्द्रियों के काम-भोगों के सेवन से तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, जैसे कि खारा पानी पीने से प्यास शान्त नही होती, किन्तु और अधिक बढ़ती है। फिर ये भोग रोगों के घर हैं, इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग के द्वारा सदा शोक को उत्पन्न करते रहते हैं। समता रूपी लता को काटने के लिए कुठार के समान हैं, शेर, सिंह और शत्रु आदि भी वैसा दुःख नही देते हैं जैसा कि महादुःख ये काम भोग देते हैं। जो इन काम-भोगो में रचता है—आसक्त होता है, वह देव भी मर कर वृक्षादि एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होता है। नारायण आदि महापुरुष भी इन काम-भोगो में रच करके नरक को प्राप्त हुए हैं और जो इनसे विरक्त हुए हैं उनकी इन्द्रो ने पूजा की है और निर्विकार निराबाध मोक्ष-सुख को पाया है। वे काम-भोग पराधीन हैं, क्षण-भंगुर है और पाप-बन्ध के करनेवाले हैं। जो इन मे सुख मानता है, वह उस मनुष्य के समान मूर्ख है जो कि आकड़े को आम मानकर उससे मिष्ट फल पाना चाहता है। हे भव्य, और भी देख—इन पांचों इन्द्रियों में से एक-एक इन्द्रिय के वश हो कर मरण-जनित दुःख पाया है। हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के वश होकर मारा जाता है, मछली रसना इन्द्रिय के वश होकर वंशी में लगे आटे को खाने की

इच्छा से उसके कांटे में अपना गला फंसा कर प्राण गंवाती है, भौंरा सुगन्ध लोलुपी होकर कमल के भीतर बन्द होके प्राण गंवाता है। पतंगे रूप के लोलुपी बनकर दीपक की ज्वाला में जल कर मरते हैं और हरिण बहेलिये का गीत सुनकर श्रोत्र इन्द्रिय के वश मारा जाता है। फिर जो मनुष्य नित्य प्रति पांचों ही इन्द्रियों के काम-भोगों को भोगता है, उसकी क्या गति होगी, यह तू विचार कर। ये काम-भोग सेवन करते समय ही किंपाकफल के समान मधुर मालुम पड़ते हैं, किन्तु परिपाक के समय तो मरण को ही देते है। मनुष्य के काम-भोग तो क्या वस्तु है? राजाओं, विद्याधरों, चक्रवर्तियों और देवेन्द्रों तक की तृष्णा अपने असीम भोगों को चिरकाल तक भोगने पर भी शान्त नहीं हुई है, तो फिर तेरी तृष्णा इन अल्प भोगों से क्या शान्त हो सकती है। इसलिए हे भव्य, अब तू इन काम-भोगों को तज और सुख देने वाले विराग को भज, जिससे कि शिव लक्ष्मी का अविनाशी सुख पा सके।

महात्मा के इस उपदेश का आपाढ़भूति पर भारी प्रभाव पड़ा। वह बोला - महात्मन्, मैं अभी तक भारी अज्ञानान्धकार में था। आज आपके इस अपूर्व उपदेश से मेरे भीतर ज्ञान की ज्योति जग गई है। अतः अब मैं आपके ही चरणों की सेवा में रहना चाहता हूं। कृपा करके आप नगर में पधारिये। तब महात्माजी ने कहा—अवसर होगा तो आवेंगे। तत्पश्चात् यह आपाढ़भूति घोड़े पर चढ़ कर नगर में वापिस लौटा और सीधा राजा के पास पहुंच कर बोला—महाराज, अब आप अपना कार्य-भार सम्हालें। राजा ने पूंछा—आषाढ़भूति, क्या बात है? आज ऐसा क्यों कह रहे हो? उसने महात्मा के पास पहुँचने और उनके उपदेश की सुनने की सारी बात कह सुनाई और कहा—महाराज, मुझे मरने से कौन बचायेगा? यदि आप मुझे मरने से बचा सकते है, तो मैं आपका काम संभाले रह सकता हूं। परन्तु कल यदि अकस्मात् मौत आजाय, तो मुझे कौन बचायगा? सन्त तो कहते हैं -

दल-बल देवी देवता, मात-पित्ता परिवार।
मरती विरियां जीव को, कोई न राखन हार ॥

और आगम-शास्त्रों में भी कहा है—

तत्थ भवे किं सरणं जत्थ सुरिंदाण दीसदे विलओ।
हरि-हर-बंभादीया कालेण य कवलिया जत्थ ॥

अर्थात्—जिस संसार में देवों के स्वामी इन्द्रों का भी विनाश देखा जाता है और जहां पर हरि-हर-ब्रह्मादिक भी काल के ग्रास बन चुके हैं, उस संसार

में कौन किसको शरण दे सकता है और मरण से बचा सकता है। इसलिए अब तो मैं 'केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि' अर्थात् केवलि-भगवान के द्वारा प्ररूपित धर्म की शरण को प्राप्त होता हूं।

दंसण-णाण-चरित्तं सरणं सेवेह परम सद्धाए।
अण्णं किं वि ण सरणं संसारे संसरंताणं ॥

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वरूप जो भगवद्-उपदिष्ट धर्म है, मैं अब परमश्रद्धा से उसका ही सेवन करूंगा। क्योंकि संसार में परिभ्रमण करते हुए जीवों को इस धर्म के सिवाय और कुछ भी शरण नहीं है।

अतएव हे महाराज, जब मरना निश्चित है और इन सांसारिक काम-भोगों का वियोग होना भी निश्चित है, तब उनका स्वयं त्याग करना ही उत्तम है। क्योंकि महर्षियों ने कहा है—

अवश्यं यदि नश्यन्ति स्थित्वापि विषयाश्चिरम्।
स्वयं त्याज्या स्तथा हि स्यान्मुक्तिः संसृतिरन्यथा ॥

यदि ये काम-विषय चिरकाल तक रह कर भी अन्त में अवश्य ही विनष्ट होते हैं, तब इनका स्वयं ही त्याग करना उचित है। क्योंकि स्वयं त्याग करने पर तो मुक्ति प्राप्त होती है। अन्यथा संसार में परिभ्रमण करना पड़ता है।

हे राजन्, अब मैंने संसार छोड़ने का निश्चय कर लिया है, अतः अब मुझे आज्ञा दीजिए, ताकि मैं आत्म-कल्याण कर सकूं! राजा ने भी देखा कि अब यह रहनेवाला नहीं है, तब उसे आज्ञा दे दी। तत्पश्चात् आषाढ़भूति घर आया और कुटुम्ब-परिवार को भी समझा-बुझा कर और सबसे अनुज्ञा लेकर महात्माजी के पास जाकर साधु बन गया और उनकी चरण-सेवा में रहते हुए आत्मसाधना करने लगा। उसकी इस आत्म-साधना और घोर तपस्या को देखकर लोग कहने लगे—अहो, कहां तो यह महा शिकारी था और कहां अब यह साधना के द्वारा अपने ही शरीर को सुखा रहा है। तपस्या के प्रभाव से आषाढ़भूति को अनेक ऋद्धियां सिद्ध हो गईं और वह निस्पृहभाव से अपनी साधना में संलग्न रहने लगा।

एक समय विहार करते हुए वह अपने गुरु एवं संघ के साथ राजगृही नगरी में आया। अभी तक गुरुदेव कभी किसी शिष्य को गोचरी लाने की आज्ञा देते थे और कभी किसी को। एक दिन उन्होंने आषाढ़भूति को गोचरी लाने की आज्ञा दी। आषाढभूति नगरी में गये और उत्तम, मध्यम, जघन्य सभी प्रकार के कुलों में अर्थात् सधन-निर्धन सभी प्रकार के लोगों के घरों में गोचरी के लिए गये। परन्तु साधुजनों के योग्य एषणीय आहार कहीं

भी प्राप्त नहीं हुआ और न निर्दोप जल मिला। ज्येष्ठ मास और मध्याह्न का समय था, गोचरी के लिए भ्रमण करते हुए आपाढ़भूति का शरीर गर्मी से तिलमिला उठा। आखिर, इतने दिन बीत जाने पर भी अभी तक शरीर की सुकुमारता नहीं गई थी। अतः वे विचारने लगे कि साधुपने के अन्य कार्य तो अच्छे हैं। परन्तु गोचरी के लिए यह घर-घर फिरना ठीक नहीं है। इधर तो यह विचार आया और उधर सामने ही एक बड़ी हवेली का प्रवेश द्वार खुला हुआ दीखा। उन्होंने उसमे प्रवेश किया। उस हवेली का मालिक एक भरत नामक नट था। उसकी दृष्टि गोचरी के लिए आते हुए साधु पर पड़ी। उसने साधु से कहा—पधारो महाराज, आज मेरा घर पवित्र हो गया। इसी समय उसकी स्त्री और दोनों जवान लड़किया भी आगईं। सबने साधु की अभ्यर्थना की। और घर में उसी दिन के ताजे बने हुए लड्डुओं में से एक लड्डू बहरा दिया। आपाढ़भूति मुनि सोचने लगे—आज मैं तो गोचरी के लिए घूमता हुआ हैरान हो गया। अब तो अन्यत्र जाना संभव नहीं है। अतः वे ड्योढ़ी तक गये और लब्धि के बल से दूसरा रूप बना कर फिर आगये। भरत नट ने एक लड्डू और बहरा दिया। वे फिर ड्योढ़ी तक जाकर और नये युवा मुनि का रूप बना कर फिर आगये। भरत नट ने पुनः एक और लड्डू बहरा दिया। अब की बार वे वृद्ध मुनि का रूप बना कर आये और एक लड्डू फिर ले आये। यह देखकर भरत नट विचारता है कि ये ड्योढ़ी तक जाकर ही फिर-फिर आ जाते हैं, घर से बाहिर तो निकलते ही नहीं है, और हर बार नया रूप बनाकर आ जाते हैं, अतः ये करामाती प्रतीत होते है। अब जैसे ही चौथी बार वे साधु जब तक लौट कर नहीं आये, तब तक इसी ही बीच में वह नट भीतर गया और लड़कियों से बोला मैं तुम लोगों की शादी करने के लिए इधर-उधर बहुत फिरा हूं। मगर अभी तक कोई उत्तम वर और घर नजर नहीं आया है। और यह साधु करामाती जान पड़ता है सो यदि अब यह भीतर आवे, तो तुम लोग उसे अपनी मोहिनी विद्या से मोहित कर लो। मैं उसी के साथ तुम लोगों की शादी कर दूंगा। लड़कियों ने उसकी बात स्वीकार कर ली। अब की बार जैसे ही वे साधु नया रूप बनाकर आये तो भरत नट की दोनों पुत्रियों ने लड्डू बहराये और बोली, हे स्वामिन्, आप बार-बार क्यों कष्ट उठाते है। आपकी सेवा में हम सब उपस्थित हैं और यह धन-धान्य से भरा-पूरा मकान भी आपको समर्पित है। अतः आप यहीं रहिये। उन लड़कियों की यह बात सुनकर मुनि बोले—तुम लोग दूर रहो और हमसे ऐसी अनुचित बात मत कहो। तब वे दोनों बोली—अब दूर रहने का काम नहीं है। हमने आपकी सब करामात देख ली है। आप आये तो एक हैं और

चार बार नये नये रूप बनाकर कपटाई करके लड्डू ले जा रहे हैं, सो क्या यह साधु का काम है ? आप अब जीभ के वशीभूत हो गये है । अतः अब आपसे साधुपना पालना कठिन है । क्योंकि नीतिकारों ने कहा हैं—

वाड़ी बिगाड़े वांदरा, सभा बिगाड़े कूर ।
भेष बिगाड़े लोलुपी, ज्यों केशर में धूर ।।
दीवा झोलो पवन को, नर नें झोलो नार ।
साधु झोलो जीभ को, डूबा काली धार ।।

जो साधु जीभ का चटोकरा हो जाता है, उससे फिर साधुपने का निर्वाह कठिन ही नही, असंभव है । ऐसा साधु फिर साधु नहीं रहता है, किन्तु स्वादु बन जाता है और उसके पीछे फिर घर-घर डोला करता है । अतः हम हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं, सो आप स्वीकार कीजिए और फिर रईसों के समान घर पर रह कर आनन्द के साथ खाइये-पीजिये और हम लोगों के साथ मजा उड़ाइये । उन लडकियों के हाव-भाव को देखकर और इस बात को सुनकर आषाढभूति का मन विचलित हो गया और विचारने लगा कि इस साधुपने में रहना और घर-घर मांगते फिरना उचित नहीं है । यह विचार आने पर वे लडकियों से बोले— मैं अपने गुरु महाराज के पास जाता हूं । यदि उन्होंने आज्ञा दे दी तो आजाऊंगा, अन्यथा नहीं आऊंगा । यह कह कर वे अपने गुरु के पास गये । गोचरी में अत्यधिक बिलम्ब हो जाने से वे सोच रहे थे कि आज आषाढ़भूति अभी तक क्यों नहीं आया ? जब उन्हें नई चाल-ढाल से और बिना ईर्या समिति के आते हुए देखा तो उनसे पूछा—इतनी देर क्यों लगी ? तब वह बोला गुरुजी, मैं तो पूछने को आया हूं । गुरु ने कहा—अरे, क्या पूछने को आया है ? आषाढ़भूति बोला—अब आप अपने ये झोली-पातरे सभालो । मेरे से अब ये साधुपन और घर-घर भीख मांगना नहीं होगा। गुरु बोले—अरे, आज तुझे यह क्या हो गया है ? क्या पागल तो नहीं हो गया है, जो हाथ में आये और स्वर्ग-मोक्ष के सुखों को देनेवाले चिन्तामणि रत्न के समान इस संयम को छोड़ने की बात कहता है ! आषाढ़भूति बोला—गुरुजी, इतने दिनों तक आपका उपदेश लग रहा था, परन्तु अब नहीं लग सकेगा । गुरुजी ने बहुत समझाया और कहा कि देख यदि इस संयम रत्न को छोड़ेगा तो संसार-सागर मे डूब जायगा ।

गुरु की सीख :

अतः मेरा कहना मान और साधु मार्ग से भ्रष्ट मत हो । गुरु महाराज के बहुत कुछ समझाने पर भी जब वह नहीं माना आर बोला— अब मुझसे यह

संयम नहीं पलेगा। बिना पूछे नहीं जाना चाहिए, इसलिए मैं तो आपसे पूछने के लिए आया हूं। जब गुरु ने देखा कि अब यह साधुपने में रहनेवाला नहीं है, तब उससे कहा अच्छा, तो मेरी एक बात तो मानेगा ? वह बोला—और सब मानूंगा, पर नहीं जाने और विवाह नहीं करने की बात को नहीं मानूगा। यह सुनकर गुरु ने कहा—देख, मांस और मदिरा काम मे मत लेना। इनका सेवन मानव को दानव बना देता है। आपाढ़भूति ने कहा—महाराज, जब इतने दिनों तक आपकी सेवा में रहा हूं, तब यह बात अवश्य मानूंगा और मांस-मदिरा का सेवन नहीं करूंगा। यदि कदाचित् मेरे घर में आ भी जायगा, तो मैं घर-बार को ठोकर मार कर वापिस आपके पास आजाऊंगा। यह कह कर वह सीधे भरत नट के घर गया। वहां सभी लोग उसके आने की प्रतीक्षा कर ही रहे थे, सो इसे आया हुआ देखकर सब बहुत हर्षित हुए। और स्वागत करते हुए बोले—पधारिये ! आपाढ़भूति बोला—यदि आप लोग आजन्म मांस-मदिरा का सेवन त्याग करना स्वीकार करो तो मैं आ सकता हूं, अन्यथा नहीं। यह सुनकर वे सब बोले—इन दोनों का त्याग हम लोगों से नहीं हो सकता है। तब आपाढ़भूति बोला तो हम भी नहीं आ सकते है। यह सुनकर भरत नट ने सोचा—घर में आया हुआ हीरा वापिस चला जाय, यह ठीक नहीं। अतः उसने लड़कियों से कहा—सोचलो, यदि ये दोनों चीजे छोड़ने को तैयार हो तो ये आ सकते है अन्यथा नहीं। तब दोनों लड़कियों ने कहा—हां, हम इन दोनों का त्याग करते हैं। आपाढ़भूति ने कहा—देखो, आज तुम लोगों का स्वार्थ है, अतः त्याग की बात स्वीकार कर रही हो। किन्तु यदि किसी दिन तुम लोगो ने भूल से भी इसका सेवन कर लिया तो मैं एक भी क्षण तुम्हारे घर में नहीं रहूंगा और जहां से आया हूं वहीं पर वापिस चला जाऊंगा। फिर मैं किसी भी बन्धन से बधा नहीं रहूंगा। दोनों लडकियों ने आपाढ़भूति की बात स्वीकार करली और भरत नट ने ठाठ-बाट के साथ दोनों लड़कियों का विवाह उसके साथ कर दिया और आपाढ़भूति उनके साथ सर्व प्रकार के काम-भोगों को भोगता हुआ आनन्द के साथ दिन बिताने लगा।

भरत नट के पास अपार सम्पत्ति थी, विशाल महल था और सर्व प्रकार का यश-वैभव प्राप्त था, आपाढभूति इसमें ऐसा मस्त हो गया कि सामायिक, पौषध और नवकार मंत्र स्मरण आदि सब भूल गया। यदि उसे ध्यान है तो केवल एक ही बात का कि मेरे घर में कोई मांस-मदिरा का सेवन न करे। नट की दोनों लड़कियाँ इधर-उधर सखी-सहेलियों के घर जाती है तो वहां पर भी वे सावधान रहती हैं कि कही पर मांस-मदिरा खाने-पीने में न आ जाय। आपाढभूति भी खाने-पीने के विषय में पूर्ण सतर्क रहता है और सब की ओर

दृष्टि रखता है कि कहीं कोई उक्त वस्तुओं का सेवन तो नहीं करता है। इस प्रकार दोनों स्त्रियों के साथ अपने ससुर भरत नट के ऐश्वर्य का उपभोग करते हुए बहुत समय बीत गया।

एक बार राजगृही नगरी में एक विदेशी नट आया। वह नृत्य कला में बड़ा कुशल था। पैरों में पुतले बांध करके नृत्य किया करता था। वह राजा श्रेणिक की सभा में गया और नमस्कार कर श्रेणिक से बोला—महाराज, आपके राज्य में जो भी कुशल नृत्यकार नट हों उन्हें बुलाइये, यदि वे मुझे जीत लेंगे तो मैं उनका दास बन जाऊंगा। अन्यथा आपका पुतला पैरों में बांधकर सर्वत्र नृत्य दिखाऊंगा। उसकी बात सुनकर श्रेणिक ने अपने सभी नामी नटों को बुलाया और उस विदेशी नट के साथ नृत्य करने को कहा। परन्तु सभी नट उससे हार गये। श्रेणिक यह देखकर बड़ा चिन्तातुर हुआ और उसने भरत नट को बुलाकर कहा—भरत, अब इस विदेशी नट के साथ नृत्य करने की तेरी बारी है। देख, कहीं ऐसा न हो कि यह तुझे हरा दे, अन्यथा राज्य की शान चली जायगी। श्रेणिक की बात सुनकर भरत बोला—महाराज, मैं इसे नहीं हरा सकता, कारण कि इसके भीतर अनेक कलाएं हैं और अब मैं वृद्ध हो गया हूं। किन्तु यदि आप आज्ञा देवें और मेरे जमाईराज स्वीकार कर लेवें तो बात नहीं जायगी और शान बनी रहेगी। यह कह कर वह अपने घर आया। उसे चिन्तित देखकर लड़कियों ने पूछा—पिताजी, आज उदास क्यों दीख रहे हैं। भरत नट ने सारी बात लड़कियों को बताई। लड़कियों ने जाकर अपने पति आषाढ़भूति से कहा। उसने हंसकर कहा—यह कौनसी बड़ी बात है। तुम जाकर अपने पिताजी से कह दो कि वे कोई चिन्ता न करें, मैं उस विदेशी नृत्यकार के साथ नृत्य करूंगा। लड़कियों ने जाकर यह बात अपने पिता से कह दी और उसने जाकर राजा श्रेणिक से कह दिया कि उस विदेशी नृत्यकार के साथ मेरे जमाईराज नृत्य करेंगे।

राजा श्रेणिक ने नगर में घोषणा करा दी कि आज उस विदेशी नृत्यकार के साथ भरत नट के जमाईराज प्रतियोगिता में खड़े होकर नृत्य करेंगे। घोषणा सुनकर नियत समय पर सब सरदार और नगर के प्रधान लोग राज सभा में एकत्रित हो गये। पहिले विदेशी नृत्यकार ने नृत्य प्रारम्भ किया। उसके नृत्य को देखकर सारी उपस्थित जनता मंत्र-मुग्ध होकर चित्रलिखित सी स्तब्ध हो गई। तब भरत के संकेत पर आषाढ़भूति रंगभूमि में उतरे। इन्हें अनेक ऋद्धियां सिद्ध थीं। अतः उन्होंने सर्व रस और भावों से भरा ऐसा नृत्य किया कि जिसे देखकर सब लोग वाह-वाह कह उठे और जयकार की ध्वनि से

आँकाश गूंज उठा। आपाढ़भूति के इस अनुपम नृत्य को देखकर विदेशी नृत्यकार उनके चरणों में आकर गिर पड़ा और बोला हे कलाकार, ऐसी अनुपम कला आज प्रथम बार ही मेरे देखने में आई है। मेरे पास ऐसी कोई कला नहीं है, कि जिससे मैं तुम्हारी बराबरी कर सकूं ? फिर भी मैं जानना चाहता हूं कि आप कौन-कौन से नाटक कर सकते हैं ? आपाढ़भूति ने कहा—मैं संसार भर के नाटक कर सकता हूं। यह सुनकर वह सोचने लगा कि मैं इसे ऐसे नाटक को करने के लिए कहूं कि जिसे यह नहीं कर सके। तब उसने राजा श्रेणिक से कहा महाराज, मैं इनके द्वारा किया हुआ भरत चक्रवर्ती का नाटक देखना चाहता हूं। यदि यह नाटक आप इनके द्वारा दिखवा देवें तो बड़ी कृपा होगी। श्रेणिक ने भरत नट से कहा—कल आपके जमाईराज को भरतराज का नाटक करना होगा। सारे नगर में घोषणा करा दी गई। नृत्य स्थल पर विशाल मंडप बनाने का आदेश दे दिया गया।

एक झटका :

घोषणा सुनकर भतरनट की लड़कियों ने सोचा—इस नाटक के करने में तो तीन-चार दिन लगेंगे और हमारे पतिदेव नाटक करने में संलग्न रहेंगे। अतः मांस-मदिरा के सेवन के यह लिए अवसर उपयुक्त है। ऐसा विचार करके उन दोनों ने नौकरों से दोनों चीजें मंगाकर उनको खा-पी लिया। जब आपाढ़-भूति राजसभा से वापिस आया और घर में गया तो उसे मांस-मदिरा की गन्ध आई। उसे असली बात समझते देर नहीं लगी और उसने अपनी दोनों ही स्त्रियों को डाटते और धिक्कारते हुए कहा—अरी दुष्टाओ, तुम्हें मांस-मदिरा को सेवन करते हुए शर्म नही आई और मेरे से किये हुए अपने वायदे को तोड़ दिया। अब मैं भी अपने वायदे के अनुसार इस घर में एक क्षण भी नहीं रह सकता हूं। आपढ़भूति की बात सुनते ही उनका नशा काफूर हो गया और क्षमा-याचना करती हुई बोली—पतिदेव, हमसे भूल हो गई। अब आगे से हम उन्हें कभी काम में नही लेंगी। आपाढ़भूति ने कहा—अब तुम लोग हमारे काम की नहीं रही हो। और मैं भी अब इस घर में नही रह सकता हूं, यह कहकर आपाढ़भूति महल से निकल कर बाहिर चले आये। जब भरतनट को यह सब वृतान्त ज्ञात हुआ तो उसने लड़कियों से कहा—अरी पापनियो, तुमने यह क्या किया ? ऐसे अनमोल हीरे को तुम लोगों ने हाथ से खो दिया। इसने तो राजसभा मे आज मेरी और राजा की इज्जत बचा ली और विदेशी नृत्यकार को हरा दिया। तुम लोगों ने त्यागी हुई वस्तु को काम में ले लिया, यह बहुत भारी पाप किया है। लड़कियां लज्जित और

दुखित होती हुई बोलीं—पिताजी, भूल तो हम लोगों से हो गई। अब आगे कभी भी उन वस्तुओं का सेवन नहीं करेंगे। आप किसी प्रकार उन्हें मना करके वापिस लाओ। भरत बोला—हमें तो आशा नहीं है कि वे वापिस आयेंगे। फिर भी मैं लाने का प्रयत्न करूंगा।

सच्चा नाटक :

आपाढ़भूति भरत की हवेली से निकलकर रातभर एक एकान्त उद्यान में रहे। रात-भर उनको नींद नहीं आई और वे अपने पिछले जीवन का विहंगावलोकन करते रहे। तथा भरत-चक्रवर्ती के जीवन के चिन्तन में निमग्न रहे। दूसरे दिन वे यथासमय राज-सभा में गये। देखा कि सब ओर अगणित नर नारी भरत का नाटक देखने की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं। घंटी बजने के साथ ही आपाढ़भूति ने रंगभूमि में प्रवेश किया और सर्वप्रथम भरत द्वारा की गई दिग्विजय का चित्र प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् नगर में सुदर्शन-चक्र के प्रवेश नहीं करने पर और पुरोहित द्वारा अपने भाइयों के आज्ञानुवर्ती नहीं होने की बात को जानकर उनके पास अधीनता स्वीकार करने के लिए सन्देश भिजवाया। बाहुबली के सिवाय शेष भाई तो उसे सुनते ही दीक्षित हो गये। किन्तु बाहुबली ने उनकी अधीनता को ठुकरा दिया। तब भरत और बाहुबली का ऐसा अद्भुत युद्ध आपाढ़भूति ने दिखाया कि सारी सभा विस्मित होकर देखती ही रह गई। जब बाहुबली की तपस्या का दृश्य दिखाया तो उनके नाम के जयनाद से आकाश गूंज उठा। भाई, जिसके पास शक्ति होती है, ऋद्धि-सिद्धि होती है, उसे अद्भुत कार्य करने में भी क्या लगता है?

तत्पश्चात् भरत द्वारा ब्राह्मणों की उत्पत्ति का भी अद्भुत दृश्य दिखाया। अन्त में आरीसा-भवन का दृश्य प्रस्तुत किया। अभी तक तो आपाढ़भूति भरत का द्रव्य दृश्य दिखा रहे थे, क्योंकि भरत की विभूति, नौ निधि, चौदह रत्न और उनके अपार भोगोपभोगों को ही दिखाया गया था। अब भरत के भावनाटक का अवसर आया तो आपाढ़भूति के भाव भी उत्तरोत्तर बढ़ने लगे। वह भरत के समान ही सर्व आभरणों से विभूषित होकर आरीसा भवन में घूमने लगा। सहसा हाथ की अंगुली से अंगूठी गिर पड़ी। अंगुली निष्प्रभ प्रतीत हुई, तो एक-एक करके सर्व आभूषण उतारना प्रारम्भ कर दिये और शरीर की घटती हुई श्री को देखकर वैराग्य का सागर उमड़ पड़ा। तत्काल संयम को स्वीकार किया और देखते-देखते ही केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हो गया और आपाढ़भूति केवलज्ञानी बन गये।

राजा श्रेणिक और उपस्थित लोग भरत का यह साक्षात् नाटक देखकर मुख मे अंगुली दबाकरके रह गये। वह विदेशी नृत्यकार भी यह देखकर दंग रह गया।

भरत को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ जानकर देवगण आकाश में जय-जयकार करने लगे। जब आपाढ़भूति केवली रंगभूमि से वाहिर निकले तो पांचसौ मनुष्यों ने उनसे संयम अंगीकार किया। आपाढ़भूति उन सबके साथ अपने गुरु के पास गये। अनेक सन्तों को आता हुआ देखकर गुरु के संघस्थ साधु चर्चा करने लगे कि यह किस महात्मा का संघ आ रहा है। गुरु देव को पहिले ही पता था। जब आपाढ़भूति सामने पहुँचे तो गुरु ने कहा — अहो मुने, चेत गए? उन्होंने कहा — आपने चेतन का मार्ग बताया था, उसी के प्रताप से मैं चेत गया हूं। तत्पश्चात् गुरु ने पूछा — अहो केवली, बताइये — मैं भव्य हूं, या अभव्य? तब केवली ने कहा आप इसी भव में मोक्ष जायेंगे। यथासमय गुरु की भाव शुद्धि बढ़ी और वे भी केवल ज्ञान प्राप्तकर मोक्ष को पधार गये।

भाइयो, मानव या इन्सान वही है, जिसके विचार, धारणा और सिद्धान्त एक ही रहते हैं। जो जरासा भी निमित्त मिलने पर अपने विचारों और भावों को बदलता है, उसे मानव नहीं कहा जा सकता है। देखो आपाढ़भूति गिरे तो कहां तक गिरे और चढ़े तो कितने चढ़े? क्या आप उनको गिरा हुआ मानेंगे? वे गिरने पर भी गुरु की इस शिक्षा पर दृढ़ रहे कि जहां पर मांस-मदिरा का सेवन होगा, वहां पर मैं नहीं रहूँगा और ऐसे लोगों के साथ किसी प्रकार का संपर्क ही नही रक्खूँगा। जो गुरु की शिक्षा को मानने वाले हैं, उनका कल्याण क्यों नहीं होगा? अवश्य ही होगा। यदि कोई पुरुष आचार्य भी बन जाय, परन्तु विनयवान् नहीं रहे और उनकी आज्ञा से बाहिर चला जाय, तो उसका पतन होगा ही। भाई, जैन मुनि आज ही पैदा नहीं हुए हैं और न जैन सिद्धान्त और उसके कथानक भी आज ही उत्पन्न हुए है। ये तो अनन्त काल से चले आ रहे हैं। तथा अन्य मत भी सदा से चले आ रहे हैं और लोगों का उत्थान-पतन भी हमेशा से होता आया है। किन्तु वे ही मनुष्य इस संसार-गर्त से अपना उद्धार कर पाते है, जो कि आत्म-उद्धार के लक्ष्य पर दृढ़ रहते हैं। पहिले के आचार्य स्वयं अपने कर्त्तव्य-पालन में दृढ़ होते थे तो उनके शिष्य भी वैसे ही कर्त्तव्य-परायण होते थे। आचार्य को सूर्य के समान तेजस्वी और प्रतापी होना चाहिए, जिसके तेज और प्रताप से शिष्यगण दहले और पापाचरण से दूर रहें। आज हम लोगों के पास आडम्बर है—ढोंग है और कोई भी ऋद्धि-सिद्धि नही है। यही कारण

है कि आज आचार्यों का हर एक व्यक्ति सामना करने को तैयार हो जाता है। अन्यथा तेजस्वी और प्रतापी आचार्यों का मुकाबिला करना क्या आसान था। पूर्व समय के ऋषि-मुनि और आचार्य संघ, समाज और धर्म के ऊपर संकट आने पर मर मिटते थे। और कभी पीछे नहीं हटते थे।

तप का चमत्कार

पूज्य रघुनाथजी महाराज वि० सं० १८१३ में सादड़ी को सर करने के लिए और जयमल जी महाराज बीकानेर को सर करने के लिये पधारे। मार्ग में दोनों सन्तों को बहुत कष्ट उठाने पड़े। जब वे जोजावर से विहार करते हुए आगे बढ़े तो मार्ग भूल गए। पीरचन्दजी—जो जाति के दरोगा थे और बेले-बेले पारणा करते थे—उनसे गुरुदेव ने कहा—पीरचन्दजी! मार्ग में प्यास का परीषह अधिक है और मुझे भी प्यास लग रही है तो तुम गांव में जाओ और पानी लेकर आओ। वे दो बड़े पात्र लेकर चले। उस समय वहां पर जतियों का बड़ा चमत्कार था। उन्होंने विचार किया कि ये साधु ज्ञान—और क्रिया से तो परास्त नहीं किये जा सकते हैं। अतः इन पर कोई लांछन लगा कर इन्हें परास्त किया जावे। जब वे पानी लेने के लिए गांव के पास पहुंचे तो समीप में जो भोमियों की पोल थी, वहां गये। भोमियों ने पूछा—महाराज, क्या चाहिए है? पीरचन्दजी ने कहा—धोवन-पानी की आवश्यकता है। उन्होंने कहा--आप रावले में पधारो। उस समय जतियों ने ठाकुर को सिखला दिया। उन्होंने एक पात्र मे तो दूध बहरा दिया और दूसरे पात्र में छांछ बहरा दिया। उस छाछ में एक मरी कीड़ी पड़ी थी, जो बहराते समय पीरचन्दजी को नजर नहीं आई। जब वे वहां से बाहिर निकले तो अनेक लोग इकट्ठे हो गये और बोले—महाराज, जैनधर्म को क्यों लजाते हो? उन्होंने पूछा—हम कैसे जैन धर्म को लजाते हैं? तो वे लोग बोले—आप इन पात्रों में मांस-मदिरा लेकर आये हैं! पीरचन्दजी ने कहा—भाई, हम लोग तो इन वस्तुओं का स्पर्श तक भी नहीं करते हैं, उनके लाने की बात बहुत दूर है। लोग बोले—पात्र दिखलाओ! पीरचन्दजी ने कहा—मैं पात्र तुम लोगों को नहीं दिखा सकता। गुरु महाराज के सामने दिखाऊंगा। लोगों ने वहीं पात्र देखने का विचार किया, परन्तु उनके तपस्तेजस्वी शरीर के सामने हिम्मत नहीं हुई और अनेक लोग उनके साथ हो लिये। लोगों के कहने से ठाकुर सा० भी आ गये। लोगों ने उनसे कहा—आप इनके पात्र दिखला दो तो हम लोगों की बात रह जावे, क्योंकि लोग कहते हैं कि मांस-मदिरा बहराया है और ये

कहते हैं कि नहीं वहराया है। ठाकुर सा० ने कहा—महाराज, यदि आपका कथन सत्य है, तो पात्र दिखला दीजिए। तब पीरचन्दजी ने कहा—ठाकुर सा०. आप गांव के मालिक है, आपके लिए सब मत वाले एक से हैं, अतः किसी के भी साथ पक्षपात नहीं होना चाहिए। ठाकुर बोले—महाराज यदि इन लोगों का कथन असत्य निकला तो हम इन लोगों को गांव से बाहिर निकाल देंगे। और हम आपके चरणों में पड़ेगे। पीरचन्दजी बोले—वैसे तो हम गुरु के सिवाय किसी को भी पात्र नहीं दिखाते हैं। किन्तु जब अवसर आ गया है, तब दिखा देते हैं। यह कहकर उन्होंने अपनी झोली नीचे रखी और मुख से कहा इष्ट देव, तार! इसके पश्चात् जो झोली खोल कर पात्र दिखाये तो असली कम्मोदिनी चांवलों के भात से भरे हुए दिखे। उन्हें देखते ही सारी जनता अवाक् रह गई और सब जती-मती ठंडे पड़ गये। ठाकुर सा० यह देखकर बड़े विस्मित हुए और बोले—ऐसे ऊंचे महात्मा यदि एक फूंक मार देवें तो मेरा पता भी न चले। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—महाराज, हमसे भूल हो गई। पीरचन्दजी बोले—नहीं, तुम्हें इसका दंड भोगना पड़ेगा। ठाकुर के बहुत अनुनय-विनय करने पर उन्होंने कहा—ठाकुर सा०, यहां पर शिलापट्ट पर लिख दिया जावे कि आगे से मुंहपत्ती वाले साधु की कोई बेइज्जती नहीं करेगा। यदि कोई करे तो उसे गाय और कुत्ते की सौगन्ध है। आजतक वहां पर यह शिला लेख मौजूद है।

बन्धुओ, जब अपने भीतर ऐसे महात्मा सन्त थे, तब कोई भी उनका सामना नहीं कर सकता था और न धर्म का लोप या अपमान ही कर सकता था। किन्तु आज भीतर से सब खोखले है, अन्दर दम नहीं है। जिसके भीतर ऋद्धि-सिद्धि है और चमत्कार है तो चमत्कार को नमस्कार होता है। इन ऋद्धियों की सिद्धि तभी होती, जबकि मनुष्य अपने जप-तप और सिद्धान्त में सदा एक-सा दृढ बना रहे। बिना त्याग और तपस्या के कोई सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती है।

एक बार माधव मुनिजी महाराज के सामने कुछ द्वेषी लोग आये और बोले कि मुख पर यह कपड़े की पट्टी क्यों बांध रखी है? मुनिजी अधिकतर पल्लीवालों और आर्यसमाजियों में ही घूमते थे। मुनिजी ने कहा—जीवों की यतना के लिए बांधी हुई है जिससे कि मुख में जीव नहीं घुस सके। यह सुनकर द्वेषी लोग बोले—जीव मुख में कैसे घुस सकता है। इतना कहते ही बोलने वाले द्वेषी के मुख में एक उड़ता हुआ जीव घुस गया।

यह देखकर सब लोग कहने लगे—बाबा तेरी बड़ी करामात है। इसके बाद वे द्वेषी लोग भी मुंहपत्ती बांधने लगे।

इस सब के कहने का अभिप्राय यही है कि भगवान् के प्रत्येक वचन में अपूर्व करामात है और जो उन पर दृढ़ श्रद्धा करके तदनुसार आचरण करते हैं, अनेक प्रकार की ऋद्धि-सिद्धियां आज भी प्राप्त होती हैं। अतः हमें अपनी विचार-धारा को दृढ रखनी चाहिए।

वि० स० २०२७ कार्तिक शुक्ला १
जोधपुर

१८ | आत्मलक्ष्य की सिद्धि

बन्धुओ, इस विश्व के प्रांगण में अनेक जीव आते है और जाते हैं। इसमें चतुर्गति रूप चार बड़े जंक्शन हैं, जिसमें सबसे बड़ा जक्शन मनुष्यगति का है, जिसमें संसार के कोने-कोने से अनेक रेल गाड़ियां आती हैं और जाती हैं। कोई गाड़ी दश मिनिट ठहरती है, तो कोई पन्द्रह; बीस या तीस मिनिट ठहरती है। जिसको उतरना होता है वह उतर जाता है और जिसे जाना होता है, वह चढ़ कर चला जाता है। मनुष्यगति में जन्म लेना उसी व्यक्ति का सार्थक है, जो कि अपना लक्ष्य सिद्ध करके यहा से जाता है। आत्मलक्ष्य वही व्यक्ति सिद्ध कर पाता है, जो कि प्रतिदिन यह विचार करता है कि—

कोऽहं कीदृग्गुणः क्वत्यः किंप्राप्यः किन्निमित्तकः।

मैं कौन हूं, मेरा क्या गुण है, मैं कहा से आया हूं, मुझे क्या प्राप्त करना है और किस निमित्त से मेरा अभीष्ट साधन होगा ? इस प्रकार की विचार-धारा जिसके हृदय में सदा प्रवाहित रहती है। वह व्यक्ति आत्म-हित के साधना में सदा सावधान रहता हे और अपना कर्तव्य भली भांति पालन करता रहता है। कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति का हृदय सदा आनन्द से भरपूर और शान्त रहता है। किन्तु जो व्यक्ति आत्म-साधना मे तत्पर नहीं होता है वह स्वयं तो अशान्त रहता ही है, साथ ही जो भी उसके सम्पर्क में आता है, वह भी अशान्त हो जाता है। किसी प्राचीन कवि ने कहा भी है—

पर-सुख देखी जो जरे, ताकों कहां आराम।
पर-दुख देखी दुख लहै, सो है आतमराम॥

यदि अपना हृदय शान्त है—स्थिर है—तो कोई कैसा भी व्यक्ति मिल जाय, तो भी उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकता है। परन्तु जिस व्यक्ति का हृदय स्थिर नहीं है वह जहां भी जायगा, वहां के वातावरण से प्रभावित होकर अपना ध्येय भूल जायगा और दूसरे के तत्त्व को ग्रहण कर लेगा। जैसे कोई साधारण दुकानदार किसी बड़ी कम्पनी में गया, वहां पर अनेक व्यक्ति अपना-अपना काम कर रहे हैं, उत्तम फर्नीचर सजा हुआ है, आने और जाने के मार्ग भी अलग-अलग हैं। कम्पनी के ऐसे ठाठ-बाट को देखकर वह दुकान-दार प्रभावित हुआ और विचारने लगा कि मैं भी अपनी दुकान को उठाकर ऐसी ही कम्पनी खोलूंगा और ठाठ से कमाई करूंगा। पर उसे यह पता ही नहीं है कि कम्पनी खोलने के लिए कितने साधन इकट्ठे करने पड़ते हैं, कितना दिमाग लगाना पड़ता है और कितनी पूंजी की आवश्यकता होती है? तो भाई, बताओ—क्या अपने विचार को सफल कर सकता है? कभी नहीं? पर यदि वह अपनी दुकानदारी को बढ़ावे, उसे तरक्की दे और दिमाग से काम करे तो एक दिन उसकी वह दुकान ही बड़ी कम्पनी बन जायगी। जहां बड़े पैमाने पर काम होता है, उसे कम्पनी कहते हैं और जहां छोटे रूप में काम होता है उसे दुकान कहते है। अपना कारोबार घटाना और बढ़ाना अपने ही हाथ में है। जब तक मनुष्य इस उन्नति और अवनति के मूल सिद्धान्त को ध्यान में नहीं लेता है, तब तक वह अपने उद्देश्य में सफलता नहीं पा सकता है। जो दुनिया की बातों को देखकर केवल मनसूबे बांधता रहता है, करता-धरता कुछ नहीं है और व्यर्थ में समय व्यतीत करता है, वह कैसे अपनी उन्नति कर सकता है।

एक लक्ष्य निश्चित करो!

भाइयो, मैं अपनी ही बात सुनाऊं, चालीस-पैंतालीस वर्ष पहिले जब मैं संस्कृत और प्राकृत का अध्ययन कर रहा था, तब मन में यह उमंग उठी कि साथ में अंग्रेजी और उर्दू का भी अभ्यास किया जाय। यह सोचकर मैंने उनका भी पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। एक दिन एक पंडित जी आये और मुझे चार भाषाओं का एक साथ अभ्यास करते देखकर बोले—महाराज, आप यह क्या कर रहे हैं? मैंने कहा—पढ़ाई कर रहा हूं। वे बोले—यद्यपि आपका दिमाग तेज है, तथापि मेरी राय है कि आप एक-एक विषय को लीजिए। एक में अच्छी गति हो जाने पर दूसरे विषय को लीजिए। यदि एक साथ ही सब

भाषाओं की खिचड़ी बनायेंगे तो किसी में भी आप पारंगत नहीं हो सकेंगे। उस समय उनकी बात मुझे कुछ बुरी सी लगी और मैंने अपनी पढ़ाई का क्रम पूर्ववत् ही चालू रखा। बीस-पच्चीस दिन के बाद समझ में आया कि उनका कहना ठीक है। क्योंकि जब मैं एक विषय की ओर अधिक ध्यान देता तो दूसरे विषय में कच्चावट रह जाती है। तब किसी की यह उक्ति याद आई।

'एक हि साधे सब सधै, सब साधें सब जाय।'

इसलिए हम जो काम रह रहे हों, उसमें ही हमें तन-मन और धन से जुट जाना चाहिए, ताकि चालू काम मे प्रगति हो। आप दुकान पर बैठे-बैठे चाहें कि एक साथ में रोकड़ भी मिला लूं, आने-जाने वालों से बातें भी करता रहूं और पुस्तक भी पढ़ता रहूं? तो क्या ये सब काम एक साथ कर सकते हैं? नहीं कर सकते हैं। भले ही आपका दिमाग कितना ही तेज क्यों न हो। यदि दिमाग तेज है तो एक ही विषय की ओर लगाइये, आपको अपूर्व सफलता प्राप्त होगी। मुझे इस समय शतावधानी रत्नचन्द्र जी महाराज की याद आ रही है, उनकी बुद्धि बड़ी तेज और स्मरणशक्ति बड़ी प्रबल थी। वे व्याख्यान देते हुए बीच-बीच में किये जाने वाले प्रश्नों को हृदयंगम करते जाते थे और अन्त में क्रमवार उनका उत्तर देते थे। उनके इस चमत्कार का रहस्य यह था कि वे व्याख्यान देते हुए भी प्रश्नों को अवधारण करने की ओर ही उपयुक्त रहते थे और किये जानेवाले प्रश्नों को अपने मस्तक की पट्टी पर क्रमवार अंकित करते जाते थे। व्याख्यान देते हुए भी उनका ध्यान प्रश्नों को अपने भीतर अंकित करने की ओर ही लगा रहता था। इसी प्रकार जिस व्यक्ति का ध्यान सांसारिक कार्यों को उदासीनभाव से करते हुए भी आत्मा की ओर रहेगा, वह अवश्य ही आत्म-सिद्धि को प्राप्त कर लेगा। आत्म-सिद्धि की प्राप्ति का उपाय बतलाते हुए पूज्यपाद स्वामी ने कहा है—

आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।
कुर्यादर्थवशात् किंचिद्वाक्कायाभ्यामतत्परः॥

अर्थात्—आत्महितैषी पुरुष को चाहिए कि वह आत्मज्ञान के सिवाय अन्य कार्य को अपनी बुद्धि मे अधिक समय तक धारण न करे। यदि कार्य वशात् वचन से बोलना और काय से कुछ कार्य करना भी पड़े तो उसमें अतत्पर अनासक्त—रहते हुए ही करे। भाई, आत्मसिद्धि की कूंची तो यह है। जब तक मनुष्य सांसारिक कार्यों की ओर से अपनी चित्तवृत्ति को नहीं

हटायेगा और आत्मस्वरूप की ओर उन्मुख नहीं होगा, उसमें तन्मय नहीं होगा, तब तक आत्म-सिद्धि सभव नही है।

भाइयो, आप लोग जो इस समय व्याख्यान में बैठे है, सामायिक मे बैठे हैं तो इसमें भी लक्ष्य आत्मस्वरूप की प्राप्ति का ही है। इनसे आत्मा को नित्य नयी खुराक मिलती रहती है। हमें प्रत्येक कार्य करते हुए यह मन्थन करते रहना चाहिए कि यह आत्मा के लिए कहा तक उपयोगी है? यदि उपयोगी प्रतीत हो तो करना चाहिए, अन्यथा छोड़ देना चाहिए। हम चाहे जैन हों, या वैष्णव, मुसलमान हों या ईसाई, पारसी हों या सिक्ख? किसी भी जाति या सम्प्रदाय के क्यों न हों, किन्तु यदि हमने अपनी आत्मा को जान लिया, तो ऊपर के जो ये सब मत और सम्प्रदायों के खोखे और जामे हैं, उन्हें उतार कर फेंकने ही पड़ेंगे। आप लोगों की दुकानो मे बाहिर से खोखों में माल आता है, आप लोग उन्हें खोलकर माल को दुकान के भीतर रख लेते हैं और खाली खोखों को बाहिर रख देते हैं। खोखे का उपयोग माल को सुरक्षित पहुंचाने भर का होता है। इसी प्रकार शरीर से सम्बन्ध रखने वाले ये जाति और सम्प्रदाय भी खोखे से ही समझना चाहिए। इनके भीतर जो आत्माराम रूपी उत्तम माल है, उसे जब हमने जान लिया अर्थात् अपने भीतर जमा कर लिया तो फिर खोखों के मोह से क्या प्रयोजन है? बस, ज्ञानी जीव शरीर और मत, पन्थ या सम्प्रदाय को खोखे के समान समझता है। वह आत्मा को अपनी स्वतन्त्र वस्तु मानता है और शरीर आदि को पर एवं पर तन्त्र वस्तु मानता है। यही कारण है कि पर-वस्तुओं के प्रति ज्ञानी-पुरुष की मनोवृत्ति उदासीन, अनासक्त या निरपेक्ष हो जाती है और अपनी आत्म-निधि के प्रति उसकी वृत्ति सदा जागरूक रहती है।

प्रमाद को छोड़िए

अभी आपके सामने छोटे मुनि जी ने पांच प्रकार के प्रमादों का वर्णन किया। ये विकथा, कपाय, निद्रा, मद और विषयरूप प्रमाद आत्मा को अपने स्वरूप से दूर करते हैं, अतः ये आत्मा के लिए हानि कारक हैं। यथार्थ में ये सभी प्रमाद वेकार या निकम्मे पुरुषों के कार्य है। जो व्यक्ति वेकार या निकम्मा होता है, वह इधर-उधर वैठकर नाना प्रकार की विकथाएं करता रहता है। जिसके ऊपर कार्य का भार होता है, वह व्यक्ति कभी भी कहीं-वैठकर विकथा नहीं करेगा और न वेकार की गप्पें ही हांकेगा। यदि कोई आकर के सुनाने का प्रयत्न भी करेगा तो वह यही कहेगा कि भाई साहब, अभी मुझे सुनने का अवकाश नहीं है। इसी प्रकार निकम्मा व्यक्ति ही भंग

छानता मिलेगा, या निद्रा लेता हुआ मिलेगा। जिसके पास काम है, वह इन दोनों ही के सम्पर्क से दूर रहेगा। विषय और कषाय तो स्पष्ट रूप से ही आत्मा का अहित करनेवाले हैं। जिनकी दृष्टि आत्मा की ओर नहीं हैं वे लोग ही पंचेन्द्रियों के विषय-सेवन में मग्न रहते हैं, उन्हें इसी जन्म में ही अनेक रोगो की भयंकर यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं और परभव में नरकादि गतियों में जाकर अनन्त दुःख भोगना पड़ता है। यही हाल कषायों के करने का है। कषायों को करने वाला व्यक्ति इसी जन्म में ही कषायी कहलाता है और निरन्तर सन्तप्त चित्त रहता है। उसे घर के भीतर भी शान्ति नहीं मिलती तथा परभव में नरकादि दुर्गतियों में अनन्तकाल तक परिभ्रमण करते हुए असीम दुःख उठाना पड़ते हैं। इसलिए ज्ञानी पुरुष तो सदा इनसे बचने का ही प्रयत्न करते हैं और यह भावना भाते रहते हैं कि—

आतम के अहित विषय-कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।
मैं रहूं आपमें आप लीन, सो करहु, होहुं ज्यों निजाधीन ॥

भाइयो, आप लोग व्यापारी हैं और जब व्यापार जोर से चलता है और जब सवाये-ड्योढ़े हो रहे हैं, तब यदि ग्राहक किसी वस्तु को दिखाने के लिए दस बार भी कहता है तब भी आप उसे वह वस्तु उठा-उठा करके दिखाते हैं। उस समय भूख-प्यास भी लगी हो तो भी खाना-पीना भूल जाते हैं और यदि नींद भी ले रहे हों तो जागकर ग्राहक की फरमायश पूरी करते हैं। जब लौकिक एवं विनश्वर इस लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए ये सब प्रमाद छोड़ना आवश्यक होते हैं, तब आत्मिक और अविनश्वर मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए तो और भी अधिक प्रमाद-रहित होने और जागरूक रहने की आवश्यकता है। अनादिकाल से हमारे ऊपर विषय-कषाय की प्रवृत्ति से जो कर्म-जाल लगा हुआ है उससे छूटने के लिए नवीन कर्मोपार्जन से बचना होगा और पुराने कर्मजाल को काटना होगा। और ये दोनों कार्य तभी संभव हैं, जबकि आप प्रमाद को छोड़ेंगे। आपके सामने बैठे हुए ये लड़के अभी गप्पें मारने और खेलने-कूदने में समय बिताते हैं। किन्तु जब परीक्षा का समय आता है, तब यह भूल जाते हैं और पढ़ाई में ऐसे संलग्न होते हैं कि फिर खाने-पीने की भी सुध-बुध नहीं रहती है। क्योंकि ये जानते हैं कि यदि परीक्षा के समय भी हम खेल-कूद में लगे रहेंगे तो कभी भी उत्तीर्ण नहीं हो सकेंगे। तो भाई, आप लोगों को जो यह मनुष्य भव मिला है, वह एक परीक्षा काल के समान ही है। यदि इसमें पुरुषार्थ करके अपना कर्मजाल काट दिया और इस संसार से

उत्तीर्णता प्राप्त कर ली तो सदा के लिए अविनश्वर मुक्ति लक्ष्मी प्राप्त हो जायगी। क्योकि ज्ञानियो ने कहा है कि—

यह मानुष पर्याय, सुकुल, सुनिवौ जिनवाणी,
इह विधि गये, न मिलै सुमणि ज्यो उदधि-समानो।

यह मनुष्य पर्याय, उत्तम कुल और जिनवाणी के सुनने का उत्तम अवसर यदि यो ही खो दिया और आत्म-हित नही किया तो फिर इनका पुन पाना वैसा ही है जैसा कि समुद्र मे गिरी हुई मणि का पाना दुर्लभ है। इसलिए ज्ञानी जन पुकार पुकार करके कहते हैं कि—

तातैं जिनवर—कथित तत्त्व अभ्यास करीजे,
सशय विभ्रम मोह त्यागि आपौ लख लीजे ।।
ज्ञान समान न आन जगत मे सुख को कारण,
यह परमामृत, जन्म-जरा-मृति रोग निवारण ।।

हे बन्धुओ, इसलिए अब प्रमाद को छोडकर भगवद्-भाषित तत्त्वो का अभ्यास करो और सशय, विभ्रम, मोह, प्रमाद, विषय और कषाय आदि दुर्भावो को छोडकर अपने आपका स्वरूप पहिचानो, अपने आपका ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञान के समान जगत मे अन्य कोई भी वस्तु सुख का कारण नही है और यह ज्ञान ही अनादि काल से लगे हुए जन्म, जरा और मरणरूपी महारोगो के नाश करने के लिए परम अमृत के समान है। जैसे आप लोग इस लौकिक व्यापार के समय अन्य सब भूल जाते है, उसी प्रकार आत्मिक व्यापार के समय अन्य सबको भी भुलाना पडेगा।

भाइयो, जरा विचार तो करो—जिस धर्म के प्रसाद से, भगवान् के जिन वचनो के प्रताप से आज आप लोग आनन्द भोग रहे हैं तो घटे-दो घटे उसको भी तो याद करना चाहिए। यदि घर की उलझनो से निकल कर के यहा घडी दो घडी को आये हो, तो फिर उतने भी समय मे प्रमाद क्यो? बाते क्यो और नीद क्यो? यदि कोई बाते करता भी है तो उधर से उपयोग हटाकर आत्महितैषी अपना उपयोग व्याख्यान सुनने सामायिक करने और आत्म-चिन्तन करने मे ही लगता है। जो कुशल श्रावक होते हैं वे लौकिक कार्यों के साथ परमार्थिक कार्य को भी साधने मे सावधान रहते है। और अपनी-चर्या ऐसी बनाते हैं कि जिससे उनकी गाडी ठीक सुमार्ग पर बिना किसी विघ्न-बाधा के चलती रहती है। कहा भी है—

जैसे नाव हलकी थकी, परले पार ले जाय।
त्यो ज्ञानी सन्तोष से, सद्-गति मे पहुचाय ।।

जैसे नाव हलकी है, उसमें कोई छिद्र नहीं है और खेवटिया कुशल है तो उसमें जितने भी यात्री बैठेगें, वे पार हो जायेगे। परन्तु जो नाव जर्जरित है, टूटी-फूटी और छिद्र-युक्त है, उसमे जो बैठेगा, तो डूबेगा ही। वह कभी पार नही पहुंच सकता। किन्तु जिसकी नाव उत्तम है और खेवटिया भी होशियार है, तो कभी भी डूबने का डर नही रहता है। आप लोगों को जैनधर्मरूपी नाव भी उत्तम और मजबूत मिली है और उसके खेवनहारे आचार्य लोग भी उत्तम मिले हैं। फिर आप लोग उसमे बैठकर के ससार से पार पहुंचने का प्रयत्न क्यों नही करते है? इस स्वर्ण अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए।

सशयशील की दुर्गति

आषाढ़ाचार्य पचास शिष्यों के गुरु थे, महान् विद्वान थे और *आठों सम्प*-दाओं से सम्पन्न थे। माता के वश को जाति कहते है, उनका मातृवश अत्यन्त निर्दोष था, अत: वे जातिसम्पदा से सम्पन्न थे। पिता के वश को कुल कहते हैं। उनका पितृवश भी निर्मल और पवित्र था, अत वे कुलसम्पदा से भी सम्पन्न थे। वे वलसम्पदा से भी सम्पन्न थे, क्योंकि उनका आत्मिकवल अद्वितीय था। वे रूपसम्पदा से भी युक्त थे, क्योंकि उनका रूप परम सुन्दर था। वे मतिसम्पदा से भी संयुक्त थे, क्योंकि वे असाधारण बुद्धिशाली थे। कोई भी-किसी प्रकार की समस्या उनके सामने यदि आ जाती तो वे उसे इस प्रकार मे सुलझाते थे कि दुनिया देखती ही रह जाती थी। वे प्रयोग-सम्पदा के भी धनी थे, स्व-मत के विस्तार करने के जितने भी उपाय होते है, उन सव के विस्तार करने में – प्रयोग करने में कुशल थे। ज्ञानसम्पदा भी उनकी अद्भुत थी, जो भी प्रश्न उनमे पूछा जाता था, उसका वे तत्काल उत्तर देते थे और संग्रहसम्पदा से भी सम्पन्न थे, क्योंकि वे सदा ही उत्तम और आत्मकल्याणकारी वस्तुओ से अपना ज्ञान-भण्डार भरते रहते थे। जिस आचार्य के पास आठ सम्पदाए होती है, उनका कोइ सामना (मुकाबिला) नही कर सकता है। और यदि कोई करता भी है तो उसे मुंह की खानी पड़ती है।

हा, तो वे आषाढाचार्य उक्त आठो सम्पदाओ से सम्पन्न थे। एक बार उनके एक शिष्य ने संथारा किया। आचार्य ने उससे कहा—शिष्य, यदि तू स्वर्ग में जाकर देव बने तो एक वार आ करके मुझसे अवश्य मिलना। शिष्य ने हा भर दी और वह यथासमय काल कर गया। दिन पर दिन वीतने लगे और वर्ष-दो वर्ष भी वीत गये, तव भी वह स्वर्ग से उनके पास नही आया।

कुछ समय के बाद दूसरे शिष्य ने संथारा किया। गुरु ने उससे भी वही बात कही। पर अनेक वर्ष बीतने पर भी वह नहीं आया। इस प्रकार क्रमशः तीसरा, चौथा और पांचवां शिष्य भी संथारा करके काल करता गया। मगर लौट करके कोई भी गुरु के पास मिलने को नहीं आया। तब आचार्य के मन में विकल्प उठा कि यदि स्वर्गादि होते तो कोई शिष्य तो आ करके मिलता। पर वर्षों तक मेरी आज्ञा में रहने पर और संथारा के समय 'हां' भर देने पर भी कोई मेरे पास आज तक नहीं आया है, तो ज्ञात होता है कि कोई न स्वर्ग है और न कोई नरक है। ये तो सब लोगों को प्रलोभन देने और डराने के लिए कल्पित कर लिखे गये प्रतीत होते हैं। इस प्रकार उनके हृदय में प्रमाद ने—शंका ने प्रवेश पा लिया। परन्तु उन्होंने अपनी इस बात को भीतर छिपा करके रखा, बाहिर में किसी से नहीं कहा। किन्तु भीतर-ही भीतर वह शल्य उन्हें चुभती रहती और श्रद्धा दिन पर दिन गिरती जाती थी। एक बार उनका सबसे छोटा शिष्य बीमार पड़ा। वह अत्यन्त बुद्धिमान, प्रतिभाशाली और आचार्य के योग्य उक्त आठों सम्पदाओं से सम्पन्न था। आचार्य ने दिल खोलकर उसे सर्वशास्त्र पढाये थे और उस पर उनका स्नेह भी बहुत था। जब इलाज कराने पर भी वह स्वस्थ नहीं हुआ और उसने अपना अन्तिम समय समीप आया हुआ जाना तो आषाढ़ाचार्य से संसार के लिए प्रार्थना की। उन्होंने भी देखा कि अब यह बच नहीं सकता है, तब उसे संथारा ग्रहण करा दिया। और उससे कहा—देख, तू तो मेरा परमप्रिय शिष्य रहा है, तू स्वर्ग से आकर एक बार अवश्य मिलना। औरों के समान तू भी भूल मत जाना। उसने भी कहा - गुरुदेव, मैं अवश्य ही आपसे मिलने के लिए आऊँगा। यथासमय वह भी काल कर गया। पन्द्रह-बीस दिन तक तो गुरु ने उसके आने की प्रतीक्षा की। किंतु जब उसे आया नहीं देखा तो आचार्य के मन की शंका और भी पुष्ट हो गई कि न कोई स्वर्ग है और न कोई नरक है। ये सब गपोड़े और कल्पित हैं। अब उनका चित्त न आवश्यक-क्रियाओं मे लगे और न शिष्यों की संभाल करने मे ही लगे। वे अत्यन्त उद्विग्न रहने लगे। धीरे-धीरे उनका उद्वेग चरम सीमा पर पहुंचा, तो सब शिष्यों को बुला करके कहा—मैंने आज तक तुम लोगों को उपदेश दिया और तुम लोगो ने प्रेम से सुना और तदनुकूल आचरण भी किया है। परन्तु अब मैं कहता हूं कि तुम लोग अपने-अपने ठिकाने चले जाओ, इस साधुपने मे सिवाय व्यर्थ कष्ट उठाने के और कुछ भी नहीं है। न कोई स्वर्ग है और न कोई नरक है। ये सब कपोल-कल्पित और मनघड़न्त बातें हैं। आचार्य

की ऐसी अकल्पित बातें सुनकर सारी शिष्य-मंडली विचार में पड़ गई कि अब क्या किया जावे ? जब आकाश ही डिग रहा है, तब उसे थोभा देने वाला कौन है ? फिर भी उन लोगों ने विनयपूर्वक विनती करते हुये कहा — गुरु महाराज, आपने उत्तम धर्मोपदेश दे-देकर हमें दृढसम्यक्त्वी बनाया है। अब आप क्या हमारी परीक्षा करने के लिए ऐसा कह रहे हैं, अथवा सचमुच डिग रहे हैं ? तब आचार्य ने कहा—मैं सत्य ही कह रहा हूं। इस साधुपने में कष्ट करना बेकार है। यदि स्वर्ग होता तो इतने शिष्य काल करके गये हैं, उनमें से कोई तो आकर के मिलता। पर मेरे आग्रह करने पर और तो क्या, यह अन्तिम सथारा करने वाला शिष्य भी नहीं आया है। इससे मुझे निश्चय हो गया है कि स्वर्गादि कुछ नहीं है और उसके पाने की आशा से ये कष्ट सहन करना व्यर्थ है। यदि तुम लोग फिर भी साधुपना नहीं छोड़ना चाहते हो तो तुम्हारी तुम लोग जानो। परन्तु मैं तो रवाना होता हूं। यह कहकर सबके देखते-देखते ही आपाढाचार्य रवाना हो गये। ज्यों ही आचार्य ने उपाश्रय से बाहिर पैर रखा, त्यों ही उस छोटे शिष्य के जीव का जो कि मर कर देव हुआ था—आसन कम्पित हुआ। उसने अवधिज्ञान से देखा कि गुरुमहाराज मेरे निमित्त से डूब रहे है, क्योंकि मैं उनकी सेवा में नहीं पहुंचा हूं। यह मेरी भूल का दुष्परिणाम है। यह सोचता हुआ वह देव तत्काल स्वर्ग से चला और इनको बिना ईर्यासमिति के लम्बे-लम्बे डग भरते हुए जाते देखकर जाना कि इनमें श्रद्धा का नाम भी नहीं रहा है अब देखूं कि इनके हृदय में दया और लज्जा भी है, या नहीं ? यदि ये दोनों होंगे तो इनके पुनः सन्मार्ग पर आने की संभावना की जा सकती है ? ऐसा विचार करके उसने एक साधु का रूप बनाया और कंधे पर मछली पकड़ने का जाल डालकर जोर-जोर से चिल्लाने लगा। उसकी आवाज सुनकर आपाढाचार्य जाना भूल गये और खड़े होकर पीछे की ओर देखने लगे। ज्यों ही उनकी दृष्टि उस साधु पर गई तो उससे कहने लगे—अरे मूर्ख, यह क्या किया ? साधु होकर कन्धे पर जाल रखता है ? क्या यह साधु के योग्य है ? उसने कहा मैं क्या बुरा हूं। ऐसा तो सब साधु करते हैं। मैं तो चौड़े और खुले मैदान में करता हूं और दूसरे लोग छिपकर करते है। गुरु ने कहा—मैं तेरा कहना मानने को तैयार नहीं हूं। तब उसने कहा—जरा अपना ध्यान तो करो ? यह सुनकर भी आपाढ़ाचार्य आगे चल दिये। तब उस देव ने साधु का वेप छोड़कर सगर्भा साध्वी का भेप धारण किया और हर दुकान से सोंठ-गोंद आदि जापे की वस्तुएं मांगने लगी। जब आचार्य ने उसे ऐसा करते देखा—तो कहा—

अरे पापिनी, तू यह क्या कर रही है? तू तो धर्म को लजा रही है? तब उसने कहा—

सुनो मुनिवर जी, मत देखो पर-दोष, विचारी बोलो,
अहो गुणीजनजी।
बाहिरपन को भूलं, आंख निज खोलो ....

उस साध्वी ने कहा—महाराज, आप पराये दूषण क्या देखते हो, जरा अपने भीतर भी देखो, वहां क्या चल रहा है और क्या करने को जा रहे हो? यह सुनते ही आषाढ़ाचार्य चौंके और चुपचाप आगे को चल दिये। अब देवता ने विचारा कि शासन-की सेवा के भाव तो अभी इनमें शेष हैं। अब देखं कि दया भी इनके अन्दर है, अथवा नहीं? यह सोच उसने अपना रूप बदला और जिधर आचार्य जा रहे थे, उसी ओर जंगल में आगे जाकर एक तम्बू बनाया, उसमें गाना-बजाना प्रारम्भ किया। जब आचार्य समीप आते दिखे तो उस देवता ने माया मयी छह बालकों के रूप बनाये जो रत्न-सुर्वणमयी आभूषण पहिने हुए थे और उनको तम्बू से बाहिर निकाला। आचार्य को सामने आते ही उन सबने 'तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं मत्थएण वंदामि' कहा। फिर पूछा—स्वामी, आपके सुख-साता है? जैसे ही आचार्य ने उन बालकों की ओर देखा तो उनके रत्न-जड़े आभूषण देखकर उनका मन बिगड़ गया। उन्होंने सोचा—मैं घर-द्वार मांडने जा रहा हूं, परन्तु पास में तो एक फूटी कौड़ी भी नहीं है और कोड़ी के बिना गृहस्थ भी कौड़ी का नहीं है। बिना टका-पैसा पास हुए बिना मुझे कौन पूछेगा? अच्छा मौका हाथ लगा है, यहां तो वीरान जंगल है, मेरे कार्य को देखने वाला कौन है? क्यो न इन बालको को मार करके इनके आभूपण ले लू, जिससे गृहस्थी का निर्वाह जीवन-भर आनन्द से होगा? बस, फिर क्या था, उन्होंने एक-एक करके छहों बालकों के गले मसोस दिये और आभपण उतार कर अपने पात्र मे भर लिये।

भाइयो, देखो—कहां तो वे छह काया की प्रतिपालना करते थे और कहा छह लड़को के प्राण ले लिए। महापुरुषों ने ठीक ही कहा है—'लोभ पाप का बाप बखाना'। लोभ के पीछे मनुष्य कोन से महापाप नहीं कर डालता। जीवन-भर जिन्होंने सयम की साधना और छह काया की प्रतिपालना की; ऐसे आषाढाचार्य ने जब छह बालको के गले घोंट दिये, तब अन्य की तो बात ही क्या है। प्रतिदिन समाचार पत्रो मे पढते हैं कि लोभ के वशीभूत होकर अमुक ने अपने पिता को मार डाला, अमुक ने अपनी माता के प्राण ले लिये और अमुक ने दूसरे के बालकों को मार डाला। यह लोभ मनुष्य से कौन-कौन से अनर्थ नहीं कराता है! यद्यपि वे बालक मायामयी थे, परन्तु आचार्य

तो भावहिंसा के भागी बन ही गये, क्योंकि उन्होंने तो जान बूझकर और लोभ के वशीभूत होकर मारे हैं।

अब देव ने देखा कि आचार्य में दया का भाव तो लेशमात्र भी नही रहा है, तो वह बड़ा विस्मित हुआ। उसे पूर्वजन्म की बातें याद आने लगी। वह विचारने लगा कि कहा तो गुरु की परिणति कितनी निर्मल, अहिंसक और दयामयी थी, कितना श्रेष्ठ ज्ञान था और कितने उच्च विचार थे। आज इनका इतना अधःपतन हो गया कि तुच्छ पुद्‌गलो के लोभ से सृष्टि के सर्व श्रेष्ठ मानव के भोले-भोले बालकों को मारते हुए इनका हृदय जरा-सा भी विचलित नही हुआ। अब क्या करना चाहिए? मैं एक बार और भी प्रयत्न करके देखूँ कि इनकी आंखों में लाज भी शेष है, या नही? यदि आखों में लाज होगी, तो फिर भी काम बन जायगा। अन्यथा फिर इनका जैसा भवितव्य होगा, सो उसे कौन रोक सकता है !! यह सोचकर उस देव ने जिधर आचार्य जा रहे थे, उसी ओर एक ग्राम की माया रची और उसमे से सामने आते हुए श्रावक-श्राविकाओ की भीड़ दिखाई। वे सब एक स्वर से बोलते हुए आ रहे थे—धन्य घड़ी आज की है, आज हमारा धन्य भाग है, जो गुरुदेव नगर मे पधारे है, यह कहते हुए उन लोगों ने गुरु के चरण-वन्दन किये और प्रार्थना की कि महाराज, नगर में पधारो और भात-पानी का लाभ दिलाओ। आषाढ़भूति बोले—मुझे इसकी आवश्यकता नही है। कहो भाई, अब भात-पानी की क्या आवश्यकता है, क्यों पात्र तो रत्न-सुवर्ण से भरे हुए झोली मे हैं। लोग आग्रह करते हैं और वे इनकार करते है। इतने मे सबके साथ वे नगर के भीतर पहुंच गये, तो उनको भात-पानी लेने की अन्य लोगो ने भी प्रार्थना की। और कहा—महाराज, हमारे हाथ फरसाओ और उपदेश देकर हम लोगो को पवित्र करो। लोगो के अत्यधिक अनुनय-विनय करने पर भी जब आषाढाचार्य गोचरी लेने को तैयार नही हुए, तब सब ने कहा—पकडो महाराज की झोली और ले जाओ महाराज को। फिर देखे कि कैसे नही लेते हैं? ऐसा कहकर लोगों ने झोली को पकड़ कर जो झटका दिया तो सारे पात्र नीचे गिर गये और आभूषण इधर-उधर बिखर गये। यह देखते ही आचार्य तो लज्जा के मारे पानी-पानी हो गए। विचारने लगे--बड़ा अनर्थ हो गया? सब लोग मुझे महात्मा और परम सन्त मानते थे, खमा-खमा करते थे और दया के सागर कहते थे। अब ये पूछेंगे कि ये आभूषण कहा से लाये, ये तो हमारे बालकों के हैं और हमारे बालक कहाँ हैं, तो मैं क्या उत्तर दूँगा? हे भगवन्, इतना अपमान मुझसे तो नहीं देखा जायगा? हे पृथ्वी-

माता ! तू फट जा, जिससे कि मैं तेरे भीतर समा जाऊँ ? मैं किस कुल का था, मेरी जाति कितनी उच्च थी और मै एक महान् आचार्य कहलाता था। परन्तु हाय, मैंने सबको लज्जित कर दिया ? लोग क्या अपने मन में सोच रहे होंगे। आज मेरे ढोंग का पर्दाफाश हो गया और दुनिया ने मेरे गुप्त पाप को देख लिया। अब मैं लोगो को अपना मुख दिखाने के लायक भी नहीं रहा हूं !!

पुन जागरण

इस प्रकार जब आपाढ़ाचार्य अपना नीचा मुख किए अपनी निन्दा और गर्हा कर रहे थे और सोच रहे थे कि ऐसा अपमान देखने की अपेक्षा तो मेरा प्राणान्त हो जाय तो अच्छा है। तब देवता ने सोचा—कि बात अभी भी ठिकाने है। अभी तो ये पौने उगनीस विस्वा ही डूबे हैं, सवा विस्वा बाकी हैं, क्योंकि इनकी आंखों में लाज शेष है, अतः बचने की आशा है। तब उसने तत्काल अपना रूप पूर्वभव के शिष्य के समान हू-बहू बनाया और उनके आगे जाकर कहा—'गुरुदेव, मत्थएण वंदामि' ! आचार्य सोचने लगे, यह कटे पर नमक छिड़कने वाला हिया-फोड़ कौन आगया है ? तभी उस रूपधारी शिष्य ने *चरण-वन्दना करके कहा गुरुदेव, मुझे देखो और कृपा करो। जब आचार्य* ने आंखें खोली तो देखा कि वह छोटा शिष्य सामने खड़ा है। वे पुनः आंखें बन्द करके सोचने लगे—फिर यह कौन आ गया है ! तभी उन्हें विचार आया कि हो न हो यह वही शिष्य देव है और मुझे प्रतिबोध देने के लिए रूप बनाकर आया है ! तब आंख खोलकर बोले—चेले, 'मत्थएण वंदामि' मोड़ी घणी आई ? वह बोला भगवन्, आपने बहुत जल्दी की। भाई, देवलोक में तो दश हजार वर्षों में एक नाटक पूरा होता है। चेले ने कहा—गुरुदेव, मैंने तो वह नाटक देखा ही नहीं और मैं जल्दी ही यहां पर चला आया हूं। परन्तु आपने तो मेरे आने के पहिले ही यह क्या कर दिया है। आचार्य ने पूछा--तू कहा था ? वह बोला देवलोक मे था। गुरु ने फिर पूछा- क्या देवलोक है ? शिष्य ने कहा—हां, देवलोक है और मैं वहीं से आ रहा हूं। *भगवान के वचन बिलकुल सत्य है और स्वर्ग-नरक सब यथास्थान है यह कह* कर उसने स्वर्ग और नरक के सब दृश्य दिखाये। फिर कहा—गुरुदेव, आप तो सारी दुनिया की शकाओं का समाधान करते थे। फिर आपके मन में यह शंका कैसे पैदा हुई ? आचार्य बोले—तेरे देरी से आने-के कारण शंका पैदा हुई। पर अब तेरे आने से क्या होगा ? मैंने तो नहीं करने-योग्य सभी काम कर डाले हैं ? छह बालकों की हत्या भी कर दी, उनके आभूपण भी चुरा

लिए और घर मांडने जा रहा हूँ। मैंने तो सभी कार्य कर लिये हैं अब तो मैं पूरा पतित हो गया हूं। अब क्या हो सकता है? तब उस शिष्य देव ने कहा—गुरुदेव, मन की सब शंकाओं को दूर कीजिए। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, आप किए हुए दुष्कृत्यों का प्रायश्चित कीजिए और अपने स्वीकृत व्रतों की शुद्धि कीजिए। आपकी नाव डूबी नही है, केवल एक छिद्र ही हुआ है सो उसे बन्द कर दीजिए। आपने संघ से जाते हुए जो जो दृश्य देखे और बालकों की हत्या की, वे सब मेरे द्वारा दिखाए हुए मायामयी दृश्य थे, उनकी चिन्ता छोड़िए, और पुनः आत्म-साधना में लगिये। आचार्य ने पुनः पूछा—क्या स्वर्ग नरक यथार्थ हैं, या तू ही अपनी विक्रिया से दिखा रहा है? देव ने कहा—दोनों यथार्थ हैं और मैंने दोनों को ही अपनी आंखों से देखा है। आप उनके होने में रंचमात्र भी शंका नहीं कीजिए। तब आचार्य विचारने लगे हाय, मैं कैसा पागल हो गया कि सब असत्य मानकर अपने संयम-रत्न को नष्ट करने पर उतारू हो गया। ऐसा विचारते हुए वे अपने आपको धिक्कारने लगे और पांचो महाव्रतों की आलोचना करके उन्हें पुनः स्थापित किया। देव ने कहा—गुरुदेव, अब आप वापिस संघ में पधारिये। मैं वहां पहिले पहुंचता हूं। यह कह कर वह देव संघ में पहुंचा और पूछा कि आचार्य महाराज कहां है। संघ के साधुओं ने कहा—गुरुदेव तो श्रद्धा के डिग जाने से संघ छोड़ कर चले गये हैं। तब उसने कहा—वे नहीं गए हैं। मैंने उनको पुनः सम्यक्त्व और संयम में दृढ़ कर दिया है। वे आ रहे हैं। अतः अब आप सब उनके सामने जाइए और सन्मान-पूर्वक उन्हें संघ मे लिवा लाइये। देव के कहने से सब साधु उनके सामने गए और उन्हें पहिले से भी अधिक मान दिया। तब आचार्य ने कहा—तुम लोग मुझे क्यों मान दे रहे हो? मैं तो पतित हो गया हूं, संयम से गिर चुका हूं। तब सब साधुओं ने कहा—

'मध्ये मध्ये हि चापल्यमामोहादपि योगिनाम्।'

हे महाराज, जब तक यह मोह कर्म नष्ट नही होता है, तब तक बड़े-बड़े योगियों के भी बीच-बीच में चलायमानपना आ जाता है, कर्मों की गति विचित्र है। इसलिए आप इसकी चिन्ता मत कीजिए। यदि प्रातःकाल का भूला सायंकाल घर आ जाता है तो वह भूला नही कहलाता है। संघ के लोगों के सन्मानभरे वचन सुनकर आषाढाचार्य ने कहा—यह सब इस छोटे शिष्य का प्रभाव है। यह देर से आया। यदि जल्दी आ जाता तो यह अवसर ही नहीं आता। तब सर्व संघ ने विनय-पूर्वक कहा—अब बीती बात भूल जाइये और संघ शासन की डोर पूर्ववत् संभालिए। यह कह कर उन्हें नमस्कार किया और पहिले के समान ही उनकी आज्ञा में रहने लगे।

भाइयो, यह कथानक कहने का अभिप्राय यही है कि मनुष्य के सामनें कैसी भी विकट परिस्थितियां क्यों न आवे, परन्तु अपने उद्देश्य पर मनुष्य को दृढ़ रहना चाहिए और आनेवाले संकटों का दृढता से सामना करना चाहिए। यदि अपने हृदय को वज्र के समान दृढ़ और कठोर बनाकर रखेंगे तो आने वाली विपदाएँ और समस्याएँ टकरा करके स्वयं ही चकनाचूर हो जावेगी। देखो—प्रत्येक वर्ण वाले में एक एक कषाय के उदय की प्रबलता होती है। क्षत्रियों में क्रोध की मात्रा अधिक देखी जाती है, ब्राह्मणों और साधु-सन्तों में अभिमान का भाव अधिक दिखता है। शूद्रों में और मूर्खों में मायाचार की प्रबलता होती है और वैश्यों में लोभ की अधिकता होती है। सारी दुनिया के लोभ का ठेका मानों महाजनों ने ही ले रखा है। उनके लोभ का अन्त नहीं है। भगवान ने ठीक ही कहा —

जहा लाहो तहा लोहो लाहा लोहो पवड्ढई।

अर्थात् मनुष्य को ज्यों ज्यों धन का लाभ होता है, त्यों त्यों उसके लोभ बढ़ता जाता है। कपिल मुनि का दृष्टान्त आप लोगों ने सुना ही है। जैसे समुद्र नदियों से और अग्नि इन्धन से कभी तृप्त नहीं होती है, उसी प्रकार मनुष्य की तृष्णा कभी धन से पूरी नहीं होती है। लोभ के क्षोभ नही हैं। हजारों की जब पूँजी थी, तब लाख की चाह थी और जब लाख हो गये तब करोड़ों की तृष्णा पैदा हो गई। आज सन्तोष या सब्र किसी को भी नहीं है। पहिले महाजन अपने कुल-परम्परा के और धर्माविरोधी ही धन्धे करते थे। आज तो जैनी कहलाने वाले लोग भी छीपा, रगरेज के काम करने लगे हैं और बम्बई में तो एक बहुत बड़े जैन सेठ ने जूतों तक का भी कारखाना खोल लिया है। मेरठ मे एक जैन ने लाड़ी (धोबीखाना) खोल रखा है और इसी प्रकार के महारम्भ और हिंसा के अनेक काम जैनी लोग करने लगे हैं। धन के लोभ से मनुष्य को योग्य-अयोग्य धन्धे का विचार नही रहा है। पढ़ने के बाद यदि सरकारी कुर्सी मिल जाती है तो अभिमान का पार नही रहता है। वे समझने लगते हैं कि अपराधी को मारना और जिलाना मेरे हाथ में है। जिसका कोई मुकद्दमा अदालत में होता है और वह जज से प्रार्थना करता है तो कहते हैं कि घर पर आकर मिलो। घर पर मिलने का अर्थ आप लोग जानते ही हैं। घर पर मिल लेने के बाद फिर न्याय का काम नहीं, मर्जी का काम रह जाना है। भाई, कही तो इस लोभ के घोड़े को दौड़ने से रोको, या दौड़ाते ही रहोगे ? आखिर रुकना पड़ेगा ही जब टागें थक जायगी और शरीर अकड़ जायगा तब फिर घोड़े पर से उतरना तुम्हारे वश का रोग नहीं रहेगा। फिर तो दूसरे ही नीचे उतारेंगे। जब तक घोड़ा बे-काबू नही हुआ है

और तेरे मे उतरने की ताकत है, तब तक तुझे सभल जाना चाहिए। लोभ के विषय मे कहा है कि—

लोभेन रात्रौ न सुखेन शेते, लोभेन लोक समये न भुङ्क्ते।
लोभेन पात्रे न ददाति दान, लोभेन काले न करोति धर्मम् ॥

लोभ के मारे मनुष्य रात्रि मे सुख से नही सोता है और न समय पर खाता-पीता ही है। लोभ के कारण पात्र मे दान भी नही देता है और न समय पर धर्म साधन ही करता है। किन्तु लोभ के वशीभूत होकर रात-दिन इधर-उधर चक्कर काटा करता है।

वन्धुओ, आप लोगो को जगाने का कितना प्रयत्न करता हू और आप लोग हुंकारा भी भरते हैं। फिर भी इस लोभ पिशाच से अपना पीछा नही छुडाते हैं। जब तक आपकी विवेक वुद्धि काम कर रही है और लोभरूपी दल दल मे निमग्न नही हुए हैं, तब तक उससे बाहिर निकलने का प्रयत्न कर सकते हैं। जब उस दल-दल मे आकण्ठ मग्न हो जाओगे, तब उससे बाहिर निकलना नही हो सकेगा। फिर तो पछताना ही हाथ रह जायगा। किसी कवि ने कहा है कि—

मक्खी बैठी शहद पै, रही पंख लिपटाय।
हाथ मलै अरु सिर धुनै, लालच बुरी वलाय ॥

भाइयो, जब मक्खी के समान लोभरूपी शहद मे फस जाओगे तो फिर उद्धार नही हो सकेगा। इसलिए समय रहते हुए चेत जाना ही बुद्धिमानी है। जो लोग समय पर चेत कर आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलने लगते है, वे ही अपना उद्धार कर पाते है। अत. आप लोगो को ऐसा आदर्श उपस्थित करना चाहिए कि पीछे वाले भी आपका स्मरण और अनुकरण करें। सासारिक कामो को अनासक्ति से करते हुए आत्मकर्तव्य पर चलते रहना ही मुक्ति का मार्ग है। यदि कदाचित् आषाढाचार्य के समान बीच मे कर्मों का भोग का आजाय, तो उसके इलाज के लिए आपको भी अपने हितैषी मित्रो को कस करके रखना चाहिए कि भाई, समय पर तुम मुझे सावचेत कर देना। भाई, सावधानी सदा आत्म-रक्षा करती है। इसलिए आप लोगो को आत्मलक्ष्यी होना चाहिए।

वि० स० २०२७ कार्तिक शुक्ला २
जोधपुर

१९ प्रतिसंलीनता तप

प्रतिसलीनता का अर्थ है—अपने ध्येय के प्रति सम्यक् प्रकार से लीन हो जाना। यह तपस्या का एक मुख्य अंग है और कर्म-निर्जरा का प्रधान कारण है। इसके पूर्व जो अनशन, ऊनोदरी, रसपरित्याग, वृत्तिपरिसंख्यान और कायक्लेश ये पांच तप बतलाये हैं, इनमें लीन होने का नाम ही प्रतिसंलीनता है। साधक जब आत्म-साधना करते हुए अनशन करता है, तब वह उसमे मग्न रहता है, जब ऊनोदरी करता है, तब उसमें मग्न रहता हैं और इसी प्रकार शेष तपो को करते हुए भी वह उसमे मग्न रहता है। उक्त तपो को करते हुए यदि बड़ी से बड़ी आपत्ति आजावे को वह उसे सहर्ष सहन करता है, और मन में रत्ती भर भी विषाद नही लाता। ससारी जीव यदि क्रोधी है तो वह क्रोध मे मग्न रहता है. मानी मान मे, मायावी मायाचार मे और लोभी व्यक्ति लोभ में मग्न रहता है। यह उनकी लीनता तो है, किन्तु प्रबल कर्मबन्ध का कारण है। किन्तु इनके विपरीत जो क्रोध-मानादि दुर्भावों से आत्म-परिणति को हटाकर अनशनादि तपों को करते हुए आत्मा की शुद्धि करने मे संलीन रहते हैं, उनकी संलीनता ही सच्ची प्रति संलीनता कहलाती है और वह कर्मो का क्षय करके मुक्ति-प्राप्ति कराती है।

प्रतिसंलीनता का दूसरा अर्थ शास्त्रो मे यह भी किया गया है कि आचार्य, उपाध्याय, और कुलगणी मे संलीनता। आचार्य सर्व सघ के स्वामी होते हे। उनकी भक्ति में, उनकी आज्ञा पालने मे और उनके द्वारा दिये गये प्रायश्चित

के अनुसार आत्मशुद्धि करने में निमग्न रहना अर्थात् शुद्ध-मन-वचन-काय से पालन करने का नाम आचार्य-संलीनता है। आचार्य के प्रति शिष्य को सदा यही भाव रखना चाहिए कि गुरुदेव जो कुछ भी कहते हैं, वह हमारे ही हित के लिए कहते हैं। हम यदि उनकी आज्ञा और अनुशासन में चलेंगे, उनका गुण-गान करेंगे और उनके प्रति सच्ची भक्ति रखेंगे तो हमारा ही कल्याण होगा और जिनशासन की उन्नति होगी। उपाध्याय संघस्थ शिष्यों को पढ़ाते हैं और कर्त्तव्य मार्ग का बोध प्रदान करते हैं। उनके प्रति भक्ति रखना, उनकी सेवा-वैयावृत्य करना और उनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान का निरन्तर अभ्यास करना यह उपाध्याय-संलीनता है। एक गुरु की शिष्य-परम्परा को कुल कहते हैं और अनेक कुलों के समुदाय को गण कहते है। ऐसे कुल और गण की भक्ति में लीन रहना, उनकी वैयावृत्य करना और उनकी आज्ञानुसार प्रवृत्ति करना कुल-गण-संलीनता है। जब हम आचार्य, उपाध्याय और कुल-गण में अपनी संलीनता रखेंगे, तभी उनको शालीनता और हमारी विनम्रता प्रकट होगी। जब हम अपने इन गुरुजनों को बड़ा मानेंगे, तभी हमारा शिष्यपना सच्चा समझा जावेगा। यदि हम अपने माता-पिता को पूज्य मान कर उनकी सेवा करेंगे तो हम सच्चे पुत्र कहलावेंगे। और जो उनको पूज्य और उपकारी नहीं मानते हैं और कहते हैं कि यदि मां ने नौ मास पेट में रखा है, तो उसका किराया ले लेवे—तो भाई ऐसे कहनेवालों को क्या आप पुत्र कहेंगे? नहीं कहेंगे।

पूर्वकाल में राजा को राज्य सिंहासन पर प्रजा धूमधाम से राज्याभिषेक करके बैठाती थी और उसे राजा मानती थी तो उनका महत्त्व था। किन्तु जो बल-पूर्वक दूसरे का राज्य छीनकर स्वयं राज्य सिंहासन पर बैठ जाता है, उसे भी राजा मानना पड़ता है। इसी प्रकार जो परम्परागत संघ के अधिपति होते चले आते हैं वे तो आचार्य हैं ही। किन्तु जब किसी निमित्त से आचार्य-परम्परा विच्छिन्न हो जाती हैं, तब जो प्रयत्नपूर्वक शासन का उद्धार करते हैं और उसके संरक्षण की बागडोर अपने हाथ में लेते हैं, वे भी आचार्य कहलाते हैं। श्री धर्मदासजी, लवजीऋषि, धर्मसिंहजी और जीवराजजी को किसने आचार्य बनाया? वे तो स्वयं उस मिशन के उठाने वाले थे। जब वे लगातार लम्बे समय तक कार्य करते गये और सम्प्रदायें उनमें मिलती गई, तब वे आचार्य कहलाने लगे।

आज अनेक ग्रुप हैं, पार्टियां है, जब इनका प्रारम्भ होता है और वे मज-बूत बन जाती हैं तब उनका अध्यक्ष भी निर्वाचित कर दिया जाता है। इसी

प्रकार जो शासन की, समाज की और धर्म की प्रभावना करते है, तो लोग उन्हें आचार्य मान लेते हैं। जो परम्परा में आचार्य बनता है और जिसकी सेवाएं देखकर संघ जिसको आचार्य बनाता है, उन दोनों में बहुत अन्तर होता है। पहिले को शासन की रक्षा में प्राप्त होने वाले कष्टों का अनुभव नहीं होता, जब कि दूसरे को उनका पूर्ण अनुभव होता है। स्वयं पुरुपार्थ करके बने हुए आचार्य को इस बात की दिन-रात चिन्ता रहती है कि यह संघ कहीं मेरे सामने ही नष्ट न हो जाय। परन्तु जिसने संघ को बनाया नहीं, उसे इस बात की चिन्ता नही रहती है। जो निर्मल बुद्धि वाले शासन के प्रभावक होते हैं, उनको अपने कर्तव्यो में संलीन रहना पड़ता है, तभी वे अपने कर्तव्य और ध्येय को विधिवत् पालन कर सकते हैं।

भाइयो, आप लोग जानते हैं कि जो सर्वप्रथम दुकान को जमाता है, उसे सुचारु रूप से चलाने के लिए कितना अधिक परिश्रम करना पड़ता है और कितने अधिक व्यक्तियो का सहयोग लेना पड़ता है। किन्तु जो व्यक्ति जमी-जमायी दुकान पर आकर के बैठ जाता है, उसे क्या पता कि इस दुकान को जमाने में किसे कितना कष्ट उठाना पड़ा है? जिसने अपने हाथ से मकान बनाया है और उसके लिए सैकड़ो कष्ट सहे और हजारों रुपये खर्च किये हैं। अब यदि कोई कहे कि यह मकान गिरा दो, तो वह कैसे गिरा देगा? जिस कुम्हार ने वर्तन बड़े परिश्रम से बनाये है, यदि उससे कहा जाय कि इन वर्तनों को फोड़ दो, तो क्या वह फोड़ देगा? नही। क्योकि उसने बनाने में कठिन परिश्रम उठाया है। इसी प्रकार जो व्यक्ति आत्मा के गुणों का जानने वाला है और उसने एक-एक आत्मिक गुण को बड़ी कठिनाई से प्राप्त किया है, उससे कह दो कि वह अपने इन उत्तम गुणों को छोड़ देवे तो वह कैसे छोड़ देगा? वह तो अपने गुणों में ही निमग्न रहेगा। जिसने जिस कार्य को मुख्य माना है वह गौण कार्य के पीछे मुख्य कार्य को कैसे छोड़ देगा? जिस व्यक्ति ने जिस कार्य का निर्माण किया है, वह अपने कार्य का विनाश स्वप्न में भी नहीं देख सकता है, उसकी तो सदा यही भावना रहेगी कि मेरा यह निर्माण किया कार्य सदा उत्तम रीति से चालू रहे। अरे भाई, गानेवाला जब लय-तान के साथ गा रहा हो और उसमें तन्मय हो रहा हो, उस समय यदि उसे भी रोका जाय, तो उसे भी दर्द होता है। एक नाटक या नृत्यकार को उसे नृत्य या नाटक दिखाते हुए यदि बीच में रोका जावे तो उसे भी धक्का लगता है। अपने-अपने कार्य मे सबको सलीनता होती है और सलीनता आये विना उस कार्य का आनन्द भी नहीं आ सकता है। पर भाई, किसी

भी कार्य की संलीनता प्राप्त करने के लिए बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है।

साधना की आवश्यकता

एक समय की बात है कि स्वर्ग में दो देव साथ रह रहे थे और उनमें परस्पर प्रीतिभाव भी अधिक था। उनमें से एक का आयुष्य अल्प था। जब उसकी माला मुर्झायी और अन्तिम समय समीप आया देखा तो उसने दूसरे देव से कहा—मैं तो अब यह स्वर्ग छोड़कर मनुष्यलोक में जाने वाला हूं तू मेरा मित्र है, सो यदि मैं मनुष्य के भोगों में आसक्त हो जाऊं तो तुम मुझे सावधान करते रहना, जिससे कि मैं भोगों की कीचड़ में नही फंस पाऊं ? दूसरे देव ने कहा—मैं अवश्य ही तुम्हें सचेत करने आऊंगा। आयुष्यपूर्ण होने पर वह देव चल कर राजगृह नगर में राजा के भंगी की स्त्री के गर्भ में आया। भंगिन को स्वप्न आया। उसने पति से कहा। वह फल पूछने के लिए ब्राह्मण के घर पर गया और उसने स्त्री के द्वारा देखा हुआ स्वप्न कहकर उसका फल पूछा। ब्राह्मण ने कहा—भाई, तेरे एक पुण्यशाली पुत्र उत्पन्न होगा। उसने आकर के यह बात अपनी स्त्री से कही और क्रमशः गर्भकाल बीतने लगा।

इसी राजगृह नगर में एक जुगमन्दिर सेठ भी रहता था। वह अड़तालीस करोड़ स्वर्ण दीनारों का स्वामी था। उनके कोई सन्तान नहीं थी, अतः पति-पत्नी दोनों ही चिन्तित रहते थे। मंत्र, तंत्र और औपधियों के अनेक प्रयोग करने पर भी उनके कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुई, क्योंकि अन्तराय-कर्म का प्रबल उदय था। भाई, जब अन्तरायकर्म का क्षयोपशम होता है, तभी बाहिरी उपाय सहायक होते हैं। उद्योग करना उत्तम है और उद्योग से ही सारे काम सिद्ध होते हैं, पर तभी, जबकि भाग्य का भी उदय हो। सन्तान का अभाव पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक खटकता है, इसलिए जुगमन्दिर सेठ की सेठानी उम्र बढ़ने के साथ और भी अधिक चिन्तित रहने लगी। वह सोचती रहती कि पुत्र के बिना मेरी यह अपार विभूति और सम्पत्ति किस काम की है ? एक दिन की बात है कि जिस भंगिन की कुक्षि मे वह स्वर्ग का देव आया था, वह जब सेठजी की जाजरू साफ करने के लिए आई तो उसने सेठानीजी को उदास मुख बैठे देखा। उसने पूछा—सेठानीजी आज इस पर्व के दिन भी आप उदास मुख क्यो बैठी हैं ? महत्तरानी के यह पूछते ही सेठानी फबक-फबक कर रोती हुई बोली—महत्तरानीजी, मेरे से तो इन

चिड़ी-कमेड़ी आदि पक्षियों की पुण्यवानी अच्छी है, जो अपनी सन्तान का तो सुख भोगते हैं। मैं तो सन्तान का मुख देखने की चिन्ता करते-करते बूढ़ी हो रही हूं। पर सन्तान के मुख को देखने का सुख ही भाग्य में नहीं है। मैं अपने दु:ख की बात तुझे कैसे बताऊं? नि:सन्तान स्त्री ही समझ सकती है। महत्तरानी बोला— भगवान् भी कैसे उलटे हैं कि जिनके लिए खाने-पीने की अपार सम्पदा है, उनके तो सन्तान पैदा नही करते और हम गरीबों के यहां एक पर एक देते ही जाते हैं। मैं तो इस सन्तान से परेशान हो गई हूं। सात लड़के तो पहिले ही थे और अब यह आठवां फिर पेट में आगया है। काम करते भी नही बनता। मैं तो भगवान् से नित्य प्रार्थना करती रहती हूं कि अब और सन्तान मत दे। परन्तु वे तो मानो ऐसी घोर नींद में सो रहे हैं कि मेरी एक भी नही सुनते हैं। आप बिना पुत्र के दुखी हैं। और मैं इन पुत्रों से दुखी हूं। संसार की भी कैसी विलक्षण दशा है कि कोई पुत्र के बिना नित्य झूरता रहता है और कोई पुत्रों की भर-मार से काम करते-करते मरा जाता है, फिर भी खाने को नहीं पूरता है। भाई, इस बात का निर्णय कौन करे कि सन्तान का होना अच्छा है, या नही होना अच्छा है। सन्तान उसे ही प्यारी लगती है, जिसके पास खाने-पीने के सब साधन हैं। छप्पन के काल में लोग अपनी प्यारी सन्तान को भी भूंज-भूंज कर खा गये।

हां, तो वह महत्तरानी बोली—सेठानीजी, मेरी एक बीनती है—ज्योतिषी ने बताया है कि तेरा यह आठवां पुत्र बड़ा भाग्यशाली होगा। भगवान् के यहां से तो सब एक रूप में आते हैं, पीछे यहां भले-बुरे कर्म करने से ही ऊंच-नीच कहलाने लगते हैं। सो यदि आप कहें तो मैं अब की बार पुत्र के जन्म लेते ही आपकी सेवा मे हाजिर कर दूं? सेठानी ने कहा—तेरा कहना तो बिलकुल सत्य है। मैं सहर्ष उसे लेने को तैयार हूं। मगर देख—कहीं 'बात' उजागर न हो जाय? अन्यथा हमारा महाजना मिट्टी मे मिल जायगा। महत्तरानी बोली—सेठानीजी, आप इस बात की बिलकुल भी चिन्ता न करें। हम स्त्री-पुरुष के सिवाय यह बात किसी तीसरे को भी ज्ञात नहीं होने पायगी। सेठानी ने कहा—यदि बात गुप्त रहेगी तो मैं तुझे मालामाल कर दूगी, पर बात किसी तीसरे के कान तक नहीं जानी चाहिए। महत्तरानी बोली आप इस बात से बिलकुल निश्चिन्त रहें। यह कहकर वह अपने घर चली गई।

एक दिन अवसर पाकर सेठानी ने उक्त बात अपने सेठ से कही। वह बोला अरी, तू तो पुत्र के मोह में जाति– और कुल को ही बिगाड़ने पर उतारू हो गई है? तब वह बोली—आपने इतने बार भगवान महावीर का

उपदेश सुना पर कोरे के कोरे ही रह गये। अरे, भगवान ने कई बार कहा है कि—

> कम्मुणा बंमणो होई, कम्मुणा होई खत्तियो।
> वइसो कम्मुणा होई, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

पति देव, किसी कुल मे जन्म लेने मात्र से ही कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं होता है। किन्तु उत्तम काम करने से ही मनुष्य ब्राह्मण, कहलाता है, क्षत्रियोचित काम करने से क्षत्रिय कहलाता है, वैश्य के काम करने से वैश्य कहलाता है और शूद्र के काम करने से शूद्र कहलाता है। अतः आप जाति-पांति का विचार छोड़िये और मुझे हुंकारा भरिये, जिससे कि मेरी गोद भर जाय और चिरकाल की झूरना दूर हो जाय। सेठानी के इन जोरदार वचनों को सुनकर सेठ ने भी हुंकारा भर दिया।

अब सेठानी उस महत्तरानी को जाजरू साफ करने को आने पर नित्य नई चीजे खाने-पीने को देने लगी और पर्व त्योहार के अवसर पर वस्त्र आदिक के साथ मिठाई और फल-मेवा आदि भी देने लगी। यथासमय महत्तरानी ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। वह रात्त के अंधेरे में ही उसे कपड़े मे लपेट कर सेठानी के घर आई और पुत्र को सौप कर चुपचाप वापिस लौट गई। पुत्र का मुख देखते ही सेठानी के हर्ष का पार नहीं रहा। उसने उसी समय गर्म जल से स्नान कराया और तत्काल जात पुत्र के योग्य जो भी काम होते हैं, वे सब किये और दासी से प्रसूति का समाचार सेठ के पास भिजवा करके वह प्रसूतिगृह मे सो गई। दासी ने जाकर सेठ को बधाई दी और सेठ ने भी उसे भरपूर इनाम दिया। और हर्ष के साथ सभी जात-कर्म किये, मंगल-गीत गाये गये, बाजे बजवाये गये, और याचकों को भरपूर दान भी दिया और जातिवालों को प्रीति भोज भी कराया। उसका नाम मेतार्य रखा गया। गुलाब के फूल जैसा बालक का मुख देखकर सेठ और सेठानी के आनन्द का पार नही रहा। उसे देख-देखकर वे हर्ष के आनन्द-सागर मे गोते लगाने लगे और अपने भाग्य को सराहने लगे। बालक भी दोज के चाद के समान बढने लगा। जब वह आठ वर्ष का हुआ तब उसे कलाचार्य के पास पढाई के लिए बैठा दिया। अल्प समय मे ही वह सब कलाओं में पारगत हो गया। दिन पर दिन उसके सगपण आने लगे और यथासमय सेठ ने एक-एक करके सात सुन्दर कन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया। अब मेतार्य कुमार अपनी स्त्रियों के साथ सुख भोगते हुए आनन्द से रहने लगे। और पिता के साथ घर का भी कारोबार सभालने लगे।

मेतार्य को प्रतिबोध

भाइयो, अब इधर मेतार्यकुमार को आनन्द में मग्न देख कर उसके स्वर्गवासी मित्र देव ने अवधिज्ञान से देखा कि मेरा साथी देव राजगृह नगर में जुगमन्दिर सेठ के यहां काम-भोगों मे मग्न हो रहा है और उसे अपने पूर्व भव की कुछ भी याद नहीं आ रही है, तब वह यहां आया और उसे सोते समय स्वप्न में कहा—मेतार्य, तू पूर्व भव की सब बातें भूल गया है और यहा आकर विषय-भोगों में निमग्न हो रहा है। अब तू इनको छोड़। इनका सग भयंकर दुखदायी होता है। अतः अब आत्मकल्याण का मार्ग पकड़। मेतार्य ने स्वप्न में ही कहा—मैं इतनी पुण्यवानी भोगते हुए सर्व प्रकार से आनन्द में हूं। यदि मैं इन्हें छोड़कर साधु बन जाऊंगा तो मेरे ये मां-बाप अकाल में ही मर जावेंगे। और ये मेरी प्यारी स्त्रियां भी तड़फ-तड़फ कर मर जावेंगी। अतः मैं अभी घर-बार नहीं छोड़ सकता हूं। देवता ने उससे फिर कहा—देख, मेरा कहना मान ले, अन्यथा पीछे पछताना पड़ेगा। ये स्वजन-सम्बन्धी कोई तेरे साथी नहीं हैं। ये तो नदी-नाव के समान क्षणिक मुसाफिरी के साथी हैं और अपना घाट आते ही उतर कर चले जावेंगे। संसार के सब सम्बन्ध मिथ्या है। तू इनमें मत उलझ और अपना कल्याण कर। इस प्रकार देव ने उसे बहुत समझाया। मगर उसके ध्यान में एक भी बात नहीं जमी। भाई, आज भी आपके पास ठाठ-बाट हैं और वर्षों से सासारिक सुख भोग रहे हैं। फिर भी यदि इधर आने को कहा जाता है तो आप लोगों को बहुत बुरा लगता है। परन्तु आप लोगों की बात ही कितनी-सी है, बड़े-बड़े बलदेव और चक्रवर्ती भी भोगों से मुख मोड़कर चले गये तो उन्होंने अमर पद पाया और जिन नारायण-प्रतिनारायणों ने इन्हें नहीं छोड़ा, वे संसार में डूबे और आज भी दुःख भोग रहे हैं। निदान हताश होकर वह देव चला गया और मेतार्य भोगो का भंवरा बना हुआ उनमें ही निमग्न रहा।

अब देव ने मेतार्य को सम्बोधन के लिए एक दूसरा ही उपाय सोचा। उसने मेतार्य के जन्म देने वाले भंगी की बुद्धि मे भ्रम उत्पन्न कर दिया कि तू अपने पुत्र को सेठ के यहां से वापिस ले आ। तेरा भी जन्म-जन्म का दारिद्र्य नष्ट हो जायगा। और तू भी सेठ के समान सुख भोगेगा। उसने यह बात अपने साथी अन्य भंगियों से कही। सब उसके लड़के को छुड़वाने के लिए इकट्ठे होकर सेठ के घर पर आये। उस समय मेतार्य घर के बाहिर चबूतरे पर बैठा हुआ दातुन कर रहा था। रास्ते में भंगी चिल्लाते हुए आये कि हम अपना लड़का लेकर ही लौटेंगे। लोगों के पूछने पर उन्होने बताया कि मेतार्य

सेठ का लड़का नहीं है, हमारा है। जैसे ही उन लोगों ने मेतार्य को दातुन करते हुए बाहिर बैठा देखा तो उसका हाथ पकड़कर नीचे घसीट लिया और हो-हल्ला मचाते हुए अपने साथ ले गये। तथा सेठ को नाना प्रकार के अप-शब्द बकते गये। सेठ यह सब देखकर किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया। उसने सेठानी से कहा—देखो, मैंने पहिले ही रोका था। पर त्रिया-हठ के सामने किसी दूसरे की चले कैसे? अब सारा महाजना धूल में मिल गया और लड़का भी हाथ से चला गया। स्त्री ने कहा—राज-दरबार में जाकर पुकार करो। सेठ बोला—जब बात सच है, तब मैं ऐसा नहीं कर सकता। यदि तेरे में कुछ दम हो तो जाकर देख ले। आखिर हताश होकर दोनों रह गये और भंगी लोग सरे-बाजार शोर मचाते और सेठ को बदनाम करते हुए मेतार्य को अपने घर ले गये। सारे नगर में सेठ की बड़ी बदनामी हुई। और लोग धिक्कारने लगे। सब कहने लगे—सेठ ने अपना कुल तो खराब किया ही। साथ में खिला-पिला कर और हमारे खा-पीकर हमें भी भ्रष्ट कर दिया। इस प्रकार हजारों मुख हजारों प्रकार की बातें होने लगीं। पुत्र-वियोग से भी उन्हें असह्य दुःख जाति के अपमान का हुआ। उन्होंने दिन भर कुछ भी खाया-पीया नहीं और एकान्त में बैठे दोनों रोते रहे।

इधर जब वे महत्तर मेतार्यकुमार को पकड़कर ले गये तो वह भी अत्यन्त लज्जित एवं दुखी हुआ। उसने दिन-भर न कुछ खाया-पिया और न किसी से कुछ बोलाचाला ही। जब रात हो गई और सब लोग सो गये तब वह देव मेतार्य के पास फिर आया और बोला - कहो मेतार्य, सुख में हो, या दुःख में हो? मेतार्य ने कहा—मेरे दुःख का कोई पारावार नहीं है। इस अपमान से तो मौत आ जाय तो अच्छा है। देव ने कहा—मैंने तुझे कितना समझाया था, परन्तु तू तो उस समय माना ही नहीं। मेतार्य ने कहा—तूने यह क्या षड्यंत्र रचा कि मेरी इज्जत धूल में मिला दी। देव ने कहा—अब भी तू मेरा कहना मानता है, या नहीं? और संसार को छोड़ता है, या नहीं? मेतार्य बोला—पहले मेरी पहिले के समान ही इज्जत बढ़ा दो और राजा श्रेणिक की लड़की के साथ शादी करा दो तो मैं तुम्हारी बात मानूंगा। देव ने कहा—देख, मैं यह सब करा दूंगा, परन्तु मेरी बात मत भूल जाना। मेतार्य बोला—नहीं, अब नहीं भूलूंगा और जैसा तू कहेगा, वैसा ही करूंगा। यह कहकर देव अन्तर्धान हो गया। अब उसने सब भंगियों की बुद्धि पर जादू किया और सबके विचार बदल गये। दूसरे दिन प्रातःकाल ही सब भंगी फिर इकट्ठे हुए और मेतार्य के पास आकर के कहने लगे—कुंवर साहब, आप अपने घर पधारो।

कल हम लोग नशे में घुत्त थे, सो आपको पकड़ लाये। आपने भी तो उस समय कुछ विरोध नहीं किया। अब चलिये, हम लोग आपको वापिस आपके घर पहुँचा आते हैं। अब सब भंगी मेतार्य को लिए जुगमन्दिर सेठ के घर पर पहुंचे और बोले—सेठ साहब, अपने कुंवर साहब को संभालो। कल हम लोग नशा किये हुए थे, उससे हम अजानपन में आपके कुंवर साहब को पकड़ ले गये। अब हमें माफी देवें। आप तो हमारे अन्नदाता और प्रतिपालक हैं। हम लोगों के घर में क्या ऐसा सर्वाङ्ग सुन्दर और भाग्यशाली पुत्र पैदा हो सकता है? इसने हमारे घर पर कुछ भी नहीं खाया-पिया है। तभी सेठ के पड़ौसी और स्वजन-परिजन आ गये और बोले—सेठसाहब, कुंवर निर्दोष है, उन्हें किसी ने भी भ्रष्ट नहीं किया है। चोर-डाकू भी लोगों का अपहरण करके ले जाते है, तो क्या घरवाले उन्हें वापिस स्वीकार नहीं करते हैं? अतएव आप इन्हें स्नान कराके और दूसरे वस्त्र पहिना दीजिए। इस प्रकार देव ने सबके हृदयों में परिवर्तन कर दिया। तब सेठ ने मेतार्य को स्नान कराया, कृतिकर्म और मंगल-प्रायश्चित्तआदि किये और नये वस्त्राभूषण पहिना दिये। अब मेतार्य घर में ही रहने लगा। शर्म के मारे वह घर से बाहिर नहीं निकलता था। उस देव ने जाते समय एक चमत्कारिणी बकरी मेतार्य को भेंट की जो दूध भी ढाई सेर देती और सोने की मेंगनी (लेंडी) करती। अब यह बात चारों ओर फैल गई और दूर-दूर से लोग उसे देखने के लिये आने लगे। चारों ओर अब सेठजी के पुण्य की चर्चा होने लगी। धीरे धीरे यह बात राजा श्रेणिक के कान तक पहुंची। उन्होंने अभयकुमार से पूछा—क्या सोने की मेगनी देनेवाली बकरी की बात सच है? अभयकुमार ने कहा—हां महाराज सत्य है। पुण्यवानी से और विद्या-मंत्रादि देवाज्ञा के बल से कौन सी सिद्धि नही हो सकती है? श्रेणिक ने कहा मैं भी उस बकरी को देखना चाहता हूं। अभयकुमार ने सेठ के घर आदमी भेजे। उन्होंने जाकर कहा—सेठ साहब, आपकी उस अद्भुत बकरी को महाराज श्रेणिक देखना चाहते हैं। मेतार्य ने बकरी देने से इन्कार किया तो वे राजा के आदमी उस बकरी को पकड़ कर ले गये। जब वह राजाश्रेणिक के सामने लायी गई, तब उसने ऐसी दुर्गन्धित मेंगनी की कि जिनकी बदबू से राजमहल भर गया और वहां पर ठहरना कठिन हो गया। तब राजा श्रेणिक ने मेतार्य को बुलवाया और कहा—अरे, तूने हमारे साथ भी चालबाजी की? मेतार्य बोला—महाराज, आज तो आपने बकरी पकड़ मंगवायी। कही आगे आप दूसरों की बहू-बेटियां को पकड़ मंगवायेगे? कहीं राजाओं को ऐसी अनीति करनी चाहिए?

श्रेणिक ने कहा—मेतार्य, यह उपदेश तो पीछे देना। पहिले यह बता कि क्या यह बकरी सोने की मेंगनी देती है? मेतार्य ने कहा—हां, महाराज, देती है और ऐसा कह कर जैसे ही बकरी की पीठ पर अपना हाथ फेरा, वैसे ही वह सोने की मेंगनी देने लगीं। यह देखकर श्रेणिक बड़े विस्मित हुए और सोचने लगे कि यह करामात तो बकरी में नहीं, किन्तु मेतार्य के हाथ में है। तब श्रेणिक ने कहा—कुमार, अब तो शान्ति है? मेतार्य बोला—महाराज, अभी तो मैं बहुत कुछ करूंगा, क्योंकि आपने मेरी बकरी को पकड़ करके मंगवायी है। श्रेणिक ने कहा—अच्छा कुमार, आपस में फैसला कर लिया जाय। मेतार्य ने कहा—महाराज, यदि आप अपनी पुत्री की शादी मेरे साथ करने को तैयार हों, तो मैं भी आपके साथ फैसला करने को तैयार हूं, अन्यथा नहीं। तब अभयकुमार ने कहा—महाराज, यह प्रस्ताव तो उचित है क्योंकि मेतार्य सर्वाङ्ग सुन्दर है, भाग्यशाली है और अपने नगर के सर्वश्रेष्ठ श्रेष्ठी का सुपुत्र है, जो इस समय सब सेठों में सर्वाधिक धनी है। जहां सब कुछ है। भाई, लक्ष्मीवान् पुरुष जो इच्छा करे, वही पूर्ण हो जाती है। कहा भी है—

'सुकृतीनामहो वाञ्छा सफलैव हि जायते'।

अर्थात्—जिन्होंने पूर्वजन्म में सुकृत किया है, उन भाग्यशालियों की इच्छा सफल ही होती है। फिर जिसके पास धन है, उसकी तो बात ही क्या कहना है? कहा भी है—

> लक्खन नहीं है फूटी कौड़ी का, तो भी सेठजी बाजे रे।
> छाती देवे फाढ़ जाति में जोर से गाजे रे, कामनि गारो रे।
> यो पैसो जग में अजब झूठो धुतारो रे।

भाइयो, धन का तो जादू ही न्यारा है। जिसे धोती बांधने का भी तमीज नहीं है, बोलने का भी हौसला नहीं है और कपड़ा भी पहिनना नहीं आता है, फिर भी यदि पैसा पास में होवे तो सभी लोग सेठ साहूकार कहकर सम्मान करते हैं। यदि पैसा पास में होता है तो छाती बाहिर निकल आती है, आंखें आसमान में लगी रहती हैं। अभिमान से सिर अकड़ा रहता है और जाति-सभाजवालों को कुछ समझता ही नहीं है। आज पैसे का माहात्म्य कितना बढ़ गया है कि मनुष्य अपनी प्यारी पुत्रियों का भी विवाह अन्धे-काने, लूले-लंगड़े और चार दिनों में ही जिनकी अर्थी निकलने वाली होती है, ऐसे रोगग्रस्त धनवान् व्यक्तियों के साथ भी कर देते हैं। आपके यहां भी बीमार को लड़की परणाई है। महापुरुषों ने ठीक ही कहा है—'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः'

अर्थात् जिनमें एक भी गुण नहीं है, ऐसे निर्गुणी व्यक्ति भी आज द्रव्य के, धन के आश्रय से गुणी माने जाते हैं। और भी कहा है—

> **यस्यार्थस्तस्य मित्राणि, यस्यार्थस्तस्य बान्धवाः ।**
> **यस्यार्थः स पुमान् लोके, यस्यार्थः स च पण्डितः ॥**

अर्थात्—जिसके पास धन है उसके सैकड़ों लोग मित्र बन जाते हैं, सैकड़ों बन्धु-बान्धव हो जाते हैं। वह लोक में महान् पुरुष कहलाता है और संसार उसे पंडित और चतुर भी मानने लगता है।

सर्वेगुणा : कांचनमाश्रयंति

भाइयो, पैसे के पीछे मनुष्य के सब अवगुण ढक जाते हैं। आज लोग पैसे के ऐसे मोह जाल में फंसे हुए हैं कि वे न्याय को भी अन्याय और अन्याय को भी न्याय कहते और करते नहीं चूकते हैं। आज मनुष्य मार कर भी हत्यारा पुरुष अदालत से छूट जाता है। जाति में यदि कोई गरीब मनुष्य कुछ ओछा काम कर देता है तो आप लोग उसे दंड देते हैं। और धनवान् यदि बड़े से बड़ा पाप कर देता है तो उससे कुछ भी नहीं कहते हैं। बस, राजा श्रेणिक भी उस मेतार्य के धन के प्रभाव से ऐसे प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी पुत्री की शादी उसके साथ कर दी। अब मेतार्य के राजजमाई होते ही उसका यश चारों ओर फैल गया और सब लोग उसका यथेष्ट आदर-सत्कार करने लगे। वह भी कुछ दिनों में भंगियों के द्वारा किये गये अपमान को बिलकुल भूल गया और राजा श्रेणिक की पुत्री के साथ सुख भोगता हुआ आनन्द से काल बिताने लगा।

जब देव ने देखा कि मेतार्य की प्रतिष्ठा पहिले से भी अधिक जम गई है, तब एक दिन उसने आकर कहा—अरे मेतार्य ! अब तो चेत। वह बोला — मित्र, कुछ दिन और ठहर जा। देव ने देखा कि यह मेरे कहने से संयम अंगीकार नहीं करनेवाला है, तब उसने कहा—देख कल यहां पर भगवान महावीर स्वामी पधारने वाले हैं। तू जाकर के उनकी दिव्य वाणी को तो सुनना।

> **दैवत वचनोतें प्रतिबोध्यो, संयम की उर ठानी,**
> **काया माया अथिर अहूको, ज्यों अंजुली को पानी।**
> **इन्द्र धनुष अरु रयण स्वप्न सम, ओपम दीनो जानी,**
> **इनमें राचे सो अज्ञानी, विरचे सो सुलतानी ॥**

दूसरे दिन भगवान राजगृही नगरी के समीपवर्ती वैभारगिरि पर पधार गये। नगर-निवासियों को जैसे समाचार मिले वैसे ही लोग उनके दर्शन-वन्दन के लिए जाने लगे। वहां के छोटे-बड़े सभी पुरुष भगवान के परम अनुरागी थे। लोगों को जाता हुआ देखकर मेतार्य ने पूछा कि लोग कहां जा रहे हैं? उन्होंने बताया कि भगवान् वर्धमान स्वामी पधारे हैं। यह सुनकर मेतार्य भी तैयार होकर भगवान के दर्शन-वन्दन के लिए गया और समवसरण में यथाविधि वन्दन करके बैठ गया। भगवान की दिव्य और सर्व दुःखापहारिणी देशना चल ही रही थी, मेतार्य भी एकाग्र मन से सुनने लगा। सुनते-सुनते उसके भाव बढ़े, वह सोचने लगा—अहो, संसार के ये सुख तो आपातमात्र रम्य हैं, किन्तु इनका परिणाम तो अति भयंकर दुःखदायी है। देव के द्वारा अनेक बार प्रतिबोधित किये जाने पर भी मैंने इतना समय व्यर्थ गंवा दिया। अब मुझे एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोना चाहिए और शीघ्र ही संयम को धारण करना चाहिए। संयम ही जीवन का सार है और प्राणी का रक्षक है। यह विचार कर भगवान की देशना बन्द होते ही उठा और भगवान की वन्दना करके बोला—भगवन्! मैं आपके पास प्रव्रजित होना चाहता हूं। भगवान ने कहा—'जहा सुहं, मा पडिबंधं करेह' (जिसमें सुख हो, वैसा करो, विलम्ब मत करो)। यह सुनते ही वह आज्ञा लेने के लिए घर आया और अपने माता-पिता से कहा—मुझे दीक्षा लेने के लिए आप लोग आज्ञा दीजिए। भगवान् पधारे हैं, मैं उनके श्री चरणों में दीक्षा ग्रहण करूंगा। मेतार्य के ये वचन सुनते ही सारे घर में कुहराम मच गया। सेठ-सेठानी ने सभी अनुकूल-प्रतिकूल उपायों से बहुत समझाने का प्रयत्न किया, परन्तु उसने संसार की असारता और काम-भोगों की विनश्वरता बताकर के सबको निरुत्तर कर दिया। तब राजा श्रेणिक ने मेतार्य के विरक्त होने का पता लगा तो वे भी आये और बोले—कुमार! तुमने अभी हाल में ही मेरी पुत्री के साथ विवाह किया है और अभी तुम जा रहे हो? कुछ दिन तो और संसार के सुख भोगो। मेतार्य ने कहा—जीवन का कोई भरोसा नहीं है, कब मृत्यु आ जाय। यदि वह अभी आ जाय तो क्या आप उससे मेरा परित्राण कर सकते है? श्रेणिक ने कहा—उससे तो मैं नहीं बचा सकता हूं। अन्त में उन्होंने भी और मेतार्य के माता-पिता और अन्य परिवार के लोगों ने आज्ञा दे दी और बड़ी धूम-धाम के साथ उनका दीक्षा महोत्सव किया। मेतार्य ने भगवान के पास जाकर के दीक्षा ले ली और सेवा में रहकर संयमधर्म की आराधना में लीन हो गये।

स्वर्ण-यव

भाइयो, यह सब किसका प्रताप था ? उस देवता का, जिसने पूर्वभव के स्नेह-वश बार-बार आकर के मेतार्य को सचेत किया। मेतार्य दिन प्रतिदिन अपनी तपस्या बढ़ाने लगे। धीरे-धीरे मासक्षपण का पारणा करने लगे। तपस्या के प्रभाव से उनको अनेक ऋद्धियां प्राप्त हो गई। ये उसे ही प्राप्त होती हैं, जो महान् तपस्वी होता है। जब भगवान ने वहाँ से विहार किया तो मेतार्य मुनि ने भी साथ में ही विहार किया। और बारह वर्ष तक भगवान के साथ विभिन्न देशों और ग्रामों में विचरते हुए ज्ञान, ध्यान और तप में लीन रहे। मास-खमण की तपस्या से उनका शरीर सूख कर अस्थि-पंजरमात्र रह गया। चलते समय उनके शरीर की हड्डियां खड़खड़ाने लगीं। शरीर में यद्यपि चलने की शक्ति नहीं थी, पर आत्मिकबल के जोर से वे विचर रहे थे। कुछ समय के बाद भगवान् फिर राजगृही पधारे। मेतार्य ने मास-खमण की पारणा के लिए भगवान की अनुज्ञा लेकर नगरी में प्रवेश किया और उत्तम, मध्यम सभी घरों में गये, परन्तु कहीं पर भी निर्दोष आहार नहीं मिला। इस प्रकार गोचरी के लिए विचरते हुए एक सोनी ने इन्हें पहिचान लिया और वह दुकान से उठकर सामने आया और प्रार्थना की, स्वामिन्, मुझ भिखारी को भी तारो और आहार लेने के लिए भीतर पधारो। सोनी की भावना है कि ये ऋद्धिसम्पन्न, जुगमन्दिर सेठ के पुत्र और राजा श्रेणिक के जमाई मुनिराज हैं, इनको आहार देने से मुझे धन की प्राप्ति होगी। संसार बड़ा स्वार्थी है। सामायिक में बैठता है किन्तु माला स्वार्थ की फेरता है। पर यदि स्वार्थ की भावना छोड़कर भगवान के नाम की माला फेरे तो वह फले। उसने भीतर ले जाकर उन्हें यथाविधि पारणा कराई। जब वह गोचरी वहरा रहा था, तभी एक तीन दिन का भूखा कूकड़ा उसकी दुकान में घुसा। वहां पर चेलना रानी के हार के लिए सोने के १०८ जवलिए तैयार रखे हुए थे— कूकड़े ने उन सबको चुग लिया। सोने की जव पेट में पड़ जाने से वह उड़ नहीं सका और घरके भीतर जाकर किसी सुरक्षित स्थान में बैठ गया। जब मेतार्य मुनि गोचरी वहर कर बाहिर पधारे और सोनी दुकान पर आया—

> वहरी ने मुनि पाछा फिरिया, सोना जव नहिं पाया।
> हाय जोड़कर करे वीनती, कंचण-जव कुण खाया॥
> तुम हम दुइ घर में जन नहिं आव्यो तीजो।
> देख्यो होय तो मोहि बताओ, लेगयो जव कुण बीजो॥

दुकान में सोने के जौकी थाली को खाली देखकर एकदम चकराया कि सोने के जौ को कौन ले गया है ? अब मैं राजा का सोना कहां से दूंगा। अरे,

लोग कहते हैं कि साधु-सन्तों को आहार-पानी देने से लोगों के भाग्य खुल जाते हैं। किन्तु मेरा तो भाग्य ही फूट गया। ये महात्मा कितने ऊंचे घराने के हैं, परन्तु चोरी के लक्षण पड़े हैं। यहां पर दूसरा कोई आया नहीं। उनके सिवाय और कौन ले जा सकता है। यह विचार कर वह झट दौड़ा और मुनिराज से कहने लगा— महाराज, एक चीज और बहरानी है, अतः वापिस पधारो और मुझे तारो। मेतार्य मुनि वापिस उसके साथ गये। घरके भीतर ले जाकर वह सोनी बोला— महाराज, आप राजा श्रेणिक के जमाई, जुगमन्दिर सेठ के पुत्र और भगवान् महावीर के शिष्य है, तपस्या करते हैं, फिर भी आपने यह काम क्यों किया ? क्या आपने सोने के जौ नहीं लिये हैं ? मेतार्य मुनि ने कहा – मैंने नही लिए हैं। सोनी बोला—फिर बताओ — किसने लिए हैं ? अब मुनिराज के सामने बड़ी विकट समस्या आकर के खड़ी हो गई। उन्होंने अपने ज्ञान से जान लिया कि कूकड़ा जौ चुग गया है और यहीं पर छिपा बैठा है। अब वे सोचने लगे—क्या किया जाय ? यदि कहता हूं कि मुझे नहीं मालूम तो सत्य महाव्रत नष्ट हो जाता है और यदि नाम बताता हूं तो यह अभी सोने के जौ के लिए पेट चीरकर उसे मार देगा, तो अहिंसा महाव्रत जाता है। अब इधर कुआ और उधर खाई है। दोनों ही बातों में धर्म जाता है, मैं क्या करूं ? बहुत ऊहापोह के पश्चात् उन्होंने निर्णय किया कि चुप रहना ही अब अच्छा है। यह सोचकर उन्होंने मौनधारण कर लिया। लोकोक्ति भी है कि **'मौनं सर्वार्थसाधनम्'** अब मुनिराज ने उसके प्रश्न का कोई उत्तर देना उचित नहीं समझा और उपसर्ग आया देखकर कायोत्सर्ग से खड़े रहे। सोनी के द्वारा दो-तीन वार पूछने पर भी जब मुनि कुछ नहीं बोले, तब सोनी को क्रोध उमड़ आया और बोला—तू साधु बन गया, फिर भी तेरा बनियापन नहीं गया है ? बता—कौन ले गया है, अन्यथा अभी मैं तेरा कचूमर निकाल दूंगा। जब मुनि ने कोई उत्तर नहीं दिया तो उसने घरके किवाड़ भीतर से बन्द कर लिये और धक्का देकर भीतर नौहरे में ले गया। तत्पश्चात् वह सोनी पीछे के द्वार से कसाई के घर गया और जानवर के ऊपर से तुरन्त का उधेड़ा हुआ चमड़ा लाया और मोची को बुलाकर के मेतार्य मुनि के माथे पर सिलवा दिया। तथा मुनि को धूप में खड़ा कर दिया। धूप से ज्यों ज्यों वह चमड़ा सूखने लगा, त्यों-त्यों मुनि के मस्तक की नसें तनने लगी। इससे मुनि के असह्य वेदना हुई। परन्तु वे क्षमा के सागर चुपचाप शान्ति पूर्वक सहन करते हुए चिन्तवन करने लगे—

मांगनेवाला मांगे लेना, आना-कानी काम नहीं,
दे दिलसाक ढील करे मत, ध्याया शुक्लध्यान से।

तड़तड़-तड़तड़ नाड़ी टूटै, अनन्त वेदना व्यापी,
मरण तनो तो भय नहिं मनमें, करम जड़ों ने कांपी ॥
काठनी भारी सोनी लीनी, ऊभो हेठी पटकै,
वहिल पड़ी पंछी ऊधरना, जब वमिया है झटकै ॥

समभाव में लीनता

मेतार्य मुनि को तीव्र वेदना हो रही है, परन्तु वे समभाव में लीन हैं। क्रम-क्रम से एक-एक नस टूटने लगी। भाई, एक भी नस फट जावे तो मनुष्य का मरण हो जाता है। परन्तु उनकी एक पर एक नस टूट रही है और वे अपार वेदना का अनुभव करते भी कर्मों की नसें तोड़ने में संलग्न हैं। इसी समय सुनार ने लकड़ियों की भारी ली और पीछे के द्वार से उसे नौहरे में डलवाया। भारी गिरने के साथ ही इधर मुनि का शरीर भूमि पर गिरा और उधर कूकड़े के ऊपर लकड़ी की भारी पड़ने से उसके पेट में से वे सोने के एक सौ आठ ही जौ बाहिर निकल आये। सोनी ने भी देखा कि कूकड़े की बीट में वे सोने के जौ पड़े हुए हैं, तब उसने जाना कि इस कूकड़े ने ये जौ चुग लिये थे। उसने वे जौ तो उठाकर के दुकान में रखे और विचारने लगा कि अब तो मैं बिना मौत के मारा जाऊंगा? क्योंकि ये मुनिराज राजा श्रेणिक के जमाई और जुगमन्दिर सेठ के पुत्र हैं। अब जैसे ही राजा श्रेणिक को मेरे इस दुष्कृत्य का पता चलेगा, वैसे ही वे मुझे मरवाये बिना नहीं छोड़ेंगे। अब क्या करना चाहिए! सहसा उसके मन विचार आया कि अब तो भगवान् की शरण में जाने से ही परित्राण हो सकता है, अन्यथा नहीं। यह सोचकर उसने मेतार्य मुनि के कपड़े धारण किये। और झोली में पात्र रखकर तथा हाथ में रजोहरण लेकर वह सीधा भगवान् के समवसरण में पहुंचा। भाई, जो महापुरुषों का सहारा लेवे तो उसे फिर कोई मारने वाला नहीं है। उसने जैसे ही समवशरण में प्रवेश किया कि उसकी ईर्या समिति के बिना ही आते हुए राजा श्रेणिक ने देखा तो विचार किया कि कौन से नये साधु आये है? वह जाकर भगवान् को वन्दन करके साधुओं की संपदा में बैठ गया। राजा श्रेणिक ने पूछा—भगवन्! यहां पर मेतार्य मुनि नहीं दिखाई दे रहे हैं? तब भगवान् ने कहा—श्रेणिक, मेतार्य मुनि ने आत्मार्थ को प्राप्त कर लिया है। श्रेणिक को इस नवागत साधु पर सन्देह हो ही रहा था और और जब भगवान् से ज्ञात हुआ कि यह नवागत साधु ही उनके देहावसान का निमित्त बना है, तब उन्हें उस छद्मवेषी साधु पर भारी क्रोध आया। भगवान् ने उन्हें संबोधन करते हुए कहा—श्रेणिक, इस पर अब क्रोध करना उचित नहीं। इसने तो मुनिवर का उपकार ही किया है। जो कर्म उदय में देरी से

आने वाले थे, वे इसके निमित्त से जल्दी आ गये और मेतार्य ने आत्मलाभ कर लिया है। अब तुम क्रोध करके क्यों कर्मो को बांध रहे हो? भगवान् के इन वचनों से श्रेणिक का हृदय कुछ शान्त हुआ और सोचने लगे—जब यह भगवान् के शरण में आगया है, तब मैं कर ही क्या सकता हूं। फिर भी उससे रहा नहीं गया और उसके पास जाकर बोले—अरे पापी हत्यारे, तूने ऐसा निंद्य कार्य क्यों किया? वह बोला—महाराज, आपके सोने के जवों के लिए करना पड़ा है। श्रेणिक ने कहा—तू आकर जवों के दाने की बात मुझ से कह देता। मैं छोड़ देता, या बनाने के लिए और सोना दिला देता। अब तूने यह साधु का वेप धारण कर लिया है, अतः मैं तुझे छोड़ देता हूं। पर देख अब इस वेप की टेक रखना। यदि इससे गिर गया तो चौरासी के चक्कर में अनन्त काल तक दुःख भोगेगा। वह भी भगवान् के समीप अपने दोषों की आलोचना करके विधिवत् दीक्षित हो गया और साधुपने का साधन करते हुए आत्मार्थ को प्राप्त हो गया।

भाइयो, बात संलीनता पर चल रही थी। देखो—मेतार्य मुनि ने अन्तिम समय तक कितनी प्रतिसंलीनता धारण की और अपने ध्येय से रंचमात्र भी चल-विचल नहीं हुए। गजसुकुमार ने भी सोमिल ब्राह्मण द्वारा किये गये दारुण उपसर्ग को भी किस साहस के साथ सहन करके आत्मार्थ सिद्ध किया। यह संलीनता का ही प्रभाव है कि अनेक महामुनि दारुण उपसर्गों को इस दृढ़ता के साथ सहन कर लेते हैं—जैसे मानो उनके ऊपर कुछ हुआ नहीं है। इसी आत्म-संलीनता के द्वारा ही अनादिकाल के बंधे हुए कर्मों का विनाश होता है और मोक्ष प्राप्त होता है। हमारी भी भावना सदा यही रहनी चाहिए कि हमें भी ऐसी ही प्रतिसंलीनता प्राप्त हो।

वि० सं० २०२७ कार्तिक शुक्ला ३
जोधपुर

●

२० विज्ञान की चुनौती

बन्धुओ, विज्ञान आज हमको चुनौती दे रहा है। जैसे किसी समृद्धिशाली व्यक्ति का पुत्र लापरवाही से अपनी सम्पत्ति को वर्बाद करे और उसके संरक्षण की ओर ध्यान न देवे तो दुनिया उसे उपालम्भ देती है कि तू अमुक ऋद्धिसम्पन्न व्यक्ति का पुत्र होकर के भी यह क्या कर रहा है। उसी प्रकार से आज के वैज्ञानिक लोग भगवान के विज्ञान-सम्पन्न जैन धर्म के अनुयायी कहे जाने वाले अपन लोगो को चुनौती देकर कह रहे हैं कि तुम्हारा यह ज्ञान उच्च कोटि का है और विज्ञान से परिपूर्ण है। फिर भी तुम लोग उस ज्ञान का उपयोग नही कर रहे हो। देखो—भगवान महावीर ने शब्द को मूर्त पुद्‌गल का गुण कहा था, जब कि प्रायः सभी मतावलम्बियों ने उसे अमूर्त आकाश का गुण माना है। आज टैप-रिकार्डो और ग्रामाफोन के रिकार्डों मे भरे जाने से, तथा रेडियो-स्टेशनों से प्रसारित किये जाने और रेडियो के द्वारा सुने जाने से उसका मूर्तपना सिद्ध हो गया है। संसार के सभी दर्शन वनस्पति को जड या अचेतन मानते थे, किन्तु जैन दर्शन ही उसे सचेतन और उच्छ्‌वास प्राणादि से युक्त मानता था। सर जगदीशचन्द्र बोस ने यत्रों द्वारा उसको श्वासोच्छवास लेते हुए प्रत्यक्ष दिखा दिया है। इस प्रकार विज्ञान-वेत्ता लोग जैन धर्म के एक-एक तत्त्व को विज्ञान की कसौटी पर कस-कस करके उसकी सत्यता को यथार्थ सिद्ध करते जा रहे हैं और हम जैन धर्मानुयायी अपने ही धर्म-सम्मत तत्त्वो के प्रकाश के लिए कुछ भी नही कर रहे है। क्या यह

हमारे लिए लज्जा की बात नहीं है और क्या उनका हमको उपालम्भ और चुनौती देना सत्य नही है। यह हम लोगों की भारी भूल हैं कि जो हम लोग अपने ही भण्डार का उपयोग नहीं कर रहे हैं। अन्यथा हम भी—

करते नवाविष्कार जैसे, दूसरे हैं कर रहे।
भरते यशोभण्डार जैसे, दूसरे हैं भर रहे ॥

हमारी दशा

हमारी दशा उस सेना के समान हो रही है, जिसके पास सर्व प्रकार के शस्त्रास्त्र होते हुए भी प्रमाद-ग्रस्त होने के कारण जो शत्रुसेना से उत्तरोत्तर पराजित हो रही है। जिस व्यापारी के पास व्यापार के सभी साधन होते हुए भी यदि वह लाभ से वंचित रहता है, और दूसरे उससे लाभ उठा रहे हों, तो यह उसका प्रमाद और दुर्भाग्य ही कहा जायगा। विज्ञान आया कहां से ? आकाश से नहीं टपका है या पृथ्वी से नहीं निकला है। किन्तु यह विचारशील व्यक्तियों के मस्तिष्क से ही उपजा है। भगवान महावीर ने अपनी अपूर्व साधना के बलपर जिन सूक्ष्म एवं विज्ञान-सम्मत तत्त्वों का निरूपण किया और हमारे पूर्ववर्त्ती आचार्यो ने सैकड़ों वर्ष तक जिसे स्मरण रखा, तथा शास्त्रों में लिपि-बद्ध किया, उन्हीं के उत्तराधिकारी हम लोग अकर्मण्य बने उनका कुछ भी उपयोग नहीं कर रहे हैं। संसार आज उन तत्वों की छान-बीन करके उनके सत्य होने की मुक्तकंठ से प्रशंसा कर रहा है और हमारी ओर विकास भरी दृष्टि से देखकर हंस रहा है। एक ओर तो हम यह कहते हैं कि हमारा ज्ञान सर्वज्ञ-प्रतिपादित है और दूसरी ओर उसे विज्ञान के द्वारा सत्य सिद्ध करने का प्रयत्न नही करते हैं, यह हम लोगो की भारी कमजोरी है। यदि हम लोग पुरुषार्थ करके आज भी उसे विज्ञान-सिद्ध करके संसार के सामने रखे तो उसका मुख बन्द हो जाय।

कोई भी वस्तु कितनी भी बढिया क्यों न हो, परन्तु जब तक उनका प्रयोग और उपयोग करके उसका महत्व संसार को न दिखाया जाय, तब तक उसका महत्व संसार कैसे आक सकता है ? वैद्य के पास अम्बर है, कस्तूरी है और उत्तम-उत्तम रस और औषधियां है। परन्तु जब तक वह रोगियों पर प्रयोग करके उनका चमत्कार संसार को न दिखावे, तब तक उनका प्रसार कैसे हो सकता है ? यही कारण है कि आज दुनिया को जितना विश्वास अंग्रेजी दवाइयों और इंजेक्शनों पर है, उतना विश्वास आयुर्वेदिक औषधियों पर नही है। यदि हमारे ये देशी चिकित्सक अपनी औषधियों का चमत्कार संसार को दिखाते तो सारा संसार उन्हें नमस्कार करता नजर आता। आज

विदेशी वैज्ञानिक एक-एक वस्तु का परीक्षण करने में लग रहे हैं और उनके गुण-धर्मों का महत्व संसार के सामने रख रहे है, तभी भौतिक उन्नति से आज सारा संसार प्रभावित हो रहा है। पहिले यदि किसी प्रसूता स्त्री के दूध की कमी होती थी तो सीपियों के द्वारा बच्चे के मुख में दूध डालकर बड़ी कठिनाई से उसका पेट भरते थे। आज उन वैज्ञानिकों ने रबर की ऐसी वस्तु तैयार कर दी है कि बच्चा हंसते हुए स्तन को चूंसते हुए के समान दूध पीता रहता है। भौतिक विज्ञान ने आज भौतिक-सुख के असंख्य साधन संसार को तैयार करके दे दिये हैं और देते जा रहे हैं। फिर भी लोगों के हृदयो में सुख-शान्ति नहीं है। सुख-शान्ति की प्राप्ति के लिए हमारे सर्वज्ञों और उनके अनुयायी महर्षियों ने अनेक आध्यात्मिक साधन भी बताये हैं, पर हम उस ओर से भी उदासीन हैं। आज सारा संसार उस आध्यात्मिक शान्ति को पाने के लिए लालायित है और ससार को ज्ञान प्रदान करनेवाले भारत की ओर आशा भरी दृष्टि से देख रहा है। हम संसार को सुख-शान्ति का भी अपूर्व सन्देश दे सकते हैं, पर हमारा इस ओर भी कोई ध्यान नहीं हैं।

कमी साहित्य-की नहीं, अध्ययन की है

भाइयो, हमारे सन्तों और पूर्वजों ने तो सर्व प्रकार के साधनों का उपदेश दिया और सर्व प्रकार के शास्त्रों का निर्माण किया है। यदि आप शान्त-रस का आनन्द लेना चाहते हैं, तो उसके प्रतिपादक ग्रन्थों को पढिये। यदि आप वैराग्य और अध्यात्म रस का आस्वाद लेना चाहते है तो अध्यात्म शास्त्रों को पढ़िये। यदि आप वस्तु स्वरूप का निर्णय करने के इच्छुक हैं तो न्यायशास्त्रों का अध्ययन कीजिए और यदि सदाचार का पाठ सीखना चाहते हैं तो आचार-विषयक शास्त्रों का स्वाध्याय कीजिए। कहने का अभिप्राय यह है कि हमारे यहां किसी भी प्रकार के साहित्य की कमी नहीं है। परन्तु हम जब उनका अध्ययन ही नहीं करते हैं तब उनके लाभ से वंचित रहते हैं और हमारी प्रवृत्तियों को देखकर संसार भी यही समझता है कि यदि इन जैनियों के पास कोई उत्कृष्ट साहित्य होता तो ये क्यों नहीं उसका आनन्द लेते। इस प्रकार हमारी ही अकर्मण्यता और उदासीनता से न हम ही उनका आनन्द लेने पाते हैं और न दूसरो को ही वह प्राप्त हो पाता है। ससार तो गतानुगतिक है। एक व्यक्ति जिस मार्ग से जाता है, दूसरे लोग भी उसका अनुगमन करते हैं। तभी तो यह उक्ति प्रचलित है कि—**गतानुगतिको लोकः।**

बन्धुओ, जरा विचार तो करो—एक साधारण भोजन बनाने के लिए भी आग, पानी, वर्तन, और भोज्य-सामग्री आदि कितनी वस्तुओं की आवश्यकता

होती है और उसको सम्पन्न करने के लिए कितना परिश्रम करना पड़ता है, तब कहीं भोजन खाने का आनन्द प्राप्त होता है। अब आप लोग ही विचार करें कि भौतिक या आध्यात्मिक उन्नति क्या हाथ पर हाथ रखे बैठे रहने से ही प्राप्त हो जायगी? कभी नहीं होगी। उसके लिए तो दिन-रात असीम परिश्रम करना पड़ेगा, तब कहीं जाकर सफलता प्राप्त होगी। हाथ पर हाथ रखे बैठे रहने से तो सामने थाली में रखा भोजन भी मुख में नहीं पहुंच सकता है। इसलिए अब हमें आलस्य छोड़कर और वणिक्-वृत्ति से मुख मोड़ कर आगे आना चाहिए और भगवद्-प्ररूपित वैज्ञानिक तत्त्वों का प्रसार और प्रचार करने के लिए सन्नद्ध होना चाहिए।

आप लोग स्वाध्याय के लिए शास्त्रों के पन्ने लेकर के बैठ जाते है और पढ़ने लगते हैं—'तेणं कालेणं तेणं समएणं' भाई, यह पाठ तो कई वार पढ़ लिया और गुरुमुख से भी सुन लिया है। परन्तु कभी इस वाक्य के अर्थ पर भी विचार किया है कि काल और समय ये दो पद क्यों दिये, जबकि ये दोनों ही एक अर्थ के वाचक है। अर्थात् पर्यायवाची नाम हैं। शास्त्रकार एकार्थक पद के दो वार उच्चारण करने को पुनरुक्ति कहते हैं। किन्तु उक्त वाक्य में पुनरुक्त दोष नहीं है, क्योंकि दोनों ही पद भिन्न-भिन्न अर्थ के बोधक हैं। काल शब्द उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल का बोधक है और समय शब्द उसके छह आरों में से विवक्षित तीसरे, चौथे आदि आरे का बोधक है। जैसे सांप का शरीर पूंछ से लेकर मुख तक वृद्धिगत होता है, उसी प्रकार जिस काल में मनुष्यों की आयु, काय, वल, वीर्यादि बढ़ते जाते हैं, उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं और जिस काल में आयु, काय, बल, वीर्यादि घटते जाते हैं, उसे अवसर्पिणी काल कहते है। जैसा कि कहा है—

> आयु काय धन धान्य किम, दो पद चौपद जान।
> वर्ण गन्ध रस फर्स ये, दस वोलों की हान॥

आजकल अवसर्पिणी काल चल रहा है। इस काल में उक्त दस वातों की उत्तरोतर हानि हो रही है। अवसर्पिणी काल के चक्र के समान छह आरे होते हैं। यथा—१ सुषमा-सुषम-२ सुषमा, ३ सुषम-दुषमा, ४ दुःषम-सुषमा, ५ दुःषमा और ६ दुःषम-दुःषमा। प्रथम आरे मे सर्वत्र सुख ही सुख रहता है। मनुष्यों की आयु तीन पल्योपम और शरीर-उत्सेध तीन कोश का होता है। इस काल में उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था रहती है। पुत्र-पुत्री का युगल अपने मां-वाप के जीवन के अन्तिम समय होता है। उनके उत्पन्न होते ही मां-बाप का मरण

हो जाता है। वे दोनों युगलिया अपना अंगूठा चूसते हुए कुछ दिनों में जवान हो जाते हैं। पुनः वे आपस में स्त्री-पुरुष के रूप में रहने लगते हैं। उस समय वे किसी भी प्रकार का काम-धन्धा नहीं करते हैं, क्योंकि उनकी आवश्यकताएं उस काल में होने वाले कल्पवृक्षों से पूरी हो जाती हैं। इस आरे का काल प्रमाण तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। आयु दो पल्योपम और शरीर उत्सेध दो कोश-प्रमाण होता है। शेष सर्व व्यवस्था प्रथम आरे के समान रहती है। हां, सुख की मात्रा कुछ कम हो जाती है। इसके व्यतीत होने पर सुषम-सुषमा नाम का तीसरा आरा-प्रारम्भ होता है। इसका काल-प्रमाण दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। आयु एक पल्योपम और शरीर-उत्सेध एक कोश प्रमाण है। शेष सर्व व्यवस्था दूसरे आरे के समान रहती है। केवल सुख के अंश में कुछ और कमी हो जाती है और दुख का अंश भी आ जाता है।

कर्म युग का प्रारम्भ

तीसरे आरे के बीतने पर दुषम-सुषमा नाम का चौथा आरा प्रारम्भ होता है। इसमें सुख की मात्रा और कम हो जाती है और दुःख की मात्रा अधिक बढ़ जाती है। इसी प्रकार आयु घटकर एक पूर्व कोटी वर्ष की रह जाती है और शरीर का उत्सेध भी घटकर पांच सौ धनुष प्रमाण रह जाता है। तीसरे आरे के अन्त में ही भोगभूमि की व्यवस्था समाप्त हो जाती है और उसके पश्चात् कर्मभूमि का प्रारम्भ होता है। भोगभूमि की समाप्ति के साथ ही कल्पवृक्ष भी समाप्त हो जाते हैं। अतः मनुष्य असि, मसी, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प के द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं। जुगलिया व्यवस्था भी बन्द हो जाती है और माता-पिता के सामने ही सन्तान का जन्म होने लगता है। उस समय कुलकर उत्पन्न होते हैं, जो लोगों को रहन-सहन का ढंग सिखाते हैं। विवाह प्रथा, समाज व्यवस्था भी इसी आरे में प्रारम्भ होती है और इसी आरे में चौबीस तीर्थंकर एवं अन्य शलाकापुरुष भी उत्पन्न होते हैं। तीसरे आरे तक के युगलिया जीव मरकर देवों में ही पैदा होते थे।

चौथे आरे में धर्म-कर्म का प्रचार होने से जहां एक ओर मोक्ष का द्वार खुल जाता है, वहां दूसरी ओर नरकादि दुर्गतियों के भी द्वार खुल जाते हैं। अर्थात् इस आरे के जीव अपने पुण्य-पाप के अनुसार मरकर सभी गतियों में उत्पन्न होने लगते है। इस आरे की आयु काय आदि उत्तरोत्तर घटते जाते है। घटते-घटते चौथे आरे के अन्त में एक सौ पच्चीस वर्ष की आयु और शरीर की ऊंचाई सात हाथ प्रमाण रह जाती हैं। इस चौथे आरे का काल प्रमाण बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। इस आरे के

पश्चात् दुःषमा नाम का पांचवा आरा प्रारम्भ होता है। इसमें उत्तरोत्तर दुःख बढ़ता जाता है। शरीर की ऊँचाई उत्तरोत्तर घटते-घटते अन्त में एक हाथ प्रमाण रह जाती है। आयु भी एक सौ पच्चीस वर्ष से घटते-घटते बीस वर्ष की रह जाती है। इस काल का द्वार बन्द हो जाता है। तत्पश्चात् दुःषम-दुःषमा नाम का छठा आरा प्रारम्भ होता है। इसमें आयु काय आदि उत्तरोत्तर घटते जाते हैं और दुःख की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। इस काल का प्रमाण भी इक्कीस हजार वर्ष है। इस काल के अन्त में प्रलय पड़ता है। उस समय सर्व प्रथम सात दिन तक अति भयंकर पवन चलती है जिससे वृक्ष, पर्वत आदि गिर पड़ते हैं। तत्पश्चात् सात-सात दिन तक क्रम से शीतल खारे पानी की वर्षा, विषमयी जलकी वर्षा धूम, धूलि, वज्र और अग्नि की वर्षा होती है। यह प्रलयकाल ४७ दिन तक रहता है। इस में कुछ इने-गिने वे ही मनुष्य और पशु पक्षी बच पाते हैं जो कि गंगा-सिन्धु नदी की ओर विजयार्ध पर्वत की गुफाओं में चले जाते हैं। इस प्रलय में भरत क्षेत्र की एक योजन मोटी भूमि जल कर नष्ट हो जाती है इस प्रकार अवसर्पिणी काल का अन्त होकर उत्सर्पिणी काल का प्रारम्भ होता है।

उत्सर्पिणीकाल के भी क्रमशः ये छह आरे होते हैं—१ दुषम-दुषमा, २ दुषमा, ३ दुषम-सुषमा, ४ सुषमा-दुषमा, ५ सुषमा और ६ सुषमा-सुषमा। इन आरों में क्रमशः आयु, बल, काय, सुख आदि की वृद्धि होने लगती है। इन सभी आरों का प्रमाण अवसर्पिणीकाल के इन्हीं नामोंवाले आरे के समान जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि उत्सर्पिणीकाल से तीसरे आरे में चौबीस तीर्थंकर आदि ६३ शलाकापुरुष उत्पन्न होते हैं और इसी आरे में उत्पन्न हुए जीव मोक्ष एवं चारों गतियों में जाते हैं। इस प्रकार यह काल चक्र निरन्तर परिवर्त्तित होता रहता है।

काल और समय

भाइयो, जब 'तेणं कालेणं' कहा जाये तब विवक्षित उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी काल को लेना चाहिए और 'तेणं समएणं' से उसके तीसरे या चौथे आरे को ग्रहण करना चाहिए। आज कल अवसर्पिणीकाल का यह पंचम आरा चल रहा है। इसमें आयु, काय, धन, धान्य, द्विपद, चतुष्पद वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श ये दश वस्तुएँ उत्तरोत्तर घट रही हैं। आयु और काय (शरीर) के घटने की बात तो ऊपर बतला ही आए हैं। धन-धान्य के घटने की बात प्रत्यक्ष ही दिख रही है। एक समय था जब हीरा-पन्ना और अन्य रत्न मकानो

की दिवालों में और फर्शों पर जड़े जाते थे, आज वे आभूषणों में भी जड़ने के लिए दुर्लभ हो रहे हैं। लोग कहते हैं कि धन पहिले से आज अधिक बढ़ गया है। पर मैं पूछता हूं कि क्या बढ़ गया है ? ये कागज के नोट बढ़ गये हैं ? अन्यथा पहिले के समय में धनाढ्य लोगों के पास करोड़ों की संख्या में सुवर्ण दीनार होते थे और सैकड़ों करोड़पति एक-एक प्रान्त में थे, वे आज कहां हैं ? आज सारे राजस्थान में दस-पांच करोडपति मिलेंगे, जब कि पहिले सैकड़ों थे। आपके इसी मेड़ता नगर में वि० सं० १७८१-८२ में जब ठाणापति पूज्यधन्नाजी महाराज विराजे थे, तब वहां बावन करोड़पति पालकी में बैठ कर उनके व्याख्यान को सुनने आया करते थे। आज भी उनकी साक्षी मिलती है कि मेड़ता के ही लखपतियों और करोड़पतियों से अजमेर आबाद हुआ और लाखन कोटड़ी बसी। इसी पाली में पहिली सोने-चांदी से बनी हुई दुकानें सुनते हैं और लाखों घरों की बस्ती थी तो अब कहां है ?

वस्ती ऊजड़ बहुत, नहीं धन वाला, जो किसी के हुआ धन नहीं रखवाला,
जन में तो जीवे नहीं, सोग मन लावे, जीवे तो विरले कपूत माया उड़ावे।
करे पिता से झोर, माया सब म्हारी, सुनो इस आरे का हाल, करो होशियारी,
किसी के लेने का दुःख, किसे लेने का, किसे रहने का दुःख किसे गहणे का।
किसे भाई का दुःख, किसे माई का, किसे पुत्र का दुःख, किसे जमाई का,
दुपमा पंचमकाल सुनो नर-नारी ॥

पहले और आज

लोग कहते हैं कि आबादी बढ़ गई ? कैसे बढ़ गई ? आज आपके जोधपुर में तीन हजार से ऊपर ओसवालों की संख्या आंकी जाती हैं। परन्तु जोधपुर के आस-पास का यह सारा इलाका आपकी जाति से खाली हो गया है। जहां पहिले आपके सौ दो सौ घर थे, वहां पर अब दो-चार घर भी नहीं रहे हैं। आज गांव वीरान हो रहे हैं और नगर आबाद हो रहे हैं तो यह आबादी घटी, या बढ़ी ? आप लोग शहरों की ओर नजर डालते हैं, पर गांवों की ओर कहां देखते हैं ?

इसी प्रकार आज धान्य की भी दिन प्रतिदिन कमी होती जा रही है। जहां पहिले एक रुपये में इतना अन्न आता था कि पूरे महीने भर एक आदमी खाता था, वहां आज एक रुपये में एक दिन का भी गुजारा नहीं होता है। फिर यदि किन्हीं इने-गिने लोगों के पास कुछ धन-धान्य हो भी गया तो वह सन्तान के बिना रोता है कि मेरे धन को भोगनेवाला और खानेवाला कोई नहीं है। यदि दैवयोग से हो भी गया और बालपन में मर गया तो और दूना

दुःख हो गया और जवानी में मर गया तो सौ गुना दुःख हो गया। यदि जीवित भी रहा और कपूत निकल गया तो रात दिन चौबीसों घंटों का दुःख हो गया। आज के कपूत कमाई के स्थान पर गमाई करते और बाप के मना करने पर उसके ऊपर अदालत में दावा करते है कि मेरे बाप का दिमाग खराब हो गया है, उन्हें जायदाद वेचने का कोई अधिकार नहीं है ! जहां पहिले आसामियों और साहूकारों के यहां धान्य के कोठे भरे रहते थे, वहां आज विदेशों के अन्न पर भारत जीवित रह रहा है। पशुओं के लिए जहां लाखों बीघा गोचरभूमि रहती थी, वहा आज खड़े होने को भी नहीं है और चारा-पानी के लिए पशु तरस रहे हैं और वे मौत मर रहे है। पहिले के रूप-रंग को देखो सैकड़ों वर्षों की चित्रकारी ऐसी दिखाई देती है कि मानो आज ही की गई हो। ज्यों का त्यों रंग-रोगन बना हुआ है और आज रंग के सूखते ही वह उड़ जाता है । यही बात रस, गन्ध की भी है। सभी फल-फूलों में उत्तरोत्तर उनका ह्रास हो रहा है। पानी की वर्षा तो उत्तरोत्तर घट ही रही है। आज वर्षा का यह हाल है कि पानी बरसने पर बैल का एक सींग भींजता है और एक नहीं भींजता है। शहर के एक भाग में पानी बरस जाता है और दूसरा सूखा पड़ा रहता है। इस प्रकार आयु-कायादि दसों ही वस्तुएं दिन प्रति दिन घटती चली जा रही है। इस हानि को हम नहीं रोक सकते है, क्योंकि आरे का स्वभाव ही घटने का है। ज्ञान की भी उत्तरोत्तर कमी होती जा रही है। भले ही भौतिक ज्ञान की वृद्धि हो रही हो, परन्तु आध्यात्मिक ज्ञान की तो हानि ही होती जा रही है।

पहिले हर जैन बालक को उनके दैनिक प्रतिक्रमण आदि के पाठ कण्ठस्थ रहते थे। किन्तु आज भौतिक पढ़ाई की पुस्तकों का भार उन बेचारों पर इतना अधिक है कि वही उनसे नही उठता, और उसे रटने से ही उन्हें अवकाश नही मिलता है तो वे कहां से धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए समय निकालेंगे। आज की इस प्रचलित पढ़ाई को आमूलचूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है। इसका इतना अधिक अनावश्यक भार बालकों पर है कि उनके शरीर पर्याप्त पोपक पदार्थों के अभाव में पहिले ही सूखकर कांटा हो रहा है और दिन-रात पढ़ते रहने से छोटी ही अवस्था में चश्मे लगाने पड़ रहे है। ऐसी अवस्था में आज इस बात की आवश्यकता है कि धार्मिक ज्ञान के लिए समय के अनुसार ऐसी पुस्तकों का निर्माण कराइये कि जिनके द्वारा वे धार्मिक तत्त्वों को आसानी से हृदयंगम कर सकें और स्मरण रख सकें। भाई, आज समय की पुकार है कि युग के अनुरूप वैज्ञानिक ढंग से आप ज्ञान के साथ सम्पर्क स्थापित कीजिए, तभी आपका यह धर्म टिक सकेगा और आगे बढ़

सकेगा, अन्यथा नही। पहिले यदि कोई सन्त कोई एक 'सज्झाय' सुना देते और उसका अर्थ कर देते थे तो लोग उन्हें बहुत बड़ा विद्वान् मानते थे। जबकि आज यदि कोई वैसी सज्झाय सुनावे और अर्थ करे तो आप ही कहेंगे कि यह तो हम ही जानते हैं।

आज का जमाना नवीनता की ओर जा रहा है अतः युगानुरूप हमें भी नवीनता लानी पड़ेगी। यह नवीनता कहीं बाहिर से नहीं लाना है। किन्तु हमें अपने दिमाग से ही प्रकट करना है। आगमों और शास्त्रों में आज के लिए उपयोगी पड़े ऐसे तत्त्व इधर-उधर बिखरे पड़े हुए हैं, उन्हें एकत्रित करने से और आज की मांग के अनुसार उपस्थित करने से ही उनका प्रकाश होगा और तभी हम आप और दूसरे व्यक्ति उनसे लाभ उठा सकेंगे।

भाइयो, आप लोग व्यापारी हैं और अपने-अपने व्यापार की कला में कुशल है। कपड़े का व्यापारी जानता है कि आज किस जाति के कपड़े की मांग है और वह कहां-कहां से आता है, इस बात का पता-ठिकाना याद रखता है। तथा वहाँ-वहां से लाकर अपनी दुकान को सजा करके रखता है, तभी उसकी दुकान चलती है और वह लाभ प्राप्त करता है। जहां जिस कपड़े की माग नही हो और वह उसे लाकर के दुकान में रखे तो न वह बिकेगा ही और न लाभ ही वह प्राप्त कर सकेगा। आपके यहां चोसे का कलाकन्द बनाते है और आठ रुपये किलो बिक जाता है। किन्तु यदि वही किसी गांव मे ले जाकर के बेचें तो उसे कौन खरीदेगा? जहां पर जिस समय जिस वस्तु की मांग होती है, वहां पर और उस समय वही वस्तु बिकती है। आपके यहां अन्न की मांग है। यदि दो सौ गाड़ी भी अन्न की आजावें तो तुरन्त बिक जावेगी। और यदि ऊनकी दो सौ गाड़ी आजावें तो नहीं बिकेगी, क्योंकि यहां ऊन की मंडी या कारखाने नहीं है। जैसे कि समय की स्थिति देखकर आप लोग व्यापार करते हैं, उसीप्रकार आत्मा का भी व्यापार है। आत्मा जिस वस्तु को चाहती है और जिससे आत्मा का उत्थान हो सकता है, आज उसके अनुरूप ही हमें ज्ञान-प्राप्ति के साधन जुटाने की आवश्यकता है।

उन्नति कैसे हुई ?

वर्तमान में जो भौतिक विज्ञान की इतनी उन्नति हो रही है, वह अपने आप सहज में नही हो रही है। उसके पीछे सैकड़ों व्यक्तियों की दीर्घकालीन साधना है। वे लोग अपना भोग-विलास छोड़कर, खाने-पीने की भी चिन्ता नही करके रात-दिन नित्य नयी शोध-खोज में संलग्न रह रहे हैं, तभी इतनी उन्नति कर सके हैं और कर रहे है। बिना त्याग के कुछ भी नहीं हो सकता।

इसीप्रकार आपको भी आत्मिक उन्नति के लिए और धर्म के प्रसार के लिए त्याग करना पड़ेगा, ये भोग-विलास और ऐशो-आराम के साज-बाज छोड़ने होंगे और दिन-रात आगमों की छान-बीन करके जगत के कल्याणकारी तत्त्वों को संसार के सामने रखना होगा और बताना होगा कि आपके सच्चे सुख के साधन ये ही तत्त्व है, तब आप देखेंगे कि तत्त्व-जिज्ञासु, धर्म-पिपासु और सुखाभिलाषी लोग आपकी ओर किस प्रकार बढ़ते हुए आरहे हैं आप आजके विज्ञान की चुनौती का अच्छी रीति से उत्तर दे रहे है। एक ओर जहां आपको ये उत्कृष्ट साधन स्वीकार करने होंगे, वहीं पर आपको निम्न सात व्यसनों का त्याग भी करना होगा—

द्यूतं च मांसं च सुरा च वेश्या, पापर्द्धि चोरी परदार-सेवा।
एतानि सप्त व्यसनानि लोके, घोरातिघोरं नरकं नयन्ति ॥

जुआ खेलना, सट्टा करना, फीचर लगाना ये धनोपार्जन के कारण नहीं हे प्रत्युत विनाश के कारण हैं। मांसाहार मनुष्यों की खुराक नही, अपितु हिंसक जानवरों की खुराक है। इसके खाने से मनुष्य क्रूरवृत्ति बन जाता है और हिंसा का महापाप लगता है। मदिरा बुद्धि का विनाश करती है और वेश्या सेवन तन मन और धन का क्षय करती है। शिकार खेलना महाहिंसा और हत्या का कारण है। चोरी करना दूसरे के प्राणों का अपहरण करना है। परस्त्रीगमन करना महा अपयश का कारण है। ये एक-एक व्यसन इस भव में भी दुखदायी हैं और परभव में नरक-निगोद में ले जाने वाले हैं। सिगरेट पीना, भंग छानना और आज के नाना प्रकार के दुर्व्यसन मदिरा पान के ही अन्तर्गत हैं नाटक सिनेमा भी अधःपतन का आज प्रधान कारण है। एक सिनेमाघर में एक व्यक्ति ने जलती हुई सिगरेट डाल दी। जिससे आग भड़क उठी और १४२ व्यक्ति जलकर मर गये। जब तक आप लोग इन सब दुर्व्यसनों का त्याग नहीं करेंगे तब तक आपका उत्थान नहीं हो सकता है और जो स्वयं गड्ढे में गिर रहा है, वह दूसरों को गिरने से कैसे बचा सकता है? जो व्यसनों के अधीन हैं, वे मुर्दार हैं और जो उनसे स्वतंत्र हैं, वे सरदार हैं। अतः जीवन को शुद्ध और सच्चरित्र बनाने की आवश्यकता है जीवन में आध्यात्मिक चिंतन आत्म-अनुसंधान और तत्त्व विचार करके भौतिकता को आध्यात्मिकता से जीतने की आवश्यकता है, तभी आप आज के विज्ञान की चुनौती का उत्तर दे सकेंगे।

वि० सं० २०२७ कार्तिक सुदि ४
जोधपुर

२१ ज्ञान की भक्ति

बन्धुओ, आज ज्ञान पंचमी है। ज्ञान की भक्ति हमे कैसी करनी चाहिए और ज्ञान की आराधना कैसे करना चाहिए और क्यो करना चाहिए? ये सब बाते हमारे लिए ज्ञातव्य है, इसलिए आज इस विषय पर प्रकाश डाला जाता है।

संसार में सर्व वस्तुओ मे और आत्मा के सर्व गुणो मे ज्ञान ही सबसे उत्कृष्ट और पवित्र है। कहा भी है—

न हि ज्ञानेनं सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

इस संसार में ज्ञान के सदृश और कोई वस्तु पवित्र नही है। सन्त पुरुषो ने भी कहा है—

> ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन।
> यह परमामृत जन्म जरा मृति रोग-नशावन॥
> तातें जिनवर-कथित तत्त्व अभ्यास करीजे,
> संशय विभ्रम मोह त्याग आपो लखि लीजे॥

भाइयो, ज्ञान के समान इस ससार मे सुख का कारण और कोई पदार्थ नही है। यह ज्ञान जन्म, जरा और मरण इन तीन महारोगो का नाश करने के लिए परम अमृत के समान है। इसलिए जिनेन्द्र देव-प्ररूपित तत्त्वो का अभ्यास करना चाहिए और अपने अनादि काल से लगे हुए सशय विभ्रम

और मोह को दूर करके अपने आत्मा का यथार्थस्वरूप जानना चाहिए। क्योंकि संसार से छुड़ानेवाला और मोक्ष को प्राप्त कराने वाला आत्मज्ञान ही है।

ज्ञान की भक्ति का फल

एक सामान्य व्यक्ति की, की गई भक्ति भी हमारे जीवन को अनेक सुखों से समृद्ध कर देती है तो ज्ञान की भक्ति तो साक्षात् मुक्ति को ही देती है। ज्ञान आत्मा का गुण है, अतः ज्ञान की भक्ति के लिए हमें सर्व प्रथम ज्ञानी पुरुष के गुण-गान करना चाहिए। ज्ञानी का आदर-सत्कार करना, उसकी सेवा— सुश्रूषा और वैयावृत्त्य करना, उसके महत्त्व को बढाना और निरन्तर ज्ञान की आराधना करना ही ज्ञान की सच्ची भक्ति है।

स्वाध्याय के चौदह दोष

चौदह दोषों से रहित स्वाध्याय करना ही ज्ञान की आराधना है। वे चौदह दोष या अतिचार इस प्रकार है—

जं वाइद्धं,१ वच्चामेलियं,२ हीणक्खरं,३ अच्चक्खरं,४ पयहीणं,५ विणय-हीणं,६ जोगहीणं,७ घोसहीणं,८ सुट्ठुदिन्नं,९ दुट्ठपडिच्छियं,१० अकाले कओ सज्झाओ,११ काले न कओ सज्झाओ,१२ असज्झाए सज्झायं,१३ सज्झाए न सज्झायं१४।

इनमें प्रथम दोष वाइद्ध (व्याविद्ध) है, इसका अर्थ है उलट-पुलट करके कहीं का पाठ कहीं बोलना। वच्चामेलियं (व्यत्याम्रेडित) का अर्थ है अनावश्यक और अनर्थक पाठ को जोड़कर बोलना, यह दूसरा दोष है। शास्त्र में जितने अक्षर लिखे हैं, उनमें से कुछ अक्षरों को छोड़कर वाचना (हीनाक्षर) नामका तीसरा दोष है। कुछ अधिक अक्षर जोड़कर के वांचना हीणक्खर अच्चक्खर (अधिकाक्षर) नाम का चौथा दोष है। किसी पद को छोड़कर वांचना पयहीण (पदहीन) नाम का पांचवां दोष हैं। विनय-रहित होकर शास्त्र वांचना विणयहीण (विनयहीन) नाम का छठा दोप है। मन, वचन, काय की एकाग्रता के बिना शास्त्र पढ़ना जोगहीण (योगहीन) नाम का सातवां दोष है। जिस शब्द का जैसा उच्चारण है, उस को तदनुसार उच्चारण न करना घोसहीण (घोषहीन) नामका आठवां दोप है। सुपात्र को ज्ञान नही देना सुट्ठु दिन्न (सुष्टुदत्त) नामका नौवां दोप है। अपात्र को ज्ञान देना दुट्ठु पडिच्छिय (दुष्टप्रतिच्छिन्न) नाम का दसवां दोप है। अकाल में स्वाध्याय करना यह ग्यारहवां दोप है। स्वाध्याय के काल में स्वाध्याय नहीं करना यह

एक क्षण मात्र में सहज ही में क्षय कर देता है। ज्ञान की महिमा बताते हुए और भी कहा है—

> **जे पूरव शिव गये, जांहि, अरु आगे जैहैं;**
> **सो सब महिमा ज्ञान तनी मुनिनाथ कहैं ॥**

पूर्वकाल में जितने जीव मोक्ष गये हैं, वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र से जा रहे हैं और आगे जावेंगे, सो यह सब ज्ञान की ही महिमा है, इसलिए हमें सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के लिए सदा उद्यम करते रहना चाहिए। यह ज्ञान पंचमी उक्त पांचों ज्ञानों की प्राप्ति के अपने लक्ष्य को स्मरण कराने के लिए ही प्रति वर्ष आती है और पंचमी की तिथि को इसीलिए पर्व माना गया है।

ज्ञान की शोभा-विनय

बन्धुओ, जैसे मनुष्य की शोभा स्वच्छ और पदोचित वस्त्र पहिरने से है, उसी प्रकार आत्मा की शोभा निर्मल ज्ञान से है। निर्मल ज्ञान की प्राप्ति ज्ञान और ज्ञानी की विनयपूर्वक आराधना से होती है। यही कारण है कि भगवान ने अपने अन्तिमकालीन उपदेशों में अर्थात् उत्तराध्ययन में सर्वप्रथम विनय का उपदेश दिया है। वहां बताया गया है कि सर्वप्रकार के दुर्भावों को दूर करके सद्भाव पूर्वक गुरु की आज्ञा का पालन करे, गुरु से नीचे बैठे, उनकी बात का उत्तर आसन पर बैठे या लेटे हुए न देवे, किन्तु उठकर, सामने जाकर और हाथ जोड़कर देवे। इसी प्रकार विनयपूर्वक ही किसी बात को पूछे। क्योंकि ज्ञान और ज्ञानी की आसातना या विराधना करने से दर्शन और चारित्र की विराधना होती है। अज्ञानी और ज्ञान-विराधक के वैराग्य ठहरता ही नहीं है शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जैसा कि कहा है—

> **अभ्रच्छाया खलप्रीतिः, पराधीनेषु वा सुखम्।**
> **अज्ञानिनां च वैराग्यं, क्षिप्रमेव विनश्यति ॥**

भाई, मेघ की छाया का कोई पाया नहीं है। उसे मिटते देर नहीं लगती है। दुर्जन पुरुषों की प्रीति और दोस्ती कितने दिन निभती है? जरा सा भी प्रतिकूल कारण मिलते ही मिट जाती है। पराधीनता में कभी सुख नहीं है और जैसे घास-फूस की आग बुझते देर नही लगती है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुषों का वैराग्य भी शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है। इसीलिए भगवान ने कहा है कि 'पढमं नाणं तओ दया' पहिले ज्ञान उपार्जन करो, तभी दया और संयम की विधिवत् प्रतिपालना की जा सकती है।

सौभाग्यपंचमी की कथा

आज ज्ञान पंचमी है, इसे सौभाग्य पंचमी भी कहते हैं। क्योंकि ज्ञान की वृद्धि के साथ मनुष्य के सौभाग्य की भी वृद्धि होती है। तथा ज्ञान की विराधना करने से दुर्भाग्य बढ़ता है। इसके विषय मे एक कथानक इस प्रकार है—

इसी भरत क्षेत्र में चम्पानगरी का राजा जितशत्रु था। उसके बहुत दिनों की साधना के पश्चात् एक पुत्र हुआ, जिसका नाम वीरदत्त रखा गया। जब वह चार-पाच मास का ही था, तभी उसे गलित कुष्ट हो गया। उसकी दुर्गन्ध असह्य होने से उसे तल घर मे रखकर पालन-पोषण किया जाने लगा। मगर ज्यों-ज्यों उसके रोग का उपचार किया गया त्यों-त्यों उसकी अवस्था बढ़ने के साथ वह बढ़ता ही गया। राजपरिवार इससे भारी दुखी था।

इसी नगरी में एक जिनदास नाम का सेठ भी रहता था। उसके एक कंचनमाला नाम की पुत्री हुई। वह अति सुन्दर होने पर भी गूंगी थी—बोल नही सकती थी। जब कभी नगर सेठ राजा के यहां जाता तो परस्पर में वे अपने-अपने दुखों को कहते। एक बार उस नगरी में धर्मघोष मुनि साधु परिवार के साथ पधारे। जनता उनके दर्शन-वन्दन और धर्म-श्रवण के लिए गई। उनके प्रवचनों की प्रशंसा सुनकर राजा, और सेठ भी गये। उपदेश सुनकर दोनों बहुत प्रसन्न हुए और व्याख्यान पूर्ण होने पर दोनों ने अपना-अपना दुःख सुना कर पूछा कि भगवन्, हमारे ऐसा कोढी पुत्र किस पाप के उदय से हुआ है और वह पुत्री भी गूंगी किस पाप से हुई है ? तथा ये दोनों कैसे ठीक होंगे ? कृपासिन्धो, हमें इनके पूर्वभव बताइये और इनके ठीक होने का उपाय भी बताइये। तब धर्मघोष आचार्य ने कहा -

> **कीना है परभव में इन ने, ज्ञानतणा अभिमान।**
> **तिनका इनको फल मिला, खुलती नहीं जबान॥**
> **महारोग से देह नित, पावत दुख असमान।**
> **ज्ञान तनी आसातना, करते नर अज्ञान॥**
> **यातें इनसे दूर टर, भगती करो महान।**
> **अशुभ करम क्षय होय जब, प्रगटे पुण्य प्रधान॥**

हे राजन्, मनुष्य हंसते, खाते-पीते और चलते-फिरते हुए में अपने अज्ञान और दुर्भाव से कर्मों को बांध लेता है। उस समय तो उसे इसका कुछ भी पता नही चलता है, किन्तु जब ये उदय में आकर फल देते है, तब पता चलता है और पछताता है। इन दोनों ही प्राणियों ने पूर्वभव में ज्ञान का अभिमान

वारहवा दोष है। अस्वाध्याय के दिनो मे स्वाध्याय करना यह तेरहवा दोष है और स्वाध्याय के दिनो मे स्वाध्याय नही करना यह चौदहवा दोष है।

अस्वाध्याय दोष .

आजकल अधिकाश लोग अन्तिम चार दोषो की तो कुछ परवाह ही नही करते हैं और समझते हैं कि हम तो भगवान की वाणी ही वाचते हैं, उसे वाचने मे क्या दोष है। परन्तु भाई, भगवान ने जब स्वय इन्हे दोष कहा है, तब इनमे कोई गभीर रहस्य है। वह रहस्य यही है भगवान् की यह आज्ञा है कि 'काले काल समाचरेत्' अर्थात् जो कार्य जिस समय करने का है, उसे उसी समय मे करने पर वह भली भाति से सम्पन्न होता है और उसका जैसा लाभ मिलना चाहिए, वह मिलता है। अकाल मे स्वाध्याय करने पर अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। जैसे तीनो सन्ध्याए, चन्द्र-सूर्यग्रहण आदि के समय को स्वाध्याय का अकाल कहा गया है। इस समय स्वाध्याय करने से बुद्धिमन्दता और दृष्टिमन्दता प्राप्त होती है। रजस्वला स्त्री को भी स्वाध्याय का निषेध किया गया है, क्योकि उस समय उसके शारीरिक अशुद्धि है। पहिले सब स्त्रिया रजस्वला काल मे घर का कोई काम नही करती थी। परन्तु आज इसका कोई विचार नहीं रहा है। अरे, जिस रजस्वला के देखने और शब्द सुनने मात्र से वडी-पापड तक खराब हो जाते हैं। तथा रजस्वला स्त्री की नजर यदि पिजारे की तात पर पड जावे तो वह टूट जाती है। कहा भी है—

छांय पड़े जो छाण पर, मृत्तक ही गर जाय।
जीवित नर नारी निकट, ज्ञान कहां ठहराय ।

उन्हे तो घर के किसी काम मे हाथ भी नही लगाना चाहिए। तब शास्त्र-स्वाध्याय करना तो वहुत वडी वात है। ऐसे समय स्वाध्याय करने से उल्टी ज्ञान की आसातना होती है। अतएव उक्त सभी दोषो का टाल करके ही स्वाध्याय करना चाहिए।

शास्त्र की अंधभक्ति :

कुछ अन्ध भक्त लोग शास्त्रो का पूजन करने और उनके आगे अगरवत्ती जलाने एव अक्षत पुष्प केशर आदि चढाने को ही ज्ञान-भक्ति समझते हैं। पर स्वाध्याय करने का नाम भी नही लेते है। एक स्थान पर देखा गया है कि जिनमन्दिर मे तो एक प्राचीन हस्तलिखित शास्त्रो का भण्डार था। भक्त लोग भगवान की पूजा मे जैसे अक्षत, पुष्प और फलादिक चढाते वैसे ही

शास्त्रों की पूजा करके उनके आगे भी वही सामग्री चढ़ाते। उस सामग्री को चूहे शास्त्रों को अलमारी से चुरा ले जाते और उसे खाते रहते। साथ ही शास्त्रों को भी कुतरते रहते। कुछ दिनों के बाद जब एक विद्वान् ने जाकर वह अलमारी खोली तो सैकड़ों शास्त्रों का सफाया पाया। भाई, हमारी ऐसी अन्धभक्ति से सैकड़ो अपूर्वशास्त्रों का विनाश हो गया है। ये शास्त्रपूजा की वस्तु नहीं हैं किन्तु स्वाध्याय करने की वस्तु है और स्वाध्याय करके ज्ञान को प्राप्त करना ही सच्ची ज्ञान-भक्ति है।

ज्ञान के पांच भेद

ज्ञान पाच प्रकार के हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। इन्द्रिय मन से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह मतिज्ञान है। मतिज्ञान से जानी वस्तु को विशेष रूप से जानना श्रुतज्ञान है। द्रव्य-क्षेत्र काल-भाव की मर्यादा के अनुसार भूत-भविष्य तथा वर्तमान की परोक्ष मूर्त वस्तुओं को जानना अवधिज्ञान है। दूसरे के मन की बातों को जानना मनः पर्ययज्ञान है। संसार के समस्त द्रव्यों की त्रैकालिक अनन्त गुण पर्यायों को साक्षात् जानना केवलज्ञान है। प्राणियों को उसकी योग्यता आदि के अनुसार दो ज्ञान थोड़ी-बहुत मात्रा में पाये जाते है। तीसरा अवधिज्ञान देव और नारकों के जन्म से ही हीनाधिक अंश में होता है किन्तु संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच और मनुष्यों में से किसी-किसी के उस कर्म के क्षयोपशम विशेष से होता है। चौथ मन.पर्ययज्ञान विशिष्ट संयमधारी साधुओ के ही होता है। पांचवां केवल ज्ञान तो घनघाती ज्ञानावरणादि चार कर्मों के क्षय करने पर तद्-भवमोक्ष-गामी जीवों के ही होता है। आज के युग में अन्तिम तीन ज्ञान किसी भी मनुष्य के होना संभव नही हैं। किन्तु आदि के दोनों ज्ञान अपने पुरुषार्थ के अनुसार अधिक से अधिक रूप में प्राप्त कर सकता है। ज्ञान की महिमा बतलाते हुए भगवान ने कहा है—

> **जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवकोडिसय सहस्सेहिं।**
> **तं अण्णाणी कम्मं खवेदि खणमित्तजोगेण।।**

इसी बात को भाषाकारों ने इस प्रकार कहा है—

> **कोटि जन्म तप तपै ज्ञान-बिन कर्म झरैं जे।**
> **ज्ञानी के छिन मांहि त्रिगुप्तितै सहज टरैं ते।।**

अज्ञानी जीव करोड़ों जन्म तप करने पर भी जितने कर्मों का क्षय कर पाता है, उतने कर्मों का नाश ज्ञानी जीव अपने मन, वचन, काय की गुप्ति से

किया, ज्ञानी का अपमान किया और ज्ञान की विराधना की। उसका फल अब ये दोनों भोग रह हैं। इनके पूर्वभव का वृत्तान्त इस प्रकार है सो हे राजन्! ध्यानपूर्वक सुनो।

ज्ञान की विराधना का दुष्फल

आज स तीन भव पहिले तुम्हारा राजकुमार एक सेठ का लडका था और वह गूगी सठ की लडकी उसकी मा थी। जब वह लडका आठ वर्ष का हो गया तो उसने पढने के लिए गुरु की पाठशाला मे भेजा। परन्तु वह मन लगा कर कभी नही पढता था। जब समझाने पर भी उसने पढने म मन नही लगाया तो गुरु ने ताडना-तर्जना दी। वह घर भाग गया और अपनी मा स बोला— मैं अब पढने नही जाऊगा क्योकि गुरुजी मुझे बहुत मारते हैं। उसकी मा ने कहा—अब कल से पढने मत जाना और उसकी पट्टी पुस्तक लेकर चूल्हे मे जला दी। जब वह लडका दूसरे दिन पढने के लिए शाला मे नही गया तो गुरु ने लडके भेजकर सेठ से उसके नही आने का कारण पूछा। सेठ ने घर जाकर सेठानी से पूछा कि लडका पढने क्यो नही गया। उसने कहा—मेरा यह फूलसा सुकुमार लडका मारने-पीटने के लिए नही है। फिर पढा-लिखा करके करना भी क्या है? घर मे अटूट सम्पत्ति है। सेठ ने बहुत समझाया और कहा भी कि सम्पत्ति का कोई भरोसा नहीं, क्षणभर मे नष्ट हो सकती है और ज्ञान तो आत्मधन है, इसे न चोर चुरा सकते हैं, न आग-पानी नष्ट कर सकते हैं। ज्ञान से मनुष्य की शोभा है, इत्यादि रूप से बहुत कुछ कहा। मगर वह नही मानी और लडके को पढने नही भेजा। धीरे-धीरे वह कुसग मे पडकर दुर्व्यसनी हो गया और घर का सारा धन गवा दिया। उस के दुख से दुखी होकर सेठ भी मर गया। अब वह और उसकी माता दोनो दुख से दिन काटने लगे। एक दिन वह लडका घूमता हुआ जगल मे पहुचा। वहा पर ध्यान मे किसी साधु को देखकर तिरस्कार करते हुए उसने उनके ऊपर थूक दिया और घसीट कर उन्हे काटो पर डाल दिया? मुनिराज ने यह परीपह शान्ति से सहन किया। मगर इस लडके ने ये दुष्कर्म बाध लिये आयु पूर्ण होने पर मरकर वह नरक मे नारकी हुआ। और वहा से निकल कर यह तेरा पुत्र हुआ है और शेष रहे दुष्कर्म का फल भोग रहा है। इसकी मा ने ज्ञान की अवहेलना की और पढाने वाले की निन्दा की, उस पाप के फल से वह पहिले तो अनेक पशुओ की पर्याय मे घूमी। अब कुछ पाप कर्म के उपशम से यह सेठ के यहाँ गूगी पुत्री पैदा हुई है। उनके पूर्व भव और उसमे उपार्जित कर्म की बात सुनकर राजा और सेठ दोनो ही बडे दुखी हुए। फिर

उन्होंने पूछा—स्वामिन्; अब उनके उद्धार का भी उपाय बतलाइये ! तब मुनिराज ने कहा— हाँ, उसके उद्धार का उपाय है। सुनो—

पंचमी तप कीजे भवि प्राणी, पंचम गति-दाता रे।
ज्ञान भक्ति से दोनों भव में, होय बहु सुख-साता रे।।
पांच वरस पर मास पंच है, पांच पक्ष गिन लीज्यो।
शुद्ध भाव से करो आराधन, गुरु-भक्ती रस पीज्यो।।

हे राजन्, यदि ये दोनों अपने पूर्व पापों की पहिले आलोचना निन्दा करें और अब ज्ञान और ज्ञानीजनों की भक्ति करें और ज्ञान की आराधना करें तो इनके कर्म दूर हो सकते हैं। उसकी विधि यह है—प्रथम वर्ष में **'मति ज्ञानाय नमः'** इस मंत्र का सवा करोड़ जाप करे, दूसरे वर्ष में **'श्रुतज्ञानाय नमः'** इस मंत्र का सवा करोड़ जाप करे। इसी प्रकार तीसरे भव में **'अवधि ज्ञानाय नमः'** इस मंत्र का, चौथे वर्ष में **'मनः पर्ययज्ञानाय नमः'** इस मंत्र का और पांचवें वर्ष में **'केवलज्ञानाय नमः'** इस मंत्र का सवा करोड़ जाप करे। तत्पश्चात् पांचों मंत्रों की जाप पांच मास और पांच पक्ष तक और भी करें। तथा निरन्तर ज्ञान और ज्ञानी पुरुषों की सेवा, वैयावृत्य करें तो इनके रोग दूर हो सकते हैं। राजा और सेठ को आचार्य के वचन जंच गये। वे सहर्ष वन्दन करके अपने घर गये और उन्होंने अपने पुत्र और पुत्री से उक्त सब वृत्तांत कहकर गुरूक्त विधि समझा कर उक्त मंत्रों के जाप करने के लिए कहा। वे दोनों ही अपने-अपने दुःख से बहुत दुखी थे, अतः उन्होंने यथाविधि जाप करते हुए ज्ञान की आराधना प्रारम्भ कर दी। इधर राजा ने भी ज्ञान की आराधना में सहयोग दिया और लड़कों की उत्तम शिक्षा-दीक्षा के लिए एक उत्तम विद्यालय खोला। सेठ ने भी लड़कियों के लिए एक बड़ी कन्याशाला स्थापित की। जिनमें सैकड़ों लड़के और लड़कियां शिक्षा प्राप्त करने लगीं। इस प्रकार ज्ञान की आराधना करते हुए क्रम क्रम से राजकुमार का कुष्ट कम होने लगा और लड़की का गूंगापन भी। व्रत के पूर्ण होने तक राजकुमार बिलकुल नीरोग हो गया और वह लड़की भी अच्छी तरह बोलने लगी। यह देखकर राजा और सेठ बहुत प्रसन्न हुए और दोनों ने मिलकर उनका परस्पर में विवाह कर दिया। वे दोनों स्त्री-पुरुष बनकर परस्पर सुख से काल बिताने लगे।

कुछ समय के पश्चात् उक्त आचार्य महाराज फिर अपने संघ के साथ वहां आये। इन दोनों ने जाकर भक्ति पूर्वक उनकी वन्दना की और श्रावक के व्रत अंगीकार किये। श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का विधिपूर्वक वे पालन करने लगे और अपने-अपने पिताओं के द्वारा संस्थापित संस्थाओं का भली

भांति संचालन करने लगे। गरीव असहाय छात्रों के लिए उन्होंने छात्रालय और भोजनालय भी खोले और योग्य अध्यापकों को जीविका से निश्चिन्त कर पठन-पाठन की व्यवस्था भी करके ज्ञान का समुचित प्रचार करते हुए स्वयं भी ज्ञानाभ्यास करने लगे। यथासमय संथारा पूर्वक मरण करके वे देवलोक में उत्पन्न हुए और अव वे वहां से आकर और मनुष्य जन्म धारण करके तथा संयम को पालन करके मोक्ष को जायेंगे।

भाइयो, इस प्रकार से यह ज्ञान पंचमी का तप प्रचलित हुआ है। आज जिनको सर्व प्रकार की सुविधा है और शरीर में कोई रोग नहीं है, वे पुरुष यदि ज्ञान की आराधना करेंगे, असहाय विद्यार्थियों को पढ़ने-पढ़ाने में सहायता देंगे, ज्ञान की संस्थाएं खोलेंगे और ज्ञान का प्रचार करेंगे तो वे इस भव में यश को प्राप्त करेंगे और परभव में ज्ञान और सुख को प्राप्त करेंगे। इसलिए भाइयो, अपने द्रव्य का सदुपयोग करके ज्ञान की गंगा वहाओ। ये धन-दौलत सव यहीं पड़ी रह जावेगी। यदि सद्ज्ञान का उपार्जन कर लोगे तो यही साथ जावेगी। कहा भी है—

धन समाज गज राज तो साथ न जाव।
ज्ञान आपका रूप, भये थिर अचल रहावे॥
तास ज्ञान को कारण स्व-पर विवेक वखानो।
कोटि उपाय वनाय, भव्य, ताको उर आनो॥

ज्ञान आत्मा का स्वरूप है, यदि वह एक वार भी प्रकट हो जाये. तो सदा स्थिर-अचल रहता है। इसलिए कोटि-कोटि उपाय करके हे भव्य पुरुषो! इस स्व-पर विवेकी ज्ञान की आराधना करो। तभी तुम्हारा जन्म, सफल होगा।

विना पढ़े ही ज्ञानचंद

जिसके पास ज्ञान है, वही ज्ञानी और पंडित कहलाता है। कुल-परंपरा *से प्राप्त पद से कोई पंडित, आचार्य या उपाध्याय कहा* जाता है तो समय पर लोक में हंसी का ही पात्र होता है। एक वार उपाचार्य श्री गणेशीलालजी के पास एक पंडित आया। उन्होंने उससे नाम पूछा तो उसने कहा—मेरा नाम वालकृष्ण उपाध्याय है। उन्होंने पूछा—आप कहां क्या पढ़ाते हैं? वह वोला—मैं न पढ़ा ही हूं और न कहीं पढ़ाता ही हूं। फिर आप उपाध्याय कैसे हो? तो कहा—कि हमारी जाति ही उपाध्याय कहलाती है। हमारे पूर्वजों में कोई पढ़ाने वाला हुआ होगा, उससे हम लोग उपाध्याय कहलाते हैं। भाई, आप

लोगों को ज्ञात है कि ब्राह्मणों में द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी और पाठक आदि अनेक जातियां हैं। पहिले जो लोग दो, तीन या चार वेद के पाठी होते थे, वे ही इन पदवियों से पुकारे जाते हैं। मगर आज जिन्होंने वेदों को देखा भी नहीं हैं वे लोग इन पदवियों को धारण कर रहे है, सो वे समय पर विद्वत्समाज में हंसी के पात्र बनते हैं आजकल प्रायः देखने में आता है, पढ़े कुछ नहीं और नाम ज्ञानचंद। अध्ययन कुछ भी नहीं किया और बड़ी-बड़ी पदवियां पीछे लगाली। किन्तु इन पदवियों की सार्थकता तभी है जब उसके अनुकूल ज्ञान हो। ज्ञान की ही करामात है और उसी की ही पूज्यता प्राप्त होती है, जिसके भीतर ज्ञान प्राप्त होता है।

एक बार पीपाड़ में जैनियों की दूसरी सम्प्रदाय के आचार्य पधारे। यह सुनकर संतोकचंदजी स्वामी के पांच-सात विद्वान् शिष्य बिना बुलाये ही आगये। जब उक्त आचार्यजी को यह ज्ञात हुआ तो उन्हें कुछ धक्का लगा और सोचा कि इन पंडितों से बचकर रहना चाहिए। बहुत बचने पर भी एक दिन उनसे आचार्य के साथ आमना-सामना हो ही गया। उन्होंने पूछा— आपकी सम्प्रदाय में तो अनेक भेद हैं और सबकी समाचारी भी भिन्न-भिन्न है, फिर आप लोग यहां इकट्ठे कैसे हो गये? तब उन विद्वानों ने कहा— यदि किसी के दस-पाँच बेटे हों और अलग-अलग भी रहते हों। यदि किसी के घर में चोर आजावे तो क्या वे सब भाई उसे भगाने के लिए इकट्ठे होकर नही जायेंगे। भले ही हमारी समाचारी अलग-अलग है, फिर भी धर्म-वात्सल्य में तो समरसता और एकरूपता ही है। यह सुनकर आचार्य चुप हो गये और आगे शास्त्रार्थ करने का साहस नहीं किया।

पंजाब में पार्वती सतीजी शेरनी के समान व्याख्यान में गरजती थीं और बहुत प्रभावक व्याख्यान देती थीं। बड़े-बड़े सन्तों की शक्ति नहीं थी, कि उनके सामने बोल जायें। एक बार आर्यसमाज के संस्थापक और वेदों के पारंगत स्वामी दयानन्द सरस्वती होशियारपुर गये। वहां पर उक्त सतीजी ने ईश्वरकर्तृत्व पर शास्त्रार्थ करने के लिए चेलेंज दिया और शास्त्रार्थ में उनको परास्त कर दिया। सारे पंजाब में उनकी धाक थी और अच्छे-अच्छे विद्वाद् उनका लोहा मानते थे।

अजमेर में पहिला साधु-सम्मेलन हुआ। पत्री रखी गई और निर्णय हुआ कि जो फैसला होगा, वह सोहनलालजी को मंजूर होगा। उनके प्रतिनिधि पूज्य काशीरामजी थे और पत्री-पार्टी की ओर से गणी उदयचन्दजी आदि चार

प्रतिनिधि थे। तब पार्वतीजी ने कहा—अरे मदन, तू मेरी ओर से जा। अन्यो का मुझे भरोसा नही है। यदि पत्री को मजूर कर लिया तो मैं पजाब मे नही विचरने दूँगी। मदनलालजी मे इतनी विद्वत्ता थी, तब उन्होने उन्हे अपना प्रतिनिधि बनाया। भाई, भीतर मे विद्वत्ता हो और समय-सूचकता हो तो वह छिपी नही रहती है।

एक बार रिखराजजी स्वामी यहा जोधपुर मे पधारे और बूँदी मोहल्ले वाले स्थानक मे ठहर गए। उन्होने रात को महाभारत सुनाना प्रारम्भ किया। उनकी प्रवचन शैली उत्तम रोचक थी और कण्ठ भी सुरीला था। अत जनता खूब आने लगी। और सारे शहर मे उनकी प्रशसा होने लगी। तब यहा पर कविराज मुरारदानजी बहुत अभिमानी विद्वान् थे। वे समझते थे कि इन ढूढिया साधुओ मे कोई विद्वान् नही है। फिर ये क्या महाभारत का प्रवचन करते होगे। फिर भी प्रशसा सुनकर सौ-पचास आदमियो को साथ लेकर उनके प्रवचन मे गये। कुछ देर सुनने के बाद मुरारदानजी बोले—महाराज! बताइये कि जब युधिष्ठिरजी पानी पीने के लिए गये तो उनसे कौन से प्रश्न पूछे गए थे और उन्होने क्या उत्तर दिया था? तब स्वामी रिखराजजी ने शार्दूलविक्रीडित छन्द मे सस्कृत भाषा के द्वारा जो उत्तर सुनाया तो कविराजजी दातो तले अगुली दबाकर रह गए और बोले—महाराज, माफ करना। मुझे नही मालूम है कि आप लोगो मे भी ऐसे दिग्गज विद्वान है? मैने तो हिन्दी मे ही पूछा और आपने सस्कृत छन्द मे उत्तर दिया। भाई, भीतर मे माल हो, तभी धाक जम सकती है। कहा भी है—

> बिन पूँजी के सेठजी, बिना सत्व को राज।
> बिना ज्ञान के साधुता, कैसे सुधरे काज॥

जब भीतर मे विद्वत्ता और प्रतिभा होती है, तभी ऐसे अवसरो पर वह यश प्राप्त कर पाता है। अन्यथा पराजय का अपमान सहन करना पडता है। यह प्रतिभा और विद्वत्ता कब प्राप्त होती है? जबकि मनुष्य ने एकाग्रचित्त होकर ज्ञान की भक्ति, आराधना और उपासना की हो। जो सतत ज्ञानकी भक्ति और उपासना करते हैं, स्वाध्याय मे सलग्न रहते हैं और गुरुजनो का विनय करते है, उनका ज्ञान ससार मे उनके यश को चिरस्थायी बनाता है और वे स्वय चिरस्थायी मुक्ति के निवासी हो जाते है।

आज ज्ञान पचमी के दिन आप लोगो को नियम लेना चाहिए कि हम प्रतिदिन कुछ न कुछ नवीन ज्ञानार्जन करेंगे और ज्ञानी जनो के प्रति बहुमान रखेंगे? ज्ञानाराधना के लिए कहा है कि—

सम्यग्ज्ञान रतन मन भाया, आगम तीजा नैन वताया।
अक्षर शुद्ध अर्थ पहिचानो, अक्षर अर्थ उभय सग जानो ॥
जानो सुकाल पठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये,
तप रीति गहि वहु भौन दे के, विनय गुण चित लाइये।
ये आठ भेद करम-उच्छेदक, ज्ञानदर्पण देखना,
इस ज्ञान ही सों भरत सीझा, और सव पट पेखना ॥

भाइयो, ज्ञान की महिमा अगम अपार है, जिस ज्ञान से भरत ने विना तपस्या के ही केवल लक्ष्मी प्राप्त की और जिसके वल से आज तक अनन्त महापुरुषो ने मोक्ष पाया, उस ज्ञान का निरन्तर अभ्यास करना चाहिए। नवीन ज्ञानाभ्यास के लिए आज का दिन सर्वश्रेष्ठ है, विना पूछा मुहूर्त है। ज्ञानाभ्यास करना ही सच्ची ज्ञान भक्ति है। दीप-धूप जलाना और फल-फूल चढाना भक्ति नही, वह तो जीवो की हिंसा होने से उल्टी विराधना ही है।

वि० स० २०२७ कार्तिक सुदि ५
जोधपुर

२२ | मनुष्य की चार श्रेणियां

भाइयो, मनुष्य चार प्रकार के होते हैं—एक उदार, दूसरे अनुदार, तीसरे सरदार और चौथे मुर्दार। उदार नाम विशालता का है। विशाल-हृदय वाला उदार व्यक्ति जहां भी जाकर खड़ा होता है, बैठता है, अथवा किसी भी कार्य को करता है, सर्वत्र उसकी उदारता समान रूप से प्रवर्तित रहती है। वह किसी को दुखी नही देख सकता है, वह पर के दुःख को अपना ही दुख मानता है और इसीलिए उसके दुःख को तत्काल दूर करने का प्रयत्न करता है। वह दूसरे के कार्य को अपना ही कार्य समझता है। यदि किसी का कोई कार्य बिगड़ता हुआ देखता है, तो वह विना कहे ही उसे सुधारने का प्रयत्न करता है। वह विना किसी के याचना किये ही दूसरे की सहायता करता है। उसकी सदा यही भावना रहती है कि—

> सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु, सन्तु सर्वे निरामयाः।
> सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःखभाक् भवेत्॥

संसार के समस्त प्राणी सुखी हों, सभी निरोग रहे, और सभी आनन्द को प्राप्त हों। किन्तु कोई भी प्राणी दुख को प्राप्त न हो। कितनी ऊंची भावना है उदार व्यक्ति की, जो स्वप्न में भी किसी भी प्राणी को दुखी नहीं देखना चाहता है। और सबके कल्याण की, सुखी और निरोग रहने की भावना रखता है। इसीलिए तो कहा गया है कि—

अयं निजः परो वेति, गणना लघु चेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

भाई, यह अपना है और यह पर है—दूसरा है—ऐसी गिनती तो लघु हृदय वाले क्षुद्र व्यक्ति किया करते हैं। किन्तु जो पुरुष उदारचरित हैं—विशाल हृदय वाले होते हैं वे तो सारे संसार को अपना ही कुटुम्ब मानते है। जैसे—कुटुम्बका प्रधान पुरुष अपने कुटुम्ब की सार-संभाल करता है और उसके दुःख दूर करने को सदा उद्यत रहता है, उसी प्रकार उदार व्यक्ति भी प्रत्येक प्राणी के दुःख दूर करने का अपना कर्त्तव्य समझता है और उसे दूर करने का तत्काल प्रयत्न करता है। यही कारण है कि सभी लोग उससे प्यार करते हैं। और स्नेह की दृष्टि से देखते हैं। मनुष्य की तो बात ही क्या है, पशु-पक्षी और खूंख्वार जानवर तक उसे स्नेह से और कृतज्ञता-भरी आखों से देखते हैं। आप लोगों ने देखा होगा कि जो व्यक्ति अपनी गाय-भैंसो के ऊपर सदय व्यवहार करते हैं, उनको समय पर खाना-पानी देते हैं और प्रेम से उनके ऊपर हाथ फेरते हैं, वे जानवर उस व्यक्ति की ओर कितनी ममतामयी नजर से देखते हुए अपनी कृतज्ञता प्रकट करते रहते हैं।

सिंह ने भी स्नेह किया :

हमने अपने बचपन में हिन्दी की पाठ्य पुस्तक में पढ़ा था कि एक बार एक मनुष्य किसी जंगल से जा रहा था, उसे एक स्थान पर झाड़ी में से किसी जानवर के कराहने की आवाज सुनाई दी। उसका हृदय करुणा से प्रेरित हुआ और वह उधर गया—जहां से कि आवाज आरही थी। उसने देखा कि एक सिंह (बब्बर शेर) पीड़ा से कराह रहा है। वह निर्भय होकर उसके समीप गया तो देखा कि उसके एक पंजे में बहुत बड़ा कांटा लगा हुआ है और उससे खून निकल रहा है। उसने सिंह के पंजे को पकड़कर पहिले तो हाथ से काटा खीचने का प्रयत्न किया। पर जब वह नही निकला तो उसके पंजे को उठाकर अपने मुख के पास करके और अपनी दाढ़ों में कांटे के ऊपरी भाग को दबाकर पूरी ताकत से जो खीचा तो कांटा निकल आया। पर खून की धारा और भी अधिक जोर से बहने लगी। उसने अपने साफे से एक पट्टी फाड़ी और पास की झाड़ी मे कोमल पत्ते तोड़कर और उन्हें मसल कर घाव पर रख के ऊपर से पट्टी बांधकर अपने घर चला आया। भाग्यवश वह किसी अपराध में पकड़ा गया और उसे सिंह के सामने खाने को छोड़ने की सजा सुनाई गई। इधर भाग्य से उक्त सिंह भी पैर के दर्द से भागने में असमर्थ होने के कारण पकड़ा गया था और राजा के पिंजड़े में बन्द था। जब पिंजड़े का द्वार खोला

गया और सिंह उस व्यक्ति के सामने आया, तो उसने उसे देखते ही पहिचान लिया कि यह तो वही उपकारी पुरुष है, जिसने कि मेरा कांटा निकाला था, अतः उसकी ओर कृतज्ञता भरी नजर से देखकर और उसके चरण-स्पर्श करने के बहाने से मानो पैर चाटकर और प्रदक्षिणा देकर वापिस अपने पिंजड़े में चला गया। राजा ने भी उस पुरुष को निर्दोष समझ कर छोड़ दिया।

भाइयो, देखा आपने उदारता और दूसरे के दुःख में सहायता करने का प्रभाव—कि खूंख्वार और भूखे सिंह ने भी उसे नहीं खाया। इसी प्रकार जो पुरुष बिना किसी भेद-भाव के पक्षपात-रहित होकर सभी प्राणियों के प्रति उदार भाव रखते हैं, करुणा रस से जिनका हृदय भरा रहता है और निरन्तर दूसरे के दुःख को दूर करते रहते हैं, वे संसार में सर्वत्र निर्भय विचरते हैं और सब जनों के प्रिय होते हैं।

उदार के हृदय में कण कण में रस

उदार व्यक्ति कभी यश का भूखा नहीं होता। दूसरे का बड़े से बड़ा भी उपकार करके न उसमें प्रत्युपकार की ही भावना रखता है और न संसार से यश पाने की ही कामना करता है। वह तो जो कुछ भी दूसरों के साथ भलाई का काम करता है, उसे अपना कर्तव्य मान कर ही करता है। वह नाम का नहीं, कामका भूखा होता है। उसकी आत्मा में—रग रग में करुणा का ऐसा रस भरा होता है जैसे कि सेलडी के प्रत्येक कण में मिष्टरस भरा होता है। उदार व्यक्ति के पास कोई मनुष्य किसी भी संकट के समय उसे दूर करने की भावना से जाय तो वह उसके संकट को तत्काल दूर करता है और उसे आश्वासन देता है कि आप इस संकट में बिलकुल नहीं घबड़ाइये, मैं आपका ही हूं, यह संकट आप पर नहीं, किन्तु मेरे ही ऊपर आया है और उसे मैं अपना तन, मन और धन लगा करके दूर करूंगा। इस प्रकार उदार मनुष्य प्रत्येक व्यक्ति के साथ अपने कुटुम्बी के समान ही व्यवहार करते हैं। उनमें अहंकार नाम मात्र को भी नहीं होता है।

अनुदार मनुष्य

दूसरे प्रकार के अनुदार मनुष्य होते हैं। उनके हृदय में उदारता का नाम भी नहीं होता। अनुदार व्यक्ति स्वार्थपरायण एवं कृपण होता है। अनुदार मनुष्य स्वयं तो कृपण होता है पर वह यदि किसी संस्था का ट्रस्टी या अधिकारी बन जाता है, तो वह उसके कार्यकर्त्ताओं के साथ भी अनुदारता का व्यवहार करता है। दूध के लिए रखे हुए अपने गाय भैंस आदि पशुओं के

साथ भी वह अनुदारता रखता है और उन्हें भरपेट खाना नहीं देता। ऐसा करने से भले ही उसे दूध कम मिले, पर उसका उसे विचार नहीं होता। अनुदार मनुष्य अपनी स्त्री पुत्रादि के साथ भी कृपणता करता है और उनके समुचित आहार-विहार की भी व्यवस्था नहीं करता है। और तो क्या, ऐसा व्यक्ति अपने भी आहार-विहार में कंजूसी करता है। अनुदार व्यक्ति यदि रेल में मुसाफिरी कर रहा है तो चार व्यक्तियों के स्थान को घेर कर स्वयं सोना चाहता है, पर स्त्रियों और छोटे छोटे बच्चों को खड़े देखकर उन्हें बैठने के लिए स्थान नहीं देता है, बल्कि स्थान देने के लिए कहने पर लड़ने को उद्यत होता है। अनुदार मनुष्य रुपये का काम पैसे से ही निकालने का प्रयत्न करता है। वह वचनों तक में अनुदार होता है। यदि किसी का बिगड़ता काम उसके बोलने मात्र से बनता हो तो वह बोलने मे भी उदारता नहीं दिखा सकता। जबकि संस्कृत की सूक्ति तो यह है कि **'वचने का दरिद्रता'** अर्थात् वचन बोलने में दरिद्रता क्यों करना, क्योंकि बोलने में तो पास का धन कुछ खर्च होता नही है। पर अनुदार मनुष्य बोलने में भी अनुदार ही होता है। ऐसे व्यक्ति का हृदय बहुत कठोर होता है, दूसरों को दुःख मे देखकर भी उसका हृदय पसीजता तक नहीं है। कोई भी जाकर उससे अपना दुःख कहे तो वह मौखिक सहानुभूति भी नहीं दिखा सकता। संक्षेप में इतना ही समझ लीजिए कि अनुदार मनुष्य उदार पुरुष से ठीक विपरीत मनोवृत्ति वाला होता है। इनसे किसी भी व्यक्ति का उपकार नहीं होता, प्रत्युत अपकार ही होता है। अनुदार मनुष्य तो पृथ्वी के भार-भूत ही होते हैं। जबकि उदार व्यक्ति पृथ्वी के उद्धारक एवं संसार के उपकारक होते हैं।

आन बान का पक्का

तीसरे प्रकार के सरदार मनुष्य हैं। उनके भीतर सदा ही बड़प्पन का भाव बना रहता है। सरदार मनुष्य सोचता है कि जब लोग मुझे बड़ा मानते हैं और सरदार कहते है तो मै हलका काम कैसे करूँ? मुझे तो अपने नाम के ही अनुरूप कार्य करना चाहिए। सरदार मनुष्य देश पर, समाज पर धर्म के ऊपर संकट आने पर उसकी रक्षा के लिए सबसे आगे जाकर खड़ा होता है। उसके हृदय में ये भाव उठते रहते हैं कि—

'सर जावे तो जावे, पर शान न जाने पावे।

जो देश, समाज और धर्म की रक्षा के लिए मिर देने को सदा उद्यत रहता है, वही सरदार कहलाता है। ऐसी प्रकृति के लोग भी सरदार कहलाते हैं। उनके पास जो भी व्यक्ति कामना से जाता है वह खाली हाथ नहीं

लौटता। वे पंडितों, कवियों, ज्योतिषियों और कलाकारों का सन्मान करते है। उनके हृदय में यह विचार बना रहता है कि मैंने उच्च कुल में जन्म लिया है, और लोग मुझे सरदार कहते हैं तो उस नाम के अनुरूप काम करना ही चाहिए। अन्यथा मेरा जीवन बेकार है और मुझे धिक्कार है। इस प्रकार से स्वाभिमान की धारा उनके हृदय में सदा बहती रहती है। ऐसे सरदार लोग धन के खर्च करने में बड़े उदार होते हैं, उसकी उनको चिन्ता नहीं होती है।

एक बार सालुम्बर रावजी अपने महल में जा रहे थे, तब एक भुजबन्द की डोरी टूट गई और वह पिछोले के पानी में गिर गया। उन्होंने इसका कोई खयाल नही किया और भीतर चले गये। वहां पर चवर ढोरनेवाले ने भुजबन्द के गिरने की बात कही, तो उन्होंने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। जब वे वापिस उधर से निकले और मौके पर आये और दूसरा भुजबन्द भी खोलकर पानी में डालते हुए उस व्यक्ति से बोले—क्यों यहीं गिरा था। उसने कहा—मालिक, दूसरा भी क्यों डाल दिया तो बोले—अरे, तुझे खाली हाथ कैसे बतलाता। भाई ऐसे-ऐसे भी सरदार लोग होते हैं कि अनर्थक खर्च करते हुए भी हाथ संकुचित नहीं करते हैं।

जिन सरदार को अपनी सरदारगी का खयाल होता है, जहां से निकल जायें या जहां भी पहुंच जायें, अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप कार्य किए विना नहीं रहते। ऐसे लोग ही जनता के हितार्थ को बड़े बड़े औषधालय, विद्यालय और भोजनालय खुलवाते हैं। उनकी दृष्टि अपने मोहल्ले में, गांव की गलियों पर और नगर-निवासी प्रत्येक मनुष्य पर रहती है और यही चाहते हैं कि मेरे नगर में कोई दुखी न रहे। सब मेरे समान सन्मान के साथ जीवन-यापन करें। न वे किसी का अपमान करते हैं और न स्वय अपमान सहन करते हैं। संस्कृत की सूक्ति भी है—

उत्तमा मानमिच्छन्ति, धन-मानौ च मध्यमाः।
अधमा धनमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम्॥

अर्थात्—उत्तम पुरुष सन्मान चाहते हैं। किन्तु अधम पुरुष तो केवल धन ही चाहता है, भले ही उसके पीछे उसे कितना ही अपमान क्यों न सहन करना पड़े। भाई, महापुरुषों के तो मान ही सबसे बड़ा धन है और वे अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए सदा उद्यमशील रहते हैं। कहा भी है—

आस्था सतां यश काये, ह्यास्यायिशरीरके।

संत पुरुषों की आस्था यशरूपी शरीर में होती है, इस अस्थायी पौद्गलिक शरीर में उनकी निष्ठा नहीं होती है।

मुर्दार मनुष्य

चौथे प्रकार के मुर्दार मनुष्य हैं। साहस-हीन, उत्साह-हीन, कायर और अकर्मण्य पुरुषों को मुर्दार कहते है। ऐसे मनुष्यो का हृदय सदा निराशा से परिपूर्ण रहता है। उनमे आत्म-विश्वास की बड़ी कमी होती है। ऐसे व्यक्ति से यदि कोई कहता है कि हाथ पर हाथ रखे क्यों बैठे हो? कोई धन्धा क्यों नही करते? तो वह कहता है कि यदि नुकसान हो गया, तो मैं क्या करूँगा? उसमे धीरता का नाम नही होता। किसी काम को करने का साहस नही होता। उनके सामने यदि कोई धर्म का या बहिन-बेटी का अपमान करता है, या उसकी इज्जत-आबरू लूटता है तो वह अकर्मण्यक और कायर बना देखता रहेगा। यदि कोई उसे मुकाबिला करने के लिए ललकारता भी है तो कहता है कि मैं क्या कर सकता हूं, जो होना होगा, वह होगा। वह सदा दैव पर अवलम्बित रहता है और पुरुषार्थ से दूर भागता है। इसीलिए किसी संस्कृत कवि को कहना पड़ा कि—

'दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।'

अर्थात्—कायर पुरुप कहते है कि जो कुछ सुख-दुख देने वाला है, वह दैव ही है। मैं क्या कर सकता हूं।

आज के समय में ऐसे मुर्दार मनुष्यों की कमी नहीं है। भाई, जो जीवन से थक गये, बूढ़े और अपाहिज हो गये है, वे यदि मुर्दारपने की बात कहे, तो ठीक भी है। किन्तु जब हम नौजवानो को यह कहते सुनते है कि हम क्या करे, हमे कोई सहारा देनेवाला नही है, तो सुनकर बड़ा दुख होता है। अरे तुम्हारे अन्दर नया खून है, हड्डियो में ताकत है और तोड-फोड करने के लिए स्फूर्ति और उत्साह है। फिर भी तुम लोग इस प्रकार से अपने ही जीवन-निर्वाह के लिए कायरता और मुर्दारपना दिखाते हो, तो आगे जीवन मे क्या सरदारपना दिखाओगे? तुम्हें परमुखापेक्षी होने की क्या आवश्यकता है? प्रकृति ने तुमको दो हाथ और पैर काम करने के लिए दिये हैं और मस्तिष्क विचार करने के लिए दिया है। फिर भी जब तुम अपनी ही रोटी की समस्या स्वय नहीं सुलझा सकते हो, तो दूसरो की क्या सुलझाओगे? इन छोटे-छोटे पक्षियों को देखो— जो किसी की भी सहायता नही चाहते है और पुरुषार्थ से अपना चुगा स्वयं खोजते रहते है। परन्तु आज के पढ़े-लिखे और

बड़ी-बड़ी डिग्रीधारी मनुष्य सरकार से कहते हैं कि हमें रोजी और रोटी दो। ऐसे नवयुवकों और पढ़े-लिखे लोगों को धिक्कार है जो रोजी और रोटी के लिए ही दूसरों का या सरकारी साधनों के विनष्ट करने में और हो-हल्ला मचाने में लगाते हो, वही यदि किसी निर्माण कार्य में लगाओ तो तुम्हारा बेड़ा पार हो जाय।

बेकार मत बैठो, पुरुषार्थ करो !

एकबार एक नौजवान ने, पुरुषार्थी बनने की बात कहनेवाले पुरुष से पूछा बताइये, मैं पढ़ा-लिखा हूं और हर काम को करने के लिए तैयार हूं और बेकारी के कारण भूखो मर रहा हूं क्या काम करूँ ? उसने तुरन्त उत्तर दिया कि भाई, पढ़े-लिखे होने पर भी यदि तुम्हें कोई काम नही सूझता है और भूखे मरने की नौबत आ गई है, तो सबेरे उठते ही यह काम करो कि एक बुहारी लेकर अपने घर से निकलो और अपने घर का द्वार साफ करके लगातार हर एक व्यक्ति के घर का द्वार साफ करते हुए चले जाओ। दूसरे की ओर देखो भी नही ? जब कोई पूछे कि यह काम क्यों कर रहे हो तो कहो कि बेकार बैठे भूखों मरने से तो कुछ काम करते हुए मरना अच्छा है। फिर देखो शाम तक तुम्हें रोटी खाने को मिलती है, या नही। वह नवयुवक बोला—हाँ, रोटी तो मिल सकती है। पर यह तो नीचा काम है, मैं पढ़ा-लिखा व्यक्ति इसे कैसे कर सकता हूं। उसने कहा—भाई, यही तो तेरी भूल है कि अमुक काम बुरा या नीचा है और अमुक काम अच्छा है। इस अहंकार को छोड़कर जहां जो भी काम मिले, उसे उत्साह से करते रहो, कभी भूखे नहीं मरोगे। यह सुनकर वह नवयुवक चुप हो गया।

श्रम करे, श्री पायें !

भाइयो, बेकार वे ही फिरते हैं जो कि आराम की कुर्सी पर बैठना चाहते हैं। और परिश्रम से, खासकर शारीरिक परिश्रम से डरते हैं। यदि आज के बेकार नौजवान कुर्सी पर बैठने और शहरों में रहने के मोह को छोड़ गांवों मे जावें और शारीरिक परिश्रम करें, तथा अशिक्षित लोगों को शिक्षित करते हुए भारत के प्राचीन उद्योग-धन्धों को अपनायें तो उनके बेकार होने की समस्या सहज मे ही हल हो सकती है। इन नौजवानों को चाहिए कि वहां पर जो भी काम मिले, उसे करने में तन-मन से जुट जावें, फिर वे देखें कि आर्थिक सहायता उन्हें अपने आप मिलती है, या नहीं ? जब वे काम करने को ही तैयार न हों तो फिर उन्हें सहायता कौन आकर देगा। जो श्रम करेगा उसे श्री (लक्ष्मी) अपने आप आकर मिलेगी। देखो—पानी

कितना पतला और कोमल है। पर जब वर्षा का पानी वेग पकड़ता है, तो वड़े-वड़े बांधों को तोड़ता जाता है और वड़े-वड़ मकानों और वृक्षों को उखाड देता है। भाई, वेग में इतनी प्रबल शक्ति होती है। इसी प्रकार जिन लोगों के हृदय में काम करने का वेग या जोश होता है, वे वडे से वड़े कठिन कामों को भी आसानी से कर डालते है। कर्मशील व्यक्ति का मस्तिष्क भी उर्वर होता है, उसमे नित्य नयी-नयी कल्पनाये प्रादुर्भूत होती रहती है और वह ऐसे-ऐसे महान् कार्य कर दिखाता है कि संसार उसे देखकर आश्चर्य चकित हो जाता है। परन्तु ये सब आश्चर्य-जनक, अपूर्व और खोज-शोध के कार्य वही कर सकता है, जो सरदार है, जिसका मस्तिष्क उर्वर है और जो सदा कर्तव्यशील रहता है। किन्तु जो मुर्दार है, कायर है, अकर्मण्य है और कार्य करने से डरते है, उनसे किसी कार्य की आशा नहीं की जा सकती है। जो अपनी रोटी ही नही जुटा सकते, उनसे उक्त कार्यों की आशा भी कैसे की जा सकती है। यदि मुर्दार मनुष्य अपना मुर्दापन या कायरता छोड़कर प्रतिदिन थोड़ा-थोडा भी परिश्रम करे और सरदार या उर्वर मस्तिष्क वाले पुरुप की संगति करे और उससे कुछ न कुछ सीखे तो एक दिन वह भी सरदार वन सकता है।

भाइयो, मनुष्य वही कहलाने के योग्य है, जो कि उर्वर मस्तिष्क और सरदार मनोवृत्ति का है। वह पुरुपार्थ करते करते एक दिन उन्नति के शिखर पर पहुँच जाता है। कहा भी है।

> मन वढ़ते वढ़ते वचन, धन वढ़ते क्या देर।
> मन घटते घटते वचन, फिर दुख में क्या फेर॥

मन के वढने पर कीर्ति वढती है और कीर्ति वढने से नया उत्साह पैदा होता है और उत्साह मे सभी कार्य सम्पन्न हो जाते है। यदि मनुष्य ने दिल छोटा किया तो फिर सब बातें छोटी होती जावेंगी। आपने सुना है कि मम्मण सेठ कितना कंजूस था, जबकि उसके पास ९९ करोड़ की विशाल धन राशि थी। चौमासा प्रारम्भ होते ही वह अपने सब मुनीम-गुमास्तों को छुट्टी दे देता था, क्योंकि उस समय कोई व्यापार चालू नही रहता था। उस समय कुल्हाड़ी लेकर जंगल मे जाता दिन भर लकडियां काटता और भारी लेकर सायंकाल घर आता तथा उन्हे वेचकर रोटी खाता था। भाई, देखो—जिसके पास इतनी अपार सम्पत्ति हो और निन्यानवे करोड का धनी हो, वह क्या ऐसा तुच्छ कार्य और वह भी वर्षा ऋतु मे करेगा? कभी नही करेगा। परन्तु मम्मण सेठ फिर भी करता था। एक ओर जहा उसमे इतनी उद्योगशीलता

थी और परिश्रमी मनोवृत्ति थी, वहीं दूसरी ओर कृपणता भी चरम सीमा को पहुंची हुई थी।

उसे एक बार सनक सवार हुई कि मैं रत्नों की बैल जोड़ी बनाऊँ। अतः उसने बैल बनाना प्रारम्भ कर दिया। जब बन कर तैयार हो गया, तब दूसरे को बनाना प्रारम्भ किया। बनते-बनते बैल का सारा सरीर बन गया। केवल सींग बनाना शेष रहे। उस समय सावन का महिना था और वर्षा की झडी लग रही थी, फिर भी वह मम्मण लकड़ी काटने के लिए जंगल में गया। लकडी काटते हुए सूर्यास्त हो गया। फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी और भारी उठाकर बरसते पानी मे वह नगर की ओर चला। उस समय राजा श्रेणिक रानी चेलना के साथ महल के सबसे नीचे की मंजिल में बैठे हुए चौपड़ खेल रहे थे और बरसाती मौसम का आनन्द ले रहे थे। जब यह मम्मण सेठ राज महल के समीप में जा रहा था, तभी रानी चेलना ने पान की पीक थूकने के लिए गवाक्ष से मुख बाहिर निकाला तो देखा कि बरसते पानी में गीले कपड़े हो जाने से चलने मे असमर्थ दरिद्र-सा व्यक्ति जा रहा है। उसे देखकर चेलना का दिल दया से आर्द्र हो गया। उसने श्रेणिक महाराज से कहा—आप तो कहा करते हैं कि मेरे राज्य में कोई दुखी नही है, सब समृद्ध और सुखी हैं। पर इधर देखिए, यह बेचारा ऐसे बरसते-पानी में भी लकड़ी की भारी लिए आ रहा है, ठंड के मारे जिसका शरीर कांप रहा है। यदि यह दरिद्रता से दुखी नहीं होता, तो क्या ऐसे मौसम में घर से बाहिर निकलता! श्रेणिक ने भी गवाक्ष से झांक कर देखा, तभी विजली चमकी तो वह दिखायी दे गया। श्रेणिक ने द्वारपाल को बुलाकर कहा—देखो—राजमहल के समीप से जो लकड़हारा जा रहा है, उसे लेकर मेरे पास आओ। उसने जाकर उससे कहा अबे, भारी यहीं रख और भीतर चल, तुझे महाराज बुला रहे हैं। यह सुनते ही मम्मण चौका और सोचने लगा। आज तक तो मेरी महाराज से रामा-सामा भी नहीं हुई है, और मैंने कोई अपराध भी नहीं किया है। फिर महाराज मुझे क्यों बुला रहे हैं। जब मम्मण यह सोच ही रहा था, तब उसने धक्का देकर उसकी भारी नीचे पटक दी और बोला कि सीधे चलता है, या फिर मैं धक्का देकर ले चलूँ। यह सुनकर मम्मण भयभीत हुआ और चुपचाप उसके साथ भीतर गया। और सामने पहुंचने पर उसने श्रेणिक को नमस्कार किया।

श्रेणिक ने पूछा—भाई, क्या तू इतना गरीब है कि जो ऐसे मौसम में लकड़ी लाने के लिए विवश हुआ? मम्मण बोला—बैलों की जोड़ी पूरी नहीं

हो रही है, इसलिए इस मौसम में भी परिश्रम करना पड़ रहा है। श्रेणिक ने समझा कि खेती के लिए इसे बैलों की जोड़ी पूरी नही हो रही है। अतः उन्होंने द्वारपाल से कहा अपनी गौशाला में सेंतीस हजार बैल-जोड़ियां बन्धी है, इसे ले जाकर सब दिखा दे और जो जोड़ी पसन्द आ जाय, वह इसे दे दो। मम्मण बोला— महाराज, मुझे तो केवल एक ही बैल चाहिए है. यह कहकर वह द्वारपाल के साथ गया। द्वारपाल ने जाकर दारोगा से कहा महाराज का आदेश है कि जो भी बैल इसे पसन्द आ जाए, वह इसे दे दिया जाय। दारोगा ने एक-एक करके सारे बैल दिखाए। वह सोचने लगा कि इसे यदि मैं ले जाऊँगा तो दाना-घास और खिलाना पड़ेगा। प्रत्यक्ष में उसने दारोगा से कहा मुझे कोई भी बैल पसन्द नहीं है। तब वह बोला—अरे अभागे, मगध देश के उत्तम से उत्तम बैल यहां उपस्थित है, और तुझे कोई पसन्द नहीं है। मम्मण बोला आपका कहना सत्य है। पर मेरे बैल जैसा कोई बैल दिखे तो लूँ। बेमेल जोड़ी किस काम की। तब दारोगा ने उसे द्वारपाल को सौंप कर कहा इसे महाराज के पास वापिस ले जाओ। उसने जाकर कहा—महाराज, इसे कोई बैल पसन्द नही आया। श्रेणिक ने पूछा—क्यों भाई. क्या बात है? मम्मण बोला—महाराज, मेरे बैल जैसा तो एक भी बैल नही दिखा। फिर अनमेल बैल लेकर के मैं क्या करूँ? यदि आप मेरे जैसा बैल देवें तो मैं लेने को तैयार हूं।

मम्मण की यह बात सुनकर श्रेणिक को बड़ा आश्चर्य हुआ, उसने कहा—अच्छा कल हम स्वयं आ करके तेरा बैल देखेंगे और उसकी जोड़ का दूसरा मंगवा देंगे। अच्छा तू यह बता कि तेरा मकान कहां है? तब उसने अपना सब नाम-पता ठिकाना बता दिया। मम्मण बोला—महाराज, आप अकेले नहीं पधारें, किन्तु महारानी साहब मंत्री लोगों और सरदारों के साथ पधारने की कृपा करें। श्रेणिक ने स्वीकृति दे दी। सेठ ने घर जाकर सब मुनीम-गुमास्तों को बुलाया और कहा कि श्रेणिक महाराज पूरे परिवार के साथ अपने यहां पधारेंगे अतः अमुक-अमुक तैयारी इस प्रकार की होनी चाहिए और रसोई इस प्रकार की बननी चाहिए। वे लोग सर्व प्रकार की तैयारी करने में जुट गये। उधर दूसरे दिन सवेरे श्रेणिक ने अभयकुमार को बुलाकर कहा—अपने नगर में एक मम्मण सेठ अमुक गली में रहता है। उसे एक बैल की जरूरत है। अपनी जोड़ियों में से इसे कोई भी बैल पसन्द नहीं आया है, अतः उसका बैल देखने के लिए आज उसके यहां चलेंगे। और जैसा उसका बैल होगा, वैसा मंगाकर उसे दिला देंगे। यह सुनकर अभयकुमार बोले—महाराज,

मम्मण सेठ गरीब कैसे है ? उसके यहां तो ६६ करोड़ की पूंजी है। और उसके मकान पर ध्वजा फहराती है। यह सुनकर श्रेणिक बोले—अरे, उसके शरीर पर तो पूरे कपड़े भी नहीं हैं और वह भारी बेंचकर अपनी गुजर करता है। अभयकुमार के बहुत कहने पर भी महाराज नहीं माने और बोले—आज मैं स्वयं चलकर के देखूंगा। तुम चलने की तैयारी कराओ और सुनो—सब मंत्री और सरदार भी साथ चलेंगे। अभयकुमार 'हां' भर कर चले गये।

यथासमय पूरी तैयारी के साथ श्रेणिक मम्मण सेठ के यहां जाने के लिए निकले तो सारे नगर में हलचल मच गई। वे पूरे राज-परिवार के साथ जब मम्मण सेठ के मकान के सामने पहुंचे तो मोतियों से भरे थालों और सुवर्ण घटों पर रत्न दीपकों को लिए हुए सुहागिनी स्त्रियों ने राजा की आरती उतारी और मंगल-गीत गाकर उनका स्वागत किया। वहीं एक ओर रात की ही वेष-भूषा में खड़े हुए मम्मण को देखकर श्रेणिक ने अभयकुमार से कहा—यही वह दुखियारा मम्मण है। तभी रत्नों से भरा सुवर्ण थाल लाकर और सामने आकर मम्मण ने मुजरा किया। श्रेणिक ने सोचा—बेचारा कहीं से मांग करके लाया होगा, अतः अभयकुमार से कहा—यह नजराना नहीं रखना, किन्तु वापिस कर देना। सेठ ने नजराना लेने के लिए जब बहुत आग्रह किया, तब अभय-कुमार के इशारे पर वह स्वीकार कर लिया गया। मम्मण ने महाराज से हवेली के भीतर पधारने के लिए प्रार्थना की। उसकी नौ खंड की हवेली और उस पर ध्वजा फहरती देखकर श्रेणिक बड़े विस्मित हुए और अभयकुमार से बोले—क्या सचमुच में यह इसी की हवेली है ? अभयकुमार के हां भरने पर उन्होंने भीतर प्रवेश किया। सब सरदारों को यथास्थान बैठाकर महारानी और मंत्रियों के साथ वह राजा श्रेणिक को ऊपर ले जाने लगा, तब उन्होंने पूछा—सेठजी, तुम्हारा बैल कहां है ? मम्मण बोला—महाराज, चौथे खंड पर है। श्रेणिक यह सोचते—कहीं जानवर भी ऊपर की मंजिलों में रहते हैं—चौथी मंजिल पर पहुंचे और वहां रत्न-निर्मित जगमगाते बैल को देखकर श्रेणिक बहुत विस्मित हुए। मम्मण बोला—महाराज, एक बैल तो तैयार हो गया है, किन्तु दूसरे के सींगों की कमी है। मुझे तो ऐसा-पहिले जैसा बैल चाहिए है। उसकी यह बात सुनकर श्रेणिक अवाक् रह गये और सोचने लगे—

'राजा सोचे बेचूं राज सरे केम मत्तु यह भारो।

यदि मैं अपना सारा यह राजपाट भी बेंच दूं, तो भी इस बैल की जोड़ी का बैल नहीं आ सकता है। प्रत्यक्ष में वे चेलना रानी से बोले—बताओ, यह दुखिया है, या सुखिया है ? रानी बोली—नाथ, आप स्वयं ही देख रहे हैं।

मैं क्या करूं ? पर यह समझ में नहीं आया कि इतना धन होने पर भी ऐसे बरसाती मौसम मे स्वयं लकड़ी को भारी लिए क्यों आ रहा था। इतना धन-वैभव होने पर भी यदि यह भारी लाकर रोटी खाता है, तो फिर इससे हीन पुन्नी और कौन हो सकता है ?

मम्मण सेठ ने महाराज से प्रार्थना की कि रसोई तैयार है, भोजन के लिए पधारिये। श्रेणिक ने कहा—क्या मेरा जीमना अकेले होता है ? मम्मण बोला—महाराज की आज्ञा हो तो सारी नगरी सौ बार जिमा दू। श्रेणिक ने कहा—सेठजी, जब ऐसी सामर्थ्य है, तब फिर रात को भारी लिए कैसे आ रहे थे। मम्मण बोला—महाराज, रात की बात मत पूछिये। इससे मेरी शान जाती है। वह वरदान अलग है और यह वरदान अलग है। मैं अपने लिए ही अभागी हूं। अन्यथा मेरे कोई कमी नहीं है, सबके लिए रसोई तैयार है सो भोजन कीजिए।

जब श्रेणिक उसके भोजनालय में गये तो वहां की व्यवस्था देखकर दंग रह गये। उन्हें स्वप्न मे भी कल्पना नहीं की थी यह मेरे साथ इतने लोगों को चांदी की चौकियों पर बैठाकर सुवर्ण के थालों में जिमा सकता है। नाना प्रकार के पकवान और मिष्टान्नों से थाल सजे हुए थे। सोने की कटोरियां नाना प्रकार की शाकों, रायतों और दालों से भरी हुई थी और सोने की रकाबियां नमकीन वस्तुओं से सजी हुई रखी थी। सुवर्ण के प्यालों में नाना प्रकार के पेय पदार्थ रखे हुए थे। उसके ये ठाठ-बाट देखकर श्रेणिक ने बहुत ही चकित होते हुए भोजन किया। बाद में मम्मण ने पान-सुपारी आदि से सबका सत्कार किया। तत्पश्चात् श्रेणिक ने चेलना से कहा—अपने लोग क्या समझकर आये थे और क्या देख रहे है। जब इसने अपने स्वागत-सत्कार में इतना व्यय किया है तो इसे क्या देना चाहिए। अभयकुमार से भी इस विषय में परामर्श किया। और कहा कि कुछ न कुछ इसे देकर और इसका उत्साह बढ़ा करके जाना चाहिए।

भाइयो, पहिले के राजा-महाराजा लोग यदि किसी के यहां जीमने जाते थे तो उसका उत्साह बढ़ाकर आते थे। आज के ये टोपीवाले शासक आते हैं तो यों ही चले जाते हैं। यदि उन्हें दस हजार की थैली भी भेंट करो तो ये जाते समय बच्चे के हाथ पर पांच रुपये भी रखकर नहीं जाते हैं।

हा, तो अभयकुमार ने कहा—इसका सन्मान बढ़ा दिया जाय—ताजीम बढा दी जाय, जिससे अपना कुछ खर्च भी न हो और इसकी देश भर में प्रसिद्धि भी हो जाय। श्रेणिक ने कहा—अभय, तुम्हारी सलाह उचित है'।

तत्पश्चात् जब सबका खान-पान हो गया, तब श्रेणिक ने कहा—सेठ जी, अब आप भोजन के लिए बैठिये, हम आपको भोजन परोसेंगे। भाई, यह ताजीम क्या कम है, जो इतने बड़े राज्य का राजा अपने हाथ से भोजन परोसने की बात कहे। इससे बढ़कर और क्या इज्जत हो सकती है।

श्रेणिक के द्वारा अपने जीमने की बात सुनकर मम्मण बोला—महाराज, मेरे भाग्य में जीमना कहां है? सबके भोजनपान से निवृत्त होने के पश्चात् अलग से मेरे लिए रसोई बनेगी, तब मैं खा सकूँगा। श्रेणिक बोले—सेठजी, आज आपको अपने हाथ से परोसकर और आपको जिमा करके हम जावेंगे। तब रसोइया बुलाया गया। उसने चूल्हा चेताया और एक भरतिया पानी भरकर चढ़ा दिया। उबाला आने पर दो मुट्ठी उड़द उसमें डाल दिये। जब वे उबल गये तो उन्हें निकाला गया। श्रेणिक ने पूछा—सेठजी, क्या-क्या और साथ में परोसा जाय। वह बोला—महाराज, और कोई चीज नहीं परोसिये, केवल इस घट में से थोड़ा सा तेल डाल दीजिए। उन उड़द की घूघरियों में तेल के डाल दिये जाने पर सेठ ने फांका लगाना प्रारम्भ किया। यह दृश्य देखकर सारे सरदार और महाराज भी चित्र-लिखित से देखते रह गये। सब सोचने लगे—देखो, इसने हम लोगों को तो बढ़िया से बढ़िया माल खिलाये हैं और यह कोरे उड़द के बाकुले खा रहा है। श्रेणिक ने कहा—अरे सेठजी, मिठाई छोड़कर के ये बाकुले क्यों खा रहे हो? वह बोला—यदि पेट में मीठा चला गया तो अभी दस्त लगना शुरू हो जावेंगे और फिर उनका रोकना कठिन हो जायगा। श्रेणिक की समझ में उसकी ऐसी स्थिति का रहस्य कुछ भी समझ नहीं आया। तब वे एक अवधिज्ञानी मुनि के पास गये और मम्मण की ऐसी परिस्थिति का कारण पूछा। उन्होंने कहा—राजन्, यह पूर्व भव में घी को बेचने वाला बनिया था। इधर-उधर से लाकर घी बेचता था और उससे जो चार-आठ आने मिल जाते उससे यह अपना निर्वाह करता था। यह अकेला ही था। एक समय किसी सेठ ने किसी खुशी के अवसर पर न्यात भोजन के बाद सवा-सवा सेर के लड्डू लेन में बंटवाये। इसके यहां भी एक लड्डू आया। इसने सोचा - 'आज तो भोजन कर ही आया हूं, अतः यह कल काम में आ जायगा' यह सोचकर इसने घी के घड़े के ऊपर उसे रख दिया। जैसे ही यह घर से बाहिर निकला, ही मासखमण की तपस्या करने वाले एक मुनिराज को गोचरी के लिए आता हुआ इसने देखा। उन्होने जैसा अभिग्रह किया हुआ था, वैसी ही सब बातें इसके यहां मिल गई। इसने भी लाभ दिलाने के लिए साधु से प्रार्थना की और कहा—स्वामिन्, पधारिये और मुझ पुण्य-हीन दरिद्री का

उद्धार कीजिए। आज आपके योग्य अनुदृष्टि एक लड्डू लेन मे आया हुआ है, उसे आप ग्रहण कीजिए। यह सुनकर मुनिराज उसके घर मे गये। और उसने वह लड्डू वहरा दिया। मुनिराज उसे लेकर चले गये। लड्डू के कुछ खेरे घी के घड़े मे चिपके रह गये थे तो इसने उन्हे निकालकर अपने मुख मे डाला। उसका स्वाद लेते ही मन मे पश्चात्ताप करने लगा—हाय, ऐसा स्वादिष्ट लड्डू मैंने व्यर्थ ही साधु को वहरा दिया। आज तो घर-घर ऐसे लड्डू आये हुए थे। इन्हे तो कही से भी वैसा मिल सकता था। इस प्रकार के अनुताप से इसने घोर पाप का बन्ध किया और काल मास में काल करके यह पशु-योनि मे उत्पन्न हुआ। वहा से आकर यह मम्मण सेठ हुआ है। पूर्वोक्त दान के प्रभाव से इसके घर मे ऋद्धि-वैभव तो अपार है। किन्तु पीछे से जो स्वाद की लोलुपता से इसने अनुताप किया था, उससे इसके दुर्मोच भोगान्तराय कर्म बँध गया। मुनि को आहार का लाभ कराने से इसकी लाभान्तराय टूटी हुई है। अत दोनो ही कर्म अपना-अपना प्रभाव अब प्रत्यक्ष दिखा रहे है। यह सुनकर और भावो की विचित्रता से कर्मबन्ध की विचित्रता या विचार करते हुए श्रेणिक मुनिराज की वन्दना करके अपने घर को वापिस चले आये।

भाइयो, यह मम्मण का जीव मुर्दार प्रकृति का मानव था, जो दान देकर के भी पछताया। इसी प्रकार मुर्दार प्रकृति के मनुष्य पहिले तो कोई उत्तम कार्य करते ही नही है। यदि किसी कारण-वश करे भी, तो पीछे पछताते है और अपने किये-कराये काम पर स्वय ही पानी फेर देते है। यही कारण है कि अनेक लोगो के पास अपार सम्पत्ति होते हुए भी वे न उसको भोग ही सकते है और न दान ही कर सकते हैं और अन्त मे खाली हाथ ही इस ससार से विदा हो जाते है। इसलिए जिन्हे भाग्योदय से यह चचल लक्ष्मी प्राप्त हुई है, उन्हे कजूसी छोडकर जीवन को सफल बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

उपसहार

बन्धुओ, आप लोगो के सामने मैंने चार प्रकार के मनुष्यों के चित्र उपस्थित किये हैं। अब आप लोग बतलाये कि आपको उदार व्यक्ति पसन्द है, या अनुदार? सरदार व्यक्ति रुचता है, या मुर्दार? चारो ओर से आवाज आ रही है कि उदार और सरदार व्यक्ति पसन्द है। भाई, इनमे से ये दो ही जाति के मनुष्य ग्राह्य हैं—उदार और सरदार। तथा अनुदार और मुर्दार व्यक्ति त्याज्य है। अब आप लोगो को इनमे से जो रुचे, उसे ग्रहण कर लीजिए और वैसे ही बन जाइये। कही ऐसा न हो कि सरदार बनने का भाव

किया और मन को मुर्दार बनालेवें ! आज प्राय: ऐसे ही मनुष्य देखने में आते हैं कि बातें तो बड़ी-बड़ी करेंगे और डींग सरदारपने की हांकेंगे। पर जहां उदारता दिखाने का और कुछ देने का काम आया, तो स्वयं तो देंगे ही नहीं, किन्तु मीन-मेख निकाल करके देने वालों को भी नहीं देने देंगे। वे अपने भीतर यह दुर्भाव रखते हैं कि यदि कार्य प्रारम्भ हुआ और दूसरे लोगों ने न दिया तो लोक-लाज के पीछे मुझे भी देना पड़ेगा। इसलिए ऐसे विचार वाले व्यक्ति दूसरों के देने मे अन्तराय बनते हैं और स्वयं देने का तो काम ही नहीं है। भाई, उदार बनना सीखो। यह लक्ष्मी चंचल है, और सदा किसी के पास रहने वाली नहीं है। जो इसको पकड़ने का प्रयत्न करते है, उनसे यह छाया के समान दूर भागती हैं। और जो इसे ठुकराते अर्थात् विद्यालय, औषधालय और दीन-अनाथों की सेवा-सुश्रूषा आदि सत्कार्यों में लगाते हैं और खुले दिल से दान देते हैं, उनके पीछे-पीछे यह छाया के समान दौड़ती हुई चली आती है। कहा भी है कि— **'लक्ष्मी दातानुसारिणी और बुद्धिः कर्मानुसारिणी'**।

अब आपको जो रुचे सो करो। जब कोई काम करना ही है तब उसमें विलम्ब नहीं करना चाहिए और **'शुभस्य शीघ्रम्'** की उक्ति के अनुसार उसे शीघ्र ही सम्पन्न करना चाहिए। उदार और सरदार सदा ही उदार और सरदार बने रहेंगे और अनुदार और मुर्दार सदा ही दुख पावेंगे। इसलिए सत्कार्य के करने में आप लोगों को उदारता और सरदारपने का ही परिचय देना चाहिए।

वि० स० २०२७ कार्तिक सुदि ७
जोधपुर

२३ धर्मादा की संपत्ति

बन्धुओ, मनुष्य के विचार उसकी योजना के प्रतीक होते हैं। जब कोई भी कार्य करना होता है, तब उसके लिए पहिले विचार किया जाता है कि यह कार्य किस प्रकार किया जाय ? इसकेलिए नीति शास्त्र में एक विधि बतलायी गयी है—

स्वन्तं किन्नु दुरन्तं वा, किमुदर्कं वितर्क्यताम्।
अतर्कितमिदं वृत्तं तर्करूढं हि निश्चलम्॥

अमुक कार्य करने का फल उत्तम सुखान्त होगा, या दुखान्त। अर्थात् हम जिस कार्य को करना चाहते हैं वह आगामी काल में उत्तम फल देगा, या दुःख रूप फल देगा, यह किसी कार्य को करने के पहिले विचारना चाहिए। जो बात अतर्कित है, अर्थात् जिस पर तर्क-वितर्क या ऊहापोह नहीं किया गया है, वह तर्क की कसौटी पर कसने से निश्चल या दृढ़ हो जाती है।

इस नीति के अनुसार जो कार्य हमारे सामने है, उसका विचार करना चाहिए कि यह शुभ है या अशुभ ! धर्म का साधक है, या बाधक ? सौजन्य पूर्ण है, या दौर्जन्य पूर्ण ? भले-बुरे विचारों के साथ व्यक्ति के उत्थान-पतन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कोई भी विचार-धारा तभी सफल होती है जब कि उसके साथ हमारी हृत्तन्त्री जुड़ जाये—जो फिर अलग नहीं हो सके। यदि विचार-धारा स्थिर नहीं है, कभी किसी प्रकार के विचार हैं और कभी किसी

प्रकार के ? इस प्रकार से जिसके विचार क्षण-क्षण मे बदलते रहते हैं, तो उस व्यक्ति के सर्व ही कार्य व्यर्थ है। इसलिए पहले शान्ति के साथ, गभीरता के साथ सोचकर फिर दृढता के साथ और तेजी से उस कार्य पर अमल करना चाहिए।

परवशता से प्रतिकूल आचरण

भाइयो, कभी-कभी ऐसा भी अवसर आता है कि मनुष्य के विचार तो उत्तम है, किन्तु नौकरी, आदि की परवशता से प्रतिकूल कार्य भी करने पडते हैं। जैसे कोई सरकारी नौकरी मे हैं और उसे ऊपर के अधिकारियो के आदेश के अनुसार अनेक आरम्भ-समारम्भ के महापाप करने पडते है। ऐसी दशा मे वह उन आदेशो का पालन करता हुआ भी यदि अपने भीतर प्रतिक्षण यह सोचता रहता है कि यदि मुझे दूसरी असावद्य नौकरी मिल जाती, जिसमे कि ऐसे आरम्भ-समारम्भ के काम न करना पडे। तो मैं इसे तुरन्त छोड देता। हे प्रभो, मुझे ऐसे पाप पूर्ण कार्य करने का अवसर ही क्यो आया ? इस प्रकार से यदि वह पश्चात्ताप करता है और इस नौकरी को बुरी जानकर उसे छोडने की भावना रखता है तो वह महापापो से नही बधता। हा, लघु पापकर्म से तो बधता ही है। जैसे एक मायर या दारोगा है और उसके पास अधिकारी का आदेश आता है कि आज इतने पशुओ की चिट्ठी काटी जावे। अब वह नौकरी की परवशता से चिट्ठी काटता रहा है, परन्तु हृदय से नही काट रहा हैं। भीतर तो अपने इस कार्य को बुरा ही मान रहा है और अपनी निन्दा ही कर रहा है—अपने आपको धिक्कार रहा है, तो वह प्रबल कर्मों को नही बाधेगा। पर कर्मो का बन्ध तो है ही, इसमे कोई सन्देह नही है। दूसरा व्यक्ति इसी प्रकार के अवसर पर बिना किसी सोच-विचार के चिट्ठी काटता है और उसके मन मे अपने इस कार्य के प्रति कुछ भी गर्हा या निन्दा का भाव नही है, तो वह तीव्र पाप कर्मो को ही बाधेगा। क्योंकि इसे अपने कार्य के प्रति कोई घृणा या पश्चात्ताप नही है। भाई, इस प्रकार से ऊपर से एक ही कार्य करते हुए भी आन्तरिक भावो की अपेक्षा कर्म-बन्ध मे अन्तर पड जाता है।

कर्म बंध मे मन्दता

अथवा जैसे आपके छोटे भाई या लडके ने कोई गलत काम किया। आपके पास उसका उपालम्भ आया और आपने उसे दो एक बार समझाया और आगे से ऐसा काम नही करने को कहा। फिर भी यदि वह नही माना और आगे दुबारा भी वही काम करता है तो आपने उसे थप्पड या लकडी मार दी। तथा किसी प्राणी ने क्रुद्ध होकर और प्रतिशोध की भावना से शत्रु

के भी थप्पड या लकडी मारी, तो दोनो प्रहारो मे अन्तर है, या नही ? अन्तर अवश्य है। इसी प्रकार किसी को लाठी से मारते हुए भी यह विचार है कि कही इसके ममस्थान पर नही लग जाय, या इसकी हड्डी नही टट जाय, इस विचार से केवल सामने वाले को रोकने के भाव से मारता है और दूसरा शत्रु के मर्मस्थान पर मारता है—इस विचार से ही—कि एक ही प्रहार मे इसका काम तमाम कर दूँ, तो उन दोनो के भावो मे अन्तर है या नही ? अवश्य है और भावो के अनुसार एक के मन्द कर्मबन्ध होगा और दूसरे के तीव्र कर्म बन्ध होगा। क्योकि जैनशासन मे भावो की प्रधानता है। जहा भावना मे, विचार मे अन्तर है, वहा पर कर्म बन्ध म अन्तर अवश्य होगा।

और भी दखो एक साधु भी गमन करता है और दूसरा साधारण व्यक्ति भी गमन करता है। साधु ईर्यासमिति स जीवो को देखता हुआ और उनकी रक्षा करता हुआ चलता है और दूसरा इस जीव-रक्षा का कुछ भी विचार न रख के इधर-उधर देखते हुए चलता है, अब गमन तो दोना कर रहे है, परन्तु दोनो की भावना मे अन्तर है, अत कर्म-बन्ध मे भी अवश्य अन्तर होगा। इस विषय मे आगम कहता है—

उच्चालदम्मि पादे इरियासमिदस्स अप्पमत्तस्स।
आवादेज्ज कुलिंगो मरेज्ज तज्जोगमासेज्ज॥
ण हि तस्स तण्णिमित्तो बधो सुहुमोवि देसिदो समये॥

अर्थात्—ईर्यासमिति पूर्वक गमन करनेवाल अप्रमत्त साधु के पैर के नीचे सावधानी रखने पर भी यदि अचानक कोई जीव आकर मर जाय, तो उसे तन्निमित्तक—हिंसा-पापजनित सूक्ष्म भी कर्म बन्ध नही होता।

इसके विपरीत अयत्नाचार से गमन करनेवाले से जीव चाहे मरे, अथवा नही मरे, किन्तु उसको नियम से हिंसा का पाप बन्ध होगा। जैसा कि कहा है—

मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्सणिच्छिदा हिंसा।
पयदस्स णत्थि बधो हिंसामेत्तेण समिदस्स॥

अर्थात् - जीव चाहे मरे, अथवा चाहे नही मरे, किन्तु चलने मे जो यतना-सावधानी—नही रखता है, अयत्नाचारी है—उसका हिंसा का पाप निश्चित रूप मे लगता है। किन्तु जो चलते समय प्रयत्नशील है—सावधानी रखता है, उसमे हिंसा हो जाने पर भी बन्ध नही होता है।

आगम के इन प्रमाणो के निर्देश का अभिप्राय यह है कि प्रमत्त योग से होने वाली हिंसा मे और अप्रमत्तयोग से होने वाली हिंसा म आकाश-पाताल

जैसा अन्तर है। साधु के सावधानी रखते हुए भी हिंसा की संभावना रहती है, अतः उसे प्रतिदिन 'मिच्छामि दुक्कडं' करना पड़ता है। भाई, वह यतना का विचार और जीव रक्षा का भाव किसके हृदय में पैदा होता है ? जिसके कि हृदय में ज्ञान का - विवेक का अंकुश है। देखो—हाथी कितना बड़ा और बलवान होता है। वह गोली और भाले के शरीर में लगने पर भी उसकी परवाह नहीं करता। परन्तु जब मस्तक पर महावत का अंकुश पड़ता है, तब चिंघाड़ने लगता है और महावत जिधर ले जाना चाहता है, उधर ही चुपचाप चला जाता है। इसी प्रकार मनुष्य के मस्तिष्क पर, मन पर विवेक का अंकुश होगा, तो वह कुमार्ग पर नहीं चलेगा—कुपथगामी नहीं होगा। किन्तु सुपथ-गामी रहेगा। अंकुश भी दो प्रकार के होते हैं—एक द्रव्य-अंकुश और दूसरा भाव-अकुश। हाथी का अंकुश द्रव्य-अंकुश है। इसीप्रकार साधु के लिए आचार्य, गुरु आदि द्रव्य-अंकुश हैं। विवेक का जाग्रत रहना भाव-अंकुश है। जिसका विवेक जागृत रहता है, उसे सदा इस बात का विचार रहता है कि यदि में अपने पद के प्रतिकूल कार्य करूँगा तो मेरा पद, धर्म और नाम कलंकित होगा। मेरी जाति बदनाम होगी और सबको अपमान सहना होगा। इसप्रकार से जिसके मन के ऊपर ये दोनों ही अंकुश रहते हैं, वह व्यक्ति कभी कुमार्ग पर नही चलेगा, किन्तु सदा ही सुमार्ग पर चलेगा। किन्तु जिसके ऊपर ये दोनों अंकुश नही है, वे व्यक्ति मनमानी करते हैं। कहा भी है—

> बिन अंकुश बिगड़्या घना, कपूत कुशिष्य ने कुनार।
> गुरु की अंकुश धार सी, सो सुधर्‌या संसार ॥

भाइयो, आप लोग अपने ही घरों में देख लो—अंकुश नही रहने से औरतें बिगड़ जाती हैं और बाल-बच्चे आवारा हो जाते है। गुरु का अंकुश नही रहने से शिष्य बिगड़ जाता है। इसलिए जैसे घरके स्त्री-पुत्रादि पर पिता या संरक्षक का अंकुश होना आवश्यक है, उसी प्रकार शिष्य पर गुरु का अंकुश होना भी आवश्यक है। इससे आत्मिक लाभ तो है ही, लौकिक लाभ भी होता है और समय पर अपना भी बचाव होता है। जैसे किसी विकट समस्या के आ जाने पर पुत्र कहता है कि भाई, मैं इस बात का उत्तर पिताजी से पूछ कर दूँगा, अथवा शिष्य कहता है कि मैं गुरुजी से पूछ कर कहूंगा। इस प्रकार वे अपने उत्तरदायित्व से बच जाते हैं। और कभी-कभी तो इतना भारी लाभ हो जाता है कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इसीलिए तो कहावत है कि माटी के बड़ेरे भी अच्छे है।

आपको मालूम है कि मूर्त्ति-पूजक लोग अपने मन्दिरों में धातु-पाषाण आदि की मूर्त्ति रखते हैं। यद्यपि उसमें देवता नही है, किन्तु देवत्व की कल्पना अवश्य है। यही कारण है कि मूर्त्ति-पूजक लोग मन्दिरों में कोई भी लोक-विरुद्ध, धर्म-विरुद्ध या पाप-कारक कार्य नहीं करते है। यह उस द्रव्य मूर्त्ति के अंकुश का ही प्रभाव है। देखो—पहिले स्थानकों में भी अंकुश था कि सचित्त जलादि नही लाना। परन्तु उस अंकुश के उठ जाने से सचित्त जल और फलादिक भी आने लगे हैं। लोग कहते हैं कि स्थानक से, उपाश्रय से या मन्दिर से हमारी यह चीज चोरी चली गयी। भाई, तुम ऐसी चीज धर्मस्थान पर लाये ही क्यों? आपने धर्मस्थान का अंकुश नही रखा, तभी यह सब होने लगा है। पहिले मनुष्य धर्मस्थान पर ही नहीं, किन्तु घर पर ही यह अंकुश रखते थे और धर्मखाते की—धर्मादे की—रकम को अपने काम में नहीं लेते थे तो उनका परिवार यश पाता था।

सुकृत की शिला

मुगलकाल में दिल्ली में एक सेठ जी रहते थे। उनके यह नियम था कि अपनी ही पूंजी से जीवन-निर्वाह करेंगे, दूसरे की या धर्मादे की पूंजी से व्यवहार नहीं करेंगे। उनका कारोबार विशाल था और घर-परिवार भी भरा-पूरा था। उन्होंने अपने नियम की सूचना मुनीम-गुमास्तों को भी दे रखी थी और घर पर स्त्री-पुत्रादि को भी कह रखा था कि अपने को परायी सम्पत्ति से लेन-देन नही करना है। न्याय-नीति से कमा कर खाना है।

एक दिन की बात है कि जब सेठजी घर पर भोजन के लिए गये हुए थे, और दुकान पर मुनीमजी ही थे, तब एक जर्जरित शरीर वाली बुढ़िया लकड़ी टेकती और कांपती हुई आई और दुकान पर आकर मुनीमजी से बोली—बेटा, अब आगे मुझसे चला नहीं जाता। अतः यह लादी (पत्थर की शिला) तू ही खरीद ले। मुनीमजी ने कहा—हमें इसकी जरुरत नही है। तब बुढ़िया बोली—दिवालिये, सेठ की दुकान पर बैठा है और कोई चीज लेकर बेचने को आता है तो तू इनकार करता है? और सेठ की इज्जत को धूल में मिलाता है। सेटजी का नाम सुन कर मुनीमजी चौंके और सोचने लगे—बात तो यह बुढ़िया खरी कह रही है। उससे पूछा—मांजी इसकी क्या कीमत है? वह बोली—बीस हजार रुपये। यह सुनते ही मुनीम सोचने लगा—अरे, चटनी बांटने जैसी तो यह वटया (गोलपथडी) है और कीमत बीस हजार कहती है। जरूर इसमें कोई खास बात होगी। यह सोचकर उसने लेने का विचार किया। मगर जब तिजोरी खोलकर देखा तो उसमें उतने रुपये नहीं थे। समीप ही

दूसरी तिजोरी रखी थी—जिसमें कि धर्मादा और सुकृतफंड के रुपये रखे रहते थे। अतः उसे खोलकर उसमें से रुपये निकाल कर बुढ़िया को दे दिये और वह लादी ले ली। वह बुढ़िया रुपये लेकर जैसे ही दुकान से बाहिर हुई कि पता नहीं किधर गायब हो गई। मुनीमजी वह लादी लेकर सेठजी के घरे पहुंचे और सेठजी से कहा—सेठजी, यह लादी मैंने बीस हजार में ले ली, क्योंकि इनकार करने पर दुकान की इज्जत जाती थी। आपके बिना पूछे एक कार्य तो यह किया और दूसरा अपराध यह किया कि सुकृतफंड की तिजोरी में से रुपये दिये, क्योंकि दुकान की तिजोरी में रुपये नहीं थे। सेठजी बोले—मुनीमजी, कोई अपराध की बात नहीं है। आपने तो दुकान की इज्जत बचाने के लिए ही इसे लिया है। और सुकृतफंड की तिजोरी से रुपया देकर लिया है, तब यह लादी अपनी नहीं है, सुकृत की ही लादी है। यह कहकर सेठजी ने सेठानीजी को देते हुए कहा—देखो, इसे भीतरी कमरे में सुरक्षित रख दो और भूल करके भी कभी इससे चटनी आदि मत पीसना। यह कहकर सेठ जी ने उस पर अपने हाथ से लिख दिया कि यह लादी सुकृत की है, इसे सुकृत के सिवाय किसी अन्य कार्य में नहीं लिया जाय ?

भाइयो, आज अपने को धर्मात्मा तो सभी कहते हैं, चाहे वे जैन हों, वैष्णव हों, ईसाई हों या मुसलमान हों। परन्तु उनमें ऐसे कितने लोग हैं, जो कि ऐसा विवेक और विचार रखते हों ? जिनके ऐसा विचार है और भूलकर भी सुकृत का पैसा अपने कार्य में नहीं लेते हैं, वे ही धर्मात्मा हैं, भले ही वे किसी भी जाति या धर्मवाले क्यों न हों ? किन्तु जिनके ऐसा विवेक और विचार नहीं है, भले ही वे ऊपर का दिखाऊ धर्म कितना ही क्यो न करते हों, पर उन्हें धर्मात्मा नहीं कहा जा सकता। देखो—आप लोग यहां सामायिक और प्रवचन सुनने को स्थानक में आते हैं। सामायिक करने के लिए बैठते समय आपने अपना शाल-दुशाला, कम्बल घड़ी आदि ओढ़ने-पहिरने की कोई वस्तु उतार कर रखी और सामायिक पूरी करने के पश्चात् उसे उठाना भूलकर अपने घर चले गए। वहां जाने पर आपको याद आया कि अमुक वस्तु तो हम स्थानक में ही भूल आये है। अब आप स्थानक मे आकर देखते हैं और वह वहां पर नहीं पाते हैं, तो निश्चित हैं कि अपने में से ही कोई भाई उसे ले गया है, क्योंकि स्थानक कोई चोर-उठायीगीरों का अड्डा नहीं है। अब उसे जो ले गया, वह तो चोर है ही और उसकी बुद्धि भ्रष्ट होगी ही। साथ ही ऐसे चोर व्यक्ति के घर का अन्न-जल किसी भी साधु के पेट में जायगा, उसकी भी बुद्धि भ्रष्ट हो जायगी। परन्तु पहिले के लोग बड़े नीतिवान् थे।

वे धर्मस्थान से पर-वस्तु का चुराना तो दूर की बात है, किन्तु अपने ही द्वारा निकाले हुए सुकृत के द्रव्य को भी अपने काम मे लेना नीति-विरुद्ध समझते थे और पाप मानते थे।

हा, तो मैं कह रहा था कि उन सेठजी ने उस लादी पर लिख दिया कि यह सुकृत की शिला है और इसका उपयोग सुकृत के काम मे ही किया जाय। क्योकि वे नीतिवान् थे। सेठानी ने उसे सभालकर के कमरे मे रख दी। और सेठजी दुकान पर चले गए। वह सुकृत की रकम जितने एक-दो घन्टे तक उस तिजोरी से बाहिर रही, उतने समय के व्याज को मिलाकर बीस हजार रुपये वापिस सुकृत की तिजोरी मे रख दिए ? भाई, सुकृत की रकम मे अपना और द्रव्य तो मिलाना, पर न उसमे से लेना ही चाहिए और न उसे अपने काम मे उपयोग करना चाहिए।

सेठजी के जीमकर दुकान चले जाने पर स्त्रियो के जीमने का नम्बर आया। तब सेठानीजी अपनी बहुओ को साथ मे लेकर भोजन करने को बैठी। पहिले यही रीति थी। यह घर मे सम्प और एकता बनाये रखने का एक मार्ग था। परन्तु आज तो न सासु बहुओ को साथ लेकर जीमने बैठती हैं और न बहुएँ उनकी मर्यादा रखती है। सब अपनी-अपनी गरज रखती हैं। यही कारण है कि घरो मे फूट बढ रही है और प्रेम घट रहा है।

हा, तो सेठानीजी अपनी बहुओ के साथ जब जीम रही थी, तभी कमरे के भीतर से किसी के छम-छम नाचने की आवाज आई। सेठानी ने बडी बहू से कहा—अरी, कमरा खोलकर तो देख, भीतर कौन नाच रहा है ? ज्यो ही उसने कमरे का द्वार खोल कर देखा तो उस शिलाको नाचते हुए पाया और उससे हीरे, पन्ने, मोती और माणिक को झरते हुए देखा। उसने यह बात आकर सेठानीजी से कही कि कमरे मे तो चमत्कार हो रहा है। सेठानी भी विस्मित होकर उठी और चमत्कार देखकर दग रह गई। कमरा बन्दकर वापिस जीमने लगी। जब खा-पीकर और चौका-पानी से निवृत्त हुई तो सेठानीजी ने झरोखे मे झाककर उस कमरे को पुन देखा तो वहा हीरे-पन्न का ढेर हो गया था। उन्होने नौकर भेजकर सेठजी को कहलाया कि दुकान से घर तुरन्त पधारे। नौकर की बात सुनकर सेठजी सोचने लगे—क्या बात है, जो कि मुझे असमय मे बुलाया ? मुनीम लोग क्या सोचेंगे कि सेठजी अभी आये थे और वापिस फिर चले गये। भाई, पहिले के लोग इस बात का पूरा ध्यान रखते थे और काम-काज के सिवाय घर पर नही जाते थे। तभी उनका कारोबार ठीक चलता था और घर की इज्जत भी रहती थी।

हां, तो सेठजी घर गए और सेठानीजी से बोले—आज असमय में कैसे बुलाया ? उसने कहा—यह क्या कौतुक आया है ? चलकर के देखो कि सारा कमरा रत्नों से भर गया है। उन्होंने जो जाकर देखा तो वे भी बड़े विस्मित हुए और उस कमरे को बन्द करके ताला लगाकर चाबी अपने साथ ले गये। सेठजी ने सोचा कि ऐसी चमत्कारी सुकृत की वस्तु को अपने घर में रखना ठीक नहीं है। यदि कभी किसी घर के व्यक्ति का मन चल जाय तो सारा घर बर्बाद हो जायगा। यह सोचकर शहर के बाहिर जो उनका बगीचा था उसमें एक बंगला बनवाया। उसके नीचे तलघर बनवाया और उसमें बीस-बीस हाथ लम्बे चौड़े कमरे बनवाये। जब बंगला बनकर तैयार हो गया, तब सेठजी ने वह लादी घर से उठाई और कपड़े में लपेट कर बगीचे में ले जाकर तलघर के एक कमरे में जाकर रख दी। वह शिला वहां भी नाच कर रत्न बिखेरने लगी। जब वह भर गया तो सेठजी ने उसे दूसरे में रख दी और इसे सील-मोहर लगाकर बन्दकर दिया। इस प्रकार दूसरे के भर जाने पर तीसरे में और तीसरे के भर-जाने पर चौथे में रख दी। और सब को सील-मोहर बन्द कर दिया और कमरों के बाहिर लिख दिया कि यह सम्पत्ति देश, जाति और धर्म में लगाई जावे और मेरे परिवार का कोई व्यक्ति इसे काम में नहीं लेवे।' यहां यह ज्ञातव्य है कि घर पर जो सुकृत का द्रव्य था और घर पर उस शिला के प्रभाव से जितना धन कमरे में भर गया था, वह भी उन्होंने बगीचे का मकान बनते ही उसके तलघर में डलवा दिया था।

भाइयो, उन सेठजी का नाम था सारंगशाह। वे जब तक जीवित रहे, उनका घर और परिवार भर-पूर रहे और उनका कारोबार खूब चलता रहा। परन्तु जैसे चक्रवर्ती के काल कर जाने पर उनका अपार वैभव भी उनके हजारों लडके नही सम्भाल पाते है और वह सब समाप्त हो जाता है, क्योंकि वह सब चक्रवर्ती के पुण्य से प्राप्त होता है, अतः उनके जाते ही वह वैभव भी चला जाता है। यही हाल सेठ सारंगशाह का हुआ। उनके स्वर्गवास होते ही कुछ दिनों में एक एक करके सब लड़के स्वर्गीय हो गए और कारोबार भी ठंडा रह गया। उनकी रकम लोग खा गये और इधर तो घर में गरीबी आई और उधर परिवार मे एक पोता, एक बहू और सेठानीजी ये तीन व्यक्ति ही बचे। भाई, जब दिन बुरे आते हैं, तो, सब ओर से विपत्तियां आती हैं। आचार्यों ने कहा है कि —

विपदो हि वीतपुण्यानां तिष्ठन्त्येव हि पृष्ठतः।

अर्थात्—जिनका पुण्य बीत जाता है, विपत्तियां उनके पीछे रहती हैं उन्हें कहीं से लाना नहीं पड़ता। संसार में सम्पत्तियां पुण्य की अनुगामिनी हैं और विपत्तियां पाप की सहचरी हैं।

अब सेठानी ने देखा कि दिन बदल गये है और जिस घर में हमने अमीरी के दिन देखे हैं तो उस घर में अब इस गिरी हालत में रहना ठीक नहीं। उनका चित्त भी वहां नही लगता था। अतः वे बहू और पोते को लेकर बगीचे के बंगले में चली गईं और वहीं धर्मध्यानपूर्वक अपना शेष जीवन-यापन करने लगी। नौकर-चाकरों का जो विशाल परिवार था, उसे छुट्टी दे दी। केवल दो-तीन परिचारिकाएँ भीतरी काम को रखीं और बंगले के पहरे वा बाहरी काम के लिए दो नौकर रखे। भाई, कहावत है कि यदि 'दाल जल भी जाय, तो भाजी बराबर फिर भी रहती है'। तदनुसार गरीबी आजाने पर भी उनके सीमित परिवार के निर्वाह के योग्य सम्पत्ति फिर भी शेष थी, सो सेठानीजी उससे अपनी गुजर करती हुई रहने लगी। इतनी अधिक दशा विगड़ने पर उन्होंने उस सुकृत के द्रव्य की ओर मन को नहीं चलाया—जब कि वे उसी के ऊपर रह रही थीं। पोते के पालन-पोषण और पढ़ाई-लिखाई का उन्होंने पूरा ध्यान रखा और धीरे-धीरे वह पढ़ लिखकर होशियार हो गया।

इन्हीं दिनों की बात है कि बादशाह की सभा में चर्चा चली कि दिल्ली में यह कहावत क्यों प्रसिद्ध है कि **'पहिले शाह और पीछे बादशाह।'** कहीं बादशाह भी किसी के पीछे होता है? अतः उसने वजीर को हुक्म दिया कि इस कहावत के प्रतिकूल यह हुक्म जारी कर दो कि आगे से यह कहा जाय कि **'पहिले बादशाह, पीछे शाह'**। वजीर ने कहा—जहांपनाह, दिल्ली में यह कहावत पीढ़ियों से चली आ रही है उसे बदलना अपने हाथ की बात नही है। यह तो जनता के हाथ की बात है। वह बदलेगी, तभी सभव है, अन्यथा नही। बादशाह ने कहा—अच्छा, शहर के सभी कौमों के खास-खास लोगों को बुलाया जाय। वजीर ने सबको बुलाया। जब वे लोग बादशाह का मुजरा करके बैठ गये तो बादशाह ने उनसे कहा—मैं यह कहावत बदलना चाहता हूं। सबने कहा—हुजूर, यह पुराने वक्त से चली आ रही है फिर इसे क्यों बदला जाय? फिर भी यदि आप बदलना ही चाहते हैं, तो जो लोग शाह पदवी के अधिकारी हैं, उन लोगों को बुलाकर कहा जाय। यदि वे लोग बदलना चाहें तो यह बदल सकते हैं। बादशाह ने दूसरे दिन शाह पदवी के धारकों को बुलाया और उनसे पूछा कि आपके पूर्वजों ने ऐसा क्या बड़ा काम किया है कि जिससे यह कहावत चली

कि 'पहिले शाह, पीछे बादशाह'। उन लोगों ने कहा—जहांपनाह, आपके और हमारे पूर्वज तो भगवान के प्यारे होगये हैं, सो हमें पता नहीं कि कैसे यह कहावत चली। परन्तु हम इतना निश्चित कह सकते है कि कोई भी कहावत अकारण नहीं चलती है। उसके मूल में कोई न कोई कारण अवश्य रहता है। उन लोगों ने (हमारे पूर्वजों ने) कभी कोई ऐसा ही शाही कार्य किया होगा, तभी तो यह कहावत चली। अकारण कैसे चल सकती थी। जब बादशाह ने देखा कि इसे बदलवाना सहज नहीं है तब उन्होंने एक तरकीब सोची और बोले—देखो, तुम लोग मेरे इस दीवान खाने के सामने इसी की ऊंचाई बराबर का एक रत्नों का 'कीर्तिस्तम्भ' बनवाकर एक माह में खड़ा कर दोगे तो वह कहावत रहेगी, अन्यथा खत्म कर दी जायगी। सब शाह लोग बादशाह की बात सुनकर और कीर्त्तिस्तम्भ के बनवाने की 'हां' भरकर अपने घरों को चले आये।

दूसरे दिन शाह-वंश के प्रमुख ने जाजम बिछवाई और सब शाह-लोगों को बुलवाकर पूछा आप लोग बादशाह की बात को सुन चुके हैं। अब बतलायें कि आप लोगों को 'शाह' की पदवी रखनी है, या नहीं रखनी है। सबने एक स्वर से कहा—हां, रखनी है। प्रमुख ने कहा—पदवी बातों से नहीं रहेगी। इसकेलिए आप लोगों को भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। सर्व लोग पुनः एक स्वर से बोले—जो कुछ भी चुकानी पड़ेगी, चुकायेंगे, पर पदवी नहीं जाने देंगे। तब प्रमुख ने कहा—अच्छा तो कागज-कलम उठाओ और अपनी अपनी रकम मांडो। सबने कहा—आपसे किसी की कोई बात छिपी नहीं है। आप जिसकी जो रकम मांडेंगे, वह सबको स्वीकार होगी। तब लिखनेवाले ने पूछा—पहिले किसके नाम की रकम मांडी जावे ? तब एक दूसरे का मुख देखने लगे। कोई किसी का नाम कहे और कोई किसी का नाम पहिले लिखने को कहे। सेठ सारंगशाह का वह मुनीम भी वहां उपस्थित था, जिसने वह शिला खरीदी थी और अब स्वयं लखपति बना बैठा था। उसने कहा—सबसे पहिले सेठ सारंगशाह के नाम की ओली मांडी जावेगी, पीछे औरों के नाम की मंडेगी। लोग बोले सारंगशाह तो दिवंगत हो चुके है। मुनीमजी बोले—उनका पोता तो मौजूद है और बगीचे मे अपनी दादी के साथ रहता है। लोग फिर बोले उसके पास रखा ही क्या है ? उसकी हालत तो बहुत कमजोर हो गई है। मुनीमजी बोले—कुछ भी हो, ओली तो सबसे ऊपर उनके नाम की ही मंडेगी, भले ही उनके यहां से पांच रुपये ही मिलें। जब उनकी यह हठ देखी तो लोगों ने कहा—चलो उनके पास। तब कुछ ने कहा—सबके जाने की क्या जरूरत है। आप पांच पंच लोग बग्घी में बैठकर चले जावें।

आखिर बग्घी मंगाई गई और पंच लोगों को लेकर मुनीम जी बगीचे में पहुंचे। दिन फिरने और सार-संभाल न रहने से बगीचा सूख गया था, एवं मरम्मत न हो सकने से बंगला की दीवालें भी जहां-तहां से फट रही थी। वहां की यह हालत देखकर पंच लोग सोचने लगे – यहां से क्या मिलनेवाला है? कहावत है कि 'बाई जी तो खालेवें, फिर बायना बाटें'? जब सेठ सारंगशाह जी की सेठानी बगीचे और बंगले की संभाल भी नहीं कर सकती है, तब यहां से क्या आशा की जा सकती है, इस प्रकार सोच-विचार करते हुए पंच लोग बग्घी से उतरे। मुनीमजी ने आगे बढ़कर पहरेदार से कहा—कुंवर साहब को खबर करो कि पंच लोग आये हैं। उसने जाकर कुंवर साहब से कहा। उसने दादी मां के पास जाकर कहा कि शहर से पंचलोग आये हैं। उसने कहा—जाओ, बैठक को साफ कराके उन्हें सत्कार पूर्वक बिठाओ और पूछो कि वे कैसे पधारे? कुंवर ने नौकर को बैठक साफ करने को कहा और स्वयं बंगले के बरामदे में आकर सबका स्वागत किया और बैठक में बैठाया। कुछ देर तक लोग कुंवर से कुशल-क्षेम की पूछते रहे और इधर उधर की चर्चा करते रहे। जब उनके आने का प्रयोजन कुंवर साहब ने पूछा—तभी भीतर से सेठानीने कहलवाया—सब लोग भोजन के लिए पधारें, रसोई तैयार है। पंचों ने कहा—हम जीमने नहीं आये हैं, काम करने आये हैं। नौकर ने जाकर यह बात सेठानीजी से कही। तब सेठानी ने कहा—पहिले आप लोगों को जीमना होगा। पीछे जिस काम से आप लोग आये हैं, वह होगा। सेठानी ने यह कहलाकर और थाली में सर्वप्रकार के भोज्य पदार्थ सजाकर बैठक में भिजवा दिये। पंच लोग थालों को आया देखकर मुनीम जी के आग्रह पर खाने लगे। जब सब लोग खा-पी चुके, तब मुनीम जी ने कुंवर साहब से पंचों के आने का प्रयोजन कहा। वे बोले—मैं मां साहब से पूछ कर आता हूं, वे जो कहेंगी, वही हाजिर कर दूंगा। यह कह कर वह भीतर गया और अपनी दादी मां से सारी बात कह सुनाई। तब उसने कहा—पंचों से जाकर कह दो कि जितने भी कीर्तिस्तम्भ खड़े करने हों उनकी पूरी रकम सारंगशाह के यहां से आजायगी। जब उसने यह बात पचों के सामने ज़ाकर के कही तब सब पंच लोग एक दूसरे का मुख देखने लगे। तब मुनीम जी कहते हैं कि आप लोग इधर-उधर क्या देखते हैं, पूरा खर्च सेठ सारंगशाह के यहां से आयेगा, कागज पर कलम मांडिये। तब पंच लोग बोले—मुनीमजी, सामने कुछ दिखे तो मांडें। यहां तो दीवालें ही उनकी परिस्थिति को बतला रही हैं, फिर ये कीर्तिस्तम्भ क्या बनवायेंगे? तब मुनीमजी ने भीतर कहलायाँ

कि मैं मिलने को आना चाहता हूं। भीतर से उत्तर आया—पधारिये। तब मुनीम साहब भीतर गये और सारी बात सेठानी जी से कही और बताया कि जब रकम मांडने का नम्बर आया तो मैंने कहा कि सबसे पहिले सेठ सारंगशाह का नाम मंड़ेगा। इसलिए आप जो भी रकम चाहें वह लिखा दीजिए। तब सेठानी ने कहा—मैंने कुंवर साहब से कहला दिया है न कि जितनी रकम लगेगी, वह यहां से मिल जायगी। उन्होंने कहा—आपके कहलाने पर पंच लोग शंकित दृष्टि से इधर-उधर देख रहे हैं? तब सेठानी ने कहा—आप पंच लोगों को लेकर कुंवर साहब के साथ तलघर में पधारें और जितनी भी रकम चाहिए हो, उसमें से निकाल लीजिए और गाड़ियां भर कर ले जाइये। सेठानी ने मनमें सोचा कि यह धन हमें अपने काम में तो लेना नहीं है और सेठ साहब अपने सामने ही तलघर पर लिखा कर गये हैं कि जब भी देश, जाति और धर्म पर संकट पड़े, तभी इसे काम में लिया जाये। तब वह नौकर को साथ लेकर और गेंती-फावड़ा मंगाकर सब पंचों के सामने द्वार की चिनाई को तुड़वाया। सबसे पहिले वह शिला निकली जिस पर सेठजी ने अपने ही हाथ से उक्त बात लिखी थी। फिर उसके हटाते ही भीतर चमकते हुए हीरे पन्ने और मोती माणिक के ढेर के ढेर दिखाई दिये। तभी मुनीमजी ने पंचों से कहा—ऐसे ऐसे चार तलघर भरे हुए हैं। यह सुनते ही पंच लोग अवाक् रह गये और सब हर्षित नेत्रों से एक दूसरे की ओर देखने लगे। फिर बोले—अब हमारी शाह पदवी को कोई नहीं छुड़ा सकता। पंचों के कहने से तलघर वापिस चुनवा दिया गया और उसके ऊपर पहिरेदार बिठा दिये गये।

अब पंच लोग सारंगशाह के नाम पर, पूरी रकम चढ़ाकर और उनका गुण-गान करते और हर्षित होते हुए बादशाह के पास पहुंचे और कहा—जहापनाह, सर्व प्रकार के रत्न और जवाहिरात तैयार हैं, हुक्म दीजिये कि कीर्त्तिस्तम्भ कहां पर बनाया जावे। यह सुनकर बादशाह बड़ा चकित हुआ और मुस्कराते हुये बोला—आप लोगों ने भंग तो नहीं पी रखी है। ऐसा कौन-सा बादशाह है जो रत्न-और जवाहिरात से कीर्त्तिस्तम्भ बनवा सकता है। तब पंचों ने कहा—हुजूर हमारे एक सारंगशाह ही अनेक कीर्त्तिस्तम्भ बनवा सकते हैं, दूसरों की तो बात ही दूर है। तब बादशाह बोले—कीर्त्तिस्तम्भ बनाने का स्थान तो पीछे बताऊंगा। पहिले आप लोग रकम दिखाइये। तब पंचों ने कहा—हुजूर पधारिये। तब बादशाह अपने वजीर और अनेक अमीर-उमराव लोगों को साथ लेकर चले और पंच लोग उन्हें लेकर सारंग-

शाह के बंगले पर पहुँचे। मुनीमजी ने नौकर से गेंती-फावड़ा मंगाकर और तलघर का द्वार खुलवा करके बादशाह को रत्नों के ढेर दिखाये। बादशाह एक ही शाह के घर में रत्नो के ढेर देखकर बड़ा चकित हुआ कि जो बाहिर से साधारण सा घर दिखता है, उसके भीतर इतनी अपार सम्पत्ति है, तब औरों के पास कितनी नहीं होगी ? फिर पंचों से कहा—भाई. मुझे कोई कीर्त्तिस्तम्भ नहीं बनवाना है। परन्तु मुझे तो पानी देखना था, सो आज अपनी नजर से प्रत्यक्ष देख लिया है। पंचों ने बादशाह को बतलाया कि यह सब धन-माल सारंगशाह जी का है। इसमें से एक कौड़ी भी उनके काम नही आती है। सेठ सारंगशाह जी इसे धर्मार्थ सौंप गये है और अपने हाथ से लिख गये हैं कि जब भी देश, जाति और धर्म पर संकट आवे, तभी इसे काम में लिया जावे, अन्य कार्य में नहीं लगाई जाये। इसलिये हुजूर जब भी कोई संकट देश पर आया देखें, तब इसे काम में ले सकते हैं। यह सुन कर बादशाह आनन्द से गद्‌गद हो गये और हृदय प्रसन्नता से तर हो गया। बादशाह यह कह कर चले गये कि ठीक है, इस तलघर को बन्द करा दो और जब देश पर कोई संकट आयगा, तब इसका उपयोग किया जायगा। पंच लोग भी हर्षित होते हुये अपने घर चले गये और सारंगशाह का जय-जय कार करते गये।

सब के चले जाने पर मुनीमजी ने कहा—सेठानी साहब ! आप आज्ञा देवें तो फिर कारोबार शुरू किया जावे, क्योंकि अब कुंवर साहब भी काम संभालने योग्य हो गये हैं। तत्पश्चात् सेठानी जी के कहने से मुनीम जी ने फिर उनका कारोबार शुरू किया और पुण्योदय ने साथ दिया कि कुछ दिन में उनके घर में आनन्द ही आनन्द हो गया। और कारोबार भी पूर्व के समान चलने लगा। उनके पोते का नाम था विजयशाह।

भाइयो, कहने का यह मतलब है कि मनुष्य को अपनी नीति और नीयत सदा साफ रखना चाहिए। यदि कदाचित् मन कभी चल-विचल हो तो उसे ज्ञान के अंकुश से वश में रखना चाहिए। नीति-विरुद्ध कभी कोई काम नहीं करना चाहिए। नीति से चलने वालों पर पहिले तो कभी कोई संकट आता ही नहीं है और यदि पूर्व-पापोदय से आ भी जाय, तो वह जल्दी ही दूर हो जाता है। जो पुरुष व्यवहार और व्यापार तो नीति-विरुद्ध करते है और समाज मे अपना पाप छिपाने के लिए दिखाऊ त्याग और तपस्या करते हैं, उनके वह सब करना बेकार है। आज कितने ही स्थानों पर ऐसे प्रमुख लोग देखे जाते हैं जो अपने को समाज का मुखिया कहते है और स्थानक, उपाश्रय

आदि की चल अचल सम्पत्ति पर कब्जा किये बैठे है। और समाज के मागने पर देना तो दूर रहा—हिसाब तक नही बतलाते है। आपके इसी जोधपुर मे पहिले कितने उपाश्रय और स्थानक थे। पर लोग उन्हे हजम कर गये। बादशाह की ओर से पर्युषण पर्व मे हिंसाबन्दी आदि के परवाने जिन्हे सौंप गये थे उन्होने और उनके उत्तराधिकारियो ने समाज के मागने पर भी नही दिये और वे सब नष्ट हो गय। ऐसे लोग जहा भी और जिस भी काम म हाथ डालेगे, वही बटाढार होगा। और भी देखो—आपके पूर्वजो ने ये उपाश्राय और स्थानक किसलिए बनाये थे? इसीलिए कि लोग निराकुलता पूर्वक यहा बैठकर सामायिक करे, पोसा करें और स्वाध्याय-ध्यान करे। परन्तु आज लोग इन्हे भी अपने काम मे लेने लगे है और इनमे बारात तक ठहरान लगे हैं और खान पान के अनेक आरम्भ-समारम्भ भी प्रारम्भ कर दिये है। यदि कोई उन्हे रोकता ह तो लडने को तैयार हो जाते हैं। भाई, ऐसी अनीति करने वाले लोग क्या फल-फूल सकते है? कभी नही। कहा हे—

अन्यायोपार्जित वित्त दश वर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते त्वेकादशे वर्षे समूल च विनश्यति॥

अर्थात्—अन्याय से उपार्जन किया हुआ धन दश वर्ष तक ठहरता है और ग्यारहवे वर्ष मे गाठ का भी लेकर विनष्ट हो जाता है। वह स्थायी नही रहता।

बन्धुओ, भगवान ने तो यह उपदेश दिया है कि जो महापाप के स्थान है, उन्ह पहिले छोडो। पीछे त्याग और तपस्या करो। परन्तु आज भगवान के भक्त पापस्थान तो कोई छोडना नही चाहत है और अपना बडप्पन दिखान और दुनिया की आखा मे धूल झोकने के लिए त्याग और तपस्या का ढोग करते हैं। भाई, ऐसा करना महा मायाचार है। इससे तिर्यग्गति का ही आस्रव होता है और अनेक जन्मो तक पशु पर्याय के महादुःख भोगना पडते है।

आप लोग देख कि हिन्दु और जैनियो के कितने मन्दिर हैं, ईसाइयो क कितन गिरजाघर हैं और मुसलमानो की कितनी मस्जिदे हैं। पर कही आपने देखा कि किसी न उन्हे बेचा हो या किराये पर दी हो? कही भी ऐसा नही देखेगे। वे लोग नयी तो बनाते हैं, पर पुरानी को बेचते नही है। न कभी कोई मन्दिर या मस्जिद को गिरवी ही रखता है। इसलिए इस ओर भी आपको ध्यान देना चाहिए और न अपने काम मे लेना चाहिए, न किराये पर ही देना चाहिए न गिरवी ही रखना चाहिए। इसी प्रकार देवद्रव्य, सुकृत का

द्रव्य और धर्मादे का द्रव्य भी अपने काम में नहीं लेना चाहिए। क्या आपने कभी यह विचार किया है कि हिन्दुओं के मन्दिर में जाने पर प्रसाद दिया जाता है। परन्तु जैन मन्दिरों में जाने पर क्यों नहीं दिया जाता है? इसका कारण यही है कि देव द्रव्य हमारे काम की वस्तु नहीं है, वह निर्माल्य है। तीर्थ क्षेत्रों पर जो भाता दिया जाता है, वह भी मन्दिरों में या क्षेत्र के ऊपर नहीं दिया जाता है। किन्तु उस स्थान से बाहिर ही दिया जाता है। जिन लोगों ने यह व्यवस्था प्रचलित की है, उनका अभिप्राय यही रहा है कि तीर्थ यात्रा से थका और भूखा-प्यासा व्यक्ति सुख-साता पावे। उन्होंने उस द्रव्य को इसी उद्देश्य से संकल्प करके दिया हुआ है और जो यात्री खाते हैं वे भी उसमें कुछ न कुछ रकम जमा ही करा आते हैं। वैष्णवों में दीवाली पर अन्न-कूट करते है। और फिर वे स्वयं ही काम में लेते हैं। मन्दिरमार्गी दि० जैनों में भी निर्वाणोत्सव पर मन्दिरों में लाडू चढ़ाये जाते हैं, पर वे उसे काम में नहीं लेते हैं। भाई, दान द्रव्य को अपने काम में नहीं लेना चाहिए, यही इसका रहस्य है। आप भी यह करेंगे तो सदा आनन्द रहेगा।

वि० सं० २०२७ कार्तिक शुक्ला ८
जोधपुर

२४ | सफलता का मूलमंत्र: आस्था

आस्था का अर्थ

भाइयो, आस्था नाम श्रद्धा, निष्ठा, दृढ़प्रतीति या विश्वास का है। आस्था के पूर्व मनुष्य को यह ज्ञान होना आवश्यक है कि यह वस्तु मेरे लिए हितकारी है, या नहीं ? संसार में चार प्रकार की वस्तुएँ होती हैं—एक तो वह जो अच्छी तो है, पर अपने काम की नहीं है। दूसरी वह जो अपने काम की है, पर अच्छी नहीं है। तीसरी वह जो अच्छी भी है और काम की भी है और चौथी वह जो न अच्छी है और न अपने काम की ही है। जैसे—साधु के पात्र आदि उपकरण अच्छे हैं, पर गृहस्थ के काम के नहीं हैं। इसी प्रकार गृहस्थ के बाग-बगीचे और जर-जेवर अच्छे तो हैं किन्तु साधु के लिए वे काम के नहीं है। जिसकी प्रकृति उष्ण है, उसके लिए केशर-कस्तूरी अच्छी होते हुए भी काम की नही हैं। दही, मक्खन, मिश्री आदि अच्छे होते हुए भी वातप्रकृति वाले के लिए काम के नही है। दूसरी वस्तु अपने काम की तो है, परन्तु अच्छी नही है। जैसे—नीम के पत्ते, गिलोय और चिरायता आदि काम के तो हैं, क्योंकि ये ज्वरादि को दूर करते हैं, परन्तु कड़ुए होने से अच्छे नहीं हैं। तीसरी वस्तु ऐसी है जो काम की भी है और अच्छी भी है। जैसे—भूखे व्यक्ति के लिए मनचाहा भोजन और शीत से पीड़ित के लिए गरम कपड़े। चौथी वस्तु ऐसी है जो अच्छी भी नही है और काम की भी नहीं है। जैसे—जहर। अब इन चार प्रकार की चीजों में से हमारे लिए कौन सी वस्तु उप-

योगी है, इसका निर्णय करके हमें उस पर आस्था करनी चाहिए, फिर उससे चल-विचल नहीं होना चाहिए। ऐसी दृढ़प्रतीति और श्रद्धा का नाम ही आस्था है। कहा भी है—

इदमेवेदृशमेव तत्त्वं नान्यन्नैचान्यथा।
इत्यकम्पाऽऽयसाम्भोवत्सन्मार्गेऽसशयारुचिः॥

अर्थात्--तत्त्व का स्वरूप यही है, ऐसा ही है, जैसा कि जिनेन्द्र देवने कहा है। उससे विपरीत अन्य कोई वास्तविक स्वरूप नहीं है, और न अन्यथा हो सकता है। ऐसी दृढ प्रतीति का नाम ही श्रद्धा या आस्था है। जैसे तलवार की धार पर चढा पानी दृढ रहता है उससे अलग नहीं होता उसी प्रकार दृढ़ श्रद्धा से जिसका मन इधर-उधर नहीं होता है, उसे ही आस्था कहते हैं। यह पारमार्थिक आस्था है।

लौकिक आस्था

दूसरी लौकिक आस्था होती है। जैसे—सज्जन की सज्जन के ऊपर, पड़ौसी की पड़ौसी के ऊपर और मित्र की मित्र के ऊपर। कोई पुरुष सत्यवादी है, तो हमारी उस पर आस्था है— भले ही वह हमारा शत्रु ही क्यों न हो। किसी की आस्था ज्योतिषी पर होती है कि वह जो भविष्य फल कहेगा, वह सत्य होगा। किसी की आस्था वैद्य पर होती है कि उसके इलाज से मुझे अवश्य लाभ होगा।

मूलदेव एक राजकुमार था। उसे दान देने मे आनन्द आता था। उसकी दान देने की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ने लगी तो उसके पिता को—जो कि एक बड़े राज्य का स्वामी था—यह अच्छा नहीं लगा। भाई, कृपण को दाता पुरुष से, मूर्ख को विद्वान से, चोर को साहूकार से, पापी को धर्मात्मा से, दुराचारी को सदाचारी से और वेश्या या व्यभिचारिणी स्त्री को सदाचारिणी और ब्रह्मचारिणी स्त्री से ईर्ष्या होती है। इन लोगों का परस्पर मे मेल-मिलाप या प्रेम नहीं होता।

हां, तो जब राजकुमार मूलदेव की अपने पिता से अनबन रहने लगी तो वह एक दिन घर छोड़कर बाहिर चला गया। चलते-चलते वह जंगल में पहुंचा। वहां पर एक साधु का आश्रम दिखाई दिया। वह थककर चूर-चूर हो रहा था, अतः उसने वहीं पर विश्राम करने का विचार किया। क्यूंकि सूर्यास्त हो रहा था—अतः उसने उस आश्रम के साधु से निवेदन किया कि बाबाजी ! मैं रात भर यहां ठहर सकता हूं ? उस साधु ने कहा—आप सहर्ष ठहर सकते

हैं। उस आश्रम में साधु का एक चेला भी था। उसके साथ बातचीत करते हुए मूलदेव सो गया। रात को दोनों ने स्वप्न में देखा कि आकाश से उतरता हुआ पूर्णमासी का चन्द्रमा आया और मेरे मुख द्वार से पेट में चला गया है। प्रातः काल होने पर चेले ने गुरु से अपना स्वप्न कहकर उसका फल पूछा। गुरु ने कहा— आज तुझे भिक्षा में एक बड़ा गोल रोट मिलेगा। मूलदेव भी वहीं बैठा हुआ सुन रहा था। उसे स्वप्न का फल जंचा नहीं, अत. उसने उनसे पूछना उचित नहीं समझा। भाई, स्वप्नादि का फल तो उस स्वप्न शास्त्र के वेत्ता अधिकारी व्यक्ति से ही पूछना चाहिए। यदि ऐसा कोई अधिकारी ज्योतिषी न मिले तो गाय के कान में कह देना चाहिए और यदि वह भी समय पर नहीं मिले तो जगल मे जाकर बोल देना चाहिए। परन्तु अजान, अभागी और पुण्यहीन व्यक्ति से नहीं कहना चाहिए, अन्यथा यथेष्ट फल नहीं मिलता है। तथा स्वप्नशास्त्र में यह भी लिखा है कि स्वप्न आने के बाद फिर नहीं सोना चाहिए। यह विचार कर मूलदेव ने अपने स्वप्न का फल उस साधु से नहीं पूछा और वहाँ से चल दिया।

भाइयो, स्वप्न एक निमित्तज्ञान है। निमित्तज्ञान के आठ भेद शास्त्रों में बतलाये हैं। यथा—

अष्टौ महानिमित्तानि—अन्तरिक्ष-भौम-अंग-स्वर-व्यञ्जन-लक्षण-छिन्न-स्वप्न नामानि।

शुभाशुभ फल के सूचक ये आठ निमित्त हैं— अन्तरिक्ष-भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, छिन्न और स्वप्न। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्रादि उदय-अस्त आदि के द्वारा भूत-भविष्य काल की बात को जानना अन्तरिक्ष निमित्तज्ञान है। पृथ्वी के स्निग्धता-रुक्षता, सघनता-सछिद्रता आदि को देखकर भूमि में छिपे हुए धनादि को जानना, भूकम्प आदि से जय-पराजय और हानि-वृद्धि को जानना भौम-निमित्त ज्ञान है। स्त्री-पुरुषादि के अंग-उपांगों को देखकर और उनको छूकर उनके सौभाग्य-दुर्भाग्य को जानना अंग निमित्तज्ञान है। मनुष्य और पशु-पक्षियों के अक्षर-अनक्षररूप शब्दों को सुनकर शुभ-अशुभ को जानना स्वर-स्वप्नज्ञान है। मस्तक, गला, मुख आदि पर तिल-मसा आदि को देखकर उस व्यक्ति के हित-अहित रूप प्रवृत्ति को जानना व्यंजन निमित्तज्ञान है। शरीर में श्रीवत्स, स्वस्तिक, शंख, चक्र आदि शुभ चिन्हों को देखकर उसकी महानता और अशुभ चिन्हों को देखकर उसकी हीनता को जानना लक्षण निमित्तज्ञान है। वस्त्र, छत्र, आसन आदि को चूहे आदि से कटा हुआ देखकर भावी अरिष्ट को, उपद्रव या संकट को जानना छिन्न निमित्तज्ञान है। स्वप्नो के

शुभाशुभ फल को जानना स्वप्न निमित्तज्ञान है। स्वप्न दो प्रकार के होते हैं— सफल और निष्फल। शरीर में वात पित्तादि के विकार होने पर आनेवाले स्वप्न निष्फल होते हैं। किन्तु जब शरीर में वात-पित्तादि का कोई भी विकार नहीं हो उस समय देखे हुए स्वप्न फल देते हैं। रात्रि के विभिन्न समयों में देखें गये स्वप्न विभिन्न समयों मे फल देते हैं। स्वप्नशास्त्र में ७२ प्रकार के स्वप्न बतलाये गये हैं। उनमें ३० उत्तम् जाति के महास्वप्न माने गये हैं। उनमें से गज, वृषभ आदि चौदह महास्वप्नों को तीर्थंकर और चक्रवर्ती की माताएं देखतीं हैं, सात को नारायण की माताएं, चार को बलभद्र की माताएं और किसी एक को मांडलिक राजा की माताएं देखती हैं। शेष ४२ स्वप्न साधारण माने जाते हैं। उनमें से कुछ तो ऐसे हैं कि देखने में बुरे प्रतीत होते हैं, परन्तु उनका फल उत्तम होता है। जैसे यदि कोई स्वप्न देखे कि मैं विष्टा में गिर पड़ा हूं और मल लिप्त हो रहा हूं तो ऐसे स्वप्न का फल राज्य-प्राप्ति एवं धन-ऐश्वर्य लाभ आदि बतलाया गया है। कुछ ऐसे भी स्वप्न होते हैं जो देखने और सुनने में तो अच्छे मालूम पड़ते हैं, परन्तु उनका फल बुरा होता है। जैसे कि स्वप्न में स्नान करता हुआ अपने को देखे, दूसरे के द्वारा अपने को माला पहिरायी जाती हुई देखे तो इसका फल मरण या संकट आना आदि बतलाया गया है। पहिले लोग इन सर्व प्रकार के निमित्तों के ज्ञाता होते थे और साधुओं को विशिष्ट तपस्या के कारण अष्टाङ्ग महानिमित्त का ज्ञान तथा ऋद्धि सिद्धि की प्राप्ति हो जाती थी। तभी तो शास्त्रों में **'णमो अट्ठंग महानिमित्त कुसलाणं'** अर्थात् 'अष्टांग महानिमित्त शास्त्र में कुशल साधुओं को मेरा नमस्कार हो' ऐसे मंत्र वाक्य पाये जाते हैं, और दैनिक स्तोत्रों में भी ऐसे पाठ मिलते हैं—

प्रवादिनोऽष्टाङ्गनिमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासु परमर्षयो नः।

अर्थात्—अष्टांग निमित्तों के जानने वाले प्रवादी परम ऋषिगण हमारा कल्याण करें।

आज लोगों की इन बातों पर आस्था नहीं है और वे कहते हैं कि ये सब झूठ हैं। परन्तु भाई, यथार्थ में बात ऐसी नहीं है। ये सब निमित्तशास्त्रोक्त बातें सत्य है! परन्तु सूक्ष्मता से उनका ज्ञान आज विरले लोगों में पाया जाता है। अधिकांश लोग पल्लवग्राही पांडित्य वाले होते हैं, सो उनकी भविष्यवाणी झूठी निकल जाती है, या शुभाशुभ जैसा वे फल बतलाते है, वह मिथ्या सिद्ध होता जाता है, सो यह शास्त्र का दोष नहीं, किन्तु अधूरे अध्ययन का फल है।

ज्ञान का सम्मान

पुराने जमाने में निमित्त विद्या का प्रसार था और लोग ज्योतिष और निमित्तशास्त्र को पूर्ण रूप से अधिकारी गुरु से पढ़ते थे। तब उनका शुभा-शुभ फल-कथन सत्य सिद्ध होता था। आजकल प्रथम तो इस ज्योतिष विद्या के विशिष्ट अभ्यासी व्यक्ति ही नहीं है। जो कुछ थोड़े से जहां कहीं हैं, तो लोग उनके परिश्रम का समुचित मूल्यांकन भी नही करते हैं। कितने ही लोग मुफ्त में ही विना कुछ दिये लग्न आदि को पूछने पहुँचते हैं। ऐसे लोग यह भी नहीं सोचते हैं कि ज्योतिषी के इसके सिवाय आमदनी का और कोई धन्धा नहीं है, फिर हम मुफ्त में क्यों पूछें! ज्योतिषी भी देखते हैं कि यह खाली हाथ ही पूछने आया है, तो वे भी उसे यों ही चलता हुआ सा लग्न समय आदि बतला देते हैं। आप लोग मुकद्दमे आदि के बावत वकील से सलाह लेने को जाते हैं तो उसे भी भरपूर फीस देते हैं। पर जिस लड़के या लडकी के विवाह-सम्बन्ध की लग्न पूछने जाते हैं, जिसका कि सम्बन्ध दोनों के जीवन भर के सुख-दुःख से है, जिनके विवाह में आप हजारों और लाखों रुपये खर्च करते है अनर्थक कार्यों में पैसा पानी की तरह बहाते हैं, उसी का लग्न निकलवाने में ज्योतिषी को कुछ भी नहीं देना चाहते, या सवा रुपया में ही काम निकालना चाहते हैं। भाई, चाहिए तो यह कि आप ज्योतिषी से कहें कि आप लड़के और लड़की दोनों की कुंडलियों को देखें कि वे शुद्ध और सही है, या नहीं? यदि अशुद्ध हो तो उसे जन्म समय बताकर शुद्ध करके मिलान करके लग्न निकालने के लिए कहिये और साथ में कहिये कि आपकी समुचित सेवा की जायगी। हम आपको भरपूर पारिश्रमिक भेंट करेंगे। आपके ऐसा कहने पर ही ज्योतिषी समुचित परिश्रम करके ठीक लग्न बतायगा और यदि किसी के क्रूर ग्रह होने से मेल नहीं बैठता होगा, तो वह मना भी कर देगा। पर यह तभी संभव है जबकि आप उसे भरपूर पारिश्रमिक भेंट करें। आज लोग सवा रुपया और नारियल देकर ही सारे जीवन की मंगल-कामना के प्रश्न पूछते है, तो भाई, वे भी चलता उत्तर दे देते हैं। आप जितना दोगे, वे उतनी ही मेहनत करेंगे।

सिवाने में भरतविजय नाम के गुरांसा थे। उनके पास लाख-दो लाख की पूंजी भी थी। फिर भी लोभ अधिक था किन्तु ज्योतिषी बहुत ऊंची श्रेणी के थे। जब कोई व्यक्ति उनके पास विवाह की लग्न निकलवाने जाता, तो वे पूछते थे कि कितनेवाला लग्न देखना है—सवा रुपये वाली या कुछ और अधिक की। वे एक लग्न देखने के पच्चीस रुपये लेते थे। उन्हें यदि

लग्न ठीक जंच जाती तो रुपये लेते, अन्यथा वापिस कर देते थे। और साफ कह देते थे कि मेरे पास लग्न का मुहूर्त नही है। वे विवाह की लग्न ऐसी निकालते थे कि कभी कहीं पर भी बारह वर्ष से पहिले विधुर या विधवा होने का सुनने मे नहीं आया। उनके चार शिष्य थे, उन्होने अपनी विद्या किसी को नही पढायी। जब उनसे किसी ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि अपात्रों को ऐसी विद्या देना उसे बदनाम कराना है। वे प्रायः कहा करते थे कि

'व्यर्यस्त्वपात्रे व्ययः' अर्थात् अपात्र को पढ़ाने मे समय का व्यय करना व्यर्थ है। जब उत्तम विद्या सुयोग्य पात्र को दी जाती है तो वह यश-वर्धक होती है अन्यथा अपयश और अपमान का कारण होती है। जब योग्य पात्र को विद्या दी जाती थी, तभी योग्य विद्वान् पैदा होते थे।

> ठाली बात करे सब आय के देन की वात करे नहीं कोई।
> पूछत आगम ज्योतिष वैदिक पुस्तक काढ कहो हम जोइ।
> काम कहो हम है तुम सेवक आरत के वस बोलत सोइ।
> दिल ठरे तो दुवा फुरे 'केसव, मुंहरी बात से काम न होई ॥१॥

हां, तो वह मूलदेव उस आश्रम से चल करके किसी बड़े नगर मे पंडितों के मुहल्ले मे पहुंचा। उसने लोगो से पूछा कि यहाँ सर्वोत्तम ज्योतिषी कौन है? लोगो ने जिसका नाम बताया उसका पता-ठिकाना पूछता हुआ वह उसके घर पर पहुंचा। वहा पर अनेक लोग अपने अपने प्रश्न पूछने के लिए बैठे हुए थे और ज्योतिषी जी नम्बर वार उत्तर देकर रवाना करते जाते थे। उनकी आकृति और भाव-भंगिमा से मूलदेव को भी विश्वास हो गया कि ये उत्तम ज्योतिषी है। अतः वह भी उन्हें नमस्कार करके यथास्थान बैठ गया। जब अन्य सब लोग चले गये और इसका नम्बर आया तो इसके पास भेंट करने को कुछ भी नहीं था। और यह जानता था कि -

'रिक्तपाणिर्न पश्येद् राजानं देवतां गुरुम्'

अर्थात् खाली हाथ राजा, देवता और गुरु के पास नहीं जाना चाहिए। इस मर्यादा के अनुसार उसने अपने हाथ मे पहिनी हुई हीरा की अगूठी उनको भेंट की और उनके चरण-स्पर्श करके विनयावनत होके बैठ गया। ज्योतिषी ने पहिले तो आगन्तुक का मुख देखा, पीछे अंगूठी की ओर दृष्टि डाली। फिर पूछा—कहिये, आपको क्या पूछना है? उसने अपना रात्रि मे आया हुआ

स्वप्न कह सुनाया । स्वप्न सुनकर ज्योतिषी ने कहा—आप दूर से आये और थके हुए प्रतीत होते हैं और भोजन का समय भी हो रहा है । अतः पहिले आप स्नान कीजिए और भोजन करके विश्राम कीजिए । तत्पश्चात् आपके स्वप्न का फल बतलाऊंगा । मूलदेव भी कल से भूखा और थका हुआ था । अतः ज्योतिषी के आग्रह को देखकर नहाया-धोया । पंडितजी ने पहिनने के लिए धुले हुए दूसरे वस्त्र दिये और अपने साथ बैठा कर प्रेम से उत्तम भोजन कराया और उसे विश्राम के लिए कहकर स्वयं भी विश्राम करने के लिए चले गये । तीसरे पहर पंडितजी अपनी बैठक में आये और मूलदेव भी हाथ-मुंह धोकर उनके पास जा पहुंचा । पंडित जी ने पूछा-- कुंवर साहब, आप स्वप्न का फल पूछने को आये हैं, अथवा मेरी परीक्षा करने के लिए आये है ? यदि स्वप्न का ही फल पूछने को आये हैं, तो मैं जो बातें कहूं, उसे स्वीकार करना होगा । मूलदेव ने उनकी बात स्वीकार की । पंडितजी बोले—तो मैं स्वप्न का फल पीछे कहूंगा । पहिले आप मेरी सुपुत्री के साथ शादी करना स्वीकार करो । यह सुनकर मूलदेव ने कहा—पंडितजी, मेरा कोई ठिकाना नहीं है और आप शादी स्वीकार करने की कह रहे हैं, यह कैसे संभव होगा । पंडितजी बोले—आप इसकी चिन्ता मत कीजिए । मूलदेव ने भी सोचा कि जब लक्ष्मी आ रही हैं, तब मैं भी क्यों इनकार करूं । प्रकट में बोला आपकी आज्ञा स्वीकार है । तब पंडितजी ने कहा—आपके स्वप्न का फल यह है कि आपको सात दिन के बाद इसी नगर का राज्य प्राप्त होगा । यह कहकर उन्होंने सर्व तैयारी करके गोधूलि की शुभवेला में मूलदेव के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया और वह भी जामाता बन कर सुख से उनके घर रहने लगा ।

भाइयो, सात दिन पीछे अकस्मात् नगर के राजा का स्वर्गवास होगया । उनके कोई सन्तान नहीं थी । वंशज अनेक थे । पर उनमें से किसी एक को राजा बनाने पर युद्ध की आशंका से मंत्री और सरदार लोगों ने मिलकर यह निश्चय किया कि हथिनी के ऊपर नगारा रखा कर, मस्तक पर जल-भरा सुवर्ण कलश रख कर और सूंड में पुष्पमाला देकर नगर में नगारा बजवाते हुए यह घोषणा करायी जाय कि यह हथिनी जिसके गले में यह पुष्पमाला पहिनायेगी और सुवर्ण-कलश से जिसका अभिषेक करेगी, वही व्यक्ति राज्य का उत्तराधिकारी होगा । अब हथिनी नगर में घूमने लगी । उसके पीछे राज्य के प्रमुख अधिकारी गण भी पूरे लवाजमे के साथ घूमने लगे । एक-एक करके सभी मोहल्लों के घरों के सामने से हथिनी निकलती चली गई, पर उसने

किसी के गले में माला नहीं पहिनायी। कितने ही उम्मेदवार देवी-देवताओं की मनौती करते हुए सामने आये, पर हथिनी के आगे बढ़ने पर अपने भाग्य को कोसते रह गये। कहा है—

> पग बिन कटे न पंथ, बांह बिन हरे न दुर्जन।
> तप बिन मिले न राज्य, भाग्य बिन मिले न सज्जन।
> गुरु बिन मिले न ज्ञान, द्रव्य बिन मिले न आदर।
> ताप बिना नहीं मेह, मेह बिन लवै न दर्दुर।
> विप्रन राम कहै शाह वचन बोल अगर पीछा फीरे।
> धग धग उन जीव को मन मिलाय अंतर करे॥

भाई, बिना पूर्व जन्म की तपस्या के राज्य नहीं मिलता है। जिसने दान दिया है तपस्या की है, उसे ही राज्य लक्ष्मी मिला करती है।

हां, तो वह हथिनी घूमते-घूमते अन्त में पंडितों के मुहल्ले में गई। वहां उस ज्योतिषी जी के मकान के बाहिर चबूतरे पर मूलदेव अपने मित्रों के साथ बैठे हुए थे। हथिनी ने इनकी ओर देखा और गले में माला पहिना करके मस्तक पर से सुवर्ण कलश उठाकर उनका अभिषेक कर दिया। इसी समय आकाश-वाणी हुई कि यह राजा नगर-निवासियों के लिए आनन्द-वर्धक होगा। राज्य के अधिकारियों ने सामने आकर उनका अभिनन्दन किया और सन्मान के साथ हथिनी पर बैठाकर राज-भवन ले गये। वहां पर उन्हें राजतिलक करके राजगादी पर बैठाया और तत्पश्चात् मृत राजा का अन्तिम संस्कार किया। बारह दिन बीतने के बाद समारोह के साथ राज्यगादी की पूरी रश्में अदा कर दी गई। और मूलदेव राजा बनकर आनन्द से रहने लगा।

भाइयो, इस कथानक के कहने का अभिप्राय यह है कि मूलदेव को प्रथम तो यह आस्था थी कि मैं जो दान देता हूं सो उत्तम कार्य कर रहा हूँ। यदि मेरे पिता दान देने से रुष्ट होकर मुझे रोकते हैं, तो मैं इस सत्कार्य को नहीं छोड़ूगा। दूसरे जब उसे स्वप्न आया तो यह आस्था थी कि यह शुभ स्वप्न है, अतः अवश्य ही उत्तम फल देगा। तीसरी यह आस्था थी कि सच्चे ज्योतिषी के वचन कभी अन्यथा नहीं होते, अतः योग्य ज्योतिषी से ही इसका फल पूछना चाहिए।

जिनवचन पर आस्था

बन्धुओ, इसी प्रकार आप लोगों की भी आस्था भगवान के वचनों पर होनी चाहिए कि भगवान ने मुक्ति का मार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्-

चारित्र को बताया है। इसके विपरीत सभी संसार के कारण है। सच्चा धर्म तो ये तीन रत्न ही हैं। कहा भी है—

सद्दृष्टि-ज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीय प्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः॥

अर्थात् धर्म के ईश्वर तीर्थंकर देवों ने सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र को सत्य धर्म कहा है। इनके विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चारित्र संसार के कारण हैं। ऐसी जिसके दृढ़ आस्था होती है, वही व्यक्ति भवसागर से पार होता है।

भाइयो, भौतिक कार्यो के करने के लिए भी उसमें आस्था और निष्ठा की आवश्यकता है। बिना आस्था के उनमें भी सफलता नहीं मिलती है। आज जितनी भी वैज्ञानिक उन्नति के चमत्कार दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वे सब एक मात्र निष्ठा के ही सुफल हैं। वर्तमान में आध्यात्मिक निष्ठा वाले व्यक्ति तो इने-गिने ही मिलेंगे। परन्तु जीवन उन्हीं का सफल है जो कि लक्ष्मी के चले जाने पर और अनेक आपत्तियों के आने पर भी अपनी निष्ठा से विचलित नहीं होते हैं।

गुरु की अवहेलना न करो

आप लोग गृहस्थ हैं अतः आप को भौतिक उन्नति के बिना भी काम नहीं चल सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि आप धर्म पर श्रद्धा रखते हुए धर्म युक्त भौतिक कार्यो को निष्ठापूर्वक करते रहें। आपको सच्चे गुरुओं पर आस्था रखनी चाहिए कि '**भवाब्धेस्तारको गुरुः**' अर्थात् संसार-सागर से तारने वाला गुरु ही है, उसके सिवाय और कोई दूसरा नहीं है।

'डहरे इमे अप्पसुए त्ति नच्चा, हीलंति मिच्छं पडिवज्जमाणा"

भावार्थ यह है कि—गुरु को यह नहीं मानना चाहिए कि ये छोटे हैं—मुझ से कम ज्ञानी है, ऐसा विचार कर उनका अपमान करना ठीक नहीं।

आज आप लोग अक्सर ऐसा सोचने लगते हैं कि ये गुरु तो मेरे ही सामने पैदा हुए हैं, इन्होंने तो कल ही दीक्षा ली है, अभी तो इनको बोलने का भी तरीका याद नहीं है। मैं तो इनसे बहुत अधिक जानता हूं और क्रियावान् भी हूं। भाई, ऐसा विचार करने से भी गुरु की अवहेलना होती है और मिथ्यात्व कर्म का बन्ध होता है। जिनके मिथ्यात्व कर्म बंधता है और उत्तरोत्तर पुष्ट होता रहता है, उन्हें बोधि की प्राप्ति दुर्लभ है। इसलिए आप लोगों को सदा

गुरु पर आस्था रखनी चाहिए और यही भावना करनी चाहिए कि मैं जितनी भी गुरु की भक्ति करूँगा, सेवा करूँगा और इनके अनुशासन में रहूंगा तो मेरे आत्मा का उत्तरोत्तर विकास ही होगा।

आप लोगों को ज्ञात होना चाहिए कि स्थानाङ्ग सूत्र में बतलाया गया है कि गुरु के उपकार से शिष्य, सेठ के उपकार से सेवक और माता-पिता के उपकार से पुत्र कभी ऊऋण नहीं हो सकता है। जब गौतम स्वामी ने प्रश्न किया—भगवन ! क्या ऊऋण होने का कोई उपाय भी है ? तब भगवान ने कहा—उऋण तो नहीं हो सकता, परन्तु हलका अवश्य हो सकता है ? गौतम स्वामी ने पुनः पूछा—भगवन् ! किस प्रकार हलका हो सकता है ? तब भगवान् ने कहा—गौतम, जिस पुत्र के माता-पिता मिथ्यात्व के गर्त में पड़े हों, वह उसमें से निकाल कर यदि सम्यक्त्व में स्थापित करें, उन्हें सम्यक्त्व की प्राप्ति करावे, तो वह उनके ऋण से हलका हो सकता है। गुरु का शिष्य पर अनन्त उपकार हैं। परन्तु कदाचित् कर्मोदय से गुरु अपने पद से चल-विचल हो जायें, क्योंकि जब तक मोह कर्म का उदय है और छद्मस्थ अवस्था है, तब तक भूल का होना संभव है, तब उनको प्रतिबोध देकर जिस प्रकार से भी संभव हो, वापिस सुमार्ग पर प्रत्यवस्थापन करने से शिष्य गुरु के ऋण से हलका हो सकता है।

सुयोग्य श्रावक

एक महात्मा जी बड़े ज्ञानी, ध्यानी और चरित्रवान् थे। परन्तु वे एकल विहारी थे। वे विचरते हुए एक नगर में पहुंचे। इनके प्रवचन सुनकर जनता मुग्ध हो गई, अतः लोग उनकी सेवा-सुश्रूषा करने लगे। एक दिन जब महात्मा जी पारणा के लिए जा रहे थे, तब एक बहुमूल्य हीरा पड़ा हुआ दिखायी दिया। उसे देखकर उनके विचार उत्पन्न हुआ कि आज तो मैं शरीर से स्वस्थ और जवान हूं। पर पीछे शरीर के शिथिल और अस्वस्थ होने पर बिना धन के मेरी कौन सेवा करेगा ? यह विचार आते ही उन्होंने उसे उठाकर उसे अंटी में रख लिया। जब गोचरी से निवृत्त हुए तो सोचा कि इसे कहां रखा जावे ? तब उन्होंने उसे एक कपड़े की धज्जी में बांधकर बैठने के पाटे में एक गड्ढा था, उसमें रख दिया। सायंकाल के समय प्रतिक्रमण करने के लिए एक श्रावक प्रतिदिन आते थे और वे महात्मा जी के समीप ही बैठते थे, सो आज भी जब प्रतिक्रमण का समय हुआ तो महात्मा जी प्रतिक्रमण बोलने लगे और वह श्रावक भी बैठकर प्रतिक्रमण सुनने लगा।

भाइयो, यह प्रतिक्रमण भी क्या है ? अपने धर्म की रोकड़ संभालना है। जैसे आप लोग शाम को दुकान की रोकड़ सम्भालते हैं और दिन भर के आय-व्यय का लेखा-जोखा करते हैं, उसी प्रकार साधु भी अपने व्रतों का शाम को लेखा-जोखा करता है कि मेरे व्रत कितने निरतिचार रहे और कितनों में अतिचार लगा है। सर्व व्रतों के २५५ अतिचार होते हैं। ६६ अतिचार श्रावकों के हैं और १५६ अतिचार साधुओं के होते हैं। महात्मा जी ने प्रतिक्रमण करते हुए पहिले अहिंसा महाव्रत का मिच्छामि दुक्कडं बोला। तत्पश्चात् सत्य-महाव्रत, अस्तेय महाव्रत और ब्रह्मचर्य महाव्रत का मिच्छामि दुक्कडं बोला। जब पांचवें महाव्रत का नम्बर आया तो मन में विचार आया कि मैं जब परिग्रह लेकर बैठा हूँ, तब 'मिच्छामिदुक्कडं' कैसे बोलूं ? यह सोच कर पांचवें महाव्रत का 'मिच्छामि दुक्कडं' नहीं दिया। श्रावक ने सोचा कि आज महात्मा जी भूल गये, या क्या बात है जो पांचवें व्रत का प्रतिक्रमण नहीं किया। जब श्रावक ने लगातार चार-पांच दिन तक यही हाल देखा, तो उसने सोचा कि महात्मा जी के उस व्रत में कहीं न कहीं कुछ मामला गड़बड़ है। दूसरे दिन जब महात्मा जी पलेवना करके बाहिर गये हुए थे, तब श्रावक ने एकान्त पाकर महात्मा जी के सारे सामान को संभाला—देखभाल की, परन्तु कोई चीज नहीं मिली। जब उसने पाटे को उठा करके देखा तो एक गड्ढे में कपड़े का एक टुकड़ा नजर आया। उसने उसे निकाल कर जो खोला तो बहुमूल्य हीरा दिखा। उसने कुछ देर तक तो नाना प्रकार से विचार किया। अन्त में उसने उसे अपने पास रख लिया। जब महात्मा जी बाहिर से आये तो एकान्त देखकर पाटे के गड्ढ मे उसे संभाला तो हीरा को गायब पाया। पहले तो उन्हें कुछ धक्का-सा लगा। पीछे विचारा कि चलो—सिर का भार उतर गया। शाम को जब प्रतिक्रमण का समय आया तो उन्होंने चारों व्रतों के समान पांचवे व्रत का भी 'मिच्छामि दुक्कडं' जोर से बोला। श्रावक ने देखा कि मामला तो हाथ में आगया है। फिर एक बार—और भी निर्णय कर लेना चाहिए। जब प्रतिक्रमण पूर्ण हुआ तो उसने महात्मा जी के पास जाकर चरण-वन्दन किया और पूछा - महाराज, सुखसाता है ? महात्मा जी बोले—पूरी सुख-साता और परम आनन्द है। पुनः उसने विनय पूर्वक पूछा—गुरुदेव, एक शंका है कि अभी बीच में तीन-चार दिन पाँचवें महाव्रत का 'मिच्छामि दुक्कडं नहीं लिया, सो क्या बात हुई और आज फिर कैसे लिया ? महात्मा जी ने सहज भाव से हीरा मिलने से लेकर आज तक की सारी बात ज्यों की त्यों कह सुनाई। आज किसी मेरे हितैषी ने उठाकर मुझे उस पाप से

मुक्त कर दिया है। श्रावक ने पूछा—उस हीरे को आपने कहाँ रख दिया था ? महात्मा बोले—भाई कपड़े की एक धज्जी में बांध करके इसी पाटे के इस गड्ढे में रख दिया था। और जब रत्न मेरे पास था, तब भाई, मै पांचवें महाव्रत का 'मिच्छामि दुक्कड़ं' कैसे देता ? परन्तु आज किसी भले मनुष्य ने उसे उठाकर साता उपजा दी सो प्रतिक्रमण बोलने में उल्लास रहा और पांचवें महाव्रत की शुद्ध हृदय से 'मिच्छामि दुक्कडं' दी है।

गुरु के मुख से सारी बात निश्छलभाव से सुनकर श्रावक आनन्दित होता हुआ विनय पूर्वक बोला—गुरुदेव, आप महापुरुष हैं, आप जैसी निर्मल आत्मा मेरे देखने मे कभी नहीं आई। परन्तु मैं ही नीच हूं क्योंकि मैं ही उस हीरे को ले गया हूं। यह सुनकर महात्मा जी बोले—भाई, तू पापी नहीं, किन्तु भला आदमी है, क्योंकि तूने मुझे पाप-पंक में डूबने से बचा लिया है।

भाइयो, इस कथानक के कहने का अभिप्राय यह है कि यदि ऐसे पुण्यवान् श्रावक हों जो कि अपने धर्म मार्ग से डिगते हुए गुरु को वापिस उसमें दृढ़ करदें, तो वह शिष्य गुरु के ऋण से हलका हो सकता है।

इसी प्रकार जिस साहूकार सेठ का कारोबार दिन पर दिन डूब रहा है और वह व्यक्ति—जिसे पहिले सेठने सर्व प्रकार की सहायता देकर उसका उद्धार किया था—वह आकर सेठ की सहायता करे और तन मन धन लगा कर सेठजी को डूबते से बचावे तो वह उसके ऋण से हलका हो सकता है।

बन्धुओ, जिसके हृदय में धर्म के प्रति और अपने कर्तव्य-पालन के प्रति ऐसी दृढ़ आस्था हो, वही व्यक्ति गुरु के ऋण से, मां-बाप के ऋण से और समाज के ऋण से हलका हो सकता है। परन्तु आज हम देखते हैं, कि लोग ठीक इसके विपरीत काम करते है। यदि किसी उत्तम कार्य को प्रारम्भ करने की योजना बनायी जाती है तो आज के श्रावक सहायक होने के स्थान पर बाधक बनते है और उस कार्य में नाना प्रकार की बाधाएँ खड़ी करने का प्रयत्न करते है और उस कार्य का श्रीगणेश होने के पूर्व ही योजना को ठप्प कर देते हैं। किन्तु जो आस्थावान होते हैं, वे जिस कार्य को करने का निश्चय कर लेते हैं, वे उसे करके ही छोड़ते है। भर्तृहरि ने नीतिशतक मे कहा भी है कि—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्यविघ्नविहता विरमंतिमध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति।

भाई, जो नीच या अधम जाति के मनुष्य होते है, वे तो विघ्नों के भय से कार्य का प्रारम्भ ही नहीं करते है ? किन्तु जो उत्तम मनुष्य होते हैं वे जिस

कार्य को प्रारम्भ कर देते हैं, उसमें हजारों विघ्न और बाधाओं के आ जाने पर भी उसे छोड़ते नहीं है, किन्तु पूरा करके ही दम लेते हैं। क्योंकि सुकृती पुरुष अंगीकार की गई बात का पालन करते हैं और अन्त तक उसका निर्वाह करते हैं।

जो व्यक्ति आस्था रखकर काम करते हैं, भले ही उसके बीच में कितनी ही विघ्न-बाधाएँ क्यों न आवें, किन्तु अन्त में सफलता प्राप्त होती ही है। आज देखो—अमेरिका और रूस वालों ने अन्तरिक्ष जगत् की खोजबीन के लिए किये गये प्रयत्नों में सफलता प्राप्त कर ही रहे हैं। इस सब सफलता का श्रेय उन लोगों की एक मात्र कर्तव्यनिष्ठा का है। फिर जैनधर्म तो पुकार-पुकार करके कह रहा है कि जो भी जैसा बनना चाहे, आस्थापूर्वक बराबर-प्रयत्न करता रहे तो नियम से वैसा ही बन सकता है। आप लोग भी व्यापार करने की आस्था से ही घर-बार छोड़कर परदेश जाते हैं तो कमाकर लाते हैं, या नहीं ? इसी आस्था के बल पर बड़े-बड़े ऋषियों और मुनियों ने घोरातिघोर उपसर्ग सहे और यातनाएँ सहीं, परन्तु वे अपनी आस्था से डिगे नहीं तो अन्त में सफलता पाई, या नहीं ? पाई ही है और सदा के लिए संसार के परिभ्रमण से मुक्त हो गये हैं। आज भी आस्थावान् व्यक्ति प्रत्येक दिशा में सफलता पा ही रहे हैं। मंत्र-तंत्रादि भी आस्थावान् व्यक्ति को ही सिद्ध होते हैं, अनास्था वालों को नहीं होते।

एक बार द्वारिका में सभा के भीतर श्री कृष्ण जी ने कहा कि जो रैवताचल पर जाकर और सर्व प्रथम भगवान् अरिष्टनेमि की वन्दना करेगा, उसे मैं अपना प्रधान अश्वरत्न इनाम में दूंगा। अनेक लोग दूसरे दिन बहुत सवेरे ही भगवान् की वन्दना के लिए दौड़े। किन्तु श्रीकृष्ण का कालक नाम का पुत्र सबसे पहिले पहुंचा। और भगवान की वन्दना करके लौट आया। इधर बलभद्र जी के पुत्र कुंजभंवर की नींद कुछ देर से खुली तो वे उठते ही सामायिक लेकर बैठे और सोचने लगे—हे भगवान्, जो आपके पास जाते हैं और वन्दन करके व्रत-प्रत्याख्यान स्वीकार करते हैं, वे धन्य हैं। परन्तु मैं कितना प्रमादी हूं कि अभी तक सोता रहा। अपने इस प्रमाद पर मुझे भारी दुःख है और अपने आपको धिक्कारता हूँ। मेरी यह परोक्ष वन्दना आप स्वीकार कीजिए, यह कहते हुए शुद्ध हृदय से सामायिक के काल भर भगवान की भक्ति में तल्लीन रहता है और उनके गुण-गान करता रहता है।

दूसरे दिन जब श्री कृष्ण जी सभा में विराज रहे थे, तब कालक ने आकर कहा—मैंने आज सर्वप्रथम भगवान का वन्दन किया है। उन्होंने कहा—

भगवान से इसका निर्णय करके इनाम दिया जावेगा। श्री कृष्ण रैवताचल पर सपरिवार गये और भगवान को वन्दन करके कहा—दीनबन्धो, आज आपको सबसे पहिले किसने वन्दन किया है ? भगवान ने पूछा—कृष्ण, द्रव्य-वन्दन की बात पूछ रहे हो, या भाववन्दन की। कृष्णजी ने कहा—भगवन्, जिसमे अधिक लाभ हो उसी के लिए पूछा है। तब भगवान ने कहा—आज द्रव्य से वन्दन तो कालक ने सर्व प्रथम किया है और भाव से वन्दन कुजभवर ने किया है। और उसी को अधिक लाभ मिला है। श्री कृष्ण ने आकर कुजभवर को अश्वरत्न इनाम मे दिया और कालक से कहा—तूने लोभ से वशीभूत होकर के वन्दन किया है, किन्तु कुजभवर ने विना किसी लोभ के निस्वार्थ भाव से वन्दन किया है।

भाइयो, जहा भगवान के प्रति या धर्म के प्रति सच्ची निष्ठा या आस्था होती है वहा पर स्वार्थ भावना नही होती है। ऐसे आस्थावान् व्यक्ति ही इस लोक मे भी सुख पाते हैं और परलोक मे भी सुख पाते हैं। इसलिए आप लोगो को अपनी आस्था सुदृढ रखनी चाहिए।

वि० स० २०२० कार्तिक शुक्ला ६
जोधपुर

२५ | आर्यपुरुष कौन ?

आर्य के भेद :

भाइयो, अभी तक आपके सामने मुनिजी ने आर्यपुरुष के गुण बताये। पर 'आर्य' शब्द का क्या अर्थ है, यह भी आपको ज्ञात होना चाहिए। आर्य शब्द की निरुक्ति करते हुए कहा गया है —

'अर्यन्ते गुणैर्गुणवद्भिर्वा सेव्यन्ते इत्यार्याः'।

अर्थात्—जो गुणो से गुणवानों के द्वारा सेवित होते है, वे आर्य कहलाते है। विद्यानन्द स्वामी ने इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहा है—

सद्गुणैः गुणैरर्यमाणत्वाद् गुणवद्भिश्च मानवैः।
प्राप्तर्द्धीतरभेदेन तत्रार्या द्विविधा. स्मृताः ॥

जिनके भीतर मानवोचित सद्गुण पाये जाते हैं, अतः जो गुणवान् मानवों के द्वारा उत्तम कहे जाते है, वे आर्य कहलाते हैं। ऐसे आर्यपुरुष दो प्रकार के होते हैं—ऋद्धिप्राप्त आर्य और अनृद्धिप्राप्त आर्य। जिनको तपस्या के प्रभाव से अनेक प्रकार की ऋद्धि या लब्धि प्राप्त होती हे, वे अलौकिक गुण प्राप्त ऋषिगण ऋद्धिप्राप्त आर्य कहलाते हैं। तथा जिन पुरुषों मे सुजनता, सहृदयता, कारुणिकता और दानशीलता आदि विशिष्ट लौकिक गुण पाये जाते हैं, वे अनृद्धिप्राप्त आर्य कहलाते हैं।

उक्त व्याख्याओ के अनुसार यह अर्थ फलित होता है कि आर्य का शब्दार्थ श्रेष्ठ पुरुष है और अनार्य का अर्थ नेष्ट पुरुष है। जिनका व्यवहार एवं

आचार-विचार खराब है, वह अनार्यपुरुष है। यह आर्य शब्द आज का नहीं, किन्तु अनादिकाल का है। शायद आप लोगों ने यह समझ रखा है कि यह आर्य शब्द दयानन्द सरस्वती ने प्रकट किया है, क्योंकि उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की है। हमारे जैन सूत्रों में यह शब्द सदा से ही उत्तम पुरुषों के लिए प्रयुक्त होता आया है। जैसे कि आर्य जम्बू, आर्य सुधर्मा आदि। गृहस्थों के लिए भी यह प्रयोग मिलता है—अहो आर्यपुत्र ! जब तक यहां पर भोगभूमि प्रचलित थी, तब तक स्त्री अपने पति को 'आर्य' और पति अपनी स्त्री को 'आर्ये' कह कर ही सम्बोधित करते थे। तत्त्वार्थसूत्रकार ने मनुष्यों के दो भेद बतलाये हैं – 'आर्या म्लेच्छाश्च' अर्थात् मनुष्य दो प्रकार के हैं—आर्य और म्लेच्छ। म्लेच्छों को ही अनार्य कहते हैं। म्लेच्छों का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है—

धर्म-कर्मबहिर्भूता इत्यमी म्लेच्छका मताः।
अन्यथाऽन्यैः समाचारैरार्यावर्तेन ते समाः॥

अर्थात्—जो लोग धर्म-कर्म से बहिर्भूत है—जिनमें धर्म-कर्म का विचार नहीं है, वे पुरुष म्लेच्छ माने गये हैं। अन्य कार्यों का आचरण तो उनका आर्यावर्त के पुरुषों के ही समान ही होता है।

ऋद्धि या लब्धि से रहित आर्य पुरुष भी पांच प्रकार के होते है—क्षेत्रार्य, जात्यार्य, कर्मार्य, दर्शनार्य और चारित्रार्य। काशी-कौशल आदि उत्तम क्षेत्र में उत्पन्न हुए पुरुष क्षेत्रार्य है। इक्ष्वाकु आदि उत्तम वंशों में उत्पन्न मनुष्य जात्यार्य है। असि-मषी आदि से आजीविका करनेवाले लोग कर्मार्य हैं। सम्यग्दर्शन को धारण करने वाले मनुष्य दर्शनार्य कहलाते हैं और चारित्र को धारण करने वाले चारित्रार्य कहे जाते हैं।

धार्मिक दृष्टि से आर्य

भाइयो, यहां पर हमें दर्शनार्य और चारित्रार्य से ही प्रयोजन है। जिनके भीतर विवेक है, हेय-उपादेय का ज्ञान है और आचार-विचार उत्तम है, वे ही यथार्थ में आर्य कहे जाने के योग्य हैं। आर्य पुरुष की प्रकृति कोमल होनी चाहिए, कठोर नहीं। कोमल हृदय मे ही सद्‌गुण उत्पन्न होते हैं, कठोर हृदय में नहीं। जैसे कि कोमलभूमि में ही बीज उत्पन्न होता है कठोर भूमि में नहीं। पर जब हम देखते है कि बार-बार उपदेश दिये जाने पर भी हमारा हृदय करुणा से आर्द्र नही होता है, तब यही ज्ञात होता है कि हमारा हृदय कोमल नहीं।

जैसे पानी बरसने पर भी जहां की भूमि गीली न हो, तो उसे कठोर भूमि कहा जाता है, उसी प्रकार सत्संग पाकर और धर्मोपदेश सुनकर भी यदि हमारा हृदय कोमल नही हो रहा है, तो समझना चाहिये कि वह कठोर है ? यही कारण है कि हमारे विचार कुछ और है और प्रचार कुछ और ही करते है। जो लोग उत्तम जाति, उत्तम कुल और उत्तम देश में जन्म लेकर के भी आर्यपने के गुणो से रहित होते है, उन्हें वास्तव में अनार्य ही समझना चाहिए। आर्य होने के लिए बाहिरी धन-वैभव आदि की आवश्यकता नहीं है, किन्तु आन्तरिक गुणो की ही आवश्यकता है।

एक बार विहार करते हुए हम एक गांव में पहुँचे। वहां पर एक ब्राह्मण के घर को छोडकर शेष सब अन्य जाति के ही लोगों के घर थे। संध्या हो रही थी और हमें वहां पर रात्रि भर ठहरना था। हमे मालूम हुआ कि अमुक घर ब्राह्मण का है, तो हम उस घर के आगे पहूंचे। द्वार पर एक बाई खड़ी थी। हमने उससे कहा कि हमें यहां रात भर ठहरना है यदि तुम पोल में ठहरने की आज्ञा दे दो तो ठहर जाये, क्योकि सर्दी का मौसम है। उस बाई ने पूछा--तुम कौन हो ? मे नहीं जानती कि तुम चोर, बदमाश या डाकू हो ? मैंने कहा--बाई, तू बिलाड़े के पास अमुक गांव की जाई—जन्मी है। और हम तो जगत्-प्रसिद्ध हैं, सभी लोग जानते हैं कि हम कौन हैं। वह यह सुनकर भी बोली—पोल तो दूर की बात हे, हम तो तुम्हे चबूतरी पर भी नहीं ठहरने देंगे। मैंने कहा—बाई, तेरा धनी आने तक तो ठहरने दे, क्योंकि हमारे प्रतिक्रमण का समय हो रहा है। परन्तु उसने नही ठहरने दिया। हम भी 'अच्छा, तेरी मर्जी' ऐसा कहकर चल दिये और समीप में ही एक नीम के वृक्ष के नीचे भूमि का प्रतिलेखन करके बैठ गये। इसी समय एक आदमी आया और बोला—महाराज, माघ का महीना है, सर्दी जोर पर है। यहां पर आप ठर जाओगे। और फिर यहां पर चीचड़े भी बहुत है। मैं जाति का बांभी हू। मेरा मकान अभी नया बना है, उसमें पोल है, उसमे आप यदि ठहर सकते हों तो ठहर जाइये। मैंने उसमें अभी रहवास नही किया है। मैंने कहा---भाई यदि रहवास भी कर लिया हो तो उसमें क्या हर्ज है ? कोई धूल-मिट्टी तो तेरी जाति में नहीं मिली है ? फिर हमारा सिद्धान्त तो मनुष्य जाति को एक ही मानता है। यदि तुम्हारी भावना है तो दे दो। इस प्रकार हम उसकी आज्ञा लेकर उसकी नई पोल में ठहर गये। तत्पश्चात् उसने अपनी बिरादरीवालों को इकट्ठा किया और उनसे कहा---अपने गाव में साधु महाराज आये हैं, तो इनका उपदेश तो सुनना चाहिए। आज अपना तंबूरा नहीं बजायेंगे और इनका ही उपदेश

सुनेंगे। यद्यपि गांव छोटा-सा ही था, तथापि सत्तर-अस्सी स्त्री-पुरुप इकट्ठे हो ही गये। जब मैं उपदेश दे रहा था, तभी उस वाई का पति रामलाल ब्राह्मण विलाड़े से घर आया। पोल मे हम लोगों को नहीं देखकर उसने अपनी स्त्री से पूछा - महाराज कहां उतरे हैं ? उसने कहा—अमुक बांभी के यहां ठहरे हैं। ब्राह्मण ने कहा—अरी, तूने उन्हें ठहरने के लिए क्यों नहीं कहा ? वह बोली - मैंने तो उन्हें चोर समझा इसलिए घर में नहीं ठहरने दिया। ब्राह्मण बोला —अरी, तूने यह क्या किया ? महाराज को तो अपने ही घर पर ठहराना था। यह कहकर वह आकर व्याख्यान सुनने लगा। व्याख्यान के पश्चात् अनेक लोगों ने दारु-मांस और बीड़ी-सिगरेट का त्याग किया। व्याख्यान के बाद रामलाल ने मेरे पास आकर कहा—महाराज, आप बांभी के मकान में कैसे उतर गये ? मैंने कहा—भाई, भले ही बांभी हो, परन्तु जो हमारी भक्ति करता है और आर्य को आर्य समझता है, उसे हम भी आर्य समझते है। जिसमें भाव-भक्ति नही और मनुष्यत्व नहीं, उसे हम आर्य कैसे कह सकते हैं।

भाइयो, अब आप लोग ही विचार करें कि जिसमें मनुष्यत्व नहीं, उसे आर्य कैसे कहा जा सकता है। आप की दृष्टि में भले ही बांभी नीच हो, परन्तु उसके विचार कितने ऊंचे है। और जिसे आप ऊंच समझते हैं, उसके विचार कितने नीच हैं। भाई, आर्य और अनार्यपना तो आचार-विचार में ही सन्निहित रहता है। कीड़े-मकौड़ से लेकर कोई भी व्यक्ति यदि अपने घर पर आजाय तो आर्य पुरुप उसे अपने ही समान समझते हैं। वे अपने शरीर की जिस प्रकार यतना करते हैं, उससे भी सवाई-ड्योढ़ी यतना उसकी है। और उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं आने देता हे ! तभी लोग कहते हैं कि वह भला व्यक्ति है। भला कहो, चाहे आर्य कहो और चाहे उत्तम पुरुप कहो, ये सब आर्य-शब्द के ही पर्यायवाची नाम हैं। आर्य पुरुप के वचनों में सुकोमलपना होता है और वह अपने द्वार पर आये हुए व्यक्ति से स्वागत करते हुए कहता है— आइये, विराजिये। आपके शरीर में कोई आधि, व्याधि या चिन्ता तो नही है, यदि हो तो कहिये, मैं आपकी सेवा में हाजिर हूँ। सोचने की बात है कि ऐसा कहने में कोई घर का पैसा तो नही लगा और किसी प्रकार का कोई अन्य खर्च तो नहीं हुआ ? परन्तु कितने ही लोगों को ऐसे वचन कहते हुए विचार आता है। आर्यपुरुप जहां भी जाता है और जहां भी जिस बात की कमी है, उसे तुरन्त करने के लिए उद्यत हो जाता है और यदि कोई पुरुप किसी काम के करने के लिए कहता है, अथवा संकट से उद्धार करने की प्रार्थना करता है तो वह सहर्ष स्वीकार करता है। तथा उसे आश्वासन बंधाता है कि

आप निश्चिन्त रहे, आपका यह काम अवश्य हो जायगा। इस प्रकार वचनों से भी जो हिम्मत बधाते हैं, वे पुरुष भी आर्य कहलाने योग्य है। आज अधिकतर लोग सोचते हैं कि हमे दूसरो से क्या मतलब है ? हम क्यो झझट मे पडे ? परन्तु ऐसा विचारना आर्यपना नहीं, किन्तु अनार्यपना है।

आर्यपुरुष की करुणाशीलता

भाइयो, आप लोगो ने अनेक बार सुना होगा कि मेघरथ राजा की शरण मे एक कबूतर पहुचा और उसके पीछे लगा हुआ बाज भी आगया। अब आप लोग बतलायें कि उस कबूतर से राजा का क्या कोई स्वार्थ था ? नही था। किन्तु दुःख से पीडित उसे जब शरण दे दी। तब बाज बोला—राजन्, मेरी शिकार मुझे सौपो। राजा ने कहा – क्षत्रिय लोग शरणागत के प्रतिपालक होते है। उसे हम आपको कैसे सौंप सकते हैं ? यह सुनकर बाज बोला—तो मैं भूखा हू, मुझे उसकी तौल बराबर अपना मास काटकर खाने के लिए दीजिए। राजा ने उसकी बात स्वीकार कर ली। तराजू और छुरी मगाई गई और एक पलडे पर बाज को बैठाया और दूसरे पर अपना मास काट-काट कर रखने लगा। भाई, यह थी राजा की करुणावृत्ति, जो सकट में पडे कबूतर के प्राण बचाने के लिए वे अपना मास भी काटकर देने के लिए तैयार हो गये। आप लोगो के पास भी यदि कोई आपत्ति का मारा आवे और आप सोचें कि इससे क्या लेना और क्या देना है ? तो यह बात आर्यपने के प्रतिकूल है। भाई, आपत्ति मे पडे पुरुष से लना भी है। लेना तो यह है कि हम अपने भीतर यह अनुभव करें कि आपत्ति-ग्रस्त व्यक्ति कितनी दयनीय दशा मे होता है, वह कितना असहाय होता है और उस पर जो शक्ति सम्पन्न और सबल व्यक्ति घोर-जुल्म करते है, तो हमे उन दोनो की प्रकृति का सबक लेना है। और देना क्या है—साझ। अर्थात् उस शरणागत दुखी व्यक्ति से यह कहें कि भाई, तू घबडा मत। तेरी रक्षा के लिए मैं तैयार हू। यदि कभी कोई व्यक्ति अपनी परिस्थिति के वशीभूत होकर आपके पास आता है तो उससे ऐसा मत कहो कि हमे तुमसे क्या लेना-देना है। भाई, यह सारा लोक-व्यवहार देने और लेने से ही चलता है। लोग रकम लेते भी है और देते भी हैं, तभी व्यवहार का काम चलता है। अपनी लडकी दूसरो को देते है और दूसरो की लेते भी हैं, तभी समाज का काम चलता है। देना और लेना मानव मात्र का धर्म है। दूसरो से गुण लो और साझ दो। साझ कितना दिया जाता है ? जितना आपके पास है, उतना। कल्पना कीजिए—आपके रहने के लिए एक कोठरी है और दो-तीन

मनुष्यों को ही ठहरने के लिए आप उसमें साझ दे सकते हैं। अब यदि दस आदमी आजावें और कहें कि हमें भी साझ दो—ठहरने दो। तब हाथ जोड़ने पड़ते हैं और कहना पड़ता है कि साहब, आप स्वयं ही देख लीजिए कि जगह कितनी है। मेरी ओर से इनकारी नहीं है। वे स्थान की कमी देखकर स्वयं ही चले जावेंगे। पर स्थान के रहते हुए इनकार करना यह आर्यपने के प्रतिकूल है।

सबको सहयोग

बन्धुओ, एक महात्मा जंगल में एक झोंपड़ी बनाकर रहते थे। पानी बरसने लगा तब एक व्यक्ति ने आकर पूछा—क्या मुझे भी ठहरने के लिए स्थान है? महात्मा जी बोले—हां, एक व्यक्ति के सोने का स्थान है, पर दो व्यक्ति इसमें बैठ सकते हैं, इस प्रकार कहकर वह महात्मा उठकर बैठ गया और उसे भी बुला करके भीतर बैठा लिया। इतने में दो व्यक्ति और भी भीजते हुए आये और बोले—महात्मा जी क्या भीतर और भी जगह है? महात्माजी बोले—हां भाई, दो के बैठने की जगह है और चार व्यक्तियों के खड़े रहने की जगह है, यह कहकर वे दोनों खड़े हो गये और उन दोनों को भी भीतर बुला करके खड़ा कर लिया। भाई, यह कहलाता है आर्यपना। सच्चे आर्य तो दूसरे को इनकार करना जानते ही नहीं है। यदि आप लोग इतना त्याग नहीं कर सकें, तो भी शक्ति के अनुसार तो त्याग करना ही चाहिए और उदारता भी प्रकट करना चाहिए।

यहां कोई पूछे कि यह 'साझ' क्या है? यह तो खाऊ प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है। जिसे जो दिया जाता है, उसे वह खा जाता है। वह लौटकर वापिस नहीं आता है। भाई, आप लोगों को ऐसा नहीं सोचना चाहिए। देखो—किसान जमीन मे धान्य बोता है, तो सारी जगह का धान्य तो वापिस नहीं आता है? खेत मे दो-चार हाथ जमीन ऐसी भी होती है, कि जिसमें डाला गया बीज वापिस नहीं आता है। अब यदि कोई व्यक्ति आकर कहे कि भाई, तेरे खेत की यह जमीन तो बेकार है, तू इसे मुझे दे दे तो क्या वह किसान उसे दे देगा? नहीं देगा। भाई, कितने ही लोग लेने में सार समझते हैं, तो कितने ही देने में सार समझते हैं। जो देने में सार समझते हैं, उन्हें ही आर्य पुरुष समझना चाहिये।

धन्ना सेठ का दान

बन्धुओ, शास्त्रों मे भगवान ऋषभदेव के तेरह पूर्व भवों का वर्णन मिलता है। इनमें पहिला भव धनावह सेठ का है। उसके पास अपार सम्पत्ति थी

और दिन-रात बढ़ती ही जाती थी। भाई, जब अन्तराय टूटती है, तब लक्ष्मी के बढ़ने का कोई ठिकाना नहीं रहता। एक बार उसके मन में विचार आया कि मेरे धन तो बहुत बढ़ गया है, अब मुझे अपने भीतर सद्गुण भी बढ़ाना चाहिये। इसके लिए आवश्यक है कि मैं दूसरों से सद्गुण लू और दूसरों को अपने धन में से साझा दू? यह विचार कर वह उत्तम वस्तुओं की भेंट लेकर राजा के पास गया और भेंट समर्पण करके नमस्कार किया। राजा ने इन का अभिवादन करते हुए उचित स्थान पर बैठाया। सेठ ने कहा— महाराज, मेरा विचार व्यापार के लिये बाहिर जाने का है। यदि कोई भाई व्यापार के लिए मेरे साथ चलना चाहे तो चल सकता है। मैं उसे साथ में ले जाऊंगा और उसके खान-पान का सारा खर्च मैं उठाऊंगा। तथा व्यापार के लिए जितनी पूजी की जरूरत होगी, वह मैं दूंगा। व्यापार में जो लाभ होगा, वह उसका होगा। और यदि नुकसान होगा, तो वह मेरा होगा। आप सारे नगर में घोषणा करा दीजिए कि जो भी मेरे साथ चलना चाहे वे साथ चलने के लिए तैयार हो जावें और अपने नाम लिखा देवे। उसने यह भी घोषित करा दिया कि मैं जो यह व्यापार के लिए सुविधा दे रहा हू, वह कोई दान समझ करके नहीं दे रहा हू। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति की मेरे घर में सीर है। वह मुझे अपना ही समझ करके मेरे साथ चले। घोषणा सुनकर के अनेक व्यक्ति चलने के लिए तैयार हो गये और उन्होंने सेठ के पास जाकर अपने-अपने नाम लिखा दिये। यात्रा के लिए प्रस्थान के शुभ मुहूर्त की घोषणा करा दी गई और सब लोगों ने अपने अपने डेरे नगर के बाहिर लगा दिये। राजा की ओर से भी चौकीपहरे का प्रबन्ध कर दिया गया। तथा आगे के लिए भी आदेश भेज दिये गये कि मेरा सेठ आरहा है, उसके जान-माल की रक्षा की जावे और उसे जिस वस्तु की आवश्यकता हो उसे राज्य की ओर से पूरा किया जावे।

इस प्रकार जब चलने की तैयारी सब प्रकार से पूरी हो गई, तभी श्री धर्मघोष नाम के आचार्य भी ५०० मुनियों के परिवार के साथ वहां पधारे। उन्होंने भी उसी देश में विहार करने के लिए कह दिया था परन्तु मार्ग विकट था अतः उसे पार करने के लिए किसी बड़े सार्थवाह के साथ की आवश्यकता थी। उन्हें यह ज्ञात हुआ कि धन्नावह सेठ भी उसी देश की ओर व्यापार करने के लिए जा रहा है, तो आचार्य महाराज ने सेठ के पास जाकर अपना अभिप्राय रखा कि हम लोग भी आपके साथ उसी देश की ओर चलना चाहते हैं।

भाइयो, पहिले के लोगों को अपने बड़े से भी बडे पद का कोई अभिमान नही होता था। मुनिसघ के अधिपति भी जव किसी राजा के प्रदेश मे विहार करना चाहते थे, तब पहिले राजा की आज्ञा प्राप्त कर लेते थे, तभी उसके राज्य मे विहार करते थे और यदि किसी देश के राजा का मरण हो जाता था अथवा और कोई रीति-भीति का उपद्रव होता था तो वे विहार नही करते थे। आज के समान पहिले भारतवर्ष में सर्वत्र जाने-आने के लिए राजमार्ग नहीं थे, अतः साधु-सन्त भी साहूकारों और व्यापारियों के संघ के साथ ही एक देश से दूसरे देश में विहार करते थे।

हां, तो धन्नावह सेठ से जव धर्मघोष आचार्य ने उनके साथ चलने की बात कही और पूछा कि आपको कोई कष्ट तो नही होगा ? तब वह अति हर्षित होकर बोला—भगवन्, यह तो मेरे परम सौभाग्य की बात है कि कल्पवृक्ष भी हमारे साथ चल रहा है। आपके साथ रहने से तो हमारी सभी विघ्न-बाधाएँ दूर होंगी और हमे धर्म का लाभ भी मिलता रहेगा। हमे आपके साथ रहने मे क्या ऐतराज हो सकता है। आप सर्व संघ-परिवार को लेकर हमारे सघ के साथ विहार कीजिए। यह कहकर उसने चलने का दिन-मुहूर्त्त आदि सव वतला दिया। यथासमय सेठ अपने सार्थवाहो के साथ रवाना हुआ और आचार्य भी अपने संघ-परिवार के साथ कुछ अन्तराल से चलने लगे ? जहा पर रात हो जाती और सेठ का पड़ाव लगता, वही थोड़ी दूर पर वृक्षो के नीचे प्रासुक भूमि देखकर आचार्य भी अपने संघ-परिवार के साथ ठहर जाते ? इस प्रकार चलते-चलते मार्ग में ही चौमासा आगया। आषाढ़ का मास था और पानी बरसना प्रारम्भ हो गया, तब सेठ ने अपने साथियों से कहा—भाइयो, अब वर्षा काल में आगे चलना ठीक नही है। इस समय अनेक छोटे छोटे सम्मूर्च्छन जीव पैदा हो जाते है, सर्वत्र घास आदि उग आती है, इससे चलने पर उन असख्य जीवो की विराधना होगी, वाहनो मे जुते बैलों को भी और हमें अपने आपको भी कष्ट होगा, तथा अपना माल भी खराब हो जायगा। अत यहीं किसी ऊचे और ऊसर भू भाग पर हमे अपना पड़ाव लगा देना चाहिए और शान्तिपूर्वक चौमासा विताना चाहिए।

भाइयो, पहिले चौमासे मे गृहस्थ लोग भी आना-जाना बन्द कर देते थे और एक जगह ठहर कर धर्म-साधन करते थे। उन्हे भी जीव-विराधना का विचार रहता था और असावद्य या अल्प सावद्य के ही व्यापार करते थे। आज तो इन सब बातो का किसी को कुछ भी विचार ही नहीं रहा है और चौमासे मे भी व्यापार के लिए मोटर-ट्रक आदि दौड़ाते फिरते है और महा आरम्भ

के व्यापारादि करते है। इन कल-कारखानो मे कितनी महा हिंसा होती है, इसका क्या कभी आप लोगो ने विचार किया है ?

हा, तो जब आचार्य धर्मघोष ने देखा कि चौमासा शुरु हो गया है और सेठ भी अपने साथियो के साथ ठहर गया है तब हमे भी यही आस-पास किसी निरवद्य और निराकुल स्थान पर ठहर जाना चाहिए। यह विचार कर उन्होने भी अपने सर्वसघ परिवार को पर्वतो की गुफाओ आदि एकान्त स्थानो मे ठहरने के लिए आज्ञा दे दी और कहा—साधुओ, यदि एपणीय आहार-जल मिल जावे तो ग्रहण कर लेना, अन्यथा जैसी तपस्या सभव हो, वैसा कर लेना। तब सब साधुओ ने कहा— गुरुदेव, इस जगल मे निर्दोष गोचरी मिलना सभव नही है, अत आप तो हमे चार चार मास क्षमण की तपस्या दिलावें। आचार्य ने सबको चातुर्मासिक तपस्या का प्रत्याख्यान कराके स्वय भी उसे अगीकार किया और वे किसी निर्जन वन-प्रदेश मे जा विराजे। शेप साधु भी यथायोग्य स्थानो पर ठहर करके आत्म-साधना मे सलग्न हो गये।

इधर सेठ भी अपने सार्थवाहो के साथ सामायिक-स्वाध्याय आदि करते हुए चौमासे के दिन पूरे करने लगा। उसने देखा कि साधु-सन्त लोग अपने-अपने ठिकाने चले गये हैं और धर्मध्यान मे मस्त हैं तो वह भी अपने कार्य मे और साथियो की सार-सभाल मे व्यस्त होकर उन साधु-सन्तो की बात ही मानो भूल-सा गया। इस प्रकार चार मास बीत गये। तब धन्नावह सेठ ने अपने साथियो को प्रस्थान करने के लिए तैयार होने की सूचना दी। जब सेठ के प्रधान मुनीम ने आकर कहा—सेठ साहब, और तो सब ने चलने की तैयारी कर ली है। परन्तु अपने साथ जो ५०० मुनिराज आये थे, उनका तो कोई पता ही नही है, तब सेठ को पश्चात्ताप हुआ— हाय, मैं बडा पापी हू ! जो मुनि-महात्माओ को विश्वास देकर साथ मे लाया, परन्तु पूरे चौमासे भर मैंने उनकी कोई सार-सभाल नही की। तब सब लोगो को भेजकर सेठ ने उनकी खोज-बीन करायी। इधर चौमासा पूर्ण हुआ जानकर सब साधु लोग भी आचार्य के पास एकत्रित हुए। जैसे ही सेठ को साधुओ के एकत्रित होने के समाचार मिले, वैसे ही वह आचार्य देव के पास गया और उनके चरण-कमलो मे पडकर रोने लगा। आचार्य महाराज ने पूछा सेठजी, क्या बात है ? सेठ बोला— महाराज, मैंने आपके साथ विश्वासघात का महापाप किया है जो कि मैं आप सबको विश्वास दिलाकर साथ मे लाया और फिर चौमासे भर मैंने आप लोगो की कोई सार-सभार नही की। तब आचार्य ने कहा - सेठजी, इसमे आपका कोई अपराध नही है। हमारा तो चार मास तक खूब धर्म-साधन हुआ और

कोई किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ हैं। सेठ ने कहा—आपका यह बड़प्पन है कि आप इस प्रकार कहते हैं। परन्तु मैं तो अपनी भूल के कारण अधम पुरुष ही हूं। तब आचार्य ने सेठ को और उनके सारे संघ को धर्म का हृदय-ग्राही उपदेश दिया और सब लोग सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उपदेश के अन्त में सेठ ने आचार्य महाराज से गोचरी को पधारने के लिए प्रार्थना की। और उन्होंने भी गोचरी को जाने के लिए विचार किया।

इसी समय सौधर्म स्वर्ग का शक्रेन्द्र अपनी सभा में बैठा हुआ कह रहा था कि जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में धन्नावह सेठ के समान और कोई परोपकारी और धर्मात्मा गृहस्थ नहीं है। यह सुनकर सर्व देवता बहुत प्रसन्न हुए। किन्तु एक मिथ्यात्वी देव को शक्रेन्द्र के वचनों पर विश्वास नहीं हुआ और वह उसकी परीक्षा करने के लिए वहां से चलकर यहां आया, जहां पर कि धन्नावह अपने साथियों के साथ ठहरा हुआ था। सब संघ वाले चातुर्मासिक साधुओं की पारणा कराने के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे कि इस देवने आकर सब की भोजन-सामग्री को साधुओं के लिए अग्राह्य कर दी।

भाइयो, मनुष्य इस प्रबल अन्तराय कर्म को इसी प्रकार दूसरों के भोग-उपभोग आदि में विघ्न करके ही बांधता है और फिर पीछे रोता है कि हाय, मेरे ऐसे अन्तरायकर्म का उदय है कि पुरुषार्थ करने पर भी मुझे यथेष्ट भोगोपभोगों की प्राप्ति नहीं हो रही है और लक्ष्मी नहीं मिल रही है।

हां, तो सब साधु-सन्त को गोचरी के लिए निकलने की आज्ञा देकर आचार्य गोचरी के लिए निकले। वे एक-एक कर सबके रसोई-घरों में गये, परन्तु कहीं पर भी कल्पनीय वस्तु दृष्टिगोचर नहीं हुई। सर्वत्र कुछ न कुछ अकल्पपना दिखा। धीरे-धीरे घूमते हुए जब वे धन्नावह सेठ के डेरे पर पहुंचे तो वहा पर भी कोई वस्तु ग्रहण करने के योग्य नही दीखी और जो भी वस्तु सेठ ने उन्हें वहराने के लिए उठाई, उसे भी आचार्य ने **'एसमवि न कप्पइ'** कह कर लेने से इनकार कर दिया। यह देखकर सेठ बहुत घबड़ाया और अपने मन में अपने दुष्कर्मों की निन्दा करता हुआ सोचने लगा कि मेरे पास और भी कोई ऐसी वस्तु है, जो इनके कल्पनीय हो? तभी साथ मे लाये गये घी के पीपों की ओर उसका ध्यान गया और उसने आचार्य महाराज से निवेदन किया—महाराज, कोठार के तम्बू में पधारिये, वहां पर आपके लिए कल्पनीय घी विद्यमान है। आचार्य ने वहा जाकर के अपना पात्र रख दिया। देवता ने जो घी को पात्र में वहराते देखा तो उसने आचार्य की सुनने और देखने की शक्ति को अपने विक्रियाबल से कम कर दी। अब सेठ पात्र में घी वहराता

जाता है, परन्तु आचार्य को नहीं दीखने से वे इनकार नहीं कर रहे हैं। सेठजी का नियम था कि जब तक साधु तीन बार लेने से इनकार न कर दें, तब तक मैं पात्र मे वहराने मे नहीं रुकूगा, सो वह घी वहराता जाता है और वह पात्र से बाहिर बहता जाता है। न आचार्य इनकार कर रहे हैं और न वह वहराने से ही रुक रहा है। इस प्रकार एक-एक करके सेठने घी के सब पीपो का घी बहरा दिया। सेठ के साथी लोग यह देखकर आचार्य की नाना प्रकार मे समालोचना करने लगे। कितने ही तो जोर-जोर से भी कहने लगे—अरे, ये आचार्य क्या अन्धे हो गये हैं ? जो घी बहा जा रहा है, पर ये लेने से इनकार ही नहीं कर रहे हैं। भाई लोगो का क्या है ? जरा से मे इधर से उधर हो जाते हैं। परन्तु आचार्य की श्रवण शक्ति चली जाने से न वे किसी की बात सुन ही रहे थे और दृष्टि-मन्द हो जाने के कारण कुछ देख ही न पा रहे थे। लोग सेठजी के लिए भी भला-बुरा कहन लगे कि अरे ये साधु अन्धे और बहरे हो गये हैं तो क्या सेठजी भी अन्धे हो गये हैं, जो यह बहता हुआ घी भी उन्हें नहीं दीख रहा है। सेठजी इन सब बातो को देखते और सुनते हुए भी उन पर कुछ ध्यान नहीं दे रहे हैं और अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ है कि जब तक ये तीन बार इनकार नहीं कर देंगे तब तक मैं देता ही जाऊगा। साथ ही यह विचार भी उनके मन मे आ रहा है कि मैं तो सुपात्र के पात्र मे ही दे रहा हू, किसी ऐसे-वैसे अपात्र या कुपात्र को नही वहरा रहा हू। अत उनके मन मे लोगो की नाना प्रकार की बातें सुनत हुए भी किसी प्रकार का क्षोभ नहीं हुआ।

इधर जब उस देवने देखा कि इतना घी सेठ ने वहरा दिया और आचार्य और सेठ की—दातार और पात्र दोनो की ही सर्व ओर से निन्दा हो रही है। फिर भी सेठ के मन मे किसी भी प्रकार का अणुमात्र भी दुर्भाव पैदा नहीं हो रहा है, तब उसे शक्रेन्द्र की बात पर विश्वास हुआ और उसने उसी समय आचार्य महाराज के सुनने और देखने की शक्ति ज्यो की त्यो कर दी। तब मुनिराज ने कहा—भैया, यह क्या किया। तूने इतना सारा घी क्यो बहा दिया। सेठ बोला—गुरुदेव, आपने मना नही किया सो मैं वहराता चला गया। तब आचार्य ने कहा—भाई, क्या बताऊ ? जब से तूने मेरे पात्र मे घी वहराना शुरु किया, तभी से मेरे देखने और सुनने की शक्ति समाप्त हो गई। अभी वह वापिस शक्ति प्राप्त हुई तो मैं तुम्हे मना कर रहा हू। उसी समय उस देवने प्रत्यक्ष होकर पहिले आचार्य का वन्दन-नमस्कार किया। फिर सेठ को नमस्कार करके बोला—सेठजी, शक्रेन्द्र ने आपकी जैसी प्रशंसा की थी, मैंने आपको उसी के समान पाया। मैंने ही अपनी माया से आचार्य महाराज के

देखने और सुनने की शक्ति को कम कर दिया था। मैं आपसे क्षमा मागता हूं। आपके घी का कोई नुकसान नही हुआ है। एवं यथापूर्व भरे हुए हैं। तभी देव ने सभी श्रावकों के रसोई घरों की भोज्य वस्तुओं को कल्पनीय कर दिया और सर्व साधुओं ने आहार पाणी प्रासुक प्राप्त कर पारणा किया। देवता भी सर्व साधुओ को वन्दन-नमन करके और सेठ की भूरि-भूरि प्रशंसा करता हुआ अपने स्थान को चला गया।

बन्धुओ, यह कथानक मैंने इस बात पर कहा है कि जो आर्यपुरुष होते है, वे यह विचार नही करते हैं कि मैं इसे दे रहा हूं तो यह पीछा आवेगा, या नही ? वे तो निर्वांछक होकर के ही दान देते है और जो कुछ भी किसी का उपकार करते हैं, वह प्रत्युपकार की भावना न रखकर ही करते हैं। वे व्यापार करते हैं तो उसमें भी अनुचित लाभ उठाने की भावना छोडकर और घाटा उठाकर भी सस्ते भाव से अन्न के व्यापारी लोगों को अन्न सुलभ करते हैं और वस्त्र या अन्य वस्तुओ के व्यापारी अपनी-अपनी वस्तुओं से मुनाफा कमाने की वृत्ति को छोडकर सस्ते और कम मूल्य पर ही वस्तुओं को देकर जनता-जनार्दन की सेवा करते है। आज के युग मे ऐसे आर्य पुरुषो के दर्शन भी दुर्लभ हो रहे हैं। जिधर देखो, उधर ही लोग दुष्काल के समय में अन्न को छुपा-छुपाकर रखते हैं और काले बाजार मे दूने और तिगुने दाम पर वेचकर मनमाना मुनाफा कमाते हैं। यह आर्यपना नही, बल्कि अनार्यपना है। आप लोगो को यह अनार्यपने की प्रवृत्ति छोड़ना चाहिए और आर्यों के वंशज होने के नाते अपने भीतर आर्य गुणो को प्रकट करना चाहिए।

चार प्रकार के पात्र

भाइयो, पात्र भी चार प्रकार के होते है – रत्नपात्र सुवर्णपात्र, रजतपात्र और मृत्तिका पात्र। रत्नों के पात्र समान तो तीर्थंकर भगवान् हैं। सोने के पात्र साधु-सन्त लोग हैं। चांदी के पात्र समान व्रती श्रावक और सम्यक्त्वी भाई हैं। तथा शेप लोग मिट्टी के पात्र समान है। जैसे पात्र में वस्तु रखी जायगी, उसकी वैसी ही महत्ता होती है। इसी प्रकार उक्त चार प्रकार के पात्रों मे से जिस प्रकार के पात्र को दान दिया जायगा और जैसे भावों के साथ दिया जायगा, वह उसी प्रकार का हीनाधिक फल देगा। पात्रदान का सुफल अवश्य ही प्राप्त होता है, इसमे कोई सन्देह नही, इसलिए पात्र को दान देते समय आपको सदा ऊंचे भाव रखना चाहिए और हीन विचार कभी भी मन मे नही लाना चाहिए। इस प्रकार जो आर्यपुरुष होते है, उनका पहिला

गुण है हृदय की कोमलता। दूसरा गुण है - लेना और देना। लेना गुण और देना साझ। तीसरा गुण है—विकथा, निन्दा और व्यर्थ के वाद-विवाद से दूर रहना। आर्यपुरुष प्रयोजन और आत्मकल्याण की बात के सिवाय निरर्थक या पर-निन्दा और विकथा की बात न स्वयं कहेगा और न सुनेगा ही। आर्य-पुरुष मन से कभी दूसरे की बुरी बात का चिन्तन नही करते, कान से सुनते भी नही है और आंख से किसी की बुरी बात देखते ही नहीं हैं। वे आंखों से जीवो को देखकर यतनापूर्वक चलते हैं, वचन से दूसरों के लिए हितकारी प्रिय वचन बोलते हैं और मन से दूसरों की भलाई की बात सोचते हैं। इस प्रकार उनके मन, वचन और काय मे भी आर्यपना रहता है। आर्यपुरुषों का लेन-देन, रीति-रिवाज और खान-पान सभी कुछ आर्यपने से भरा रहता है। उनकी सदा यही भावना रहती है—

नहीं सताऊं किसी जीवको, झूठ कभी नहि कहा करूं,
पर-धन, वनिता पर न लुभाऊं, सन्तोषामृत पिया करूं।
अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूं,
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या भाव धरूं।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं,
बने जहां तक इस जीवन में औरों का उपकार करूं।
मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे,
दीन दुखी जीवों पर मेरे उरसे करुणा-स्रोत बहे।
दुर्जन क्रूर कुमार्ग-रतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे।
गुणीजनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहां तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे,
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे।

आज लोग धर्म-धर्म चिल्लाते है और अपने को आर्य कहते हैं। परन्तु उनके भीतर धर्म कितना है और आर्यपना कितना है, यह देखने की बात है। अभी मध्यप्रदेश के रायपुर नगर मे आचार्य तुलसी का चौमासा हुआ। वहां पर उनकी 'अग्नि परीक्षा' नामक पुस्तक को लेकर अपने को सनातन धर्मी और आर्य कहने वाले लोगों ने कितना उपद्रव किया, पंडाल जला दिया और सती-साध्वियों तक पर अत्याचार करने पर उतारू हो गये। आचार्य तुलसी का वहां पर चौमासा पूरा करना भी कठिन कर दिया। आप लोगों को ज्ञात

है कि जैन दिवाकर चौथमल जी स्वामी ने भी 'सीता वनवास' नामक पुस्तक एक ही राग में लिखी है। वह भी अग्नि-परीक्षा जैसी ही है। भाई, जिस प्रकार पूर्वाचार्यों ने प्राकृत में 'तेसट्ठिपुरिसचरियं' बनाया, उसके ही आधार पर आचार्य हेमचन्द्र ने 'त्रिषष्ठि शलाका पुरुष-चरित' बनाया और उसी के आधार पर उपाध्याय समयसुन्दर जी और केशवराज जी ने रामायण का निर्माण किया। उसी प्रकार पहिले वाल्मीकिजी ने पहिले संस्कृत में रामायण बनाई, फिर तुलसीदास जी ने अपनी रामायण बनाई, तो सभी में राम और सीताजी के चरित का वर्णन है। मूल कथानक में कोई अन्तर नहीं है। हां घटनाओं का चित्रण किसी ने विस्तार से किया है, तो किसी ने संक्षेप से किया है। अभी आपके सामने कृष्ण जी का और कंस का प्रकरण चलता है तो जैसे क्षुद्र वचन कंस ने कृष्ण जी के लिए कहे है, वे यदि नहीं बताये जावेंगे तो कैसे पता चलेगा कि कौन कौन है और किसका चरित भला या बुरा है। इसी प्रकार सीताजी के लिए अग्नि-परीक्षा पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है, वह आचार्य तुलसी नहीं कह रहे हैं, किन्तु धोबी और सीता की सौतें कह रही हैं। उन्होंने तो उन बातों को लेकर केवल कविता-बद्ध कर दिया है। हां, यह हो सकता है कि कहीं कवि की कल्पना में एक शब्द के स्थान पर चार-पांच शब्दों का प्रयोग कर दिया हो और कहीं कोई कठोर शब्द आ गया हो ? परन्तु वह पक्ष तो पुराना ही है, आचार्य तुलसी ने कोई अपने मन से गढ़ कर नही लिखा है। पर इस साधारण सी बात को लेकर जो इतना ऊधम मचाया गया, सतियों के ठहरने के स्थान पर पत्थर फेंके गये और न मालूम क्या-क्या किया गया और खुल कर गालियों का और गन्दे शब्दों का प्रयोग किया गया ? क्या यह धर्म है और क्या यह आर्यपना है। यहां पर आप लोग यह बात छोड़ दें कि हमारे और आचार्य तुलसी के विचारों में कुछ सिद्धान्त भेद हैं। परन्तु आचार्य तुलसी का अपमान सारे जैन समाज का अपमान है। यह आचार्य तुलसी का पंडाल नहीं जला है, परन्तु सारे समाज *का जला है। आचार्य तुलसी ने सनातन धर्म के अग्रणी करपात्री जी से* कहा—आप स्वयं पुस्तक देखें और उसमें यदि कोई अनुचित बात दिखे तो जैसा आप कहेंगे, मैं वैसा संशोधन करने को तैयार हूं। मगर वे उस पुस्तक को भी देखने के लिए तैयार नहीं हुए। और समाचार पत्रों में तो यह भी प्रकाशित हुआ है कि उन्होंने यहां तक कहा कि यदि कोई नेता हमें रोकेगा तो हम उसे निन्दनीय मानेंगे। उनके अनुयायी विना विचारे जैसा कह रहे है, वे उसे ही मान रहे हैं और यहां तक प्रचार कर रहे है और धमकी दे रहे हैं कि

आने वाले कुम्भ के मेले मे हम उग्र आन्दोलन करेंगे। उनका स्पष्ट उद्देश्य यह है कि वे जैनियो को भारत से निकालना चाहते है। उनके इन शब्दो को लेकर वहा भयकर तूफान खडा हो गया है और अजमेर मे यहा छपाई गया दिया गया है, ऐसा रेडियो से समाचार प्रसारित किया गया है। उनके इस आन्दोलन से ऐसा ज्ञात होता है कि यहा पर जैनियो की मान्यता तक नहीं, वहा पर वे उनका नामोनिशान भी नहीं रहने देना चाहते है? क्या यही आर्यपना है? और क्या यही धर्म है? ऐसा व्यवहार और उनका प्रचार तो धर्म और देश के लिए घातक है और ऐसी स्थिति जैनियो के लिए ही नहीं, अपितु देश के लिए भी खतरनाक है।

जैन सब एक है

भाइयो, हम चाहे स्थानकवासी हो, मन्दिरमार्गी हो या दिगम्बरी हो, परन्तु जैन के नाते हम सब एक है। उन लोगो ने जैनियो के साथ अन्याय करने में कोई कसर नही रखी। परन्तु हमारा समाज तो तमाशा देखने में मस्त है। यह बडे शर्म की बात है कि आज हम रायपुर मे अपने भाइयो का अपमान देखकर खुशी मनाते है! हम अपने घर के भीतर भले ही मत-भेद रखे, पर दूसरो के द्वारा आक्रमण किये जाने पर तो हमे एक होकर रहना चाहिए और उसका एक होकर मुकाबिला करना चाहिए।

मुसलमानो ने हिन्दुओ को काफिर लिखा है और मुसलमान बादशाहों ने हजारो-लाखो मूर्तिया तोडी है और हजारो ही हिन्दुओ को मौत के घाट उतारा है। तब कोई बहादुरी उनके ऊपर नहीं दिखलाई? और आज जैनियों को अल्पसख्यक देखकर उन पर सवार हो रहे है और धमकी दे रहे हैं कि हम कुम्भ के मेले पर ऐसा करेंगे—वैसा करेंगे? उन्हे ज्ञात होना चाहिए कि जैनी अभी मर नही गये है। यदि सारे भारत के समस्त जैनी मिलकर आवाज उठावें तो उन धर्म के ठेकेदारो को पता चले कि हम कितने पानी मे हैं? शकराचार्य जी कहते है कि हमारी कुर्सी सोने की है। भाई, यहा भी ऐसे कई श्री पूज्य जी पड़े हुए हैं, और अनेक श्रीमन्त जैनी ऐसे है कि जिनके घरो मे आप से भी बढकर सोने की कुर्सियां पडी हुई है। क्या जैनियो के त्याग की कोई सनातनी तुलना कर सकता है? क्या सनातनियो मे भी कोई भामाशाह और पाड़ाशाह हुआ है, जिसने देश पर सकट के समय अपनी करोड़ो की सम्पत्ति समर्पण कर दी हो! तेरहपंथी भाई तो शान्ति वाले हैं। यदि उन जैसे उद्दंड होते, तो दिल्ली मे गायो के आन्दोलन के समय जैसे फरसे और लाठियो से लोगो के माथे फोड़े, वैसे ही वे भी फोड़ देते। परन्तु जैनी तो

अहिंसा धर्म के अनुयायी है और उसी के पुजारी हैं, वे स्वयं मार खा लेते हैं, परन्तु वापिस मुकाबिला नही करते हैं।

भाइयो, कैसी भी परिस्थिति आवे, उसे शान्ति से बैठकर और परस्पर में विचार-विनिमय करके सुलझाना चाहिए, तभी सनातनी आर्य कहला सकते हैं और जैनी जैन कहला सकते हैं, अन्यथा नही।

आज विचारों के आदान-प्रदान का युग है कोई भी आकर यदि अपने विचार सुनाता है तो हमें शान्तिपूर्वक सुनना चाहिए। यदि उसके विचार आपको श्रेष्ठ प्रतीत हों तो स्वीकार कर लेना चाहिए और यदि रुचिकर न लगें तो नही मानना चाहिए। परन्तु यह कहां का न्याय है कि हम औरों पर दवाव डाल कर कहें कि जैसा हमारे मत मे कहा है और जैसा हम कहते हैं, वैसा ही सबको मानना पड़ेगा। यह वात न ही कभी ऐसी हुई है और न अभी या आगे हो ही सकती है सनातनियों के भीतर ही देखो - परस्पर में सैकड़ों ही वातों मे मतभेद है। रामायण में भी कितने ही स्थलो पर वाल्मीकि कुछ कहते हैं और तुलसीदास कुछ और ही कहते है। दोनों में दिन-रात जैसा अन्तर है। कवीरपन्थियो ने राम को काल कहा है और उसके ऊपर राम पच्चीसी बनाई है। वहां पर तो इन धर्म के ठेकेदारों को वोलने की हिम्मत आज तक भी नहीं हुई। किन्तु सारी शक्ति आज उनकी 'अग्नि-परीक्षा' के ही ऊपर लग रही है, मानों उसमें सनातनियों के प्रति विप ही विप वमन किया गया हो ? अग्नि-परीक्षा को छपे हुए आज कई वर्प हो गये है। परन्तु अभी तक उनकी नीद नही खुली थी। आज ही उनकी आंख खुली है ! आज सनातनी हिन्दुओं के आचार्य कहते है कि हम भारत में राज्य कर रहे हैं। भाई, मैं उनसे पूछता हूँ कि यदि सचमुच उनका राज्य हो जाय तो क्या वे सिक्खों, जैनियों और अपने से विभिन्न धर्मानुयायियों को क्या घानी में पील देंगे ? उन्हे ज्ञात होना चाहिए कि आज प्रजातत्र का युग है, नादिरशाही का जमाना नहीं है। किसी एक व्यक्ति के द्वारा यदि किसी महापुरुष के प्रति कोई अपमानजनक शब्द लिख या बोल दिया जाता है, तो उससे उस महापुरुप का अपमान नही हो जाता है। सौ टंच के सोने को यदि कोई कीचड़ में डाल देगा, तो क्या वह सौ टंच का नहीं रहेगा ? इसलिए आज हमें वड़े विवेक से काम लेना चाहिए और किसी पक्ष को अपने मति भ्रम से कमजोर जानकर उस पर अन्याय नही करना चाहिए। यदि कोई हमारी खामोशी और अहिंसक मनोवृत्ति का अनुचित लाभ उठाता है तो हम सब जैनियों को सम्प्रदायवाद

का और पन्थवाद का व्यामोह छोड़कर और एक होकर उसका मुकाबिला करना चाहिए।

धर्मवीरो, तुम लोग तो महावीर के अनुयायी हो। तुम्हें अपने धर्म का और धर्माचार्य का अपमान नहीं करना चाहिए। आज यदि किसी मत के अनुयायी तुम्हारे खिलाफ कोई आन्दोलन छेड़ते है तो तुम्हें उसका समुचित उत्तर देना चाहिए। भारत-सरकार का भी कर्तव्य है कि वह इस प्रकार सम्प्रदायवाद का विप-वमन करनेवाले लोगों के बोलने पर प्रतिवन्ध लगा देवें और उन अखवारों पर भी प्रतिबन्ध लगा देवें जो कि साम्प्रदायिकता का प्रचार करते हैं। हम जैनी लोग आर्यपना रखते है और किसी के साथ अनार्यपनेका व्यवहार नही करते हैं। फिर भी यदि कोई आगे बढ़कर हमारे साथ अनार्यपनेका व्यवहार करता है, तो हमें भी उसका न्यायपूर्वक उत्तर देना ही चाहिए।

सहनशीलता रखिए :

पहिले के लोग कितने सहनशील और विचारक होते थे कि किसी व्यक्ति द्वारा कुछ कह दिये जाने पर भी उत्तेजित नही होते थे और शान्ति से उस पर विचार करते थे कि इसने हमें यह शब्द क्यों कहा ? एकवार केशी मुनि ने परदेशी राजा को 'चोर' कह दिया, तो उन्होंने विनयपूर्वक पूछा—भगवन्, मैं चोर कैसे हूँ। जब उनसे उत्तर सुना तो नतमस्तक हो स्वीकार किया कि आपका कथन सत्य है। यदि मां-बाप किसी बात पर नाराज होकर पुत्र से कहें कि यदि मेरा कहना नहीं मानेगा तो भीख मांगनी पड़ेगी। परन्तु समझ-दार पुत्र सोचता है कि यह तो वे हमारे हित के लिए ही कह रहे हैं। क्योंकि कहावत भी है

जे न मानें बड़ों की सीख, ले खपरिया मांगे भीख।

अर्थात् जो बड़े-बूढ़ों की सीख नही मानते हैं, वे खप्पर हाथ में लेकर घर-घर भीख मांगते फिरते हैं।

महाभारत मे आया है कि एक वार अर्जुन जब युद्ध में लड़ रहे थे और युधिष्ठिर नहीं दिखे तो उन्हें खयाल आया कि कहीं कौरव लोग उन्हे जुआ खिलाकर के सारा राजपाट फिर से न ले लेवे ? यह विचार आते ही उन्होंने पहिले भीम को खबर लेने के लिए भेजा। परन्तु वे मार्ग में ही लड़ाई मे उलझ गये और वापिस नही आये तो अर्जुन ने सत्यकि को भेजा। जब वह भी खबर लेकर वापिस नहीं पहुचा तो सारथी से रथ को छावनी पर लौटा ले चलने के लिए कहा। अर्जुन को युद्ध से आया हुआ देखकर युधिष्ठिर ने

पूछा—तुम युद्ध से कैसे लौट आये ? अर्जुन ने कहा—आपके रथ की ध्वजा नहीं दिखने से आपको संभालने के लिए आया हूँ। यह सुनते ही युधिष्ठिर ने कहा—अरे, क्षत्रिय-कुल-कलंक, तू शत्रुओं को पीठ दिखाकर आगया ? इसप्रकार भर्त्सनापूर्वक अनेक अपशब्द कहे। तब तक तो अर्जुन को क्रोध नहीं आया। किन्तु जब युधिष्ठिर ने कहा—डाल दे गांडीव धनुष को नीचे। तो यह सुनते ही अर्जुन आपे से बाहिर हो गये और उनके ही ऊपर धनुषबाण चलाने को तैयार हो गये। श्री कृष्ण ने यह देखते ही अर्जुन का हाथ पकड़ लिया और बोले—तू पिता तुल्य अपने बड़े भाई को ही मारने के लिए तैयार हो गया ? अरे, उन्होंने तो तेरा जोश जागृत करने के लिए ही ऐसे शब्द कहे हैं। तेरा अपमान करने के लिए नहीं। यह सुनते ही अर्जुन की आंखें और हाथ नीचे हो गये। और वापिस युद्ध स्थल को लौट गये।

अन्यतीर्थी होते हुए भी परदेशी राजा ने यही सोचा कि स्वामी और नाथ कहनेवाले अनेक है। पर यह साधु मुझे चोर कह रहा है, तो मुझे कुछ शिक्षा देने के अभिप्राय से ही कह रहा है। अनाथी मुनि ने जब राजा श्रेणिक से ही अनाथ कह दिया, तो उन्होंने पूछा—मैं अनाथ कैसे ? मैं तो सहस्रों व्यक्तियों का नाथ हूँ। मुनि ने कहा—क्या तू मौत से अपनी रक्षा कर सकता है, तो श्रेणिक बोले-नहीं। तब मुनि ने कहा—जो मौत से अपनी रक्षा नहीं कर सकता, तो वह अनाथ नही तो और क्या है ? पहिले बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं से भी साधु-सन्त कोई कठोर शब्द बोल देते थे, तो वे उसे सहन करके अच्छे ही अर्थ में उसे लेते थे। आज यदि कोई सन्त किसी मालदार से कुछ कह दे तो उस पर तेवरी चढ़ जाती है। भाइयो, किसी की भी बात को सुनकर उस पर शान्तिपूर्वक विचार करना चाहिए। यही आर्यपना है। और जो किसी बात को सुनकर आपे से बाहिर हो जाते हैं और मरने-मारने को उतारू हो जाते हैं तो यही अनार्यपना है। हमें अनार्यपना छोड़कर आर्यपना अंगीकार करना चाहिए।

वि० स० २०२७ कार्तिक शुक्ला १०
जोधपुर

२६ | सिहवृत्ति अपनाइये !

बुद्धिमान सद्‌गृहस्थो, स्थानाङ्गसूत्र मे विविध प्रकार के भावो का वर्णन किया गया है। जो मनुष्य को मानवता ग्रहण करने के लिए प्रेरणा देते है। हमारे तीर्थंकरो ने हमे मानव बनाने की जितनी चिन्ता की है, उतनी न हमारे माता-पिताओ ने की और न मित्र या स्वजन-सम्बन्धियो ने की है। और तो क्या स्वय आपने ही नही की है। भगवान ने मानवता प्राप्त करने के लिए जो उपदेश दिया उसका प्रधान कारण यह है कि इस मानव-देह का पाना अति दुर्लभ है। यदि मनुष्य इस देह को पाकर के भी इसे सफल नही कर सका और इसे व्यर्थ गवा दिया तो फिर अनन्त ससार मे परिभ्रमण करना पडेगा। इसलिए उन्होने अनेक युक्तियो के साथ मानवता को प्राप्त करने के लिए वार-वार प्रेरणा दी। आज के त्यागी सन्त महात्मा लोग भी भगवान के उन वचनो का ही अनुसरण करके आपको प्रेरणा दे रहे है।

चार प्रकार के मनुष्य :

स्थानाङ्गसूत्र मे चार प्रकार के पुरुष बतलाये गये हैं—सिह के समान, हाथी के समान, वृषभ के समान और अश्व के समान। ये सभी सज्ञी पचेन्द्रिय तियच है और चारो ही उत्तम जाति के पशु हैं। यद्यपि सिह मासाहारी पशु है, तथापि वीरत्वगुण के कारण उसे उत्तम कहा गया है। जो वीर व्यक्ति होता है, वह सर्वत्र निर्भय रहता है। कहा भी है—

'एकाकिनस्ते विचरन्ति वीराः' ।

अर्थात् जो वीरपुरुष होते हैं, वे सर्वत्र अकेले ही निर्भय होकर विचरते हैं। सिंह अपनी इस वीरता के कारण ही वन का राजा कहलाता है। अन्यथा—

'मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रत्वं वितीर्णं केन कानने'

अरे सिंह को मृगराजपना जंगल में किसने दिया है ? किसी ने भी नही दिया है। किन्तु वह अपने अपूर्व शौर्य और पराक्रम से स्वयं वन का राजा बन जाता है। सिंह के पास न तो शस्त्र हैं और न कवच-टोप आदि ही। न रहने को कोट किले आदि ही। परन्तु अपनी वीरता के कारण अनेक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित पुरुषों के साथ भी टक्कर लेता है। इसका कारण यह है कि उसके भीतर अदम्य साहस और महान् आत्मविश्वास होता है। वह बड़े-बड़े मन्दोन्मत्त हाथियों को देखकर भी मन में यह स्वाभिमान और आत्मविश्वास के साथ कहता है कि 'सत्त्वं प्रधानं न च मांसराशिः' अर्थात् बल प्रधान है। किन्तु मांस की राशि प्रधान नहीं है। अपने इस आत्मविश्वास के ऊपर ही वह बड़े बड़े हाथियों के छक्के छुड़ा देता है और उनके मस्तक पर किये गये एक ही पंजे के प्रहार से मदान्ध हाथी चिंघाडते हुए चारों ओर भागते नजर आते हैं। साधारण लोगों के तो उसकी गर्जना सुनने मात्र से ही प्राण निकल जाते हैं। जिस व्यक्ति में सिंह के समान वीरता भरी होती है, उसे ही 'नरसिंह' और 'पुरुषसिंह' कहा जाता है। जैसा कि नीति वाक्य है—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः ।

अर्थात्—उद्योग करनेवाले पुरुषसिंह को लक्ष्मी स्वयं प्राप्त होती है। दृष्टान्त एक देशी होता है, अतः सिंह की उपमा देते हुए उसकी वीरता से ही अभिप्राय है, उसके किसी अवगुण से नहीं। जवारी के उत्तम दानों को मोतियों की और मक्की के दानों का पीला चमकता रंग देखकर मोहरों की उपमा दी जाती है, तो उसमें केवल वर्ण-समता देखकर ही दी जाती है। अन्यथा मूल्य की अपेक्षा मोती और जवारी के दानों में, तथा सोने और मक्की के दानों में आकाश-पाताल जैसा अन्तर है। यह छोटी वस्तु को बड़ी उपमा दी गई है। कहीं पर बड़ी वस्तु को छोटी-उपमा दी जाती है। जैसे यह तालाब कटोरे जैसा जलपूर्ण है। परन्तु कटोरे का जल तो एक बालक भी पी लेता है, पर तालाब का जल तो हजारों पशुओं के द्वारा पिये जाने पर भी समाप्त नहीं होता है। इस प्रकार उपमालंकार के अनेक भेद होते हैं। जितनी भी उपमाएँ दी जाती है, एक देशीय ही होती है।

जो व्यक्ति सिंह के समान होते हैं, उनको भयावनी रात मे वन मे, मसान मे या कही भी जाने के लिए कह दो, वे कही भी जाने से नही हिचकते हैं। किन्तु जो कायर पुरुष होते है, वे रात मे घरके बाहिर पेशाब करने के लिए जाने मे भी डरते है। पुरुपसिंह जिस कार्य के करने में सलग्न हो जाता है, वह कभी पीछे नही हटता, भले ही प्राण चले जावें। जो सिंह के समान वृत्तिवाले पुरुष होते हैं, वे सदा दृढनिश्चयी होते है। उन जैसे व्यक्तियो के लिए कहा जाता है कि--

चन्द्र टरे सूरज टरे, टरे जगत व्यवहार।
पै दृढ व्रत हरिश्चन्द्र का, टरे न सत्य विचार॥

और ऐसे ही पुरुपसिंहो के लिए कहा जाता है---

रघुकुल-रीति सदा चल आई,
प्राण जायें, पर वचन न जाई।

भाई, सिंहवृत्ति वाले मनुष्यों की यही प्रकृति होती है कि प्राण भले ही चले जावें पर वे अपने दिये वचन से पीछे नही हटते हैं और लिये हुए प्रण या प्रतिज्ञा का मरते दम तक निर्वाह करते हैं। सिंह वृत्ति मनुष्य जिस कार्य को करने का निश्चय कर लेता है, उसे पूरा करके ही रहता है। भगवान महावीर स्वामी को ही देखो—जब उन्होने साधु वेप धारण कर लिया तो साढे बारह वर्ष तक लगातार एक से एक बढकर और भयकर से भयकर उपसर्ग उनके ऊपर आते ही रहे। मगर वे अपने साधना-पथ से रच मात्र भी विचलित नही हुए। तभी वे दिव्य केवल ज्ञानी और केवल दर्शनी बने और अनन्त गुणो के स्वामी होकर अपने उद्धार के साथ तीन जगत का उद्धार किया।

कायरता छोडो!

आज आप लोगो मे से किसी से यदि पूछा जाय कि भाई कल सामायिक क्यो नही की, तो कहते हैं कि क्या करे महाराज, 'जीव को गिरह लगी हुई है, कि सामायिक करने का अवकाश ही नही मिला। कोई कहेगा—महाराज, आज स्त्री इस प्रकार लडी कि सामायिक करने का मन ही नही हुआ। तीसरा कहेगा कि महाराज, सौ का नोट जेब से किसी ने निकाल लिया और चौथा कहेगा कि आज जमाई की बीमारी का तार आने से जाने की तैयारी मे लगा रहा। इस प्रकार अपना अपना रोना रोकर कहेंगे कि महाराज, इस कारण से सामायिक नही कर सके। मैं पूछता हू कि स्त्री, जमाई या सौ का नोट तुम्हारा उद्धार कर देंगे और तुम्हे मोक्ष में भेज देंगे? नही भेजेंगे। परन्तु मनुष्य मे

कायरता इस प्रकार कूट-कूट कर भरी हुई है कि वीरता उससे कोसों दूर है। भाई,

कायरता किण काम री, निपट बिगाड़े नूर।
आदर में इणकी पड़े, धोबा भर भर धूर —!

लोग सांसारिक सुख के पीछे ऐसे मतवाले हो रहे है कि धर्म को भूल जाते हैं। उन्हें यह याद रखना चाहिए कि—

जो संसार-विषै सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागै ?
काहे को शिव-साधन करते संयम सौं अनुरागै ॥

यदि संसार में सुख होता तो तीर्थंकर भगवान भी अपने असीम राज्य वैभव को छोड़कर क्यों संयम से अनुराग करते और क्यों शिव की साधना करते। भाई, संसार में तो कभी सुख है ही नहीं। चाहे—तीसरा आरा हो और चाहे चौथा आरा। उस समय भी इस संसार में सुख नहीं था, फिर आज तो यह पंचम दुषमा आरा है, यह कलिकाल है, इसमें आप लोग सुख पा ही कैसे सकते हैं। इसलिए सुख पाने की कल्पना को छोड़ दो। यदि सच्चा और आत्मिकसुख पाना है तो अपने व्रत और नियम पद दृढ़ रहो। जो सिंह के समान दृढ निश्चयी और शूरवीर पुरुष होते है, वे अपने व्रत और नियम को हजारों कष्ट और आपदाएं आने पर भी यथाविधि निभाते हैं।

दूसरी जाति के मनुष्य हाथी के समान होते हैं। हाथी मे मस्तानी भरी रहती है। वह अपनी धुन में इतना मस्त रहता है कि उसके पीछे हजारों कुत्ते भौंकते रहें तो वह उनकी परवाह नही करता है। और अपनी मस्तानी चाल से आगे को चलता रहता है। इसी प्रकार जो मनुष्य हाथी जैसी प्रकृति के होते हैं, वे हानि-लाभ, जीवन-मरण और सुख-दुख आदि सभी अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में समभाव को रखते हुए आगे वढते रहते है। यदि आप लोग सिंह के समान नही वन सकते तो हाथी के समान ही बन जावें। आपके जीवन में भले ही कितने उतार-चढाव आवें, पर आपको चाहिए कि सम्पत्ति में फूलें नहीं, विपत्ति में झूरें नही। इस हाथी जैसी प्रकृति के लोग सदा समभावी रहते हैं। उनको महापुरुषों ने ज्ञाता पुरुष कहा है—

पूरब भोग न चिन्तवै, आगम वांछा नांहि।
वर्तमान वरतै सदा, ते ज्ञाता जगमांहि ॥

अश्व के समान पुरुष

तीसरी जाति के पुरुष घोड़े के समान होते हैं। घोड़े का स्वभाव चंचल होता है और वह इशारे पर चलता है। इसी प्रकार जिनकी बुद्धि चंचल और तीक्ष्ण होती है, वह प्रत्येक तत्त्व को शीघ्र पहिचान लेता है। कहा जाता है कि घोड़ा जिस मार्ग से अंधेरी रात में एक बार भी निकल जावे तो वह भूलता नहीं है और यदि छोड़ दिया जावे तो वापिस अपने स्थान पर पहुंच जाता है। इसी प्रकार घोड़े के समान जिस व्यक्ति का स्वभाव होता है, वह गुरुजनों के द्वारा बतलाये गये सुमार्ग पर नि.शंक होकर चला जाता है। जिस प्रकार घोड़ा अपने ऊपर सवार के प्रत्येक इशारे को समझता है और तदनुसार चलता है, उसी प्रकार इस जैसी प्रकृति वाले पुरुष भी गुरु के प्रत्येक अभिप्राय और संकेत को समझकर तदनुसार चलते है। चंचल और तीक्ष्ण बुद्धि वाला पुरुष प्रत्येक परिस्थिति में अपने अभीष्ट और हितकारी मार्ग का निर्णय कर लेता है। जैसे घोड़ा अपने शत्रु सिंह आदि की गन्ध तुरन्त दूर से ही भांप लेता है, उसी प्रकार इस जाति का पुरुष भी आने वाले उपद्रवों को तुरन्त भांप लेता है और उनसे बचने के लिए सतर्क हो जाता है। मनुष्य के भीतर इस गुण का होना भी आवश्यक है।

धीर पुरुष : वृषभ समान

चौथी जाति के पुरुष वृषभ (बैल) के समान होते है। जैसे बैल अपने ऊपर आये बोझ को शान्त भाव से वहन करता है और गाड़ी में जोते जाने पर अभीष्ट स्थान तक गाड़ी को ले जाता है, उसी प्रकार इस प्रकृति के मनुष्य भी अपने ऊपर आये हुए कुटुम्ब के भार को, समाज के भार को और धर्म के भार को शान्तिपूर्वक अपना कर्तव्य समझकर वहन करते हैं। बैल की प्रकृति भद्र होती है और गाड़ी को नदी पर्वत और वन में से निकालकर पार कर देता है, उसी प्रकार वृषभ जाति का मनुष्य भी आने वाले मार्ग के संकटों से बचाता हुआ कुटुम्ब का और अपना निर्वाह करता है। मारवाड़ में बैल को धोरी इसीलिए कहते हैं कि वे चलने मे डरते नहीं है और अपने मालिक को अभीष्ट स्थान पर पहुँचा देते है। जो वृषभजाति के मनुष्य होते हैं उन पर कुटुम्ब का, समाज का, देश का और धर्म का कितना ही भार क्यों न आजावे, परन्तु वे उससे घबड़ाते नही है और अपना कर्तव्य पूर्ण करके ही विश्राम लेते हैं। इस प्रकार सिंह, हाथी, अश्व और वृषभ के समान चार जाति के मनुष्य होते हैं।

अब यहां उपस्थित बहिनें सोच रही होंगी कि शास्त्रों में केवल पुरुषों के के लिए ही उत्तम उपमाएं दी गई हैं, हमारे लिए तो कहीं कोई उत्तम उपमा नहीं दी गई है ? सो बहिनो, आप लोगों को ऐसा नहीं विचारना चाहिए, क्योंकि उक्त चारों प्रकार के मनुष्यों को उत्पन्न करने वाली तो आप लोग ही हैं। जब आप लोगों में सिंह, हाथी जैसे गुण होंगे, तभी तो आपके पुत्र उन गुणों वाले होंगे। जब जिन गुणों के कारण आपके पुत्रों की प्रशंसा हो रही है, तब आपकी प्रशंसा स्वयं ही हो रही है, ऐसी जानना चाहिए। फिर वीरांगना को सिंहनी कहा ही जाता है, मस्ती की चाल चलने वाली स्त्री को गजगामिनी कहते हैं और दान देने वाली बहिन को कामधेनु की उपमा दी ही जाती है। यदि किसी की बहू बेटी के शरीर पर सौ तोला सोना है और सुन्दर वस्त्र पहिने हुई है तो उसकी सासू और मां की प्रशंसा और बड़प्पन स्वयं ही सिद्ध है, भले ही वह सोने की एक भी वस्तु न पहिने हो और साधारण वस्त्र ही पहिने हो। यदि सेठजी का मुनीम गले में मोतियों की माला पहिने हुए दुकान पर बैठा है और सेठजी कुछ भी नहीं पहिने हुए हों, तो भी लोग यही कहेंगे कि जिसके मुनीम ऐसे सम्पन्न है तो उसके मालिक की सम्पन्नता का क्या कहना है ?

भाइयो, एक बार सोजत के खखड़ों की बारात चेलावास गई। वहां सिंधी और भंडारी जोगे रहते थे। वे जानते हैं कि ये खखड़ लोग बारातों में बड़े सज-धजकर और चटक-मटक वस्त्राभूषण पहिन कर आते हैं। भाई, दुनियां का व्यवहार ही ऐसा है कि जिसके पास कम पूंजी और माल कम होता है, वह पहिनावे-ओढ़ावे में अधिकता ही दिखाता है और जिसके पास भरपूर माल होता है, वह सादा ही वेषभूषा में रहता है। हां, तो उन खखड़ों ने चेलावास जाकर अपने प्रदर्शन की धूम मचा दी और आपस में कहने लगे कि लड़की का बाप तो दिखता ही नहीं है कि कौन है ? कोई मामूली-सा ही आदमी मालूम पड़ता है ? लड़की के बापने गायों को दुहने के लिए जाते समय यह सुन लिया। उसकी गौ शाला में साठ-सत्तर गायें-भैंसें और बछड़े पाड़े थे। जब बराती लोग उसके यहा जीमने के लिए आ रहे थे कभी लड़की के बापने अपने सब जानवरों को सोने के डोरे, जनेऊ और किलगी आदि पहिना करके जंगल में चरने के लिए छोड़ा। वे बराती जानवरों को सोने के आभूषण पहिने सेठ की गौशाला से निकलते हुए देखकर गांववालों से पूछने लगे कि ये किसके जानवर हैं और कहां जा रहे हैं ? लोगों ने बताया कि जिसके यहां आप लोग बारात लेकर आये हैं, ये उसी के जानवर हैं और अब चरने

के लिए जगल मे जा रहे हैं। भाई, जिसके पास होगा, तो वह पहिनावेगा ही। यह सुनकर और जानवरो के आभूषणो को देखकर सब वाराती दग रह गये।

माता का गौरव

हा तो मैं वहिनो से कह रहा था कि जब आपकी सन्तान योग्य और उत्तम गुणवाली होगी और ससार मे उसकी प्रशसा होगी, तो आप लोगो की प्रशसा विना कहे ही हो रही है। क्योकि उनकी जननी तो आप लोग ही हैं। फिर लोग कहते ही हैं कि उस माता को धन्यवाद है कि जिसने ऐसे ऐसे नर-रत्न उत्पन्न किये हैं। और भी देखो भगवान ने जीवो के तीन वेद वतलाये हैं—स्त्रीवेद, पुरुपवेद और नपु सक वेद। इनमे सबसे पहिले स्त्री वेद ही रखा है, क्योकि ससार की जननी वे ही हैं। वे ही अपने उदर मे नौ मास तक सन्तान को रखती हैं और फिर जन्म देकर तथा दूध पिलाकर सन्तान को वडा करती है और सर्व प्रकार से उसका लालन पालन करती हैं। पुरुप तो घर मे लाकर पैसा डाल देता है। उसका समुचित विनियोग और व्यवस्था तो आप लोग ही करती हैं। और भी देखो—तीर्थकर भगवान् वालपन से किसी को भी हाथ नही जोडते है, यहा तक कि अपने पिता को भी नही। किन्तु माता को वे भी हाथ जोडते है। इन सब बातो से स्त्री का गौरव और वडापन स्वय सिद्ध है। शास्त्रो मे भी मनुष्य गति से मनुष्य के साथ मनुष्यनी, देवगति से देवके साथ देवी और तिर्यग्गति से तिर्यच और तिर्यचिनी दोनो ही ग्रहण किये जाते हैं। किन्तु व्यापार करने, शासन करने और युद्ध जीतने आदि दु खकारी कठोर कार्यो को पुरुप ही करता है, इसलिए लोक व्यवहार मे उनको लक्ष्य करके वात कही जाती है। इसका यह अभिप्राय नही है कि स्त्रियो की उपेक्षा की गई हैं। अत वहिना को किसी प्रकार की हीनभावना मन मे नही लानी चाहिए और न यह ही सोचना चाहिए कि महापुरुपो ने हमारी उपेक्षा की है। देखो! भगवान ने पुरुपो के समान ही स्त्रियो के सघ की व्यवस्था की है। साधुओ के समान व्रत धारण करने वाली स्त्रियो का साध्वी सघ वनाया और श्रावक के व्रतो को धारण करने वाली स्त्रियो का श्राविका सघ वनाया और अपने चतुर्विध सघ मे उन्हे पुरुपो के ही समान वरा-वरी का स्थान दिया है। फिर पुत्र तो अपने पितृकुल का ही नाम रोशन करता है किन्तु पुत्री तो पितृकुल और श्वसुरकुल इन दो का नाम रोशन करती है। भाई, यह जैन सिद्धान्त है, इसमे तो जो वस्तु जैसी है, उसका यथावत् ही स्वरूप निरूपण किया गया है। इसमे कही भी किसी के साथ कोई पक्षपात नही किया गया है।

एक समय सादड़ी मारवाड़ में धर्म-सम्बन्धी वात को लेकर विरादरी में झमेला पड़ गया। भाई, जैनियों में फिर के भी बहुत हैं, कभी सम्प भी रहता है तो कभी लड़ाई भी हो जाती है। विरादरी ने एक भाई की अनुचित वात से नाराज होकर रोटी-बेटी का व्यवहार बन्द कर दिया। वह पांच-सात लाख का आसामी था, उसने देखा कि अपनी विरादरी वालों से पार नहीं पा सकता हूं तो पर विरादरी में जाने का अपने दोनों भाइयों के साथ विचार किया। वे तीनों भाई अपनी मां के पास पहुंचे और अपना अभिप्राय मां से कहा। मां ने कहा—अरे छोरो, यह क्या करते हो? लड़के बोले—जब सारी विरादरी एक ओर हो गई है और हमें जाति-विरादरी से भी बहिष्कार कर दिया है, तब यहां पर हमारा निर्वाह नहीं हो सकता है। तब मां नाराज होकर बोली—यदि विरादरी में तुम लोगों का निर्वाह नहीं होता है, तो तुम लोग मेरे घर से निकल जाओ। मेरे बेटे कहलाने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। यदि तुम लोगो ने मेरा दूध पिया है और मेरी सन्तान हो तो मैं जहां खड़ी हूं, वही तुम्हें खड़े रहना होगा। अपनी गलती स्वीकार करो और समाज से क्षमा-याचना करो। अपने अहंकार के पीछे तुम लोग इस जाति को और इस पतित-पावन और विश्व-उद्धारक धर्म को ही छोड़ने के लिए तैयार हो गये हो। तुम्हें अपने बाप-दादों का नाम लजाते हुए शर्म नहीं आती। मां की यह फटकार सुनते ही तीनों लड़कों ने चूं तक नही किया और समाज से माफी मांगकर पहिले के समान ही रहने लगे।

बहिनो, यदि आप लोग दृढ़ हैं और अपने धर्म पर कायम हैं तो पुरुषों की मजाल है जो वे धर्म और समाज से बाहिर जाने का विचार भी कर सकें। आप लोग यदि धर्मवीर हैं और कर्म शूर हैं तो आपकी सन्तान भी अवश्य ही वीर और धर्मात्मा होगी। घर की मालकिन तो आप लोग ही हैं। यदि मनुष्य बाहिर के काम-काजका स्वामी है तो आप गृह-स्वामिनी हैं। यदि मनुष्य बाहिर का राजा है तो आप लोग घर की रानी हैं। घर का नाम जो आप लोगों के द्वारा ही रोशन होता है। आचार्यों ने कहा है कि—

'गृहिणी गृहमाहुः न कुड्यकट संहतिम्।
धर्मश्री-शर्म कीर्त्येककेतनं हि सुमातरः॥

स्त्री को ही घर कहा जाता है, इस ईंट, पत्थर और चूने से बने मकान को घर नहीं कहा जाता है। फिर उत्तम माताएं तो धर्म, श्री-शोभा, सुख-शान्ति और कीर्ति को फहराने वाली ध्वजा पताका के समान कही गई है। जिस घर की माताएं सुयोग्य और घर की उत्तम व्यवस्था करने वाली होती

हैं, उस घर का नाम सर्व ओर फैलता है। इसलिए आपको अपना उत्तर-दायित्व समझना चाहिए और स्वयं शेरनी और कामधेनु बनकर अपनी सन्तान को शेर और कल्प-वृक्ष बनाना चाहिए।

पवित्र विचारों का प्रभाव

पुराने समय की बात है—एक सेठ के घर में चोर घुसा। कुछ आहट पाने से सेठानी की नींद खुल गई। उसने बाहिर छत पर जाकर देखा तो एक पर-छाई-सी दिखी। उसने सोचा कि यदि मैं आवाज करूंगी तो सेठजी की और बच्चों की नींद खुल जावेगी और पता नहीं, ये कितने लोग है और ये कहीं किसी पर आक्रमण कर दे तो आपत्ति आ जाय। जो जाना हो—चला जायगा। पर किसी पर आपत्ति नही आनी चाहिए, यह विचार कर वह वापिस कमरे का द्वार बन्द करके सो गई। कुछ देर बाद सेठ की नींद खुली। जैसे ही वे छत पर आये तो देखा कि कोई व्यक्ति नीचे की ओर उतर रहा है। सेठजी समझ गये कि कोई पुरुष चोरी करने के लिए आया है, अतः यह क्यों खाली हाथ जावे, यह विचार कर वे कमरे का द्वार खुला छोड़कर ही भीतर जाकर सो गये। सेठजी मन में विचारते रहे कि इस बेचारे के घर में कुछ होगा नही तभी तो यह चोरी करने के लिए रात में ऐसे सर्दी के समय आया है। इधर चोर ने सोचा कि सेठ ने मुझे देख लिया है और चोरी कराने के लिए ही इसने कमरे का द्वार खुला छोड़ दिया है, तो मुझे अब इस घर में चोरी नहीं करनी चाहिए। यह सोचकर वह वापिस चला आया। दूसरे दिन सेठ ने देखा कि चोर कुछ भी नहीं ले गया है और खाली हाथ लौट गया है तो उन्होंने मकान का प्रधान द्वार भी रात को खुला छोड़ दिया और तिजोरी का ताला भी बन्द नहीं किया। यथासमय वही चोर चोरी करने के लिए आया। आकर के उसने देखा कि आज तो मकान का द्वार ही खुला हुआ है तो वह भीतर घुसा। दुकान में जाकर देखा कि तिजोरी का ताला भी नहीं लगा हुआ है तो चोर ने सोचा कि मेरे द्वारा चोरी कराने के लिए ही सेठ ने ऐसा किया है। अतः मुझे यहां से चोरी नहीं करना है। यह विचार कर वह आज भी खाली हाथ वापिस चला गया।

भाइयो, देखो—मानव के पवित्र विचारों में कितनी प्रबल शक्ति होती है कि वह चोरो के हृदय में भी परिवर्तन कर देती है। सवेरे सेठ ने उठकर देखा कि तिजोरी में से कुछ भी रकम नहीं गई है और घर में से भी कोई दूसरा माल नहीं गया है, तब वह बहुत विस्मित हुआ कि चोर तो घर में आया है, क्योंकि गादी पर उसके पैर के निशान स्पष्ट दिख रहे हैं। परन्तु फिर भी

कुछ नहीं ले गया है ? बड़ा अद्भुत चोर है। अवश्य ही यह आपत्ति का मारा भला आदमी प्रतीत होता है। अतः इसको अवश्य ही सहायता करनी चाहिए। यह विचार करके तीसरे दिन रात के समय जब सब लोग सो गये, तब उन्होंने मोहरों से भरी एक थैली मकान के बाहिर चबूतरे पर रख दी। यथा-समय वह चोर आया। चबूतरे पर रखी थैली को देखते ही वह समझ गया कि सेठ ने मेरे लिए ही यह यहां रखी है। परन्तु मुझे इस प्रकार से नहीं लेना है। तो जब अपनी होशियारी से मकान का द्वार खोलूं और तिजोरी का ताला भी तरकीब से खोलूं, तभी माल लेकर जाऊं, तभी मैं अपने कर्तव्य को निभा सकूंगा, अन्यथा नही। ऐसा विचार कर वह उस थैली को मकान के भीतर फेंककर और मकान का द्वार बन्द करके चला गया। वह चोर अपनी चोरी की कला के विरुद्ध किसी का माल नही लेना चाहता और यह सेठ भी बिना मांगे ही देना चाहता है।

अब सेठजी सावधान रहने लगे कि किसी दिन यदि मेरी इससे भेट हो जाय तो मैं इससे बात करूं ? जब दश-बारह दिन तक भी कोई अवसर नहीं मिला तो वे एक रात को चुपचाप मकान के एक कोने में छिपकर बैठ गये। और सेठानी से कहते आये कि आज मुझे एक मेले में दुकान लेकर जाना है तो तुम खाना जल्दी बनाकर और कटोर दान में भर कर रखो। तब तक मैं नीचे जाकर दुकान में सामान बांधता हूं। जैसे ही सेठ ने चोर को आते हुए देखा, वैसे ही वे चुपचाप रसोई घर में पहुंचे—जहां पर कि सेठानी खाना बना रही थी। वहां जाकर उन्होंने सेठानी से कहा—अपने पुत्रियां तो तीन हैं, किन्तु पुत्र एक भी नहीं है। घर में सम्पत्ति अपार है, पर इसे संभालने वाला कोई भी नहीं है। बतावो—यह सब किसे संभलाई जावे। सेठानी बोली—जिसे आप उचित समझें, उसे ही संभला देवें। सेठ बोला—मुझे तो वह चोर ही योग्य जंच रहा है। सेठानी ने कहा—तो उसे ही संभला दो। सेठने फिर पूछा—तुम नाराज तो नहीं होओगी ? वह बोली—मैं क्यों नाराज होने लगी। मेरी तो तुम्हारी राजी में ही प्रसन्नता है। यह सुनते ही सेठ उठा और जहां वह चोर छिपा बैठा था, वहां जाकर उसका हाथ पकड़ लिया। यह देखते ही चोर बोला—सेठजी, मुझे क्यों पकड़ते हो ? मेरे बिना मेरे बाल बच्चे भूखें मर जायेंगे। सेठ बोला—मैं धन देता हूं, तू लेजा और अपने बाल बच्चों को पाल। क्यों चोरी करने का पाप करता है। वह बोला सेठजी, मेरा नियम है कि अपनी चोरी का ही माल खाऊंगा, किसी के दिये हुए दान का नही खाऊंगा। सेठजी उसकी बात को अनसुनी करते हुए सेठानी के पास उसका हाथ पकड़े

हुए ले गये और बोले—लो यह तुम्हारा बेटा आगया है ? यह सुनकर चोर बोला—सेठजी, मैं तो चोर हूं । मुझे अपना बेटा बना कर क्यों अपनी पैठ गवाते है ? आपको अपना घर आबाद करना है, अथवा बर्बाद करना है ? सेठ ने उसकी कही बात पर ध्यान नही दिया और कहा—भाई, तू रात भर का जागा हुआ है, अत यहा पर आराम कर । मैं सवेरे फिर बात करूंगा । अब तू भागने का प्रयत्न मत करना । अन्यथा राजपुरुषो को सौप दूंगा । यह कहकर और अपने शयनागार मे लेजाकर उसे सुला दिया । आप भी स्वय आराम करने लगे ।

जब सवेरा हुआ तब सेठजी उठे और शौचादि से निवृत्त होकर स्नानादि किया, तथा उस चोर को भी निपटने के लिए कहा । जब वह निवट चुका तब उसे अपने साथ बैठाकर नाश्ता (कलेवा) कराया और उसे अपने साथ दुकान में ले गए । वहा जाकर सेठजी ने मुनीम जी से कहा—नगर के अमुक-अमुक प्रमुख व्यक्तियो को बुला लाओ । तब सभी प्रमुख पच लोग आगये तो उन्हाने पूछा—कहिए सेठजी, आज हम लोगो को कैसे याद किया है ? सेठजी ने सबका समुचित आदर-सत्कार करते हुए कहा—भाइयो, आप लोगो को ज्ञात है कि मेरे लडकिया तो तीन हैं । पर लडका एक भी नही है । यह सुनकर सबने कहा—तब आप किसी के लडके को गोद ले लीजिए । सेठजी बोले—मैंने भी यही निर्णय किया है । पचो ने पूछा किस लडके को गोद लेने का निर्णय किया है ? तब सेठजी ने पास मे बैठे हुए चोर की ओर सकेत कर कहा—इसे गोद लेने का विचार किया है । जैसे ही लोगो ने उसकी ओर दृष्टि डाली तो सबके सब सोचने लगे अरे, यह तो नामी चोर है । इसे सेठजी गोद कैसे ले रहे हैं । पर मुख से स्पष्ट नही कह कर बोले—आपकी परीक्षा मे कसर नही है, पर अभी जल्दी क्या है ? सेठ बोला—भाइयो, मैंने भली-भाति से परीक्षा कर ली है । आप लोगों की राय लेने के लिए बुलाया है । यह सुनकर पच लोग एक-एक करके खिसक गये । सेठ ने भी सोचा—आफत टली ।

तत्पश्चात् सेठ न ज्योतिषी को बुलाया । उसके आने पर कहा—गोद लेने के योग्य अच्छा मुहूर्त बताओ । ज्योतिषी ने पूछा—सेठजी, किसे गोद ले रहे हैं । सेठजी न इशारे से बताया—इसे । उसे देखते ही ज्योतिषि बोला—अभी तो बहुत दिनों तक कोई अच्छा मुहूर्त नही निकलता है । सेठजी बोले—पण्डितजी, आपने ज्योतिष का भली-भाति से अध्ययन नही किया है । अरे, अगिराचार्य कहते हैं कि जब मन मे उल्लास हो, तभी मुहूर्त है । मेरे मन मे

तो अभी उल्लास है, यदि आप गोद का मुहूर्त करते हों तो ठीक है, अन्यथा दूसरे ज्योतिषी को बुला करके करा लेता हूं। यह सुनकर वे ठंडे पड़ गये और उसी समय गोद का दस्तूर करके उसे तिलक कर दिया और बिरादरी में नारियल बटवा दिया। अब सेठने उसे तिजोरी की और दुकान की चाबियां देकर कहा - जाओ बेटे, दुकान खोलो। वह बोला—मैं जाकर के दुकान खोलूं ? लोग मुझे देखकर क्या कहेंगे ? सेठ बोला—बेटा, तू डर मत। मैंने जब तुझे अपना बेटा बना लिया है, तब डर की कोई बात नहीं है। वह दुकान पर गया और उसे खोलकर बैठ गया। लोग उसे दुकान पर बैठा हुआ और काम-काज करता हुआ देख कर नाना प्रकार की टीका-टिप्पणी करने लगे और कहने लगे— कि सेठजी क्या बावले हो गये हैं, और क्या सारी जाति वाले मर गये हैं जो चोर को गोद लिया है ? इस प्रकार नाना तरह की बातें करने लगे। ग्राहक भी दुकान पर उसे बैठा देखकर चोंकने लगे। सेठजी ने यह सब देखा और सुना। उन्होंने लड़के से कह दिया—बेटा, तू किसी बात की चिन्ता मत कर ! ग्राहक को कम से कम मुनाफे में चीज देना। थोड़े दिनों में सब बवंडर शांत हो जायगा और दुकान का काम चल निकलेगा।

धीरे-धीरे वातावरण शान्त हो गया और सेठ के द्वारा व्यापार की कलाओं को सीखने से वह भी व्यापार में कुशल हो गया। ग्राहक भी आने लगे और पूंजी भी बढ़ने लगी। उसकी सच्चाई और ईमानदारी को देखकर निन्दा करने वाले लोग भी अब सेठजी की प्रशंसा करते हुए कहने लगे—देखो, सेठ ने कैसा पात्र चुना और उसे कैसी व्यापार-कला सिखाई ? बात फैलते-फैलते राजा के कान तक पहुंची कि अमुक सेठ ने अमुक प्रसिद्ध चोर को गोद लिया है तो उन्होंने दीवान से कहा उस सेठ के गोद लिए हुए लड़के को पकड़ बुलाओ। उसने पहिले बहुत चोरियां की हैं। दीवान ने कहा—महाराज, अब तो उसकी सारे बाजार में पैंठ है और साहूकार का बेटा बना बैठा है। यदि उसे पकड़ाऊंगा तो सारे नगर में हड़ताल हो जायगी। राजा ने कहा—अरे, उस चोर की बाजार में ऐसी पैठ जम गई है। मैं भी देखूं उसे। आदमी भेजकर उसे बुलाओ। जब वह राजा के पास आया तो आते ही राजा को नमस्कार कर वह एक ओर खड़ा हो गया। राजा ने पूछा—आज तक नगर में सैंकड़ों चोरियां हुई हैं। क्या तुझे मालूम हैं ? वह बोला—हां महाराज, मुझे अच्छी तरह मालूम है। राजा ने फिर पूछा, कि बता, किस-किसने कौन-कौन सी चोरियां की हैं। उसने कहा—अमुक-अमुक नम्बर की चोरिया मैंने की हैं। जब राजा ने पूछा—शेष चोरियां किसने की हैं ? तब वह बोला—

महाराज, मैं सबको जानता हूं। परन्तु अब किसी का पर्दा उघाड़ना नहीं चाहता हूं। राजा उसकी बात सुनकर बोला—अरे तू तो बड़ा समझदार मालूम पड़ता है। फिर तूने इतनी चोरियां कैसे की? वह बोला—महाराज, मैंने नहीं की, परन्तु आपने कराई हैं? राजा ने पूछा—मैंने कैसे कराई? वह बोला—महाराज, आप सारी प्रजा के रक्षक और प्रतिपालक कहलाते हैं। यदि आप गरीबों की दीन दशा का ख्याल रखते, उन्हें रोजी में लगाते और उनकी सार-संभाल करते, तो हम गरीब लोग चोरियां क्यों करते? राजा उसकी यह बात सुनकर मन ही मन लज्जित हुआ। फिर भी उसने प्रकट में पूछा—अच्छा बता, उन चोरियों का माल कहां कहां है? उसने बतला दिया जितने भी आप के राज्य में साहूकार बने बैठे है, सबके घर में वह माल रखा है। क्योंकि हम लोग तो चोरी करके जो माल लाते थे, वह सब आधे दामों पर साहूकारों के यहां बेच जाते थे। एक यह सेठ ही ऐसा मिला, जिसने कभी किसी की चोरी का माल नहीं लिया। मैं तीन बार इनके घर में भी चोरी को गया और इन्होंने मुझ चोरी करने का अवसर भी दिया। मगर मेरी नीति के विरुद्ध होने से कभी इनके माल को नहीं लिया और मेरी इसी ईमानदारी पर प्रसन्न होके इन्होंने मुझे गोद लिया है। उसके मुख से ये खरी-खरी और सच्ची बातें सुनकर राजा ने ससम्मान उसे विदा किया।

भाइयो, जो सत्यवादी और अपने नियम पर दृढ रहता है, वह सर्वत्र प्रशंसा पाता है। अब वह अपने माता-पिता की मन वचन काय से भरपूर सेवा करने लगा और कारोबार को भी भली-भांति चलाने लगा। चारों ओर उसका यश फैल गया।

जब वह अपने माता-पिता से खूब रच-पच गया और उनका भी उस पर पूरा विश्वास हो गया, तब एक दिन सेठानी ने उससे कहा बेटा, अब मैं तेरी शादी करना चाहती हूं। वह बोला—माताजी, मेरा विवाह हो चुका है और घर पर बाल बच्चे भी हैं। अब यदि मैं दूसरी शादी करूंगा तो उन लोगों पर यह बड़ा अन्याय होगा। तब सेठानी ने कहा तो बेटा, बहू को बच्चों के साथ तू यहीं पर ले आ। उसने कहा—माताजी, आप स्वयं मेरे घर पर जावें और यदि आपको जच जावे, तो आप लिवा लाइये। सेठानी उसके घर गई, साथ में उसे भी ले गई। जाकर उसकी स्त्री से कहा— बहू जी जैसा तेरा यह धनी सुधर गया है, यदि तू भी सुधरने को तैयार हो तो तेरे लिए मेरा घर-बार तैयार है। उसने कहा—मा साहब, जहां गोलमाल चलता है। वहीं पर खोट चलती है। जब मेरे धनी सुधर गए है तो मैं भी सुधर जाऊंगी।

सेठानी उसे और उसके बच्चो को प्रेम पूर्वक अपने घर लिवा लाई और उसकी यथोचित शुद्धि करके घर में बहू के समान वस्त्राभूपण पहिनाकर रख लिया और भीतर का सारा काम काज उसे सौंपकर आप निश्चिन्त हो धर्म-साधना करने लगी।

इधर राजा ने उस भूतपूर्व नामी चोर और वर्तमान में नामी साहूकार को बुलाकर के कहा—देख, आज से नगर भर की सुरक्षा का उत्तरदायित्व तेरा है। यदि कहीं पर कोई चोरी होगी तो तुझे जवाब देना होगा। उसने यह मंजूर किया और सब चोरो को बुलाकर कहा—भाइयो, क्या अब भी तुम लोगों को नकली गहने पहिनने हैं, अथवा असली सोने के जेवर पहिनना है ? यदि आप सुखपूर्वक रहना चाहते है तो आज से चोरी करना छोड़ दो और तुम्हारी रोजी के लिए मैं पूँजी देता हू सो जिसे जो अच्छा लगे, वह धधा करके अपना और अपने परिवार का भरण-पोपण करो। सब लोगों ने एक स्वर से उसकी बात को स्वीकार किया। उसने भी सबको यथोचित पूँजी देकर हीले से लगा दिया। अब नगर मे चोरी होना बिलकुल बन्द हो गया। उसका यश सर्व और फैल गया।

जब उस लड़के ने सारा काम काज संभाल लिया और नगर में सर्व प्रकार का अमन-चैन हो गया, तब एक दिन सेठ ने बिरादरी वालों को निमंत्रण दिया। जब सब लोग खा-पीकर बैठे तो सेठ ने पूछा—कहो भाइयो, मेरा काम आप लोगों को पसन्द आया या नहीं ? सबने एक स्वर से कहा—सेठजी, आपने बडा अच्छा काम किया। सेठ ने कहा—भाइयो, मैं आप लोगों से यही कहलाना चाहता था। अब आप लोग मेरे स्थान पर उसे ही मानें। मैं अब घर बार छोड़कर आत्मकल्याण करना चाहता हूं। सेठजी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा—आप इस ओर से निश्चिन्त होकर धर्म साधन कीजिए, आपके इस पुत्र को हम आप जैसा ही मानेंगे। यह कहकर सब लोग अपने अपने घरो को चले गये।

कुछ दिन पश्चात् सेठानी ने उसे बुला करके कहा—बेटा, तूने घर का और दुकान का काम तो सीख लिया है। अब आत्मा का भी काम सीखेगा, या नही ? वह बोला—हा मां साहब, अवश्य सीखूगा। आप बतलाइये। सेठानी ने अपने कुल मे होने वाले सर्व धर्म कार्यो को समझाकर कहा—देख, जैसे हम ये सब धर्म कार्य करते है, वैसे ही तुझे भी करना चाहिए। उसने स्वीकार किया और सेठानी के द्वारा बताये हुए धर्मकार्यो को यथावत् करने लगा।

कुछ समय के बाद सेठानी ने फिर उसे बुलाकर के कहा—बेटा, तूने धर्मकार्य सीख लिये और करने भी लगा है, सो हम बहुत प्रसन्न हैं। अब एक बात और सुन। पुरुष चार प्रकार के होते हैं—सिंह के समान, हाथी के समान, अश्व के समान और वृषभ के समान। बता—तू इनमें से किस प्रकार का मनुष्य बनना चाहता है? उसने कहा—मां साहब, मैं तो सिंह के समान पुरुष बनना चाहता हूं। सेठानी ने कहा—तो बेटा, बन जा! यह सुनते ही वह बोला—लो मां साहब, अपना यह घर-बार संभालो। मैंने धर्म ग्रन्थों में पढा है और ज्ञानियों के मुख से सुना है कि यह मेरा घर नहीं है, यह पर घर है। अब मैं अपने घर को जाऊंगा। यह कहकर वह सबसे विदा लेकर साधु बन गया। उसने अध्यात्म की उच्च श्रेणी पर आरोहण किया और परम विशुद्धि के द्वारा सर्वकर्मो का नाश कर सदा के लिए निरंजन बन गया।

भाइयो, जो पुरुष सिंह के समान निर्भय होते है, वे ही ऐसे साहस के काम कर सकते हैं। आप लोग भी अपने को महावीर की सन्तान कहते हो। पर मैं पूछता हूं कि आप महावीर के जाये हुए पुत्र हो, या गोद गये हुए पुत्र हो? भगवान महावीर के तो पुत्र हुआ ही नहीं, अतः जाये हुए पुत्र तो हो कैसे सकते हो? हां, गोद गये हुए हो तो फिर अभी कहे गये कथानक के समान उस घर को भी संभाल लेना। जैसे वह एक चोर होते हुए भी एक सच्चा साहूकार बना और अन्त में महान् साहूकार बन गया। फिर आप लोग तो महावीर के पुत्र हो और साहूकारों के घरों में जन्म लिया है। इसलिए आप लोगों को सिंह वृत्ति के पुरुष बनकर अपने आपको और अपने वंश को दिपाना होगा, तभी आप लोगों का अपने को महावीर का अनुयायी कहना सार्थक होगा। भगवान महावीर का चरण चिन्ह 'सिंह' था। उनकी ध्वजा में भी सिंह का चिन्ह अंकित था, तो उनके अनुयायियों को सिंह जैसी प्रकृति का होना ही चाहिए। और अपने कुल का यश सत्कार्य करके सर्व ओर फैलाना चाहिए। भगवान महावीर के धर्म की तभी सच्ची प्रभावना होगी जब उनके अनुयायी उन जैसे ही महावीर और सिंह जैसे शूर बनेंगे। जो वीर होते हैं वे अपने दिये वचन का पूर्णरूप से पालन करते हैं। यह नहीं कि ग्यारह बजे आने का नाम लेकर तीन दिन तक भी आनेका पता नहीं चले? जिसके इतनीसी भी वचनों की पाबन्दी नहीं है तो वह वीर और साहूकार कैसे बन सकता है? भाई, वचनों से ही साहूकारी रहती है। कहा भी है कि—

वचन छल्यो बलराज वचन कौरव कुल खोयो।
वचन काज हरीचन्द नीच घर नीर समोयो।

वचन काज श्री राम लंक वभिषण थाप्यो
वचन काज जग देव शीश कंकाली आप्यो।
वचन जाय ता पुरुष को कर से जीभ ज कट्टिये
वैताल कहै विक्रम सुनो बोल वचन किम पलटिये ॥१॥

संसार में वही महामानव कहलाने का अधिकारी है जिसका कि हृदय सिंह के समान निर्भय है, जो आपत्तियों से नहीं घबराता है और न किसी का सहारा चाहता है। यदि आप लोग इस सिंहवृत्ति को धारण करोगे तो नर से नारायण और भक्त से भगवान बनने में कोई देर नहीं लगेगी।

वि० सं० २०२७ कार्तिक शुक्ला ११
जोधपुर

२७ | सुनो और गुनो !

धर्मश्रवण की आवश्यकता

बन्धुओ, आप लोग अपने जीवन को कृतार्थ करने के लिए प्रभु की वाणी का श्रवण करना चाहते हैं। इसका उद्देश्य क्या है ? यह कि जिसे जिस वस्तु को पाने की इच्छा होती है, वह उसे अन्वेषण करने का प्रयत्न करता है। जैसे रोग दूर करने के लिए किसी डाक्टर, वैद्य और हकीम को ढूढना पड़ता है, मुकद्दमा लडने के लिए वकील, वैरिस्टर और सोलीसीटर को तलाश करना पडता है और व्यापार करने के लिए व्यापारी, आड़तिया और दलालो की छान-बीन करनी पडती है। इसी प्रकार से आत्मसाधन के लिए प्रभु की वाणी का सुनना सर्वोपरि माना गया है। सुनने से ही हमे यह ज्ञात होता है कि यह वस्तु उच्चकोटि की है, यह मध्यम श्रेणी की है और यह अधम है। इन सब बातो का विचार तभी सभव है, जब कि हम सुनने के लिए उद्यत होते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा गया है कि —

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं।
उभय पि जाणई सोच्चा, ज सेयं त समायरे ॥

मनुष्य सुनकर ही जानता है कि यह कल्याण का मार्ग है और सुनकर ही जानता है कि यह पाप का मार्ग है। सुनने से ही दोनो मार्गों का पता चलता है। मार्ग दो है—एक धर्म का, दूसरा अधर्म का, एक मोक्ष का दूसरा ससार

का। अब भाई, जो तुम्हें श्रेयस्कर मार्ग प्रतीत हो, उस पर चलो। यह भगवान का उपदेश है। अब यह निर्णय करना आपके हाथ में है कि हमें किस मार्ग पर चलना है।

भाइयो, आप किसी मार्ग से अपने गन्तव्य स्थान को जा रहे है। अचानक आपके कानों में आवाज आई कि यहां से थोड़ी दूरी पर एक ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अब आप सोचते हैं कि गन्तव्य स्थान पर भले ही कुछ देरी में पहुंच जायेंगे। किन्तु मार्ग में आये इस ऐतिहासिक स्थान को तो देखते ही जाना चाहिए। अब आप वहां जाते हैं और वहां पर अकस्मात् ऐसी सामग्री मिल जाती है कि जिसका अन्वेषण आप वर्षों से कर रहे थे। उसे देख कर आप का हृदय आनन्द से गद्गद हो जाता है। भाई, आप वहां पर सुनने से ही तो गये, तभी वह अपूर्व ऐतिहासिक सामग्री आपको प्राप्त हो सकी।

अब आप अपने गन्तव्यस्थान की ओर आगे बढ़े कि कुछ दूर जाने पर यह बात सुनने मे आई कि यहाँ से कुछ दूरी पर एक ऐसा स्वास्थ्य-प्रद स्थान है कि जहां के जल-वायु से अनेक रोग दूर हो जाते हैं और नीरोग व्यक्ति बलवान् बन जाता है। अब यद्यपि आपको गन्तव्य स्थान पर पहुंचना आवश्यक है, परन्तु फिर भी आप उस स्थान पर पहुंचते है और वहां की प्राकृतिक सुषमा, शस्य-श्यामला भूमि और उत्तम जल-वायु से प्रभावित होते हैं और विचार करते हैं कि ऐसा सुन्दर स्थान तो हमने आज तक भी कहीं नही देखा। भाई, यह भी तो आपको सुनने पर ही दृष्टिगोचर हुआ।

अब आप उस स्थान को देखकर आगे बढ़े तो फिर सुनाई दिया कि यहां से बाईं ओर एक ऐसी वस्तु है कि जिसे पा लेने पर आप सैकड़ों व्यक्तियों को एक साथ मूर्च्छित कर सकते हैं। यद्यपि यह कोई उत्तम वस्तु नही है फिर भी आप सोचेंगे कि ऐसी भी वस्तु पास में होनी चाहिए। यदि कभी ऐसा ही अवसर आजाय तो हम आत्म-रक्षा के लिए या धर्म और देश की रक्षा के लिए उसका उपयोग कर सकते है। यह विचार कर आप वहां जायेंगे और वहा से उसे लाने का प्रयत्न करेंगे। इसी प्रकार फिर आगे चलने पर आपको फिर सुनाई दिया कि यहां समीप में कोई सिद्ध पुरुष रहते हैं और उनके दिये मंत्र से सभी अभीष्ट कार्य सिद्ध हो जाते हैं। यह सुनकर आप उस सिद्धपुरुष के पास भी जायेंगे और उससे कोई विद्यामंत्र आदि लेने का उपाय करेंगे।

अब इससे भी आप आगे चले और सुनाई दिया कि यदि अब आगे बढ़े तो आपके पैर वहीं चिपक जावेंगे और घर पर जीवित नही पहुंचेगे। यह सुनने के पश्चात् कोई यह भी कहे कि वहां पर सुन्दर उद्यान है, राजभवन है,

अप्सराएं नृत्य कर रही हैं और सर्व प्रकार के भोगोपभोग के साधन मौजूद हैं। इतना सुनने पर भी आप कहेंगे कि भाड़ में जाय ऐसा आनन्द कि जहां से हम जीवित नहीं लौट सकते हैं।

सुनकर चुनो ?

भाइयो, आप लोगों ने इसी प्रकार स्वर्ग-मोक्ष व नरक-पशु योनि में जाने के सभी मार्गों को सुना है और विचार भी किया है कि हमें दुःख के मार्ग पर नहीं जाना है किन्तु सुख के मार्ग पर चलना है। किन्तु अज्ञानी मनुष्य इन सब बातों को सुनकर भी कहता है कि आज धर्म करने से हमारा पेट नहीं भरेगा और दुनियादारी का काम नहीं चलेगा। अपने को तो नगद पूरी सारी लक्ष्मी मिले तो काम चले। यह सुनकर सन्त पुरुष कहते हैं—भाइयो, इस मार्ग पर चलने से वह भी मिल जायगी। परन्तु तुम्हारी आत्मा भारी हो जायगी, पाप का भारी भार उठाना पड़ेगा और फिर संसार-सागर से पार होना कठिन हो जायगा। तब विचारवान् व्यक्ति विचारता है कि हमें संसार के क्षणिक सुखों के पाने के लिए अपनी आत्मा को भारी नहीं करना है और न पाप के भार को ढोना है। वह जानता है कि यह मानुष पर्याय बड़ी कठिनाई से मिली है। यदि इसे हमने इन काम-भोगों में आसक्त होकर यों ही गंवा दिया तो फिर आगे अनन्तकाल में भी इसे पाना कठिन है। अतः मुझे तो आत्म-साधना में ही आगे बढ़ते रहना चाहिए। सांसारिक लक्ष्मी तो पुण्यवानों के साथ आगे स्वयमेव प्राप्त होती जायगी। उसके पाने के लिए मुझे अपनी आत्मा को पाप के महापंक में नहीं डुबोना है। जिस पुरुष ने आत्म-कल्याण की बात सुन ली है, वह पापमार्ग या अकल्याणकारी वस्तु की ओर आकर्षित नहीं होता है। किन्तु जिसने आत्म कल्याण की बात सुनी ही नहीं है, वह तो उस ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रहेगा।

आप लोग यहां उपदेश सुनने को आये हैं और मैं सुनाने के लिए बैठा हुआ हूं। भाई, यह भगवद्-वाणी तो निर्मल जल की धारा है। जो इसमें डुबकी लगायगा, वह अपने सासारिक सन्तापों को दूर कर आत्मिक अनन्त शान्ति को प्राप्त करेगा। इस भगवद्-वाणी को सुनते हुए हमें एक ही ध्यान रखना चाहिए कि हे प्रभो, मैं तेरा हूं और तू मेरा है। परन्तु आप तो जगत्-प्रभु बन गये और मैं तेरा भक्त होकर के भी अब तक दास ही बना हुआ हूं। तेरे सम कक्ष होने में मेरे भीतर क्या कमी रह गई ? जो कमी मेरे मन-वचन-काया में रह गई हो, वह बता, मैं उसे दूर करूंगा। यदि इस प्रकार के विचार

आप लोगों के भीतर उठने लगें तो देखिये, [आप लोगों का कितने जल्दी जगत् से उद्धार नहीं होता है ? परन्तु समय का परिवर्तन तो देखो कि हम भगवान् के इस दुःखापहारक और सुख-कारक दिव्य सन्देश को सुनाने के लिए सर्वत्र भटक रहे हैं, पर भगवान का कोई सच्चा भक्त आगे बढ़कर आता ही नहीं है और सब लोग दूर-दूर भागते हैं कि कहीं महाराज हमें मूंड़ न लेवें । परन्तु भाई, हम यह सब जानते हुए भी आपको बार-बार सुनाने का प्रयत्न करते हैं । इसका कारण यही है कि गुरु का हृदय माता के समान होता है । जैसे बच्चा दूध नहीं पीना चाहता, तो माता उसे अनेक प्रकार से फुसलाकर दूध पिलाने का यत्न करती है, बच्चा दवा नहीं पीना चाहता तो हाथ पकड़कर और मुख फाड़कर भी जबरन उसे दवा खिलाती है । बच्चा ऐसे समय रोता है, हाथ-पैर भी फटकारता है और भला-बुरा भी कहता है तो वह उस पर कोई ध्यान नहीं देती है और बच्चे की शुभ कामना से प्रेरित होकर वह यह सब करती है । माता की भावना सदा यही रहती है कि मेरा बालक स्वस्थ और नीरोग रहे । हमारी भी सदा यही भावना रहती है कि आप लोग इस भव-रोग से मुक्त हों और सच्चे सुखी बनें । इसी से प्रतिदिन सुनाते हैं और सोचते हैं सुनाते-सुनाते कभी तो किसी न किसी पर कुछ न कुछ असर तो होगा ही । कहा भी है कि—

अगर लाखों-करोड़ों का करे कोई दान पुण्य प्राणी
मगर लव मात्र की संगत खास मुक्ति दिखाती है"

यदि कोई व्यक्ति लाखों करोड़ों रुपयों का भी दान-पुण्य कर दे और उसके फल के सौ ढेर भी खड़े कर दे तो भी एक लवमात्र के सत्संग का उससे भी महान् फल होता है । एक मुहूर्त में एक करोड़ साठ लाख सतत्तर हजार दो सौ सोलह लव होते हैं । ऐसे एक लव-मात्र की भी सत्संगति मनुष्य को महा-फल देती है ।

भाइयो, आपको पता है कि वाल्मीकि जैसा डाकू पुरुष भी महात्मा बन गया, तुलसीदास जैसा कामी पुरुष भी सन्त बन गया, और चिलायती कुमार भी साधु बन गया । यह सब सत्संगति का ही प्रताप है । और सदुपदेश के सुनने का प्रभाव है । एक त्यागी पुरुष के वचन सुनने से जीवन भर का जहर दूर हो जाता है । जिस बीमार के बचने की आशा न रही हो, वह यदि किसी डाक्टर के एक इंजेक्शन से आंखें खोल दे और बच जाय तो क्या यह उस डाक्टर और औषधि का प्रताप नहीं है ? इसी प्रकार त्यागी-महात्मा के वचन

भी कानो मे पड जायें, तो एक ही वचन से उसका उद्धार हो सकता है। आपको यह विचारने की आवश्यकता नही है कि अभी तक इतना सुन लिया। फिर भी बेडा पार नही लगा, तो आगे क्या लगेगा। अरे भाई, शुद्ध हृदय से सुना ही कहा है? यदि शुद्ध हृदय से सुना जाय और कलेजे पर चोट पडे तो तुम्हारी बुद्धि तत्काल ठिकाने पर आजाय और जग से बडा पार हो जाय। हम तो इसी आशा को लेकर प्रभु के मगलमय वचन सुना रहे हैं। प्रभु ने यही कहा है कि हे भव्य जीवो, जिन सासारिक वस्तुओ से तुम मोह कर रहे हो, वे तुम्हारी नही है, उनको छोडो और जिस वैराग्य और ज्ञान से तुम दूर भागते हो और प्रेम नही करते हो, वे तुम्हारी हैं। इसलिए पर मे प्यार छोडकर अपनी वस्तु से प्यार करो। तभी तुम्हारा उद्धार होगा।

एक वार एक पडित काशी से शास्त्र पढकर अपने देश को जा रहा था। मार्ग मे एक वडा नगर मिला। उसने सोचा कि खाली हाथ घर क्या जाऊ? कुछ न कुछ दान-दक्षिणा लेकर जाना चाहिए, जिससे कि घर के लोग भी प्रसन्न हो। यह विचार कर वह उस नगर के राजा के पास गया और उन्हें आशीर्वाद दिया। राजा ने पूछा—पडितजी, कहाँ से आ रहे हो? उसने कहा-महाराज, काशी से पढकर आ रहा हू। राजा ने पूछा—क्या-क्या पढा है? उसने कहा—महाराज, मैंने व्याकरण, साहित्य इतिहास ज्योतिष, वैद्यक पुराण, वेद, स्मृति आदि सभी ग्रन्थ पढे हैं। राजा ने कहा बहुत परिश्रम किया है। बताओ, अब आपकी क्या इच्छा है? पडित न कहा—जितना कुछ मैंने पढा है, वह सब आपको सुनाना चाहता हूँ। राजा ने कहा—इतना समय मुझे नही है। आप तो दो-चार श्लोको म सब वेद-पुराणो का सार सुना दीजिए। तव पडित ने कहा—महाराज, मैं तो एक श्लोक मे ही सबका सार सुना सकता हूँ। राजा ने कहा—सुनाइये! वह बोला—महाराज, सुनिये —

> अष्टादशपुराणेषु, व्यासस्य वचन द्वयम्।
> परोपकार पुण्याय, पापाय परपीडनम्॥

व्यासजी ने अपने अठारहो पुराणो मे और सर्व वेद-वेदाग, उपनिषद्, भागवत, गीता आदि मे सारभूत दो ही वचन कहे हैं कि पर प्राणी का उपकार करना पुण्य कार्य है और पर-प्राणी को पीडा पहुचाना पाप कार्य है। मनुष्य को पाप कार्य छोडकर के पुण्य कार्य करना चाहिए।

यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। और फिर उसने कहा—आत्म-कल्याण की तो बात आपने बहुत सुन्दर बतलाई। अब यह बतलाइय कि किस

वस्तु के सेवन से शरीर सदा नीरोग रह सकता है। तब उसने कहा—एक हरडे के सेवन से मनुष्य जीवन भर नीरोग रह सकता है। वैद्यक शास्त्र में हरीत की (हरडे) को माता के समान जीवन-रक्षिका बताया गया है। "हरीत की भूक्षुं राजन् ! मातावत् हितकारिणी !"

पंडित के दिये गये उत्तर से राजा वहुत प्रसन्न हुआ और उसे भरपूर दक्षिणा देकर विदा किया।

जीवन अमूल्य है

भगवान महावीर ने समय को सबसे अमूल्य बताया है और बार-बार गौतम के बहाने से सब प्राणियों को सम्बोधन करते हुए कहा है कि 'समयं गोयम, मा पमायए' । अर्थात् हे गौतम, एक समय का भी प्रमाद मत करो। इस एक प्रमाद में सर्व पापों का समावेश हो जाता है। आठ मद, चार कषाय, इन्द्रियों के पांचों विषय, निद्रा और चारों प्रकार की विकथाएं, ये सब प्रमाद के ही अन्तर्गत हैं। भाई, भगवान महावीर का यह एक ही वाक्य हमारा उद्धार करने के लिए पर्याप्त है। जब भगवान के एक ही वचन में इतना सार भरा हुआ है, तब जो भगवान के कहे हुए अनेकों वचनों का श्रवण करते है और उन्हें हृदय में धारण करते हैं, तो उनके आनन्द का क्या कहना है ? सब वचनों को सुनने वाला तो नियम से सुख को प्राप्त करेगा ही।

बन्धुओ, मनुष्य का जीवन स्वल्प है। उसमें भी अनेक आधि-व्याधिया लगी हैं। फिर कुटुम्ब के भरण-पोषण से ही मनुष्य को अवकाश नहीं मिलता है और शास्त्रों का ज्ञान तो अगम-अपार है। इसलिए हमें सार बात को ही स्वीकार करना चाहिए।

महाभारत के समय की बात है जब कि कौरवों और पाण्डवों की सेना युद्ध के लिए आमने-सामने मोर्चा बाधे खड़ी हुई अपने-अपने सेनापतियों के आदेश की प्रतीक्षा कर रही थी। उस समय अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा—भगवन्, बताइये, यहा पर कौन-कौन मेरे शत्रु है, जिन पर मैं प्रहार करूं ? तब श्री कृष्ण ने सामने खडे हुए भीष्म, द्रोण, कर्ण, और कौरव आदि को बताया। अर्जुन बोला—

> आचार्याः पितर. पुत्रास्तथैव च पितामहाः।
> मातुला. श्वसुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥
> एतान्न हन्तुमिच्छामि, घ्नतोऽपि मधुसूदन !
> अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥

हे मधुसूदन, ये तो मेरे गुरुजन हैं, पितामह हैं, पुत्र हैं, कोई मामा है, कोई श्वसुर है, कोई पौत्र है, कोई साला है और कोई स्वजन-सम्बन्धी है। ये लोग भले ही मुझे मारें, पर मैं इन अपने ही लोगों को नहीं मारना चाहता हूं, भले ही इसके बदले मुझे त्रैलोक्य का राज्य ही क्यों न मिले ? यह कहकर अर्जुन ने अपने हाथ से गाण्डीव धनुष को फेंक दिया।

जब श्री कृष्ण ने देखा कि सारा गुड़ ही गोवर हुआ जाता है, तब उन्होंने अर्जुन को सम्बोधन करते हुए कहा—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

यह जीव न कभी उत्पन्न होता है और न कभी मरता है, न कभी हुआ है और न कभी होगा। यह तो शाश्वत, नित्य, अज और पुराण हैं। यह शरीर के मारे जाने पर भी नहीं मरता है। किन्तु—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये दूसरे वस्त्रों को धारण करता है, इसी प्रकार जीव भी पुराने शरीरों को छोड़कर नये शरीरों को धारण करता है। इसलिए तू विकल और कायर मत बन। किन्तु निर्भय होकर युद्ध कर। ये कौरव तेरे बहुत बड़े अपराधी हैं। इन लोगों ने तुम्हारे साथ छः महा अपराध किये हैं। पहिले तो इन लोगों ने भीष्म को विष दिया। दूसरे द्रौपदी का चीर हरण कर लाज लेनी चाही। तीसरे तुम्हारा राज्य लिया। चौथे जंगल में तुम लोगों को मारने के लिए आये। पांचवे गायों को घेर कर ले जाने का प्रयास किया और छठा अपराध यह कि तुम लोगो को मारने के लिए फिर आये हैं। इसलिए इन दुष्टों को दण्ड देना ही चाहिए। अर्जुन कहीं फिर ढीला न पड जाय, इसलिए श्री कृष्ण ने फिर कहा—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोस्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेनं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि॥

इस आत्मा को न शस्त्र छेद सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न पानी गला सकता हैं, न पवन सुखा सकता है। अतः यह आत्मा अच्छेद्य है, अदाह्य

है, अवलेद्य और अशोष्य है । यह नित्य, सर्वगत, स्थाणु, अचल, सनातन, अव्यक्त, अचिन्त्य और अविकार्य कहा जाता है । इसलिए तू इसे अजर अमर जान और इनको दण्ड देने में किसी प्रकार का शोच मत कर ।

श्री कृष्ण के इस प्रकार उपदेश होकर अर्जुन युद्ध के लिए तैयार हो गया और अन्त में अपने शत्रुओं पर विजय पाई ।

भाइयो, आत्मा के इन नित्य निर्विकारी स्वभाव का वर्णन प्रायः सभी आस्तिक दर्शनों में किया गया है । अतः हमें सभी मतों में जो उत्तर और सार वस्तुएं दृष्टिगोचर हों, उन्हें ले लेना चाहिए । सिद्धसेन दिवाकर तो भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं—

सुनिश्चितं नः परतन्त्रयुक्तिषु स्फुरन्ति या. काश्चन सूक्तिसम्पदः
तवैव ताः पूर्णमहार्णवोत्थिताः जिन प्रमाणं तव वाक्यविप्रुषः ॥

हे जिनेन्द्र देव, परमतों में जो कुछ भी सूक्तिसम्पदाएं दृष्टिगोचर होती हैं, वे सब आपके पूर्वश्रुतरूप महार्णव से उठे हुए वचन-शीकर हैं, जल कण हैं यह सुनिश्चित है ।

उक्त कथन का सार यही है कि जहाँ कहीं भी कोई उत्तम और सार-युक्त बात दिखे उसे बिना किसी सन्देह के ग्रहण कर लेना चाहिए और जो भी आत्म-अहितकारी दिखे उसे छोड़ देना चाहिए । पहले भली बुरी बात को सुनना चाहिए, सुनकर समझना चाहिए और समझकर मनन करना चाहिए, फिर अहितकर को छोड़ देना चाहिए—इसे ही कहते हैं सुनना और गुनना ।

सुना, पर गुना नहीं तो …?

ज्ञाता धर्मकथासूत्र में एक कथानक आया है कि पूर्वकाल में इसी भारत वर्ष की चम्पानगरी में एक माकन्दी नाम का सेठ था । उसके दो पुत्र हुए—जिनरक्ष और जिनपाल । वे सैकड़ों मनुष्यों को साथ लेकर और नाना प्रकार की चीजे लेकर व्यापार के लिए जहाज-द्वारा देशान्तर गये । वहां जब खूब धन कमाकर वापिस लौट रहे थे, तब समुद्री तूफान से जहाज नष्ट हो गया और वे एक काष्ठ-फलक के सहारे किसी टापू के किनारे जा पहुँचे । जब वे दोनों उस टापू पर जाने लगे तो एक पुतली ने भी मना किया । परन्तु वे नहीं माने और उस पर चढ़ते हुए चले गये । भाई, आप लोग ही जब बड़े बूढ़ों और गुरुजनों तक का कहना नहीं मानते, तो वे एक स्त्री का कहना तो कैसे मानें ।

आगे बढने पर उस द्वीप की देवी शृगार करके सामने आई और स्वागत करती हुई उन दोनो भाइयो को अपने महल मे ले गई। उसने कहा—हमे मालूम है कि तुम लोगो का सर्वस्व समुद्र मे नष्ट हो गया है। अब तुम लोग कोई चिन्ता मत करो। यह रत्न द्वीप है और मेरे भण्डार मे अपार सम्पदा है। अत यही रहो और हमारे साथ सासारिक सुख भोगो। वे लोग भी काम-भोगो मे लुभा गये और उसके साथ सुख भोगते हुए रहने लगे। एक बार उसे इन्द्र के पास से बुलावा आया तो उसने जाते हुए कहा—देखो, यदि यहा पर मेरे बिना तुम लोगो का चित्त न लगे तो इस महल के चार उद्यान है, यहा पर बावडी-सरोवर आदि सभी मनोरजन के साधन हैं, अत घूमने चले जाना। पर देखो उत्तरवाले उद्यान मे भूल करके भी मत जाना। वहा पर भयकर राक्षस रहता है वह तुम्हे खा जायगा। यह कहकर वह देवी चली गई।

जब उन दोनो भाइयो का मन महल मे नही लगा तो वे पहिले कुछ देर तक पूर्व दिशा के उद्यान मे गये। कुछ देर घूमने के बाद चित्त नहीं लगने से दक्षिण दिशा के उद्यान मे गये और जब वहा भी चित्त नही लगा तो पश्चिम दिशा वाले उद्यान मे जाकर घूमे। जब वहा भी चित्त नही लगा और देवी भी तब तक नही आई, तो उन्होने सोचा कि उत्तर दिशा के उद्यान मे चल कर देखना तो चाहिए कि कैसा राक्षस है, अत वे साहस के साथ उसमे भी चले गये। भीतर जाकर के क्या देखते हैं कि वहा पर सैकडो नर ककाल पडे है चारो ओर से भयकर दुर्गन्ध आ रही है। आगे बढने पर देखा कि एक मनुष्य शूली पर टगा हुआ अपनी मौत के क्षण गिन रहा है। उससे उन्होने पूछा—भाई, तुम्हारी यह दशा किसने की है ? उसने बताया कि जिसके मोह-जाल मे तुम लोग फस रहे हो, वह एक दिन हमे भी इसी प्रकार से फुसला करके ले आई थी। कुछ दिन तक उसने मेरे साथ भोग भोगे। जब मुझे क्षीणवीर्य देखा तो इस शूली पर टाग कर तुम लोगो को बहका लाई है। यहा पर जितने भी नर ककाल दिख रहे हैं, वे सब उसी डायन के कुकृत्य हैं। यह सुनकर वे बहुत डरे। उन्होंने उससे बच निकलने का कोई उपाय पूछा। उसने कहा—इधर से उतरते हुए तुम लोग समुद्र के किनारे जाओ। वहा पर समुद्र का रक्षक एक यक्ष आकर पूछेगा कि क्या चाहते हो। तब तुम अपने उद्धार की बात कहना। वह घोडा बनकर और अपनी पीठ पर बैठा करके समुद्र के पार पहुचा देगा। यह सुनते ही वे दोनो उस द्वीप से जल्दी जल्दी उतर और समुद्र के किनारे पहुच कर यक्ष की प्रतीक्षा करते हुए भगवान का नाम स्मरण करने लगे।

थोड़ी देर के बाद यक्ष प्रकट हुआ । उसने पूछा—क्या चाहते हो ? इन दोनों ने कहा - हमें यहां से उस पार पहुंचा दो, जिससे हमारा उद्धार हो जावे । तब यक्ष ने कहा—देखो, मैं घोड़ा बनकर तुम लोगों को अपनी पीठ पर बैठा करके पार कर दूंगा । मगर इस बात का ध्यान रखना कि यदि वह देवी आजावे और तुम्हें प्रलोभन देकर लुभावे और वापिस चलने के लिए कहे तो तुम पीछे की ओर मत देखना । यदि देखा तो मैं तुम्हें वहीं पर समुद्र में पटक दूंगा और वह तुम्हें पकड़ कर तलवार से तुम्हारे खंड-खंड करके मार देगी । यदि तुम्हें हमारा कहना स्वीकार हो तो हमारी पीठ पर बैठ जाओ । उनके हां करने पर यक्ष ने घोड़े का रूप बनाया वे दोनों उसकी पीठ पर सवार हुए और वह तीव्र वेग से उन्हें ले कर उड़ चला । इतने में ही वह देवी अपने स्थान पर आई और उन दोनों को वहां पर नहीं देखा तो उसने सब उद्यानों को देखा । अन्त में वह उड़ती हुई समुद्र में पहुंची तो देखा कि वे दोनों यक्षाश्व की पीठ पर चढ़े हुए जा रहे हैं । तब उसने पहिले तो भारी भय दिखाया । पर जब उन दोनों में से किसी ने भी पीछे की ओर नही देखा, तब उसने मन मोहिनी सुन्दरी का रूप बनाकर हाव-भाव और विलास विनयपूर्वक करुण वचनों से इन दोनों को मोहित करने के लिए अपना माया जाल फैलाया । उसने कहा—हे मेरे प्राणनाथो, तुम लोग मुझे छोड़ कर कहां जा रहे हो ? मैं तुम्हारे बिना कैसे जीवित रह सकूंगी ? देखो, मेरी ओर देखो । मुझ पर दया करो और वापिस मेरे साथ चलकर दिव्य भोगों को भोगो । इस प्रकार के वचनों को सुनकर जिनपाल का चित्त तो चलायमान नही हुआ । किन्तु जिनरक्ष का चित्त प्रलोभनों से विचलित हो गया और जैसे ही उसने पीछे को ओर देखा कि यक्ष ने उसे तुरन्त पीठ पर से नीचे गिरा दिया । उसके नीचे गिरते ही उस देवी ने उसे भाले की नोंक पर ले लिया ऊपर उछाल कर तलवार से उसके खंड-खंड कर दिये । जिनपाल अडिग रहा । उसे यक्ष ने समुद्र के पार पहुंचा दिया । पीछे उसे धन-माल के साथ चम्पा नगरी भी पहुंचा कर वापिस अपने स्थान को लौट आया ।

भाइयो, इस कथानक से यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जिन काम-भोगों को हमने दुःखदायी समझ कर छोड़ दिया है, उन्हें नाना प्रलोभनों के मिलने पर भी उनकी ओर देखें भी नहीं । अन्यथा जिनरक्ष के समान दु.ख भोगना पड़ेगा जिनरक्ष ने सुना तो सही पर गुना नहीं, उस पर अमल नहीं किया जिस कारण उसका सर्वनाश हो गया । आप भी बचपन से सुन रहे हो, संसार की दशा देखते-देखते बूढे हो चले हो, फिर भी नही चेत रहे हो । जिस भाई का तुमने लालन-पालन

किया और अपनी कमाई मे से आधा हिस्सा दिया, वही भाई जरा सी बात पर तुम्हे मारने के लिए लाठी लेकर तैयार हो जाता है। जिस पुत्र के लिए तुमने अपने सब सुख छोडे और स्वय भूखे रहकर पाल पोस कर बडा किया, वही एक दिन सब कुछ छीनकर स्वय मौज करता है और तुम्हें दर-दर का भिखारी बना देता है। जिस स्त्री की इच्छाओ को पूरा करने के लिए तुमने हजारों पाप किये और लाखो कष्ट सहे वही निर्धनता और निर्बलता आ जाने पर तुमसे मुख मोड लेती है। ससार के ये सब सम्बन्ध स्वार्थ से भरे हुए है और अन्त मे उस रत्नद्वीपवासिनी देवी के समान मरणान्तक कष्ट देने वाले हैं। किन्तु जो जिनपाल के समान इन सबसे मुख मोडकर और गुरु वचनो पर श्रद्धा न कर आगे की ओर ही देखते हुए बढते चले जाते है, वे सर्व दुखो से पार होकर निराबाध सुख के भडार अपने मोक्ष घर को पहुच जाते हैं। इसलिए पिछली बातो को बिसार कर आगे की ही विचारणा करनी चाहिए। कहा भी है—

बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेय।

भाइयो, भगवान ने तो ससार को सर्वथा छोडने का ही उपदेश दिया है। परन्तु जो उसे सर्वथा छोडने मे अपने को असमर्थ पाते हैं, उन्हे श्रावक धर्म को स्वीकार करने के लिए कहा है। अत आप लोगो की जैसी भी स्थिति हो उसके अनुसार आत्मकल्याण मे लगना ही चाहिए। यदि और अधिक कुछ नही कर सकते तो तुलसीदास के शब्दो मे दो काम तो कर ही सकते हो?

तुलसी जग मे आय के, कर लीजे दो काम।
देने को टुकडा भला, लेने को हरिनाम।

एक तो यह कि अपने भोजन मे से एक, आधी चौथाई रोटी भी गरीब बुभुक्षित दुखित प्राणी को खाने के लिए अवश्य दो और लेने के नाम पर एक भगवान का नाम लो। परन्तु अन्याय और पाप करके धन कमाना छोड दो। दुखीजनो की वैयावृत्य करो, सेवा करो, और असहायो की जितनी बने सहायता करो। हमेशा सत्पुरुषो की सगति करो और उनके उपदेशो को सुनो। सुनने से ही तुम्हे भले बुरे का ज्ञान होगा और तभी तुम बुरे का त्याग कर भले कार्य को करने मे लग सकोगे। सुनने से असख्य लाभ है। सुनकर सार को ग्रहण करो और अपना जीवन उत्तम बनाओ।

वि० स० २०२७ कार्तिक शुक्ला १२
जोधपुर

२८ धर्मकथा का ध्येय

एक शब्द : अनेक रूप

सद्गृहस्थो, आपके सामने कथा का प्रकरण चल रहा है। किसी वस्तु के कथन करने को, महापुरुषों के चरित-वर्णन करने को कथा कहते है। कथा शब्द के पूर्व यदि 'वि' उपसर्ग लगा दिया जावे तो 'विकथा' बन जाता है, और अर्थ भी खोटी कथा करना या बकवाद करना हो जाता है। शब्दो की उत्पत्ति धातुओं से होती है। किसी एक धातु से उत्पन्न हुए एक शब्द के आगे प्र वि सम् आदि उपसर्गों के लग जाने से उस धातु-जनित मूल शब्द का अर्थ बदल जाता है। जैसे 'हृ' धातु है, इसका अर्थ 'हरण करना' है, इससे प्रत्यय लगाने पर 'ह्रियते' इतिहारः इस प्रकार से 'हार' शब्द बना। अब इस 'हार' शब्द के आगे 'आ' उपसर्ग लगाने पर 'आहार' शब्द बन गया और मूलधात्वर्थ बदल कर उसका अर्थ भोजन हो गया। यदि उसी 'हार' शब्द के आगे 'वि' उपसर्ग लगा दिया जाय, तो 'विहार' शब्द बन जाता है और उसका अर्थ घूमना-फिरना हो जाता है। यदि 'वि' हटाकर 'प्र' उपसर्ग लगा दिया तो 'प्रहार' शब्द बन जाता है और उसका अर्थ किसी पर शस्त्र आदि से वार करना हो जाता है। यदि 'प्र' हटाकर 'सं' उपसर्ग लगा दिया तो 'संहार', शब्द बन जाता है और उसका अर्थ सर्वथा नाश करना हो जाता है। यदि 'सं' को हटा कर 'परि' उपसर्ग लगा देते है, तो

'परिहार' शब्द बन जाता है और उसका अर्थ 'त्याग' करना हो जाता है। इसलिए कहा गया है कि—

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराहार-संहार - विहार-परिहारवत् ।'

अर्थात् उपसर्ग से धातु का मूल अर्थ बलपूर्वक अन्यरूप मे परिवर्तित कर दिया जाता है। जैसे कि 'हार' के प्रहार, आहार, संहार, विहार और परिहार अर्थ हो जाते हैं।

इसी प्रकार 'कथ्' धातु से बने 'कथा' शब्द का अर्थ भी 'वि' उपसर्ग लगने से 'विकथा' रूप मे परिवर्तित हो जाता है।

व्याकरणशास्त्र के अनुसार एक-एक धातु के अनन्त अर्थ होते हैं। उसमें प्रत्यय और उपसर्ग भेद से नये-नये शब्द बनते जाते है और उनसे नया-नया अर्थ व्यक्त होता जाता है। यदि कोई शब्दशास्त्र का विद्वान् है, तो जीवनभर एक ही शब्द के नवीन-नवीन अर्थ प्रकट करता रहेगा। इसीलिए कहा गया है कि 'अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रम्' अर्थात् शब्दशास्त्र का कोई पार नही है, वह अनन्त है, यानी अन्त-रहित है।

इस प्रकार प्रत्येक शब्द के अनेक अर्थ होते हुए भी ज्ञानीजन प्रकरण के अनुसार ही उसका विवक्षित अर्थ ग्रहण करते हैं। जैसे—'सैन्धव' शब्द का अर्थ 'सेंधा नमक' भी है और सिन्धु देश मे पैदा हुआ घोडा भी है। अब यदि भोजन के समय किसी ने कहा—'सैन्धव आनय' अर्थात् 'सैन्धव' लाओ, तो सुननेवाला उस अवसर पर घोडा नही लाकर 'सेंधा नमक' लायेगा। इसी प्रकार वही शब्द यदि कही जाने की तैयारी के समय कहा जायगा तो सुननेवाला व्यक्ति नमक को नही लाकर के 'घोडा' को लायेगा, क्योंकि वह देखता है कि यह जाने के समय कहा गया है, अत 'सैन्धव' (घोडा) की आवश्यकता है न कि नमक की।

यही नियम सर्वत्र समझना चाहिए कि भले ही प्रयुक्त शब्द के अनेक अर्थ होते हो, किन्तु जिस स्थान पर, जिस अवसर मे और जिन व्यक्तियो के लिए कहा गया है, वहा के उपयुक्त अर्थ को ग्रहण किया जाय और वहा पर अनुपयुक्त या अनावश्यक अर्थो को छोड दिया जाय।

चार प्रकार की कथा :

भगवान् ने चार प्रकार की कथाय कही है। यथा—

'कहा चउव्विहा पण्णत्ते । त जह आक्खेवणी विक्खेवणी संवेयणी, निव्वेयणी।

अर्थात्—भगवान की देशना रूप कथायें चार प्रकार की होती हैं—आक्षेपणी, विक्षेपणी और संवेदनी और निर्वेदनी। जो नाना प्रकार की एकान्त दृष्टियों का और पर-मतों का निराकरण करके छह द्रव्य और नव पदार्थों का निरूपण करे, उसे आक्षेपणी कथा कहते है। जो प्रमाण और नयरूप युक्तियों के द्वारा सर्वथा एकान्तस्वरूप वादों का निराकरण करे, उसे विक्षेपणी कथा कहते हैं। पुण्य के वर्णन करने वाली कथा को संवेदनी कथा कहते और पाप के फल का वर्णन करने वाली कथा को निर्वेदनी कथा कहते हैं। अथवा संसार, शरीर और भोगों से वैराग्य उत्पन्न करनेवाली कथा को निर्वेदनी कथा कहते हैं। जैसा कि कहा है—

आक्षेपणीं तत्त्वविधानभूतां विक्षेपणीं तत्त्वदिगन्तशुद्धिम्।
संवेगिनी धर्मफलप्रपंचां निर्वेदिनी चाह कथां विरागाम्॥

आक्षेपणी कथा तत्त्वों का निरूपण करती है। विक्षेपणी कथा तत्त्वो में दिये जाने वाले दोषों की शुद्धि करती है। संवेदनी कथा धर्म का फल विस्तार से कहती है और निर्वेदिनी कथा वैराग्य को उत्पन्न करती है।

मनुष्य के जीवन के लिए ये चारों ही कथायें उपयोगी हैं, अतः भगवान् ने इन चारों कथाओं का निरूपण किया है। देखो—मनुष्य के शरीर में जब कोई बीमारी घुल-मिल जाती है और डाक्टर या वैद्य लोग कहते हैं कि अमुक प्रकार के अभक्ष्य पदार्थों के सेवन करने से यह विकार उत्पन्न हो गया है अतः पहिले रेचक औषधि देकर उसे बाहिर निकालना होगा, उन अभक्ष्य मांस-मदिरा आदि का सेवन बन्द करना होगा और अमुक इंजेक्शन शरीरस्थ कीटाणुओं को समाप्त करना होगा। पीछे अमुक औषधि के सेवन से इसके शरीर का पोषण होगा। इसी प्रकार भगवान् ने भी बताया कि देखो—अन्यमतावलम्बियों के कथन से तुम्हारे भीतर जो मिथ्यात्व और अज्ञान उत्पन्न हो गया है, तथा हिंसादि पापरूप प्रवृत्ति से जो विकार पैदा हो गया हैं, पहिले उसे दूर करो पीछे यथार्थतत्त्वों का श्रद्धान कर अपने आचरण को शुद्ध करो तो तुम्हारी जन्म-जरा-मरण रूप बीमारी जो अनादिकाल से लगी हुई चली आ रही है, वह दूर हो जायगी। बस, इस प्रकार की धर्म-देशना को ही आक्षेपणी कथा कहते हैं।

दूसरी कथा है विक्षेपणी। विक्षेप का अर्थ है—एक की बात को काट कर अपनी बात कहना? जैसे किसी बीमार के लिए एक डाक्टर ने किसी दवा के सेवन के लिए कहा। तब दूसरा डाक्टर कहता है कि इसमें क्या

रखा है ? इसे बन्द कर मेरी दवा लो। इसी प्रकार संसार में खोटे प्रवचनों का प्रचार करने वाले पाखण्डी बहुत हैं। उनका निराकरण करने वाले और परस्पर में लड़ने-झगड़ने वाले बहुत हैं। उनके विवाद को दूर कर अपेक्षा और विवक्षा से कथन करने वाला स्याद्वादरूपी सबसे बड़ा चिकित्सक कहता है कि रेचन के लिए अमुक औषधि का लेना भी आवश्यक है और पाचन के लिए अमुक औषधि भी उपयोगी है. तथा शरीर-पोषण के लिए अमुक औषधि श्रेष्ठ है, इस प्रकार यह स्याद्वादरूपी महावैद्य सबके पारस्परिक विक्षेपों को दूर कर और वस्तु का यथार्थ स्वरूप बतला करके उन्हें यथार्थ मुक्ति-मार्ग का दर्शन कराता है। अतः जिज्ञासु और मुमुक्षु जनों के लिए विक्षेपणी कथा भी हितकारक है।

तीसरी कथा का नाम संवेगिनी है। सम् अर्थात् सम्यक् प्रकार से पुण्य और धर्म के फल को बता करके वेग पूर्वक जो धर्म और पुण्य-कार्यों मे लगाते और पाप एवं अधर्म कार्यों से बचाने वाली कथा को संवेगिनी कथा कहते हैं। नदी में जब वेग आता है तो उसके सामने कोई वस्तु नहीं ठहर सकती है, किन्तु सब बहती चली जाती है। इसी प्रकार आत्मा के भीतर जब धार्मिक भाव जागृत होता है, तब उसके सामने विकारी भाव नही ठहर सकते हैं।

चौथी कथा का नाम निर्वेदिनी है। जब मनुष्य बार-बार पापों के फलों को सुनता है। तब उसका मन सांसारिक कार्यों से उदासीन हो जाता है और तभी वह उनसे बचने का और सन्मार्ग पर चलने का प्रयत्न करता है। इसलिए वैराग्य बढ़ने वाली निर्वेदिनी कथा का भी भगवान् ने उपदेश दिया है।

उक्त चारों ही धर्म-कथाएँ हैं। धर्म-कथा करने का अभिप्राय है कि हमको शान्ति प्राप्त हो और हमारी आपदाएँ दूर हों। लोग कहते है कि हमें तो सदा चिन्ताएं ही घेरे रहती हैं, एक क्षण को भी शान्ति नहीं मिलती है। भाई, ऐसा क्यो होता है ? इसका कभी आप लोगों ने विचार किया है ? यदि मनुष्य अपनी चिन्ताओं के कारणों पर विचार करे तो उसे ज्ञात होगा कि उसने इन चिन्ताओं को स्वयं ही घेर रखा है। मनुष्य जब अपनी शक्ति, पुरुषार्थ और भाग्य को नहीं देखकर अमित और असीमित धनादि के प्रलोभन में फंसता है, तभी उसे चारों ओर से चिन्ताएँ घेरे रहती हैं। यदि वह यह विचार करे कि हे आत्मन्, तुझे खाने को पाव-डेढ़ पाव का आहार पर्याप्त है, सोने के लिए साढ़े तीन हाथ भूमि और शरीर ढंकने के लिए दो गज कपड़ा चाहिए है। फिर तू क्यों त्रैलोक्य की माया को पाने लिए हाय-हाय करता है और क्यों चिन्ताओं के पहाड़ को अपने सिर पर ढोता है ? इन

पक्षियों को तो देख ? जिन वेचारों के पास तो कोई साधन भी नहीं और इन्हें कोई सहायता देनेवाला भी नहीं है। फिर भी ये सदा चहकते हुए सदा मस्त रहते हैं। ये दिन को भी आनन्द-किलोलं करते रहते हैं और रात को भी निश्चिन्त होकर सोते हैं। जब ये पशु-पक्षी तक भी चिन्ता नहीं करते हैं और निश्चिन्त होकर जीवन-यापन करते हैं, तब तू क्यों चिन्ता की ज्वाला में सदा जलता रहता है। यह चिन्ता की ज्वाला तो चिता से भी भयंकर है। जैसा कि कहा है—

> चिन्ता-चिता द्वयोर्मध्ये चिन्ता एव गरीयसी।
> चिता दहति निर्जीवं चिन्ता दहति सजीविकम् ॥

चिन्ता और चिता इन दोनों में चिन्ता रूपी अग्नि ही बहुत भयंकर है, क्योंकि चिताकी अग्नि तो निर्जीव शरीर को (मुर्दे को) जलाती है, किन्तु चिन्ता रूपी अग्नि तो सजीव शरीर को अर्थात् जीवित मनुष्य को जलाती है।

चिन्तन करो, चिंता नहीं

अत: ज्ञानी मनुष्य को विचार करना चाहिए कि मैं क्यों चिन्ता करूँ ? यदि चिन्ता करूँगा तो मेरे मस्तिष्क की जो उर्वराशक्ति है—प्रतिभा है—वह नष्ट हो जायगी। अतः मुझे चिन्ता को छोड़ कर वस्तु-स्वरूप का चिन्तक बनना चाहिए। इसलिए हे भाईयो, आप लोग चिन्ता को छोड़कर चिन्तक (विचारक) बनें और सोचें कि यह आपदा मुझ पर क्यों आई ? इसकी जड़ क्या है ? मूल कारण क्या है ? इस प्रकार विचार कर और चिन्ता के मूल कारण की खोज करेंगे और चिन्तक बनेंगे तो अवश्य उसे पकड़ सकेंगे और जब पकड़ लेंगे तो उसे दूर भी सहज में ही कर सकेंगे। अन्यथा चिन्ता की अग्नि में ही जलते रहेंगे। भाई, चिन्तक पुरुष ही इस भव की आपदाओं से छूट सकता है और भविष्य का, पर भव का भी सुन्दर निर्माण कर सकता है और उसे सुखदायक बना सकता है।

मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है और इसी कारण उसे चिन्ता उत्पन्न होती है, पर उससे चिन्तित रह कर अपने आपको भस्म करना उचित नहीं है, किन्तु चिन्ता को अपने भीतर घर मत करने दो। वह जैसे ही आवे, उसे उसके कारणों का विचार करके दूर करो। पर यह कब संभव है ? जब कि उसके भीतर ज्ञान की पूंजी हो और ध्यान की विचारने की प्रवृत्ति हो। चिन्ता के लिए तो कुछ नहीं चाहिए, परन्तु चिन्तक के लिए तो सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन रूपी पूँजी की आवश्यकता है। यदि इन दोनों को साथ लेकर चलोगे तो सम्यक्चारित्र तो स्वयमेव आ जायगा। इस प्रकार जब आप ठीक दिशा में

प्रयत्न करेंगे तो आपकी सारी चिन्ताएँ—चाहे वे शारीरिक हो, या मानसिक इहलौकिक हो, या पारलौकिक, सब अपने आप ही दूर हो जायगी और आप अन्धकार-व्याप्त मार्ग से निकल कर प्रकाश से परिपूर्ण राजमार्ग पर पहुच जावेगे जिस पर कि निश्चिन्त होकर चलते हुए अपनी अभीष्ट यात्रा सहज मे ही पूर्ण कर लेंगे और चिर-प्रतिक्षित शान्ति को प्राप्त कर सदा के लिए निश्चिन्त हो जावेगे।

बन्धुओ, आप लोग विचार करे कि डाक्टर के द्वारा बतलायी गयी ऊची से ऊची औषधि लने, विटामिन की गोलिया खाने और प्रतिदिन दूध पीने पर भी यदि हम स्वास्थ्य लाभ नही कर पाते है तो कही न कही पर मूल मे भूल अवश्य है ? वह भूल चिन्ता ही है। जब मनुष्य चिन्ता से ग्रस्त रहता है, तब उसका खाया-पिया सब व्यर्थ हो जाता है। किसी ने एक व्यक्ति से कहा—इस बकरे को खूब खिलाओ-पिलाओ। मगर देखो -यह न मोटा-ताजा होने पावे और न कमजोर ही। उस व्यक्ति ने किसी चिन्तक व्यक्ति से इसका उपाय पूछा। उसने कहा—इसको सिंह के पिंजरे के पास बाध कर खूब-खिलाते-पिलाते रहो। न यह घटेगा और न बढेगा। इधर खाने-पीने पर जितना बढेगा उधर सिंह की ओर देखकर 'कही यह मुझे खा न जाय ?' इस चिन्ता से सूखता भी रहेगा।

धर्मप्रिय सुदर्शन

भाइयो, यह चिन्ता बहुत बुरी है। इसे दूर करने के लिए भगवान ने ये पूर्वोक्त चार प्रचार की कथाए बताई है। इनमे से आक्षेपणी और विक्षेपणी कथा के द्वारा अपनी आत्मा की कमजोरियो और अनादि-कालीन एव नवीन उत्पन्न हुई मिथ्या धारणाओ को दूर करो, क्योकि उन को दूर किये बिना शक्ति प्राप्त नही हो सकती है। जब हम इतिहास को पढते हैं, तब ज्ञात होता है कि भारत को शत्रुओ के आक्रमण करने पर अनेक बार हार की मार खानी पडी और अनेक उतार-चढाव देखने पडे हैं। परन्तु यह भारत और उसके निवासी चिन्तन मे जागरूक थे, तो आज यह स्वतत्र हैं और विदेशियो की दासता से मुक्त है। इसी प्रकार आत्म-स्वातन्त्र्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि हम आक्षेपणी और विक्षेपणी कथा के द्वारा आत्म-शुद्धि करें और सवेगिनी एव निर्वेदिनी कथा के द्वारा इसे सपोषण देवे और उसका सरक्षण करें तो एक दिन आप लोग अवश्य ही सभी सासारिक और आत्मिक चिन्ताओ से मुक्त होकर के सदा के लिए आत्म-स्वातन्त्र्य प्राप्त कर लेंगे। आत्म स्वातन्त्र्य की प्राप्ति का नाम ही मुक्ति है, मोक्ष है और उसे ही शिव पद की प्राप्ति कहते हैं।

भगवान महावीर के समय चम्पानगरी में सुदर्शन नाम का एक बहुत धनी सेठ रहता था। उसके अपार धन-सम्पत्ति थी। परन्तु वह सदा इस बात से चिन्तित रहता था कि मैं इस धन-वैभव की रक्षा कैसे करूं ? किस काम में इसे लगाऊं ? धन के लिए चोरों का खतरा है, डाकुओं का आतंक है और राज्य का भी भय है। इसी चिन्ता से वह भीतर ही भीतर घुलने लगा। उसे चिन्तातुर देखकर उसकी पत्नी मनोरमा ने एक दिन पूछा—नाथ, आज कल आप इतने चिन्तित क्यों दिखाई देते हैं ? उसने अपनी चिन्ता का कारण बताया। मनोरमा सुनकर बोली - प्राणनाथ, आप व्यर्थ की चिन्ता करते हैं ? सुदर्शन बोला—प्रिये, इस चिन्ता से मुक्त होने का क्या उपाय है ? मनोरमा बोली—स्वामिन् ! भगवद्-वाणी सुनिये। सुदर्शन ने पूछा—भगवद्-वाणी कौन सुनाते हैं ? मनोरमा ने कहा—निर्ग्रन्थ श्रमण साधु सुनाते हैं। सुदर्शन ने पुनः पूछा —क्या आप उन साधुओं को जानती हैं ? मनोरमाने कहा—हां नाथ, मैं उन्हें अच्छी तरह से जानती हूँ और सदा ही उनके प्रवचन सुनने जाती हूं। सुदर्शन बोला—तब आज मुझे भी उनके पास ले चलो। यथासमय मनोरमा पति को साथ लेकर प्रवचन सुनने के लिए गुरुदेव के चरणारविन्द में पहुँची और उनको वन्दन करके दोनों ने उनकी वाणी सुनी। सुदर्शन को वह बहुत रुचिकर लगी और सोचने लगा—ओ हो, मैंने जीवन के इतने दिन व्यर्थ ही बिता दिये। और परिग्रह के अर्जन और संरक्षण में ही जीवन की सफलता मान ली। आज मुझे जीवन के उद्धारक ऐसे सन्त पुरुषों का अपूर्व समागम प्राप्त हुआ है। इसके पश्चात् वह मनोरमा के साथ सन्त की वाणी सुनने के लिए जाने लगा। धीरे-धीरे उसके भीतर ज्ञान की धारा प्रवाहित होने लगी और वह वस्तु-स्वरूप का चिन्तक बन गया। कुछ समय पश्चात् मुनिराज विहार कर गये। परन्तु सुदर्शन का हृदय वैसी वाणी सुनने के लिए लालायित रहने लगा।

इसी समय भगवान महावीर का समवसरण चम्पा में हुआ और नगरी के बाहिरी उद्यान में भगवान् विराजे। नगरी के लोगों को जैसे ही भगवान् के पधारने के समाचार मिले तो सभी नागरिक लोग भगवान् के वन्दन और प्रवचन सुनने के लिए पहुंचे। सुदर्शन सेठ भी अपनी पत्नी के साथ गया और भगवान् के दर्शन कर और उनकी अनुपम वीतराग शान्त-मुद्रा देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। जब उसने भगवान् की साक्षात् वाणी सुनी तो उसके आनन्द का पार नहीं रहा। प्रवचन के अन्त में उसने खड़े होकर कहा—भगवन्, मैं आपके प्रवचन की रुचि करता हूं, प्रतीति करता हूं और श्रद्धा करता हूं। परन्तु इस समय घर-बार छोड़ने के लिए अपने को असमर्थ पाता हूं। कृपया मुझे श्रावक के व्रत प्रदान कर अनुगृहीत कीजिए। तत्पश्चात् उसने भगवान् से पाँच

अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह श्रावक-व्रतों को स्वीकार किया और भगवान् की वन्दना करके अपने घर आगया।

अब उसकी विचार-धारा एकदम बदल गई। जहां पहिले वह धन के अर्जन और संरक्षण में ही जीवन की सफलता समझता था, वहां वह अब सन्तोष मय जीवन विताने और धन को पात्र दान देने, और दीन-दुखियों के उद्धार करने में जीवन को सफल करने लगा। उसने अपने आय का बहुभाग धार्मिक कार्यों में लगाना प्रारम्भ कर दिया। इससे उसकी चारों और प्रशंसा होने लगी। वह घर का सब काम अलिप्तभाव से करने लगा। जहां उससे पहिले धन के संरक्षण की चिन्ता सताती थी, वह सदा के लिए दूर हो गई। अब उसे सभी लोग अपने परिवार के समान ही प्रतीत होने लगे और वह सबकी तन-मन धन से सेवा करने में ही अपना जीवन सार्थक समझने लगा। धीरे-धीरे देश-देशान्तरों में भी उसका यश फैल गया और वहां के व्यापारी और महाजन लोग आकर उसके ही यहा ठहरने लगे।

जब चम्पा नरेश को ज्ञात हुआ कि सुदर्शन सेठ के त्यागमय व्यवहार के कारण देश में सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य छा रहा है और विद्रोह एवं अराजकता का कहीं नाम भी नहीं रहा है, तब वह स्वयं ही सुदर्शन सेठ से मिलने के लिए उनके घर पर गया। राजा का आगमन सुनकर सेठ ने आगे जाकर उनका भर-पूर स्वागत किया और प्रारम्भिक शिष्टाचार के पश्चात् उनसे आगमन का कारण पूछा। राजा ने कहा प्रिय सेठ, आपके सद्व्यवहार और उदार दान से मेरे सारे देश में सुख-शान्ति का साम्राज्य फैल रहा है, मैं तुम्हें धन्यवाद देने आया हूं और आज से तुम्हें "नगर-सेठ" के पद से विभूषित करता हूँ। अब आगे से आप राज-सभा में पधारा कीजिए। सुदर्शन ने नत-मस्तक होकर राजा के प्रस्ताव को शिरोधार्य किया। तत्पश्चात् सुदर्शन राज-सभा में जाने आने लगे।

पुरोहित को प्रबोध

जब राजपुरोहित कपिल को यह ज्ञात हुआ कि सुदर्शन को 'नगर-सेठ' बनाया गया है, तो वह मन ही मन में जल-भुन गया। क्योंकि कपिल तो शुचिमूल धर्म को मानता था और सुदर्शन विनयमूल धर्म को माननेवाला था। अतः उसने अवसर पाकर राजा से विनयमूल धर्म की निन्दा करते हुए कहा—महाराज, आपने यह क्या किया? सुदर्शन तो विपरीत मार्ग का अनुयायी है। इससे तो सच्चे धर्म की परम्परा का ही विनाश हो जायगा। पुरोहित की बात सुनकर राजा ने कहा—पुरोहित जी, यह आपकी धारणा मिथ्या है। शुचिका अर्थ है—स्नान करना और कपड़े साफ रखना। परन्तु कहा है कि—

इस तन को धोये क्या हुआ, इस दिल को धोना चाहिए।
शिला बनाओ शील की अरु ज्ञान का साबुन सही।
सत्य का पानी मिला है, साफ धोना चाहिये ।।इस।।

पुरोहित जी, इस शरीर को साबुन लगा-लगा कर और तेल-फुलेल रगड़-रगड़ कर घड़ों जल से स्नान किया, तो क्या यह शुद्ध हो जाता है ? इस शरीर के भीतर रहने वाली वस्तुओं की ओर तो दृष्टि-पात कर, संसार में जितनी भी अपवित्र वस्तुएं हैं, वे सब इसमें भरी हुई हैं। किसी मिट्टी के घड़े में मल-मूत्रादि अशुचि पदार्थ भरकर ऊपर से घड़े को जल से धोने पर क्या वह शुद्ध हो जायगा ? शौचधर्म तो हृदय को शुचि (पवित्र) रखने से होता है और उसे विनयमूल धर्म के धारक साधुजन ही धारण करते हैं। जो शुद्ध शील का पालन करते हैं, ज्ञान-ध्यान और तप में संलग्न रहते हैं, उनके ही शुचिता संभव है। अन्यथा निरन्तर पानी में ही गोता लगानेवाली मछलियां और मगर मच्छ कच्छपादि सभी को पवित्र मानना पड़ेगा। कहा भी है—

प्राणी सदा शुचि शील जप तप ज्ञान ध्यान प्रभाव तें।
नित गंग—जमुन समुद्र न्हाये अशुचि दोष स्वभावतें।
ऊपर अमल, मल भर्यो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहैं ?
बहु देह मैली, सुगुण-थैली शौच गुण साधू लहै।।

पुरोहितजी, विचार तो करो ऐसी अपवित्र वस्तुओं से भरा यह देह क्या यमुना-गंगा और समुद्र में स्नान करने से पवित्र हो सकता है ? कभी नहीं हो सकता। धर्म तो हृदय की शुद्धि पर निर्भर है। यदि हृदय शुद्ध नहीं है तो बाहिर से कितना ही साफ रहा जाय, वह अशुद्ध ही है।

पुरोहित जी, और भी देखो—शरीर की शुद्धि करते हुये यदि कुछ अधिक रगड़ लग गई और खून आ गया, उस पर मक्खियां बैठ गई और पानी आदि के योग से उसमें रक्खी (पीव) पड़ गई तो वह दुर्गन्ध मारने लगता है और कीड़े पड़ जाते हैं। फिर वह शुद्धता क्या काम आई ? जरा आप आखें खोल कर देखें कि पानी से शरीर की शुद्धि होती है क्या ? अरे, जल से मुख की शुद्धि के लिए हजारों कुल्ले कर लो, फिर भी क्या मुख शुद्ध हो गया ? कितने सुगन्धित मंजनों से और वनस्पति की दातुनों से रगड़ने पर भी क्या मुख में शुद्धि आ जाती है ? यदि हजारों बार मुख-शुद्धि करने के पश्चात् आप मुख का एक कुल्ला किसी दूसरे के ऊपर डाल दोगे तो क्या वह अपने को अपवित्र नहीं मानेगा और क्या आप से लड़ने के लिए उद्यत नहीं होगा ? अवश्य ही होगा। और भी देखो—आपने बहुत सा द्रव्य

व्यय करके उत्तम भोजन तैयार कराया और उसमें का एक ग्रास अपने मुख में रखकर उसे ही दूसरे को खाने के लिए देने पर क्या वह खा जायगा ? अरे, वह तो उस उच्छिष्ट ग्रास को लेने के लिए तैयार तक भी नहीं होगा। प्रत्युत आपसे कहेगा कि क्या मुझे काक या स्वान समझा है, जो कि उच्छिष्ट खाते हैं। इन सब बातों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि शरीर सदा ही अपवित्र है, वह ऊपरी स्नानादि करने से कभी शुचि नहीं हो सकता। शरीर का धर्म ही सड़ना, गलना और विनशना है। सन्तों ने ठीक ही कहा है—

> अरे संसारी लोगों ! गंदी देही का कैसा गारबा ॥ टेर ॥
> छिनमें रंगी चंगी दीसे, छिनमें छेह दिखावे।
> काची काया का क्या भरोसा, क्या इनसे मो लावेरे।

हे मानव, तू इतना अभिमान क्यों करता है, क्यों इतना उफन रहा है ? कपड़े हाथ में लेता है कि कहीं धूल न लग जाय। परन्तु तेरे शरीर से तो यह धूल बहुत अच्छी है। इसमें से तो अनेक उत्तम वस्तुयें उत्पन्न होती है। किन्तु इस शरीर से तो मल, मूत्र, श्लेष्म, आदि महा घृणित वस्तुयें ही उत्पन्न होती हैं। जो शरीर कुछ समय पूर्व गुलाब के फूल जैसा सुन्दर दिखता था, वही कुछ क्षणों में ऐसा बन जाता है कि लोग समीप बैठना भी पसन्द नहीं करते हैं।

राजा के इस प्रकार सम्बोधित करने पर कपिल पुरोहित का शुचि-मूलक धर्म का मिथ्यात्व दूर हो गया और वह भी अब राजा साहब और सुदर्शन सेठ के साथ तत्व-चर्चा के समय बैठने लगा। भाई, संगति का प्रभाव होता ही है। धीरे-धीरे पुरोहित को तत्त्व चर्चा में इतना रस आने लगा कि उसे समय का कुछ भान ही नहीं रहे।

कपिला का संदेह भरा उलाहना

जब पुरोहित रात्रि में उत्तरोत्तर देरी से पहुंचने लगा, तब उसकी कपिला स्त्री के मन में संदेह उत्पन्न हुआ कि मेरा पति इतनी रात बीते तक कहाँ रहता है ? भाई, स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा है कि पुरुष की किसी भी बात पर उसे वहम आये बिना नहीं रहता। फिर रात के समय देर तक घर आने पर तो सन्देह होना स्वाभाविक ही है। एक दिन आधी रात के समय जब पुरोहित जी घर पहुंचे और द्वार खुलवाया तो कपिला पुरोहितानी उफनती हुई बोली—

कैसी बुद्धि हो गई भ्रष्ट जरा नहीं शर्म भी खाते हो।
इतनी रात बिताइ कहाँ पर कारन क्यों न सुनाते हो ।।टेर।।
राज्य गुरु कहलाते पंडित अकल अघाते हो।
दुनियां क्या चर्चा करती वो सुन न पाते हो ।। इ० १ ।।

अरे, आप पंडित कहलाते हो और इतनी रात बीतने पर घर आते हो ? आपको शर्म नहीं आती ! आपकी पढ़ाई को धिक्कार है। इस प्रकार से उसके मन में जो कुछ आया, वह उसने कह डाला। पुरोहितजी ने उसके आक्रोश-मय वचनों को शान्तिपूर्वक सुना और मन में सोचने लगे— जब मैं इतनी देर से घर आता हूं, तब इसके मन मे सन्देह उठना स्वाभाविक है। अतः मुझे इसका सन्देह निवारण करना चाहिए। यह विचार कर उन्होंने बड़े मीठे स्वर में शान्तिपूर्वक कहा—

चिन्ता मत कर हे प्रिये, नहीं और कोई बात।

हे सौभाग्यशालिनि, तू इतनी आग-बबूला क्यों होती है ? तू जिस बात की शंका कर रही है, उसका लेश मात्र भी मेरे साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। अरी, भरी जवानी में नहीं था, तो अब इस ढलती अवस्था में क्या होगा ? देर से घर आने का कारण यह है कि मुझे समय बीतने का कुछ पता नहीं चल पाता है। वह ज्ञान भंडार है, उसके समान विचारक विद्वान् अन्यत्र ढूंढने पर भी नहीं मिलेगा। मैं तेरे सामने उसकी क्या प्रशंसा करूँ ? तू और किसी भी प्रकार का वहम अपने मन में मत कर। जैसे भंगेड़ी को भग पिये विना, अफीमची को अफीम खाये विना और संगीतज्ञ को संगीत सुने विना चैन नहीं पड़ती वैसे ही ज्ञानी को ज्ञानी की सगति किये विना भी चैन नहीं पड़ती है। इसलिए तू अपने मन में किसी भी प्रकार का सन्देह मत कर। सुदर्शन सेठ जैसा धनी है, वैसा ही ज्ञानी भी है, मिष्टभाषी भी है और कामदेव के समान सुन्दर रूपवान् भी है। उसके समीप बैठ कर चर्चा करने पर उठने का मन ही नहीं होता है। इस प्रकार सुदर्शन सेठ की प्रशंसा करता हुआ पुरोहित सो गया।

कपिला पुरोहितानी ने पति के मुख से जो इस प्रकार से सुदर्शन सेठ की प्रशंसा सुनी तो उसे रात्रिभर नींद नहीं आई और वह करवट बदलती हुई सोचती रही कि किस प्रकार सुदर्शन के साथ संगम किया जाय ?

भाइयो, देखो— वर्षा का जल तो एक ही प्रकार का मधुर होता है, और वह सर्वत्र समान रूप से बरसता है। किन्तु बगीचे मे नाना प्रकार के वृक्षों की

जड़ों में पहुंचकर वह नाना प्रकार रसवाला बन जाता है। गन्ने की जड़ में पहुँचकर वही मीठा बन जाता है, नीबू की जड़ में पहुँचकर वही खट्टा और नीम की जड़ में पहुँचकर वही कडुआ बन जाता है। यह उस पानी का दोष नहीं है। किन्तु प्रत्येक वृक्ष की प्रकृति का प्रभाव है। जिसकी जैसी प्रकृति होती है, वह तदनुसार परिणत हो जाता है। इसी प्रकार भगवान् की वाणी तो विश्व का हित करनेवाली—कल्याण कारिणी—ही होती है। किन्तु वही मिथ्यात्वी जीवों के कानों मे पहुँचकर विपरीत रूप मे परिणत हो जाती है, क्योंकि मिथ्यात्वियों के भीतर मिथ्यात्व रुपी महाविष भरा हुआ है। दूध का स्वभाव मधुर ही है, परन्तु पित्तज्वर वाले व्यक्ति को वह कडुआ ही प्रतीत होता है। कहा भी है—

'पित्तज्वरवतः क्षीरं तिक्तमेव हि भासते'

इसीप्रकार वही दूध पीकर सर्व साधारण व्यक्तियो मे अमृत रूप से परिणत होता है किन्तु सर्प के द्वारा पिया गया दूध विष रूप ही परिणत होता है। इसमें दूध का दोष नहीं, सर्प की प्रकृति का ही दोष है।

हा, तो भाई वह कपिला अब सुदर्शन के साथ समागम के उपाय सोचने लगी। पर पुरोहित के घर पर रहते हुए यह संभव नहीं था। यद्यपि कपिला सदाचारिणी थी और धर्म-अधर्म को भी पहचानती थी। परन्तु उसके ऐसा मोहकर्म का उदय आया कि वह कामान्ध हो गई और पर-पुरुष के समागम के लिए चिन्तित रहने लगी।

भाइयो, कर्मों की गति विचित्र है। उनकी लीला अपार है। कौन जानता है कि किस समय क्या होगा? आप लोगों ने अब तक क्या यह बात कभी सुनी कि जैन साधु चतुर्मास पूर्ण होने के पहिले ही विहार करें। परन्तु आज यह भी सुनने में आ रहा है कि तुलसी गणी को अपने संघ के साथ कार्तिक सुदी द्वादशी को ही विहार करना पड़ा है। यह कौन सुनाता है? समय ही सुनाता है। समय पर जो बातें होनी होती हैं, वे हो जाया करती हैं। यह कितनी बुरी बात हो गई। साधु-मर्यादा और समाज के नियम के प्रतिकूल यह घटना घटी है। समय के प्रवाह को कौन रोक सकता है? जो बात समय को अभीष्ट है, वह हो ही जाया करती है, तो भी सबको उससे शिक्षा अवश्य ग्रहण करनी चाहिए। लोग आज कह रहे है कि जैन समाज का जन-बल, धन-बल और धर्म-बल कहां चला गया? विचारने की बात है कि ऐसा क्यों हुआ? उत्तर स्पष्ट है कि जैन समाज में एकता नहीं, एक का मत नहीं और पारस्परिक सहानुभूति नहीं। इसी का फल है कि जो अनहोनी बात भी आज कानों मे सुन रहे हैं।

आज जैन समाज की शक्ति पारस्परिक पन्थवाद में विखर रही है। एक सम्प्रदाय वाले सोचते हैं कि यह तो अमुक सम्प्रदाय का झगड़ा है, हमें इससे क्या लेना-देना है। जब दूसरे सम्प्रदाय पर भी इसी प्रकार का कोई मामला आ पड़ता है, तब इतर सम्प्रदाय वाले भी ऐसा ही सोचने लगते हैं। पर भाइयो यह विभिन्न सम्प्रदाय की बात तो घर के भीतर की है। बाहिर तो हमें एक होकर रहना चाहिए। क्योंकि हम सब एक ही जैनधर्म के अनुयायी है और एक ही अहिंसा धर्म के उपासक है वात्सल्यगुण के नाते हमारे भीतर परस्पर में प्रेमभाव और सहानुभूति होना ही चाहिए और एक सम्प्रदाय के ऊपर किसी भी प्रकार की आपत्ति आने पर सबको एक जूट होकर उसका निवारण करना चाहिए। सच्चा जैनी कभी भी जैनधर्म और जैन समाज का किसी भी प्रकार का अपमान सहन नहीं कर सकता है।

कपिला का जाल

हां, तो मैं कह रहा था कि ऐसी अनहोनी बातों को भी यह समय करा देता है, तदनुसार उस कपिला ब्राह्मणी के मन में भी काम-विकार जागृत हो गया और वह सुदर्शन समागम की चिन्ता में रहने लगी! और उचित अवसर की प्रतिक्षा करने लगी। एक दिन राजा ने किसी कार्यवश पुरोहित को पांच-सात दिन के लिए बाहिर भेजा। कपिला ने अपना मनोरथ पूर्ण करने के लिए यह उचित अवसर देखकर दासी से कहा कि तू सुदर्शन सेठ के घर जाकर उनसे कहना - तुम्हारे मित्र पुरोहितजी कई दिन से बीमार हैं और आप को याद कर रहे हैं। दासी ने जाकर सुदर्शन सेठ को यह बात कह सुनाई। यद्यपि सुदर्शन सेठ दूसरों के यहां जाया नहीं करते थे, तथापि मित्र की बीमारी का नाम सुनकर उसके यहां जाने का विचार किया और दासी को यह कह विदा किया कि मैं अभी आता हूं। दासी ने जाकर पुरोहितानी को सेठजी के आने की बात कह सुनाई। वह स्नानादि सोलह शृङ्गार करके तैयार होकर सेठजी के आने की प्रतीक्षा करने लगी। इधर सुदर्शन भी सायंकाल होता देखकर भोजनादि से निवृत्त हो मित्र के घर गये। जैसे ही वे मित्र के द्वार पर पहुंचे वैसे ही कपिला ने उनका हाव-भाव से स्वागत किया। सेठने पूछा—बाई, हमारे भाई साहब कहां है और उनकी तबियत कैसी है? कपिला बोली—वे ऊपर के कमरे में लेट रहे है, तबियत वैसी ही है, आप स्वयं ऊपर चलकर देख लीजिए।

सुदर्शन सेठ जैसे ही ऊपर गये, वैसे ही कपिला ने घर का द्वार भीतर से बन्द कर दिया और मन ही मन प्रसन्न होती हुई ऊपर पहुंची। सुदर्शन ने

ऊपर के सारे कमरे देख डाले, पर मित्र को कहीं पर भी नहीं पाया । इतने में ही कपिला ऊपर पहुंची तो उन्होंने कपिला से पूछा बाई; भाई साहब कहां हैं ? वह मुस्कराते हुए बोली – आपके भाई साहब तो बाहिर गये हुए हैं । *आपकी प्रशंसा सुनकर मैं कभी से आपके दर्शनों के लिए उत्सुक थी, आप* सहज में आने वाले नहीं थे, अतः उनकी बीमारी के बहाने से आपको बुलाया है । मैंने जब से रूप-सौंदर्य की प्रशंसा सुनी है, तभी से मैं आपके साथ समागम करने के लिए बैचेन हो रही हूं । कपिला के ऐसे पापमय निर्लज्ज वचन सुनकर सुदर्शन मन ही मन विचारने लगे---'यहां आकर मैंने भारी भूल की है । अब बचने का कोई उपाय करना चाहिए । यदि मैं इसे सीधा नकारात्मक उत्तर देता हूं तो संभव है कि यह हल्ला मचाकर मुझे और भी आपत्ति और संकट में डाल दे और लोग भी यही समझेंगे कि सेठ दुराचारी है, तब तो रात्रि के समय कपिल की अनुपस्थिति में उसके घर आया है ? अतः उन्होंने ऊपर से मधुर वचन बोलते हुए बहुत कुछ समझाने का प्रयत्न किया । परन्तु जब देखा कि यह कामान्ध हो रही है और नग्न होकर मेरी ओर बढ़ती ही चली आ रही है, तब सेठ ने कहा---पुरोहितानीजी, अप्सरा जैसी सर्वांग सुन्दरी आपके सामने होते हुए और स्वयं प्रार्थना करते हुए कोई पुरुषत्व-सम्पन्न व्यक्ति अपने मन को काबू में नहीं रख सकता है । नीति में भी कहा है—

'ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः' ।

अर्थात्—स्त्री-भोग का आस्वादी ऐसा कौन पुरुषार्थ-सम्पन्न पुरुप है जो जो कि आप जैसी निर्वसना और विवृतजघना स्त्री को देखकर उसे छोड़ने के लिए समर्थ हो सके ? अर्थात् कोई भी नहीं छोड़ सकता है ।

किन्तु यदि आप किसी से न कहें. तो मैं सत्य बात कहूं ---वह बोली ! नही कहूंगी । तब सेठजी बोले---मैं तो यथार्थ मे पुरुपत्व-हीन व्यक्ति हूं । कहने और देखने भर के लिए पुरुप हूं । यह सुनकर कपिला आश्चर्य से चकित होकर बोली—यह आप क्या कहते हैं ? सुदर्शन ने कहा-- मैं यथार्थ बात ही कह रहा हूं । अन्यथा यह संभव नहीं था कि मैं आपकी इच्छा को पूरा न करता । अब तो कपिला को विश्वास हो गया कि सेठ जी यथार्थ में पुरुपत्व से हीन हैं । तब वह निराश होती हुई बोली --तब आप भी मेरी यह बात किसी से न कहिये । उसकी बात सुनकर सुदर्शन यह कहते हुए वापिस चले आये कि हां, मैं तुम्हारी बात किसी से नहीं कहूंगा ।

इस घटना के पश्चात् सेठजी ने नियम कर लिया कि आगे से मैं किसी भी व्यक्ति के घर नही जाऊंगा ।

अभया का कुचक्र

कुछ समय के बाद कौमुदी महोत्सव आया । राजा ने सारे शहर में घोषणा करा दी कि सब स्त्री-पुरुष महोत्सव मनाने के लिए उद्यान में एकत्रित हों। राजा अपने दल-बल के साथ उद्यान में गया और नगर-निवासी लोगों के साथ सुदर्शन सेठ भी गया। उनके पीछे राज-रानी भी अपनी सखी-सहेलियों और दासियों के साथ उद्यान में जाने के लिए निकली। इसी समय सुदर्शन सेठ की सेठानी मनोरमा भी अपने चारों पुत्रों के साथ रथ में बैठकर उद्यान की ओर चली। कपिला महारानी अभया के साथ रथ में बैठी हुई थी। उसने जैसे ही देवांगना सी सुन्दर मनोरमा और उसके देवकुमारों जैसे सुन्दर लड़कों को देखा तो महारानी से पूछा—यह सुन्दर स्त्री किसकी है और ये देवकुमार से बालक किसके हैं ? रानी ने कहा—अरी, तुझे अभी तक यह भी ज्ञात नहीं है। अपने नगरसेठ सुदर्शन की यह पत्नी मनोरमा है और ये उसी के लड़के हैं। यह सुनकर कपिला हंस पड़ी । रानी ने पूछा—पुरोहितानीजी, आप हंसी क्यों ? पहिले तो कपिला ने बतलाने मे कुछ आनाकानी की। मगर जब महारानी जी का अति आग्रह देखा तो वह बोली—

महारानीजी, आश्चर्य इस बात का है कि सुदर्शन सेठ तो पुरुषत्व-शून्य हैं-नपुंसक हैं— फिर उनके ये चार-चार पुत्र हों, यह बात मैं कैसे मानूं ? यदि ये पुत्र इसी ने जाये हैं, तब यह निश्चय से दुराचारिणी है। यह सुनकर रानी ने रोष-भरे शब्दों में कहा—

अरी हिये की अन्धी, तू क्या कहती है ? मनोरमा के समान तो अपने राज्यभर में भी कोई स्त्री पतिव्रता नहीं है । मैं तेरी बात को नही मान सकती। तब कपिला बोली—महारानी जी, लाल आँखें दिखाने से क्या लाभ ? जो बात मैं कह रही हूं, वह सत्य है। रानी ने पूछा—तूने यह निर्णय कैसे किया है। तब कपिला ने आप बीती सारी घटना कह सुनाई । जब सुदर्शन सेठ ने स्वयं अपने मुख से अपने को पुरुषत्व-हीन कहा है, तब मैं कैसे मानूं कि ये पुत्र उसी के हैं ? इसीलिए मैं कहती हूं कि मनोरमा सती नही है। तब रानी ने कहा—

अरी मूर्खे, तू पुरुषों की माया को नहीं जानती। तेरे से छुटकारा पाने के लिए ही सेठ ने अपने को पुरुषत्व हीन कह दिया है और तुझे सेठ ने इस प्रकार ठग लिया है। सुदर्शन तो पुरुष शिरोमणि पुरुष है, साक्षात् कामदेव है। जब कपिला ने देखा कि महारानी जी मेरी बात किसी भी प्रकार से मानने को तैयार नहीं है, तब उसने व्यग्य पूर्वक कहा—

महारानीजी, मैं मूर्ख ही सही । परन्तु आप तो बुद्धि-वैभव वाली है और बहुत कुशल हैं। पर मैं तब आपको कुशल समझू जब आप उसके साथ भोगो को भोग लेवें । इस प्रकार कपिला ने रानी पर रग चढा दिया। अब रानी मन ही मन सुदर्शन को अपने जाल मे फसाने की सोचने लगी।

उद्यान से राजमहल मे वापिस आने पर रानी ने अपना अभिप्राय अपनी अति चतुर दासी से कहा। उसने रानी को बहुत समझाया पर उसकी समझ मे कुछ नही आया। कहा भी है—

विषयासक्तचित्ताना, गुण को वा न नश्यति ।
न वैदुष्य न मानुष्य, नाभिजात्य न सत्यवाक् ॥

अर्थात्—जिनका मन विषयो मे—काम-भोगो मे आसक्त हो जाता है, उनका कौन सा गुण नष्ट नही हो जाता है। न उनमे विद्वत्ता रहती है, न मानवता रहती है, न कुलीनता रहती है और न सत्य वचन ही रहते हैं।

दासी ने फिर भी कहा—महारानी जी, आप इतने बडे राज्य की स्वामिनी होकर एक साधारण पुरुष की याचना करती है ? यह बात आपके योग्य नही है। उसकी बात सुनकर रानी बोली—बस, तू अधिक मत बोल। यदि सुदर्शन सेठ के साथ मेरा समागम नही होगा तो मैं जीवित नही रह सकूगी।

भाइयो, हमारे महर्षियो ने ठीक ही कहा है—

पाक त्याग विवेक च, वैभवं मानितामपि ।
कामार्ता खलु मुञ्चन्ति किमन्यैः स्व च जीवितम् ॥

जो मनुष्य काम से पीडित होते हैं, वे पवित्रता, त्याग, विवेक, वैभव, और मान-सम्मान को भी छोड देते हैं। और अधिक क्या कहे, वे अपने जीवन को भी छोड देते है अर्थात् मरण को भी प्राप्त हो जाते हैं।

दासी ने फिर भी *समझाया—महारानी जी, यदि कही भेद खुल गया, तो भारी बदनामी होगी और आपकी प्रतिष्ठा धूल मे मिल जायगी। अत आप* इस प्रकार का दुर्विचार छोड देवें। मगर रानी के हृदय पर कुछ भी असर नही हुआ। आचार्य कहते हैं कि—

पराराधनजार्हंन्यात्पैशुन्यात्परिवादतः ।
पराभवात् किमन्येभ्यो न बिभेति हि कामुक ॥

कामी पुरुष दूसरो की खुशामद करने से, दूसरे के आगे दीनता दिखाने से, पैशुन्य से, निन्दा से और *क्या कहे अपने अपमान से भी नही डरते है।*

अन्त में उस दासी ने रानी की प्रेरणा पर एक उपाय सोचा। उसने कुम्हार के यहां जाकर मिट्टी के सात पुतले बनवाये—जो कि आकार-प्रकार मे ठीक सुदर्शन के समान थे। इधर रानी ने राजा से अनुज्ञा लेकर अठाईव्रत करने का प्रपच रचा। रात के समय वह दासी एक पुतले को वस्त्र से ढककर और अपनी पीठ पर लाद करके आई और राजमहल मे घुसने लगी। द्वारपाल ने उसे रोका। पर वह जब जबरन घुसने लगी तब द्वारपाल का धक्का पाकर उसने पुतले को पृथ्वी पर पटक दिया और रोना-धोना मचा दिया कि हाय, अब महारानी जी बिना पुतले के दर्शन किये पारणा कैसे करेंगी। दासी की यह बात सुनकर द्वारपाल डर गया और बोला—पंडिते, आज तू मुझे क्षमा कर मुझ से भूल हो गई। आगे से ऐसी भूल नही होगी। इस प्रकार वह दासी प्रतिदिन एक एक पुतला बिना रोक-टोक के राजमहल मे लाती रही। आठवे दिन अष्टमी का पोषधोपवास ग्रहण कर सुदर्शन सेठ पौषध शाला में सदा की भांति कायोत्सर्ग धारणा कर प्रतिमा योग से अवस्थित थे तब दासी ने आधी रात के समय वहां जाकर और उन्हें अपनी पीठ पर लाद कर तथा ऊपर से वस्त्र ढककर रानी के महल में पहुंचा दिया।

रानी ने सुदर्शन से कहा—हे मेरे आराध्य देव, हे सौभाग्य-शालिन, हे पुण्याधिकारिन्, तुम्हारे दर्शन पाकर मैं धन्य हो गई हूं और तुम भी कृतार्थ हो गये हो। अब मौन छोड़ो और आखे खोलो। देखो—राजरानी तुम्हारे प्रणय की भिखारिणी बन करके तुम्हारे सामने खड़ी है। परन्तु सुदर्शन ने तो पोषधशाला से दासी द्वारा उठाने के समय ही यह नियम ले लिया था कि जब तक यह मेरा उपसर्ग दूर नही होगा, तब तक मेरे मौन है और अन्न-जल का भी त्याग है। अत. वे मूर्त्ति के समान अवस्थित रहे। रानी ने उनको रिझाने के लिए नाना प्रकार के हाव-भाव के साथ गीत गाये और नृत्य भी किया और पुरुष को चलायमान करने की जो-जो भी कलाएं वह जानती थी—सभी की। परन्तु सुदर्शन तो सुमेरु के समान ही अडोल बने रहे। जब उसने देखा कि मेरे राग प्रदर्शन का इस पर कोई असर नही हो रहा है, तब उसने भय दिखाना प्रारम्भ किया और कहा—सुदर्शन, भलीभांति सोच लो। यदि मेरे साथ कामभोग नही करोगे, तो जानते हो, मैं तुम्हें पहरेदारो से पकड़वा दूंगी। फिर तुम्हारी क्या दुर्गति होगी, सो तुम स्वयं ही सोच लो। पर भाई, सुदर्शन को क्या सोचना था। वे तो पहिले ही सोच चुके थे। अतः अपने ध्यान में मस्त थे। वे तो जानते थे कि वीतराग सर्वज्ञ ने जो देखा है, वही होगा।

'जो जो पुद्गल फरसना, सो सो निश्चय होय ।

इस प्रकार मनाते और धमकाते हुए जब रानी ने देखा कि यह तो बोलता ही नहीं है और अब सवेरा होने को ही आगया है, तब उसने त्रिया-चरित फैलाया और आवाज लगाई—दौड़ो दौड़ो, मेरे महल में चोर आ घुसा है, इसे पकड़ो। पहरेदार आवाज सुनकर जैसे ही महल के भीतर गये तो सुदर्शन सेठ को आसन पर बैठा देख करके बोले—महारानी जी, ये तो सुदर्शन सेठ हैं, चोर नहीं हैं। महारानी बोली कोई भी हो, पर जब मेरे महल में रात्रि के समय आया है, तब चोर ही है। इसे पकड़ कर ले जाओ। पर द्वारपाल लोग उन्हें प्रायः महाराज के पास आते-जाते और बैठते-उठते देखते थे, अतः उन लोगों की हिम्मत पकड़ने की नहीं हुई और वे लोग अपनी असमर्थता बतला करके वापिस चले गये।

इतने में सवेरा हो गया और जब यह बात महाराज के कानों तक पहुंची कि सुदर्शन सेठ आज रात्रि में महारानी जी के महल में आये हैं और महारानी जी ने चोर-चोर की आवाज देकर द्वारपालों को पुकारा। फिर भी उन लोगों ने उसे नहीं पकड़ा है। तब वे भी अतिविस्मित होते हुए महारानी के महल में पहुंचे और सुदर्शन को देखकर बोले—सेठजी, रात के समय महारानी जी के महल में कैसे आये ? परन्तु वे तो उपसर्ग दूर होने तक मौन लेकर ध्यानस्थ थे, अतः उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। राजा ने कई बार प्रेम से पूछा। मगर जब कोई भी उत्तर नहीं मिला, तब रानी बोली—

"महाराज, आप इससे क्या पूछ रहे है ? क्या यह अपने मुख से अपना पाप आपके सामने कहने की हिम्मत कर सकता है ? यह ढोंगी, बगुला-भक्त जो आपके सामने धर्म की लम्बी-चौड़ी बातें किया करता है, वह रात में पता नहीं, कब कहां से मेरे महल में आ घुसा और रात-भर इसने मेरा शील-खण्डन करने के लिए अनेक उपाय किये। मगर बड़ी कठिनाई से मैं अपना शील बचा सकी। जब मैंने पहरेदारों को आवाज दी, तब यह ढोंगी ध्यान करने का ढोंग बनाकर बैठ गया। इस प्रकार रानी के द्वारा कान भरने पर और सेठ के द्वारा कोई उत्तर नहीं दिये जाने पर राजा को भी कुछ बात जंची कि अवश्य ही 'दाल में कुछ काला' है। तब उन्होंने क्रोधित होकर कहा—देख सुदर्शन, तू अब भी जो कुछ बात हो, सत्य-सत्य कह दे, अन्यथा इसका नतीजा बुरा होगा। इस प्रकार धमका कर पूछने पर भी जब सेठ की ओर से कोई उत्तर नहीं मिला, तब राजा ने क्रोधित होकर पहरेदारों को हुक्म दिया

कि इसे पकड़ कर राज-सभा मे उपस्थित करो। यह कह कर राजा महल से निकल कर राज सभा में चले गये।

शूली का सिंहासन

थोड़ी ही देर मे यह समाचार सारे नगर में विजली के समान फैल गया और सभी सरदार और साहूकार लोग राज-सभा में जा पहुंचे। जब यह समाचार सुदर्शन की पत्नी मनोरमा ने सुना, तो उसे मानो लकवा ही मार गया हो, ऐसी दशा हो गई। वह सोचने लगी—मेरे पति तो सदा की भांति पौषधशाला मे, ध्यान करने के लिए गये थे, फिर रानी के महल में कैसे पहुंचे। वे स्वयं गये हों, यह कभी संभव नही है। अवश्य ही इसमें कुछ रहस्य है ? जो कुछ भी हो, वे जब तक निरपराध होकर घर मे नहीं आते हैं तब तक मेरे भी अन्न-जल का त्याग है ऐसा संकल्प कर और सर्व कार्य छोड़कर ध्यानावस्थित हो भगवत्-स्मरण करने लगी।

राज-सभा में पहुंचते ही राजा ने दीवान से कहा—कोतवाल को बुलाकर कहो कि वह सुदर्शन को गधे पर चढ़ा कर सारे नगर में घुमावे और फिर श्मशान में ले जाकर के शूली पर चढ़ा देवे। जैसे ही राजा का यह आदेश सुना तो सारी सभा में कुहराम मच गया। सरदार और साहूकार लोगो ने खड़े होकर राजा से निवेदन किया—महाराज, यह कभी संभव नहीं है कि सुदर्शन सेठ किसी दुर्भावना से महारानी जी के महल में गये हों ? अवश्य ही इसमें कुछ रहस्य है। जब लोग यह कह ही रहे थे, तभी पहरेदार लोग सुदर्शन को पकड़े हुए राज-सभा में लाये। सुदर्शन को देखते ही राजा ने उत्तेजित होकर कहा—आप लोग ही इससे पूँछ लेवे कि यह क्यों रानी के महल में रात के समय गया ? प्रमुख लोगों ने पास आकर पूछा—सेठजी, बताइये, क्या बात है ? और क्यों आप रात के समय महारानी जी के महल में गये ? परन्तु सुदर्शन ने किसी को कोई उत्तर नही दिया और मूर्त्तिवत् मौन धारण किये ध्यानस्थ खड़े रहे। सुदर्शन की ओर से कोई उत्तर न पाकर वे लोग भी किंकर्तव्य-विमूढ़ हो चुप हो गये। राजा ने कोतवाल से कहा—इसे ले जाओ और गधे पर चढ़ा कर तथा सारे नगर में घुमा कर शूली पर चढ़ा दो।

राजा का आदेश सुनते ही कोतवाल सुदर्शन को पकड़ करके राज-सभा से बाहिर ले गया और गधे पर बैठाकर उन्हे सारे नगर में घुमाया। समझदार लोग यह दृश्य नही देख सके और नीचा मुख किये अपने-अपने घरों मे बैठे रहे। जो नासमझ और दुराचारी थे वे ही लोग तमाशा देखने के लिए पीछे

हो लिए। जब सुदर्शन को लेजाकर कोतवाल श्मशान पहुंचा और चाण्डाल को शूली पर चढ़ाने का हुक्म दिया, तभी इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। उसने अवधिज्ञान से जाना कि चम्पानगरी में ऐसा अनाचार चल रहा है और एक निर्दोष धर्मात्मा व्यक्ति को शूली पर चढ़ाया जा रहा है, तब उसने हिरणगमेषी देव को आज्ञा दी कि चम्पानगरी में जाकर तुरन्त सुदर्शन सेठ का संकट दूर करो। यह आदेश पाकर पलक मारते ही चम्पानगरी के श्मशान में पहुंचा और जैसे ही चाण्डाल ने सुदर्शन को शूली पर चढ़ाया कि उस देवने उसे तत्काल सिंहासन बनाकर उस पर सुदर्शन को बैठा दिया, फिर के ऊपर छत्र लगाया और दोनों ओर से चवर ढुलने लगे। आकाश में देव-दुंदुभियां बजने लगीं और सुदर्शन के जय-जयकार के साथ पुष्प वर्षा होने लगी।

जैसे ही यह समाचार राजा के पास पहुंचा तो वह दौड़ा हुआ श्मशान पहुंचा और नगर निवासी लोग भी आ पहुंचे। सबके मुख से 'सत्य की जय', 'सुदर्शन सेठ की जय' धर्म की जय' के नारे निकलने लगे, जिससे सारा आकाश गूंज उठा। राजा ने देखा कि यहां तो मामला ही उलटा हो गया है, और देव मेरी ओर वक्रदृष्टि से देख रहा है तो वह साष्टाङ्ग नमस्कार करता हुआ बोला—मुझे क्षमा किया जाय, मेरे से बड़ी भूल हो गई है। देवने कहा—तूने अपराध तो बहुत भारी किया जो रानी के कहने में आ गया और बुद्धि-विवेक से काम नहीं लिया। किन्तु सुदर्शन सेठजी की आज्ञा से मैं तुझे माफ करता हूं। परन्तु आगे से ऐसी भूल कभी मत करना। राजा ने हाथ जोड़कर देव की आज्ञा को शिरोधार्य किया और सुदर्शन से क्षमा-याचना करते हुए कहा—सेठजी, अब तो मेरी ओर कृपा दृष्टि करो। सेठ ने आये हुए संकट को दूर हुआ जान कर पौषध पाला। राजा ने बड़े भारी अनुनय-विनय के साथ उन्हें अपने हाथी के ऊपर सिंहासन पर बैठाया और स्वयं उनके ऊपर छत्र तानकर पीछे खड़ा हो गया। दोनों ओर दीवान और नगर-प्रधान चंवर ढोलने लगे। उपस्थित सारी जनता ने सेठजी का जयजयकार किया। इस प्रकार बड़े समारोह के साथ सारी नगरी में घूमता हुआ जुलूस सेठजी की हवेली पर पहुंचा। सेठजी हाथी पर से उतर कर जैसे ही देव के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के अभिमुख हुए कि उसने कहा—मेरा अभिवादन पीछे करना। पहिले जाकर अपनी सेठानी का ध्यान पलाओ। सुदर्शन ने भीतर जाकर कहा—मनोरमे, ध्यान पालो। तुम्हारे सत्य और शील के प्रभाव से सब संकट दूर हो गया है और सत्य की विजय हुई है। देखो—इस देवराज ने

शूली से सिंहासन कर दिया और सारे नगर-निवासी धर्म की जय बोलते हुए तुम्हारे घर के बाहिर खड़े हैं। पति के ये वचन सुनकर मनोरमा ने नेत्र खोले तो उसकी आखो से आनन्दाश्रुओं की धारा वह निकली। तत्पश्चात् सुदर्शन ने देवता का मधुर शब्दों मे आभार मानकर उसे विसर्जित किया और नगर-निवासियों को भी हाथ जोड़कर विदा किया।

तत्पश्चात् सुदर्शन ने पारणा की और अपना अभिप्राय मनोरमा से कहा कि जब मेरे ऊपर यह सकट आया था तो मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि मैं इस संकट से बच जाऊँगा तो साधुव्रत स्वीकार करूँगा। मैंने संसार के सब सुख देख लिए हैं। ये सब प्रारम्भ में मधुर दिखते हैं किन्तु परिपाक-समय महाभयंकर दु ख देते हैं। यदि मैं घर में न होता तो यह संकट क्यों आता। अतः तुम मुझे दीक्षा लेने की स्वीकृति दो। मनोरमा ने कहा—'नाथ, जो गति तुम्हारी सो ही हमारी' मैं भी आपके विना इस घर में रहकर क्या करूँगी। मैं भी सयम धारण करूंगी। इसके बाद उन दोनो ने मिलकर घर का सारा भार पुत्र और पुत्र-वधुओं को सौंपकर संयम धारण कर लिया। सुदर्शन साधु-संघके साथ और मनोरमा साध्वी संघ के साथ संयम-पालन करते हुये विचरने लगे।

पाप का भंडाफोड़

इधर जैसे ही महारानी अभयमती को पता चला कि सुदर्शन की शूली सिंहासन बन गई और वह जीवित घर वापिस आ गया है, तब वह राजमहल के सातवें खंड से गिर कर मर गई और व्यन्तरी हुई। जब साधु वेष मे विचरते हुए सुदर्शन मुनिराज एक बार जंगल मे रात के समय ध्यानावस्थित थे, तब उस व्यन्तरी ने इन्हें देखा और पूर्वभव का स्मरण करके उसने अपने शृंगार-रस-पूरित हाव-भाव-विलासो से उन्हे डिगाने के भरपूर उपाय किए। मगर जब उन्हें किसी भी प्रकार से नही डिगा सकी, तब उसने सैकड़ों प्रकार के भयंकर उपद्रव किये। पर सुदर्शन मुनिराज गिरिराज सुदर्शन मेरु के समान अचल और अडोल रहे। अन्त मे थक कर वह हार गई और प्रभात हो गया, तब वह भाग गई। कुछ समय पश्चात् सुदर्शन मुनिराज कर्मों का नाश कर मोक्ष पधारे और मनोरमा साध्वी भी संयम पाल कर जीवन के अन्त मे संन्यासपूर्वक शरीर त्याग कर देवलोक मे उत्पन्न हुई।

भाइयो सुदर्शन का यह कथानक हमें अनेक शिक्षाएं देता है। पहली तो यह है कि हमें सदा उत्तम संगति करना चाहिए। और प्राणान्त संकट के आने पर भी अपने व्रत-नियम पर पूर्ण रूप से दृढ रहना चाहिए। कभी किसी भी प्रकार के बडे से बडे प्रलोभन में नहीं फंसना चाहिए।

दूसरी शिक्षा हमारी बहिनों को मनोरमा से लेनी चाहिए जैसे उसने पति पर आये संकट की बात सुनी तो तुरन्त यह नियम लेकर बैठ गई कि जब तक मेरे पति का संकट दूर नहीं होगा, तब तक मेरे अन्न जल का त्याग है और वह भगवद्-भक्ति मे लीन हो गई। वह जानती थी कि संकट में उद्धारक धर्म ही है, अतः उसी का शरण लेना चाहिए।

तीसरी शिक्षा सर्वसाधारण के लिए यह मिलती है कि किसी धर्मात्मा व्यक्ति पर कोई संकट आवे तो सब मिलकर उसका बचाव करने के लिए शासक वर्ग के सामने अपनी आवाज को बुलन्द करें। यदि आज तुलसी गणी के ऊपर आये संकट के समय सारी जैन समाज ने मिलकर एक स्वर से अपनी आवाज शासन के सम्मुख बुलन्द की होती, तो यह कभी संभव नहीं था कि उन्हें चातुर्मास पूर्ण होने के पूर्व ही विहार करना पडता। सब लोग यह समाचार पढ कर रह गये और किसी के कान में जूँ तक नहीं रेंगी। सब यही सोचते रहे कि यह तो दूसरे सम्प्रदाय का झगडा है, हमें इसके लिए क्या करना है?

भाइयो, आज यदि आप लोगों को जीवित रहना है और धर्म की व समाज की लाज रखनी है, तो सम्प्रदायवाद के संकुचित दायरे में से बाहिर आओ। आज न तो दस्सा, बीसा, पंचा और ढैया का भेद-भाव रखने की आवश्यकता है और न तेरहपंथी, बीसपंथी, गुमानपंथी, बाइस सम्प्रदाय और स्थानकवासी या मन्दिरमार्गी भेद-भावो के रखने की आवश्यकता है। किन्तु सबको एक भगवान् महावीर के झंडे के नीचे एकत्रित होने की आवश्यकता है। आज इन सब भेद-भावों की दीवालों को हटाकर एक विशाल रंगमंच पर आने की और भगवान महावीर के शासन को धारण करने और प्रचार करने की आवश्यकता है। आज पारस्परिक कलह मिटाने की और सद्-भाव बढाने की आवश्यकता है। आप लोग यह न सोचें महाराज (म) वेष, परिवर्तन करने वाले हैं, या मेरी श्रद्धा में शिथिलता आगई है। न मैं वेष बदलने वाला हू और न मेरी श्रद्धा में ही कोई शिथिलता आई है। परन्तु आज समय की पुकार है कि यदि तुम्हें और हमें जीवित रहना है तो सबको एक होकर, हाथ से हाथ और कंधे से कंधा मिलाकर के चलना होगा। आज

यदि हम उन पर हंसेंगे, तो कल वे भी हमारे ऊपर हंसेंगे । इसलिए हमें खूब सोच-विचार कर पारस्परिक कटुता व वैमनस्यता का भाव निकालकर एक बनना चाहिए । आज एक बने बिना जीवित रहना संभव नहीं है । आज जब परस्पर विरोधी और विरुद्ध धर्म, भाषा, वेषभूषा और सभ्यतावाले राष्ट्र भी परस्पर में समीप आ रहे हैं, तब हम सब जैन भाई तो एक ही देशवासी एक ही भाषा-भाषी, एक धर्म, संस्कृति और सभ्यता वाले और एक ही जाति के है । फिर हममें फिरकापरस्ती क्यों हो ? क्यों हम एक दूसरे से लड़ें और एक दूसरे को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझें ? हमें एक होकर अपने धर्म संघ, और जिन शासन के गौरव की रक्षा करनी चाहिए । हमारी धर्म कथा का यही मुख्य उद्देश्य है ।

बन्धुओ, हमें सुदर्शन जैसे महापुरुषों की कथाएं सुननी चाहिए, जिससे धर्म पर श्रद्धा बढ़े और धर्म-धारण करने पर उसमें दृढ़ रहने की शिक्षा मिले । इसी कथा को सुनकर ही तो हमारे जयमलजी महाराज साहब की चित्तवृत्ति बदल गई और उन्होंने साधुपना ले लिया था । इस प्रकार के स्वर्ग और मोक्षगामी पुरुषों की कथाएं ही सुकथाएं हैं—सच्ची कथाएं है । इनके अतिरिक्त जो अन्य राग-द्वेष को बढ़ाने वाली कथाएं हैं, वे सब विकथाएं है । विकथाओं के वैसे तो असंख्य भेद हैं । परन्तु आचार्यों ने उन्हें मुख्य रूप से चार प्रकार में विभक्त किया है—स्त्री कथा, भोजन कथा, देश कथा और राज कथा । स्त्रियों के हाव-भाव, विलास-विभ्रम और उनके व्यभिचार आदि की चर्चा करना, उनका सुनना, तथा नग्न नृत्यों वाले नाटक सिनेमादि का देखना स्त्री कथा है । नाना प्रकार के भोजन बनाने, उनके नाना प्रकार के देश-विदेश-प्रचलित खान-पान के प्रकारों की चर्चा करना और खाने-पीने वालों की बात करते रहना भोजन कथा है । आज किस देश में क्या हो रहा है, किस देश के लोगों का पहिनावा-उढ़ावा कैसा है, उनका खान-पान और रहन-सहन कैसा है, इत्यादि की चर्चा करना देश कथा है । आज लोग इस चर्चा को ज्ञानवृद्धि का कारण मानते हैं और सुकथा समझते हैं, और इसी कारण जब देखो नाना-प्रकार के पत्र और पत्रिकाएं हाथ में लिए वांचा करते है, पर विवेकी और आत्म-हितैषी मनुष्य इस कथा को आत्मकल्याण में बाधक ही मानते हैं, अतः देश-विदेश की कथा करना भी विकथा ही है । चौथी विकथा राजकथा है । राजाओं के युद्धों की, उनके जय-पराजय की और भोग-विलास की चर्चा करना भी विकथा ही है । इसी प्रकार खेल-तमाशों की चर्चा करना, लोगों को हिंसा, आरम्भ और परिग्रह बढ़ाने वाली कथाएं करना, भी विकथा ही है । जिसे अपने आत्म

कल्याण का ध्यान है, वह तो घर व्यापारादि की चर्चा को विकथा मानता है, तब वह खेती-वाड़ी की, कूप-बावडी खुदाने की और बाग-बगीचे लगाने की भी चर्चा को व्यर्थ की पाप बढ़ाने वाली मानता है। अतएव विवेकी पुरुषों को सर्वप्रकार की विकथाओं से बचकर के आत्म-कल्याण करनेवाली, सन्मार्ग पर ले जाने वाली, मिथ्यात्व का खंडन करने वाली, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की बढ़ानेवाली और वैराग्य-वर्धक सुकथाओं को ही सुनना चाहिए।

वि० सं० २०२७ कार्तिक शुक्ला १३
जोधपुर

२९ आध्यात्मिक चेतना

बन्धुओ, सूत्र क्या है ? शब्दो का भडार है। यदि इस भडार को हम सावधानी के साथ सभाल करके रखें तो हमे ज्ञान की प्राप्ति हो, जनता की बुद्धि का विकास हो और इन्ही के आधार पर नवीन-नवीन ग्रन्थो की रचना होकर ज्ञान के भडार की अभिवृद्धि भी होती रहे। इसके लिए सबसे पहिली आवश्यकता है इस सूत्र-भण्डार को सुरक्षित रखने की। इसे सुरक्षित कैसे रखना ? क्या वस्त्रो मे बाध करके लकडी की अलमारियो मे रख करके अथवा लोहे की तिजोडियो मे बन्द करके ? नही, ये तो द्रव्य सूत्र की रक्षा के उपाय हैं, भाव सूत्र की रक्षा के नही। भाव सूत्र की रक्षा के लिए आवश्यक है कि हम इन सूत्रो का पठन पाठन करें, मनन-चिन्तन करें और ज्ञान के विनाशक अतिचारो से बचे रहें। भाव सूत्र की रक्षा तभी सभव है, जब कि हमारा आभीक्ष्ण्य ज्ञानोपयोग हो, हमारे हृदय मे ज्ञान की धारा निरन्तर प्रवाहित रहे और हम अध्यात्म मे सदा जागरूक रहे। जिसका भगवद्-वाणी पर विश्वास है, दृढ श्रद्धा है वही व्यक्ति अपने स्वरूप को देख सकता है। कहा है—

'जिनेश्वर तणी वाणी जाणी तेने जाणी है।

वाणी हृदयंगम करो

जिनेश्वर देव की वाणी अनेक लोग बाचते हैं। परन्तु उसको हृदयंगम करने वाले लाखो मे दो चार ही मिलेंगे। भगवान की वाणी का जो आशय है,

वही अपनी आत्मा और अपने हृदय का आशय है। यदि इन दोनों का आपस में सम्बन्ध हो जाय, तो अन्तरंग में प्रकाश प्रकट हो जाय। जैसे आपके घर में बिजली की ट्यूब लगी हुई है परन्तु जब तक मेन लाइन से उसका कनेक्शन नहीं होता, तब तक घर में प्रकाश नहीं होता है। दोनों का कनेक्शन होने पर ही प्रकाश होता है। जिसके हृदय में भगवद्-वाणी का यह कनेक्शन हो जाता है, वह यह कभी नहीं कहेगा कि मुझे आत्म-ध्यान करने के लिए समय नही है। मुझे इस समय सोना है, खाना-पीना है, या कहीं बाहिर जाना है अथवा अमुक काम करना है। ये सब बातें अध्यात्म चेतना वाले व्यक्ति के हृदय से निकल जाती हैं। यद्यपि संसार में रहते हुए वह यह सब काम करता अवश्य है, परन्तु जल में कमल के समान उनसे भिन्न ही रहता है।

अहो समदृष्टि जीवड़ा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अंतर गत न्यारो रहै, ज्यों धाय खिलावत बाल॥

यद्यपि सम्यग्दृष्टि जीव के पास साधन तो वही के वही है, तथापि वह भीतर से यही मानता है कि ये सब अन्य हैं और मैं इन से सर्वथा भिन्न हूं। सब पदार्थों के रहते हुए भी उसके हृदय में उनके लिए मूर्च्छाभाव नहीं है। जहां पर मूर्च्छा अर्थात् ममता भाव होता है, वही परिग्रह है। भगवान ने कहा है कि जिन वस्तुओं पर अपनापन नहीं है—ममत्व भाव नहीं है—वहां पर चाहे त्रैलोक्य की सम्पदा भी क्यों न हो, हम परिग्रह में नहीं हैं। इसके विपरीत यदि हमारे पास कुछ भी नहीं हो और रहने की टूटी-फूटी छोटी सी कुटिया या झोंपड़ी ही हो परन्तु हमारी आसक्ति और ममता उसके प्रति है, तो हम परिग्रही ही हैं।

भाइयो, धाय को देखो वह बड़े घराने के बच्चों को नहलाती-धुलाती है खिलाती-पिलाती है और अपने पुत्र के समान उसका सर्व प्रकार से सरक्षण करती है, परन्तु मन में उसके यही भाव रहता है कि यह मेरा नहीं है और मैं इसकी माता नहीं हूं। वह केवल उसके साथ अपना कर्तव्य-पालन करती है और अपने जीवन-निर्वाह का एक साधनमात्र मानकर उसकी प्रतिपालना करती है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टिजीव अपने कुटुम्ब और परिवार के लोगों को भीतर से अपना नही मानता है, किन्तु अपना व्यावहारिक कर्तव्य का पालन मात्र करता है। अन्तरंग में उसकी किसी के साथ आसक्ति नही है। जो जिनवाणी का आशय समझ लेते हैं उनकी ऐसी ही परिणति हो जाती है।

देखो—भरत चक्रवर्ती भी आप लोगों के समान ही गृहस्थ थे। उनके पास जितनी प्रचुर मात्रा में सम्पत्ति थी, उसका करोड़वां हिस्सा भी आपके पास नहीं है। फिर भी आपके ये शब्द हमारे कानों में वार-वार आते है कि क्या करें महाराज, घर की ऐसी जिम्मेवारी सिर पर आकर पड़ी है कि उसे निभाये विना कोई चारा ही नहीं है। परवश होकर उसे निभानी ही पड़ती है। पर मैं पूछता हूं, कि आपका यह कहना सत्य है क्या ? अरे, जिन बाल-बच्चों के मां-बाप बचपन में ही मर जाते हैं, वे सबके सब क्या मर ही जाते हैं ? अथवा भीख ही जन्म भर मांगते रहते हैं ? भाइयो, यह हमारा अज्ञान है, मिथ्यात्व है, कि हम ऐसा समझते हैं कि हम इनकी प्रतिपालना कर रहे हैं। यदि हम न करें, या न रहें, तो ये भूखे मर जावेंगे ? भाई, सब अपना-अपना भाग्य लेकर आये हैं और उसी के अनुसार सबका पालन-पोषण होता है। किन्तु हम इस रहस्य को नहीं समझते हैं और परकी ममता में ही अपने जीवन के अमूल्य समय को नष्ट कर देते हैं और कहते हैं कि कुटुम्ब की झंझटों के मारे हमें समय ही नहीं मिलता है। यदि यह बात सत्य होती, तब तो भरत चक्रवर्ती को समय मिल ही नहीं सकता था। परन्तु भरत अपने हृदय के भीतर यह मानते थे कि मैं इनका नहीं और ये मेरे नहीं हैं। उनकी इस आध्यात्मिक चेतना से ही उन्हें सहज में केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई और अपना अभीष्ट पद प्राप्त कर लिया। परन्तु आप लोग तो केवल बनावटी बातें करते है क्योंकि आप लोगों के ऊपर जिनवाणी का कोई असर नही हुआ है। जिनके हृदयों पर उसका असर हो जाता है, वे किसी भी परिस्थति में क्यों न हों, आत्म-कल्याण करने के लिए, भगवद्-वाणी सुनने के लिए और आत्म-साधना के लिए समय निकाल ही लेते हैं।

स्वानुभव चिंतामणि :

जिसके भीतर एक बार आत्म-प्रकाश हो जाता है और आत्म-रस का स्वाद मिल जाता है वह फिर उस रस का पान किये बिना रह नहीं सकता है। हृदय की तंत्री जब बजती है तब वह उसमें मग्न हो जाता है। कहा भी है—

> अनुभव चिन्तामणि रतन, अनुभव है रस कूप।
> अनुभव मार्ग मोक्ष को, अनुभव आत्म स्वरूप ॥

चिन्तामणि रत्न के लिए कहा जाता है कि जिस वस्तु का मन में चिन्तवन करो, उसे वह देता है। परन्तु वह लौकिक वस्तुओं को ही दे सकता है, पारलौकिक स्वर्ग-मोक्ष आदि को नहीं दे सकता है। परन्तु यह स्वानुभवरूपी

चिन्तामणि रत्न सभी प्रकार के लौकिक और पारलौकिक अभीष्ट सुखों को दे सकता है। रस-कुंभिका मे निकाला गया रस लोहे को ही सोना बनाने की क्षमता रखता है, शेप धातुओ को नही। परन्तु यह स्वानुभवरूपी रस प्रत्येक प्राणी को शुद्ध, बुद्ध सिद्ध बनाने की सामर्थ्य रखता है, भाई, मोक्ष का सत्य और सही मार्ग आत्मानुभव ही है। जो व्यक्ति आत्मानुभव से शून्य है, वह भगवद्-उपदिष्ट सन्मार्ग पर ठहर सकेगा, क्योकि उसके मस्तिष्क मे तो नाना प्रकार के सकल्प विकल्प भरे हुए है जिनको आत्मानुभव हो जाता है और जो आत्मानुभव मे सलग्न है उन्हें ससार की कोई भी शक्ति डिगा नही सकती है। लोगो के पास डिगाने के जितने भी साधन हैं, वे सब भौतिक है और वे भौतिक शरीर पर ही अपना प्रभाव दिखा सकते हैं, अर्थात् लाठी, तलवार, बन्दूक और भाला आदि शास्त्रो से अथवा अग्नि आदि से शरीर का ही विनाश कर सकते हैं। किन्तु अमूर्त्त आत्मा का कुछ भी नही बिगाड सकते है। आप लोगो को ज्ञात है कि पाच सौ मुनि कुरुजागन देश मे गये। वहा के राजा के दीवान नमुचि ब्राह्मण ने सघ के आचार्य से कहा—महाराज, यदि आप लोग जीवित रहना चाहते हैं, तो अपना सिद्धान्त छोडकर मेरा सिद्धान्त स्वीकार कर लेवें। अन्यथा में किसी को भी जीवित नही छोडूंगा। तब सघ आचार्य ने कहा—हमारा सिद्धान्त को हमारी आत्माओ मे रमा है, उसे कोई आत्मा से अलग कर नही सकता और आत्मा तो अरूपी है वह किसी से खडित या नष्ट हो ही नही सकती। वह अविनाशी है सदा अवस्थित है—

अव्वए वि अवट्ठिए वि

इस आत्मा को शस्त्र छेद नही सकते, अत अच्छेद्य है, अग्नि जला नही सकती, अत यह अदाह्य है, पानी भिगा या गला नही सकता अत यह अक्लेद्य है, पवन सुखा नही सकता, अत यह अशोष्य है। यह नित्य है, सर्वगत है, स्थाणु है, अचल है, और सनातन है।

आचार्य ने और भी कहा—अरे नमुचि, तुझे यदि यह अरमान है कि मैं इन साधुओं को भय दिखाकर, कष्ट देकर और उपसर्ग करके इन्हे सिद्धान्त स विचलित कर दूंगा, तो तेरा यह निरा भ्रम है। जीने का भय इन बाहिरी दश प्राणों का होता है आत्मा को नही होता है। हम साधुओ को इन दश द्रव्य प्राणों की कोई चिन्ता नहीं रहती है। हमारे ज्ञान-दर्शनरूप भाव प्राण तो सदा ही हमारे साथ रहेंगे, वे त्रिकाल मे भी हमसे अलग होने वाले नही है और न कोई उन्हे हमसे अलग कर ही सकता है।

नमुचि ने देखा कि ये साधु मेरे सिद्धान्त को स्वीकार करने लिए किसी भी प्रकार तैयार नही हैं, तब उसने एक-एक करके पाँचसौ ही मुनियो को घानी मे पिलवा दिया। भाई, बताओ, इस जोर-जुल्म का कोई पार रहा ? उन सभी साधुओ ने हसते हसते प्राण दे दिये, परन्तु अपना सिद्धान्त नहीं छोडा। न उन्होंने अपने प्राणो की भिक्षा ही उससे मागी। उनके भीतर यह दृढ श्रद्धान और विश्वास था कि हमारा सिद्धान्त ठीक है। अत उन्होने मरना स्वीकार किया, मगर अपना सिद्धान्त छोडना स्वीकार नही किया। उन मुनियो मे अनेक तो लब्धि-सम्पन्न थे। यदि वे चाहते तो नमुचि को यो ही भृकुटि के विक्षेप से, या दृष्टिपात मात्र से भस्म कर सकते थे। परन्तु वे लोग तो सच्चे अहिंसा धर्म के आराधक थे, प्राणिमात्र के रक्षक थे और परीषह-उपसर्गों के सहन करने वाले थे। वे स्वय मरण स्वीकार कर सकते थे, परन्तु दूसरे को कष्ट देने का स्वप्न मे भी विचार नही कर सकते थे। वे मोक्ष के मार्ग पर चल रहे थे, अत ससार के मार्ग पर कैसे चल सकते थे ? अपनी इसी आध्यात्मिक चेतना और दृढता के बल पर उन्होने मोक्ष को प्राप्त किया। जिनके भीतर यह आत्म-विश्वास नही है, वे ही लोग दूसरो के बह-कावे मे या डराने मे आ सकते है और अपना धर्म छोड सकते है, किन्तु धर्म का और आत्मस्वरूप का वेत्ता व्यक्ति त्रिकाल मे भी अपना धर्म नही छोड सकता है।

क्षमामूर्ति रघुनाथ

पूज्य श्री रघुनाथ जी महाराज विक्रम सवत् १९८९ की साल जालोर पधारे। उस समय वहा पर पोतिया बध धर्म का प्रचार था। उसकी श्रद्धा करने वाले वहा सैकडो व्यक्ति थे। उन लोगो को जैसे ही यह ज्ञात हुआ कि रघुनाथजी महाराज अपने धर्म का प्रचार करने के लिए इधर आ रहे है तो वे लोग लाठी लेकर नगर के बाहिर खडे हो गये और बोले कि यहा आप को आने की आवश्यकता नही है। पूज्य श्री ने पूछा, क्यो ? तो उन लोगो ने कहा कि यहा पर हमारे धर्म का प्रचार हो रहा है। आप यहा उसमे विक्षेप करने के लिए आये हैं, अत यहाँ नही ठहर सकते। पूज्य श्री ने कहा—आप लोग भोले हैं। हम तो गाव-गाव मे प्रचार करते आ रहे है, और करते हुए जावेंगे। आप लोग हमे रोकनेवाले कौन होते हैं ? हा, यदि राज्य-शासक कह देवे कि तुम लौट जाओ तो हम एक कदम भी आगे नही रखेंगे। परन्तु आप लोगो के कहने से नही लौट सकते हैं। वे लोग उत्तेजित होकर बोले—यदि नगर के भीतर एक कदम भी रखा तो मारे जाओगे। पूज्य श्री ने कहा—भाई, आत्मा तो मरती नही है और शरीर का हमे कोई

ममत्व नहीं है। यह कह उन्होंने जैसे ही शहर मे प्रवेश किया तो उनको लोगों ने लट्ठ मार दिये। पूज्यश्री के मस्तक से खून झरने लगा। उन लोगों ने साथ के अन्य सन्तों को मारना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु उन्होंने कोई परवाह न की। जब उन लोगों ने देखा कि मारने के बाद भी शहर से प्रवेश कर ही रहे हैं, तब उन्होंने शहर भर में यह सूचित कर दिया कि जो कोई भी इन लोगों को ठहरने के लिए स्थान देगा, उसे भी हम देख लेंगे। यह सुनकर किसी ने भी उन सन्तों को ठहरने के लिए स्थान नहीं दिया। उनके पीछे काटने कुत्ते लगा दिये, पत्थर फेंके और इसी प्रकार के उपद्रव किए। परन्तु वे पीछे नहीं लौटे। एक नाई ने आकर पूछा, महाराज, क्या बात है ? पूज्यश्री ने कहा—भाई, जो फरसना है वह होता है। हमें तो ठहरने के लिए स्थान भर की आवश्यकता है। नाई बोला—यह शिवजी का मन्दिर है, आप यहां विराजो। पूज्यश्री ने कहा - भाई, हमारे निमित्त से किसी भाई को कष्ट तो नहीं होगा ? उसने कहा – महाराज, हम कष्ट मिटाने का ही काम कर रहे हैं। किसी को कोई कष्ट नही होगा, आप विराजिये। पूज्यश्री सब संघ के साथ आज्ञा लेकर वहाँ ठहर गये। जब सन्त लोग पानी लेने के लिए भी नगर में जावें तो विपक्षी लोग कुत्ते लगा देवें। और पत्थर मार कर पात्र फोड़ देवें। इस प्रकार तीन दिन तक लगातार इतने कष्ट दिए कि जिसकी कोई सीमा नहीं। परन्तु पूज्यश्री जी ने किसी की कोई निन्दा नहीं की।

तीन दिन के बाद वहां के भंडारीजी खवासजी के जमाईजी का परवाना पहुंचा कि सन्त लोग आरहे है, उनका पूरा ध्यान रखना। परन्तु इसका भी संकेत पूज्यश्री ने नही कराया। और समभाव पूर्वक आहार-पानी के लिए नगर में घूमते रहे। चौथे दिन कचहरी में हाकिम से कहा कि कुछ सन्त लोग समदड़ी से यहां आने वाले हैं सो आने पर हमे सूचित करना। तब नीचे के अहलकार ने कहा—हुजूर, उन साधुओं को आये तीन दिन हो गए हैं और शहर में उनकी मिट्टी-पलीत हो रही है। यह सुनते ही हाकिम निकला। उस समय उनका जमाना था, वे लोग सौ-पचास आदमियों को साथ लिए विना नही निकलते थे। उन्होंने शिवजी के मन्दिर में जा कर सन्तों की दशा देखी तो उन्हें दुःख हुआ और बोले—हाकिम साहब, हमें दावा नहीं करना था, जो आपसे फरियाद करते। उन्होंने सब सन्तों को साथ में लिवा ले जाकर कचहरी के सामने ठहराया, उनके प्रवचनों की व्यवस्था की और स्वयं प्रवचन सुनने को आने लगे। यह देख कर विपक्षियों के हौसले पस्त हो गये और वे ठंडे पड़ गये। पूज्य श्री के प्रभाव को देखकर तथा उनके प्रवचन सुनकर उन विपक्षियों में

से चार व्यक्तियों ने पूज्य श्री से दीक्षा ग्रहण की। नगर निवासियों ने चतुर्मास करने के लिए प्रार्थना की। पूज्य श्री ने उसे स्वीकार कर चार मास तक भगवान् की वाणी सुनाई और शुद्ध मार्ग की प्ररूपणा की, जिससे ४५० व्यक्तियों ने उसे अंगीकार किया और पोतिया बंध धर्म छोड़ दिया।

भाइयों, दुःखों को सहन किए बिना सुख नहीं मिलता है। आप लोग दुकानों पर जाकर बैठते हैं, गर्मी का मौसम है, लू चल रही है, सिर के ऊपर टीन तप रहे हैं, पसीना झर रहा है और प्यास लग रही है, फिर भी ऐसे समय यदि ग्राहक माल खरीदने के लिए पहुंचते हैं, और मन-चाहा मुनाफा मिल रहा है, तब क्या आप लोग को घर का तलघरा और पंखा याद आता है, या खाने-पीने की बात याद आती है? जैसे कमाऊ पूत सुख-दुख की परवाह नहीं करता है, उसी प्रकार आत्म-कल्याणार्थी सन्त लोग और मुमुक्षु गृहस्थ लोग भी अपने कर्त्तव्य-पालन करने और धर्म का प्रचार करने में सुख-दुःख की चिन्ता नहीं करते हैं। जो केवल व्याख्यानों में पंजा घुमाने वाले हैं, जिन्हें खाने को अच्छा और पहिनने को बढ़िया चाहिए, उनसे धर्म का साधन नहीं हो सकता और न प्रचार ही। साधुओं के लिए तो भगवान का यह आदेश है कि—

> यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकम्।
> यज्जीवस्योपकाराय तद्देहस्यापकारकम्॥

अर्थात् जो जो कार्य देह का उपकार करने वाले हैं, वे सब जीवका अपकार करने वाले हैं और जो जो साधन जीव के उपकारक हैं, वे सब देह के अपकारक हैं। भाई, शरीर की तो यह स्थिति है कि—

> पोषत तो दुख देय घनेरे, शोषत सुख उपजावे।
> दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावे॥

ज्यों-ज्यों इस शरीर का पोषण किया जाता है, त्यों-त्यों यह और भी अधिक दुर्गतियों के दुःखों को देता है और ज्यों-ज्यों इसका शोषण किया जाता है, त्यों-त्यों यह सुगति के सुखों को और अक्षय अविनाशी आत्मिक सुख को देता है।

भाइयो, साधुओं का मार्ग आराम करने के लिए नहीं है। यहां तो जीते जी मौत का जामा पहिन कर चलना पड़ता है। घर का बिगाड़ेंगे तो सारी समाज की महत्ता नष्ट हो जायगी। इसलिए हमें निर्ममत्व की ओर बढ़ना चाहिए। आत्मानुभवी किसे कहते हैं? जिसने आत्मा के सही चित्र को अपने

भीतर खींच लिया है। कैमरे से नहीं, और कलम से भी नहीं। किन्तु अपनी आन्तरिक भावनाओं से, पर-परिणतियों को दूर कर और उन्हें तिलांजलि देकर स्व-परिणति में स्थिरता पा ली हैं, उन्होंने ही आत्मा का यथार्थ चित्र खींचा है और वे ही सच्चे परमानन्द-रस के आस्वादी बने हैं। ऐसे ही आध्यात्मिक चेतना की जागृति वालों के लिए कहा गया है कि—

यों चित्त निज में थिर भये तिन अकथ जो आनन्द लह्यो,
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्र के नाहीं कह्यो॥

जो पुरुष अपने भीतर यह निश्चयन करते हैं कि मेरा स्वरूप तो दर्शन, ज्ञान, सुख और बल-वीर्यमय है, अन्य कोई भी पर भाव मेरा स्वरूप नहीं है, इस प्रकार की भावना के साथ अपनी आत्मा में स्थिर हो जाते हैं, उन्हें जो अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है, वह इन्द्र, अहमिन्द्र, नरेन्द्र और धरणेन्द्र को भी प्राप्त नहीं है।

बन्धुओ, जो महापुरुष ऐसे आत्मस्वरूप में स्थिर हो जाते हैं, वे बाहिरी वस्तुओं के संयोग और वियोग की कोई चिन्ता नहीं करते हैं। वे सदा आनन्द के साथ अपने गन्तव्य मार्ग पर चलते रहते हैं और मार्ग में आने वाली किसी भी बड़ी से बड़ी विघ्न-बाधा से विचलित नहीं होते हैं। आप लोगों को बड़े सौभाग्य से यह स्वाधीन मोक्ष का मार्ग मिला है, इसलिए अपने भीतर आत्म चेतना की जागृति कीजिए। उसे कहीं से लेने को जाना नहीं है। वह अपने भीतर ही है। उनके ऊपर विकारों का जो आवरण आ गया है, उसे दूर कीजिए और फिर देखिए कि हमारे भीतर कितनी अमूल्य प्रकाशमान निधि विद्यमान है। जिसके सामने त्रैलोक्य की सारी सम्पदा भी नगण्य है।

चतुर्दशी का संदेश

भाइयो, आज कार्त्तिक सुदी चतुर्दशी है। यह हमें याद दिलाती है पाप के जो चौदह स्थान हैं, उनका त्याग करना चाहिए। वे हैं—

सचित दव्व विगह, पन्नी तंबोलवत्थ कुसुमेसु।
वाहण सयण विलेवण, बंभ दिसिनाहण भत्तेसु।

इन चौदह वस्तुओं की मर्यादा करो। भगवान ने कहा है कि मर्यादा करने से सुमेरु के समान बड़े-बड़े पाप रुक जाते हैं। केवल सरसों के समान छोटे पाप रह जाते हैं। यदि अन्तरग मे ममता रुक गई तो सब पाप रुक गये। यदि ममता नहीं रुकी और बाहिरी द्रव्य कम भी कर दिया तो भी कोई लाभ नहीं। जैसे आपने आज औरों को देखा देखी या मेरे कहने से उपवास कर लिया। पीछे घर जाने पर कहते हैं—चक्कर आ रहे हैं, भूख प्यास लग

रही है, व्यर्थ ही महाराज के कहने से या लोगो की देखा-देखी यह उपवास ले लिया, इत्यादि विकल्प उठते हैं, तो स्वयं सोचो कि उससे तुम्हे कितना लाभ हुआ ? एक मोहर के स्थान पर एक पैसे का लाभ मिला । इसलिए आचार्यो ने आज्ञा दी है कि—

समीक्ष्य व्रतमादेयमात्तं पाल्यं प्रयत्नतः ।
छिन्नं दर्पात् प्रमादाद्वा प्रत्यवस्थाप्यमञ्जसा ।।

पहिले खूब सोच विचार करके व्रत ग्रहण करना चाहिए । फिर जिस व्रत को ग्रहण कर लिया, उसे प्रयत्न पूर्वक पालन करना चाहिए । यदि फिर भी दर्प से या प्रमाद से व्रत भंग हो जाय, तो तुरन्त उसे पुनः प्रायश्चित्त लेकर धारण कर लेना चाहिए ।

अतएव आप लोगों को आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लिए और अपने भीतर के कुसंस्कारो को दूर करने के लिए अपनी शक्ति के अनुसार सावद्य कार्यो का परित्याग कर आत्मस्वरूप को जागृत करने में लगना चाहिए । आप भले ही साधुमार्गी हों, या तेरहपंथी हों, आश्रम-पंथी हों, गुमानपंथी या तारणपथी हो, दिगम्बर हों या श्वेताम्बर हों ? किसी भी सम्प्रदाय के हों, सबका लक्ष्य आत्मस्वरूप की प्राप्ति करना है । जैसे किसी भी वस्तु का कोई भी व्यापारी क्यों न हो, सभी का लक्ष्य एक मात्र धनोपार्जन का रहता है, इसी प्रकार किसी भी पंथ का अनुयायी कोई क्यों न हो सबको अपने ध्येय प्राप्ति का लक्ष्य रहना चाहिए । भाई, जो समदृष्टि होते है, उनका एक ही मत होता है और जो विषमदृष्टि होते हैं उनके सौ मत होते हैं । लोकोक्ति भी है कि **'सौ सुजान एक मत'** । समझदारो का एक ही मत होता है । आत्म-कल्याणियो का भी एक लक्ष्य होता है कि किस प्रकार से हम अपना अभीष्ट लक्ष्य प्राप्त करें । सौ मतवालो की दुर्गति होती है किन्तु एक मतवाले सदा सुगति को प्राप्त करते है । यहा एक मत से अभिप्राय है एक सन्मार्ग पर चलने वालो से । जो सन्मार्ग पर चलेगा, वह कभी दु.ख नही पायगा ।

धर्म पर बलिदान हो जाओ !

भाइयो, समय के प्रवाह और परिस्थितियो से प्रेरित होकर आपके पूर्वज अनेक सम्प्रदायो मे विभक्त अवश्य हुए । परन्तु जब कभी विधर्मियो के आक्रमण का अवसर आता था, तो सब एक जैनशासन के झण्डे के नीचे एकत्रित हो जाते थे और विधर्मियों का मुकाबिला करते थे । यह उनकी खूबी थी । परन्तु आज ऊपर से संगठन की बात की जाती है, लम्बे चौड़े लेख लिखे जाते हैं और लच्छेदार मीठे और जोशीले भाषण दिये जाते है । किन्तु अवसर

आते ही ऐसे खिसकते हैं कि हटने पर भी पता नहीं चलता और लौटकर मुख भी नहीं दिखाते हैं। इससे यही ज्ञान होता है कि समाज का गौरव, यश और महत्त्व कायम रख सकने वाले बड़े लोग ढीले पड़ गये और उनके ढीले पड़ने से जो काम करने की भावना और स्फूर्ति पैदा होनी चाहिए थी, वह पैदा नहीं होती, प्रत्युत भीतर ही भीतर अनेक उलझनें पैदा हो जाती हैं। आज हम तो दो ही बातें सीखे हैं—कि हर एक की आलोचना करना और निन्दा करना। आप लोग ही बतायें कि फिर समाज आगे कैसे बढ़ सकता है? भाई, मुक्ति का मार्ग तो अभी बहुत दूर है, हम तो अभी मानव कहलाने के योग्य मुक्ति के मार्ग पर भी नहीं चल रहे हैं। दो भाइयों की दुकानें पास-पास हैं, तो एक दूसरे के ग्राहकों को बुलाता है और एक दूसरे को चोर बतलाता है। बताओ-फिर दोनों साहूकार कहां रहे? हमारा अधःपतन इतना हो गया कि जिसकी कोई सीमा नहीं। भाईचारा तो भूले ही, मानवता तक को भूल गये। कल एक भाई ने कहा था कि जब तक ये पगडीवाले हैं, तब तक दुनिया के लोग दुश्मन ही रहेंगे। मैं पूछता हूं कि यहां पर पगडीवाले अधिक हैं, या उघाड़े माथे वाले? पगडी बांधने वाले तो थोड़े ही हैं। उनके तो लोग दुश्मन बनते हैं, आप नंगे सिर वालों के तो नहीं बनते? यदि आप लोग आगे बढ़कर काम कर लेंगे तो पगडीवाले आपका ही यश गावेंगे और आपके नाम की माला फेरेंगे। परन्तु आप लोगों ने तो दुश्मनी के भय से अपने वेष को ही छोड़ दिया। दुश्मनों की निन्दा के भय से आपलोग किस किस बात को छोड़ते हुए चले जावेंगे? जरा शान्त चित्त हो करके सोचो, विचारो और आगे आकर के समाज में संगठन का बिगुल बजाओ, तभी कुछ काम होगा। केवल दूसरों की टीका-टिप्पणी करने या आलोचना-निन्दा करने से न आप लोगों का उत्थान होगा और न समाज का ही। आज एक होने का सुवर्ण अवसर प्राप्त हुआ है। इसे हाथ से मत जाने दो और कुछ करके दिखाओ, तभी आप लोगों का गौरव है। आलमगीर औरंगजेब—बादशाह ने वीर राठौर दुर्गादास को सन्धि के लिए दिल्ली बुलाया और वे दिल्ली पहुंचे तब बादशाह के पास अपने आने की सूचना भेजी। बादशाह ने सन्तरी से कहा—भीतर लिवा लाओ, परन्तु उनके हथियार वहीं पहरे पर रखवा आना। जैसे ही सन्तरी ने हथियार रखकर भीतर किले में चलने को कहा, वैसे ही दुर्गादास बादशाह से बिना मिले ही वापिस चले आये।

तभी तो उनके विषय में यह प्रसिद्ध है—

दुर्गो आसकर्ण को, नित उठवागो जाय।
अमल औरंग रो उतरे, दिल्ली धरका खाय॥

भाईयो, दुर्गादास एक ही बहादुर व्यक्ति था, जिसने हाथ से गई हुई मारवाड़ की भूमि को वापिस ले लिया। यदि—

'दुर्गा जो जगत में नहीं होता, तो सुन्नत सबकी हो जाती।

उसके विषय में यह कहावत आज तक प्रचलित है कि यदि मारवाड में दुर्गादास नहीं होता तो सब तलवार के बल पर मुसलमान बना लिये जाते। भाई, एक ही माई के लाल ने सारे देश की रक्षा करली। राणाप्रताप, शिवाजीराव और दुर्गादास की यह ख्याति उनके उस शूरवीरता के साथ किये गये कामों से ही है। इन तीनों में से दो के पास तो राज्य था। परन्तु दुर्गादास के पास क्या था? फिर भी वह शान्ति के साथ लडा और देश की आन रखी। उसे पराधीन नहीं होने दिया। जब बादशाह ने कहा—दुर्गादास, मैं तुमको मारवाड़ का राज्य देता हूँ और राज-तिलक करता हूं तो उन्होंने कहा—मुझे इसकी आवश्यकता नही। आप राजतिलक जो राजगद्दी के अधिकारी हैं, उन्हें ही कीजिए। इस प्रकार दुर्गादास ने अपना सारा जीवन देश के लिए समर्पण कर दिया, मां-बाप और बेटे सबसे हाथ धोया, फिर भी उन्होंने राज्य के किसी भी पद को लेना स्वीकार नहीं किया। किसी बात पर मन-मुटाव हो जाने पर वे मारवाड़ छोड़कर चले गये, परन्तु राजाओं का सामना नही किया और सच्ची स्वामिभक्ति का परिचय दिया।

भाइयो, जिनके हृदय में देश के लिए, जाति के लिए और धर्म के लिए लगन होती है, वे तन, मन और धन सर्वस्व न्योछावर करके उसकी रक्षा करते हैं। इसी प्रकार जिनके हृदय में आत्मा की लगन होती है, वे भी उसके लिए सर्वस्व न्योछावर करके आत्म-हित में लगे रहते हैं, इसी का नाम आत्मजागृति है और इसे ही आध्यात्मिक चेतना कहते हैं।

बन्धुओं, कल चौमासे का अन्तिम दिन है। जैसे मन्दिर बन जाने पर उसकी शिखर पर कलश चढाया जाता है, इसी प्रकार कल चौमासे के कलशारोहण का दिन है और धर्म के पुनरुद्धारक लोंकाशाह का जयन्ती-दिवस भी है। तथा कल साढ़े तीन करोड़ मुनिराजों के मोक्ष जाने का दिन भी है। अतः कल का दिन हमे बड़े उत्साह के साथ मनाना चाहिए। कल चतुर्मास के लेखा-जोखा का दिन है। हमें देखना है कि हम कितने आगे बढ़े हैं और संघ कैसे आगे दिन-प्रतिदिन उन्नति करता रहे, इसका भी निर्णय करना है। हम तो यही चाहते हैं कि संघ और धर्म की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहे और संगठन का बिगुल बजता रहे।

वि० स० २०२७ कार्तिक शुक्ला १४

जोधपुर

●

३० | धर्मवीर लोंकाशाह

पूर्णिमा का पवित्र दिन

बुद्धिमान् सद्गृहस्थो, आज परम पुनीत क्रान्तिधर. धर्मपरायण श्री लोंकाशाह-जयन्ती का महान् पर्व दिन है। आज कार्तिकशुक्ला पूर्णिमा है। पूर्णमासी का कितना बड़ा भारी महत्व है, कितने जीवों को इससे लाभ पहुंचा है, और आज कितने नये-नये काम हुये हैं, यह सारा इतिहास रखूं, तो न मुझे सुनाने का समय है. और न आप लोगों को ही सुनने का समय है। अत: संक्षेप मे ही कहा जा सकता है कि आज की पूर्णिमा का दिन एक क्रांतिकारी धर्म पर बलिदान होने की कथा से परिपूर्ण दिन है, अतः इसे एक पवित्र दिन भी कह सकते हैं। आज लोंकाशाह की जयन्ती है और गुरु नानक की जयन्ती है। सिक्ख लोगों मे और हिन्दू जाति में नया जोश पैदा करने का, हंस-हंसकर बलिदान होने का और गर्म तवे पर चीलड़े के समान तपने का काम नानक ने किया है। ऐसे-ऐसे समाज के लिए बलिदान होने वाले अनेक महापुरुषों की जयन्ती का आज शुभ दिन है। आज के ही दिन साढ़े तीन करोड़ मुनिराजों ने संसार के बन्धनों को तोड़कर और कर्मों को दूर कर परमधाम मोक्ष को प्राप्त किया है। अतः परम पवित्र निर्वाण कल्याण का भी आज शुभ अवसर है।

अतीत की झांकी

भाइयो, मारवाड़ के सिरोही राज्य के ईशानकोण में स्थित अटवाड़ा

गाँव में ओसवाल-कुलावतंस राज्य से सम्मानित श्री हेमाशाह दफ्तरी नामक महापुरुष रहते थे। उनकी पत्नी का नाम श्री गंगादेवी था। वि० सं० १४७२ में आज कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के दिन एक होनहार पुत्र का आपके यहां जन्म हुआ। गर्भ में आने के पूर्व ही माता गंगादेवी ने शुभ स्वप्न देखे थे। शुभ मुहूर्त में पुत्र का नाम लोकचन्द्र रखा गया, जो आगे चलकर सचमुच में ही लोगों का चन्द्रमा के समान आनन्द-कारण और लोक में उद्योत-कारक सिद्ध हुआ।

इतिहास को लिखने का दावा करनेवाले अनेक 'इतिहासज्ञ, विद्वान् कहते हैं कि सिरोही राज्य में अटवाड़ा नामक कोई गांव ही नहीं था। परन्तु मैं उन्हें बता देना चाहता हूं कि यह गांव सिरोही से तीन कोस की दूरी पर आज भी अवस्थित है। जिस समय मैं इतिहास की खोज में लग रहा था, उस समय अजमेर में साधु-सम्मेलन होने वाला था। हम लोग गुजराती सन्तों को लेने के लिए गुजरात की ओर गये थे। उस समय हमने इस गांव को स्वयं देखा वहां पर १५० घर हैं। इसी समाज के अग्रगण्य केई श्रावक हमारे साथ थे। आश्चर्य इस बात का है कि इतिहास लिखनेवाले बिना कोई छान-बीन किये लिखते हैं कि इस नाम का कोई गांव ही नहीं है। जिन्हें आंखों से दिखता नहीं, ऐसे जीव यदि कह दें कि सूर्य ही नहीं है, तो क्या यह मान लिया जायगा? कभी नहीं।

जो पुण्यशाली और आदर्श महापुरुष होते हैं, उनका जन्म, रहन-सहन और आवागमन सारा मंगलमय हुआ करता है और उनकी पुण्यवानी से नयी-नयी बातें पैदा होती हैं। लोंकाशाह के पिता जवाहिरात का धन्धा करते थे। एक बार बालक लोकचन्द्र किसी काम से सिरोही पधारे और उद्धवशाह जी की दुकान पर गये। उनके भी जवाहिरात का व्यापार था। कुछ व्यापारी उस समय दुकान पर आये हुए थे। उद्धवशाह जी ने मोती-जवाहिरात का डिब्बा निकाला और व्यापारी लोग मोतियों को देखने लगे। उन लोगों की दृष्टि नहीं जमी तो मोल-भाव नहीं पट रहा था। लोकचन्द्र समीप में ही बैठे हुये थे, उन्होंने एक दाना उठाकर कहा—इस जाति के मोती के एक दाने का मूल्य इतना होता है। यह सुनकर व्यापारी लोग उनकी ओर देखने लगे और पूछा—कुंवर साहब, आपने इतना मूल्य कैसे आंका? उन्होने कहा—इसका पानी ही बतला रहा है और यह भविष्य में और भी उत्तम पानीदार निकलेगा। व्यापारियों को बात जंच गई और वे सौदा

लेकर चले गये। उनके जाने पर उद्धवशाह ने पूछा - तुम कहा रहते हो और किसके पुत्र हो ? लोकचन्द्र ने अपना परिचय दिया। परिचय पाकर वे बहुत प्रसन्न हुये।

उद्धवशाह जी के प्रसन्न होने का कारण यह था कि उनकी एक कन्या विवाह योग्य हो गई थी और वे योग्य पात्र की तलाश मे थे। वे स्वय अच्छे जौहरी थे और इस बालक मे जवाहिरात की परीक्षा का विशेष गुण देखा तो वे उस पर मुग्ध हो गये। और इनके ही साथ अपनी सुपुत्री का सम्बन्ध करने का निश्चय किया।

दूसरे ही दिन उद्धवशाह जी अटवाडा गये और हेमाशाह के घर आये। प्रारम्भिक शिष्टाचार के पश्चात् हेमाशाह ने पूछा—शाह जी, कैसे पधारना हुआ ? उद्धवशाह ने कहा—आपके जो कु वर लोकचन्द्र है उनके लिए नारियल देने को आया हू। हेमाशाह ने कहा आप पधारे तो ठीक है। यद्यपि मेरा आपका पूर्व परिचय नही है और मैंने आपका घर-द्वार भी नही देखा है तो भी जब आप जैसे बडे आदमी आये हैं, तब मैं आपका प्रस्ताव अस्वीकार भी नही कर सकता हू।

भाइयो, यदि आप जैसे सरदारो के सामने ऐसा प्रस्ताव आता है, तब आप तुरन्त पूछते—क्या कितना दोगे ? फिर कहते—हम पहिले घर आकर के लडकी देखेंगे, पीछे बाबू भी लडकी देखने जायगा और साथ मे उसकी माँ-बहिन भी होगी। सब बातें तय होने पर ही यह सम्बन्ध हो सकेगा ? और ऐसा कहकर सामने वाले को तुरन्त पीछा ही लौटा देते। भाई, पहिले के लोग जाति का गौरव और समाज का बडप्पन रखते थे और यह सवाल ही नही उठता था कि बाबू देखेगा। आपके पूर्वज जाति और समाज का गौरव दखते थे, वे कागज या चाँदी के टुकडो पर अपनी नीयत नही डुलाते थे।

हा, तो बिना कोई सौदा किये हेमाशाह ने नारियल झेल लिया और शुभ लग्न में सानन्द विवाह सम्पन्न हो गया। और लोकचन्द्र अपने कारोबार को संभालने लगे। कुछ समय के बाद एक दिन रात्रि मे सोते समय भगवान् पार्श्वनाथ की अधिष्ठात्री पद्मावती देवी ने स्वप्न म कहा—'लोकचन्द्र ! कैसे सोता है ? क्रान्ति मचा और सोते हुए समाज को जगा'। इसके पश्चात् तीसरे दिन पुन स्वप्न मे पद्मावती देवी ने दर्शन दिये। लोकचन्द्र न पूछा—आप कौन हैं और क्या प्रेरणा दे रही हैं ? समाज तो भारी लम्बा चौडा है इसको जगाऊँ और क्रान्ति मचा दूँ, यह कैसे सभव है। देवी ने

अपना परिचय देते हुए कहा—तू चिन्ता मत कर और आगे आकर काम कर। मैं तेरी सहायता करूँगी।

कुछ समय के पश्चात् एक दिन हेमाशाह ने लोकचन्द्र से कहा—अपने यहां धान्य बहुत एकत्रित हो गया है और घास भी। इन्हें बेच देना चाहिए। लोकचन्द्र ने कहा—पिताजी, अपने को दोनों ही नहीं बेचना हैं। आगे के पांच वर्ष देश के लिए बहुत भयंकर आनेवाले हैं, उस समय ये ही अभाव की पूर्ति करेंगे और इनसे ही मनुष्य व पशुओं की पालना होगी। हेमाशाह ने पूछा— तुझे ऐसा कैसे ज्ञात हुआ ? तब उन्होंने कहा—मुझे स्वप्न में ही ऐसी सूचना मिली है।

कुछ समय के पश्चात् चन्द्रावती नगरी—जो कि आबू पर्वत पर करोड़ों रुपये लगाकर मन्दिरों का निर्माण कराने वाले वस्तुपाल-तेजपाल की बसाई हुई थी, उसके राजा के साथ सिरोही के राजा की कुछ अनबन हो जाने से लड़ाई चेत गई। दुर्भाग्य से उसी समय दुष्काल पड़ गया। लगातार पांच वर्ष तक समय पर वर्षा नहीं होने से लोग अन्न के एक-एक दाने के लिए तरसने लगे और घास के बिना पशुओं का जीवित रहना दूभर हो गया। सारे देश में हाहाकर मच गया। पहिले आजकल के समान ऐसे साधन नहीं थे कि तत्काल बाहिर कहीं से सहायता पहुंच सके। ऐसे विकट समय को देखकर लोकचन्द्र ने सारे देश में समाचार भिजवाया कि कोई भी मनुष्य अन्न के बिना और कोई भी पशु घास के बिना भूखा न मरे। जिसको जितना धान्य और घास चाहिए हो, वह मेरे यहां से ले जावे। भगवती पद्मावती माता की ऐसी कृपा हुई कि प्रति दिन सैंकड़ों लोगों के धान्य और घास के ले जाने पर भी उनके भंडार में कोई कमी नहीं आई और लगातार पांचवर्ष तक पूरे देश की पूर्त्ति उनके भंडार से होती रही। इस प्रकार जनता का यह भयंकर संकटकाल शांति से बीत गया। तब सारे देशवासियों ने एक स्वर से कहा—यह लोकचन्द्र केवल लोक का चन्द्रमा ही नहीं हैं किन्तु लोक का शाह भी है और तभी से लोग उन्हें लोकशाह के नाम से पुकारने लगे।

इसके कुछ दिन पश्चात् एक दिन लोकाशाह के माता पिता ने पूछा—तुझे तो भविष्य की बहुत दूर की सूझती है। बता, मेरा आयुष्य कितना शेष है ? लोकाशाह कुछ समय तक मौन रहे, फिर गंभीर होकर बोले - पिताजी, आप का तथा माताजी का आयुष्य केवल सात दिन का शेष है। यह सुनते ही हेमाशाह ने और सेठानी ने तत्काल सारा काम-काज छोड़कर और त्याग-

प्रत्याग्यान करके सथारा ले लिया। सात दिन पीछे उनके माता पिता का स्वर्गवास हो गया।

पाटन के अधिकारी पदपर

माता पिता के स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् भाग्य ने कुछ पलटा खाया और लोकाशाह की आर्थिक स्थिति कमजोर हो गई। तब वे अहमदाबाद चले गये। उस समय अहमदाबाद को बसान वाला अहमदशाह काल कर गया था और मोहम्मदशाह राज्य कर रहा था। उसने एक बार नगर के जौहरियो को बुलाया साथ मे लोकाशाह को भी। लोकाशाह की रत्न-परीक्षा से प्रसन्न होकर मोहम्मदशाह ने इन्हे पाटन का अधिकारी बनाकर वहा भेज दिया। उन्होंने वहा पर बिना किसी भेद-भाव के हिन्दू-मुसलमानो के साथ एक सा व्यवहार रक्खा, जिससे मोहम्मदशाह ने खुश होकर इन्हे अहमदाबाद बुला लिया और यहा का काम-काज दे दिया।

इसी बीच कुछ भीतरी विद्वेप की आग सुलगने लगी। भाई—

'जर, जेवर, जोरू, यह तीनो कजिया के छोरु'।

जर, जेवर और जोरु ये तीनो लडाई के घर माने जाते है। जहा कही भी आप लोग देखेंगे, इन तीनो के पीछे ही लडाई हुआ करती हैं। राज-पाट का भी यही हाल होता है। जो भी अधिकार की कुर्सी पर बैठता है, वह किसी को गिराने, किसी को लूटने और समाप्त करने की सोचा करता है। यह कुर्सी का नशा होता है। मोहम्मदशाह का लडका कुतुबशाह था। उसने देखा कि मेरा बाप बूढा हो गया, इतने वर्ष राज्य करते हुए हो गये। पर यह तो न मरता ही है और न राज्य ही छोडता है, तब उसने अपने बाप को ही मारने का षडयन्त्र रचा और खाने के साथ उसे जहर दिलवा दिया। और आप बादशाह बन गया। जब इस षड्यन्त्र का पता लोकाशाह को चला तो उन्हे राज काज से बडी घृणा हुई। वे सोचने लगे कि देखो—जिस के ऋण से मनुष्य कभी ऊऋण नही हो सकता, उस पिता को ही कृतघ्नी सन्तान मार सकती हैं, तो वह औरो के साथ क्या और कौन सा जुल्म नही करेगा। उन्होने राज-काज छोडने का निश्चय किया और कुतुबशाह के पास जाकर कहा—हुजूर, मुझ रजा दी जाय। बादशाह ने पूछा—क्या बात है? लोकाशाह ने कहा—अब मैं आत्मकल्याण करना चाहता हू। राज-काज करते हुए वह सभव नही है। तब बादशाह ने इनके स्थान पर इनके पुत्र पूनमचन्द को नियुक्त कर इन्हे रजा दे दी।

शास्त्र-स्वाध्याय की लगन

अब लोकाशाह राज-काज से निवृत्त होकर और घर-बार की चिन्ता से विमुक्त होकर नये-नये शास्त्रों का स्वाध्याय करने लगे। उस समय न आजकल के समान ग्रन्थ मिलना सुलभ थे और न शास्त्रों का सर्वत्र संग्रह ही था। जहां कहीं प्राचीन शास्त्र-भंडार थे, तो उसके अधिकारी लोग देने म आनाकानी करते थे। उस समय अहमदाबाद में एक बड़ा उपासरा खरतरगच्छ का था। उसमें अनेक शास्त्र ताड़पत्रों पर लिखे हुए थे। उनमें दीमक लग गई और वे नष्ट होने लगे। अधिकारियों ने उनकी प्रतिलिपि कराने का विचार किया। लोकाशाह के अक्षर बहुत सुन्दर थे और ये स्वाध्याय के लिए ग्रन्थ ले भी जाते थे और उनमें से आवश्यक बातें लिखते भी जाते थे। एक दिन उस भंडार के स्वामी श्री ज्ञानजी यति महाराज लोकाशाह की हवेली पर गोचरी के लिए आये। उनकी दृष्टि इनके लिखे हुए पत्रों पर पड़ी। सुन्दर अक्षर और शुद्ध लेख देखकर उन्होंने सोचा कि यदि ताड़पत्रों वाले शास्त्रों की प्रतिलिपि इन से करा ली जाय, तो शास्त्रों की सुरक्षा हो जायगी। और ज्ञान नष्ट होने से बच जायगा। उन्होंने उपासरे में जाकर पंचों को बुलाया और शास्त्रों को दीमक लगने और उनके नष्ट होने की बात कहकर प्रतिलिपि कराने के लिए कहा। पंचों ने कहा—इन प्राकृत और संस्कृत के गहन ग्रन्थों को पढ़ने, और जानने वाला कोई सुन्दर लेखक मिले तो प्रतिलिपि करा ली जाय। सबकी सलाह से लोकाशाह को बुलाया गया और कहा गया कि शाहजी, भंडार के शास्त्र नष्ट हो रहे हैं। संघ चाहता है कि आपकी देख-रेख में इनकी प्रतिलिपि हो जाय तो शास्त्रों की रक्षा हो जाय। लोकाशाह ने कहा—समाज बड़ा है और जयवन्त है। यदि वह आज्ञा देता है, तो मुझे स्वीकार है। इस प्रकार संघ के आग्रह पर उन्होंने आगम-ग्रन्थों की प्रतिलिपि अपनी देख-रेख में कराना स्वीकार कर लिया।

अब ज्ञान भंडार से शास्त्र उनके पास आने लगे। वे स्वयं भी लिखते और अच्छे लेखकों से भी लिखाने लगे। सर्वप्रथम दशवैकालिक सूत्र की प्रतिलिपि करना उन्होने प्रारम्भ की। उसकी पहिली गाथा है—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति जस्स धम्मे सया मणो॥

अर्थात् धर्म उत्कृष्ट मंगल रूप है, धर्म अहिंसा, संयम और तप रूप है। जो इस उत्कृष्ट धर्म को मन में धारण करता है, त्रियोग से पालन करता है,

देव, दानव और मानव सब उसकी उपासना करते है और उसे नमस्कार करते हैं।

इस गाथा को और उसके उक्त अर्थ को पढकर लोकाशाह को बडा आश्चर्य हुआ कि कहा तो धर्म का यह स्वरूप है और कहा आज उसके धारण करने वाले साधु-सन्तो की चर्या है। दोनो मे तो राई और पहाड या जमीन और आसमान जैसा अन्तर है। उनकी जिज्ञासा उत्तरोत्तर बढने लगी और उसकी पूर्त्ति के लिए उन्होंने शास्त्रो की दो-दो प्रतिलिपियाँ करनी प्रारम्भ कर दी। एक तो अपने निजी भडार के लिए और दूसरी ज्ञान भडार के लिए। इस प्रकार उन्होने सब शास्त्र लिख लिये।

जब सब शास्त्रो की प्रतिलिपिया तैयार हो गई और एक-एक प्रति ज्ञान भडार को सौप दी गई, तब उन्होने अपने भडार के शास्त्रो का एक-एक करके स्वाध्याय करना प्रारम्भ किया। दिन मे जितना स्वाध्याय करते, रात मे उस पर मनन और चिन्तन करते रहते। उस समय स्वार्थी और अज्ञानी साधुओं ने लोगो मे यह प्रसिद्ध कर रखा था कि श्रावक को शास्त्र पढने का अधिकार नही है, केवल सुनने का ही अधिकार है और ऐसी उक्तिया बना रखी थी कि 'जो वाचे सूत्र, उसके मरे पुत्र'। इस प्रकार के वहमो से कोई भी गृहस्थ शास्त्र के हाथ नही लगाता था। फिर पढना तो दूर की बात थी। ऐसी कहावत प्रचलित करने का आशय यही था कि यदि श्रावक लोग शास्त्रो के जानकार हो जावेगे तो फिर हमारी पोल-पट्टी प्रकट हो जायगी और फिर हमे कोई पूछेगा नही। लोगो ने इनसे उक्त कहावत सुना कर कहा—शाहजी, आपका घर हरा-भरा है। जब इन सूत्रो के पढने से पुत्र मर जाने का भय है, तब आप इन्हे मत पढिये। लोकाशाह ने उन लोगो को उत्तर दिया—अश्लील कहानियो और पाप-वर्धक कथाओ के पढने से तो मरते नही और भगवान की वाणी जो प्राणिमात्र की कल्याण कारिणी है—उसके पढने से मर जावेगे? मैं इस वहम मे आनेवाला नहीं हूँ। लोगो के बहकाने पर भी लोकाशाह ने शास्त्रो का पढना नहीं छोडा, बल्कि और अधिक लगन के साथ पढने लगे और अपने सम्पर्क मे आनेवाले लोगो को पढाने और सुनाने लगे। ज्यो-ज्यो वे आगे पढते गये, त्यो त्यो नवीन-नवीन तत्व उनको मिलते गये और उनके पढने-पढाने मे उन्हे भारी आनन्द आने लगा।

धर्मक्रान्ति का बिगुल

भाइयो, इधर तो उनके स्वाध्याय मे वृद्धि हो रही थी और दूसरी ओर लोगो मे उनके प्रति विरोध भी बढ रहा था। आखिर मे अटवाडा, सिरोही,

भीनमाल, और पाटन इन चार स्थानों का संघ अहमदावाद में एकत्रित हुआ। उनमें मोतीजी, दयालजी आदि सैकड़ों व्यक्ति साथ थे। संघ को कहा गया कि लूंका मूथा (लोकाशाह) शास्त्र पढता है। संघ के अनेक प्रमुख लोग उनकी वाचना सुनने के लिए गये तो उन्हें बहुत आनन्द आया। वे लोग प्रति-दिन वाचना सुनने के लिए आने लगे। यात्रा-संघ में शाह लखमशी भी थे। पाटन के कुछ व्यापारियों ने आकर संघवालों से कहा—आप लोग क्या देखते हो? लोकाशाह जी उत्पात मचा रहे हैं, उनको रोको। तब उन लोगों ने कहा—लोकाशाह छोटा बच्चा नही है जो यों ही रोकने से रुक जायगा। मैं मौके से आऊंगा और सब भ्रान्ति मिटा दूंगा। अवसर पाकर लखमशी लोकाशाह से मिलने के लिए उनकी हवेली पर गये। लोकाशाह ने उनका समादर किया। लखमशी ने कहा—शाहजी, पहिले भी कई मत निकल गये है अब आपने यह कौतुक क्या शुरु किया है? उन्होंने उत्तर दिया कि मुझे कोई नया मत नही निकालना है। आप शास्त्रों को सुनिये, तो आपका सब भ्रम मिट जायगा। यह कहकर लोकाशाह ने उन्हें आचारांग सूत्र सुनाया। शाहजी की वाचना सुनते ही वे आनन्द में मग्न हो गये। उन्होंने पूछा—आपने यह अनुपम ज्ञान कहां से पाया? लोकाशाह ने उत्तर दिया—भाई, यह भगवद्-वाणी तो ज्ञान का भंडार है। इन शास्त्रों के स्वाध्याय से ही मैंने यह कुछ थोड़ा सा-ज्ञान प्राप्त किया है। आप इनका स्वयं स्वाध्याय कीजिए तो आपकी आंखे खुल जायगी और पता चलेगा कि साधु का मार्ग क्या है और श्रावक का मार्ग क्या है? यह सुनकर लखमशी ने कहा—आप इस साधुमार्ग का और सत्यधर्म का उद्धार कीजिए। आप हमारे अग्रगामी वनिये, मैं भी आपके साथ हूँ। लखमशी के आग्रह पर लोकाशाह संघ के साथ हो लिये और चारों संघ के लोग उनके अनुयायी बने। संघ तीर्थयात्रा के लिए आगे चला। जब संघ मार्ग में एक स्थान पर पहुँचा और वर्षा काल आगया तो वहां कुछ दिन ठहरना पड़ा।

बन्धुओ, पहिले आवागमन के साधन आजकल के समान नहीं थे। बैल-गाड़ियां लेकर लोग यात्रा के लिए निकलते थे और एक ही तीर्थस्थान की यात्रा में महीनों लग जाते थे, क्योंकि उस समय आजकल के समान सर्वत्र डामर-रोड नहीं थे। कच्चे मार्गों से जाना पड़ता था और जहां कहीं पानी वरस जाता तो कई दिन वहा ठहरना पड़ता था। जब मार्ग में ठहरे हुए कई दिन हो गये तो संघ के लोगों ने कहा—यहां तो काम बिगड़ रहा है। संघपति से कहा जाय कि वे संघ को यहां से रवाना करें। संघपति ने कहा—महाराज,

वर्षा हो जाने से चारो ओर हरियाली हो रही है और केंचुआ गिजाई, आदि अनेक प्रकार के त्रस जीव उत्पन्न हो रहे हैं, ऐसे समय मे सघ को कैसे रवाना किया जावे। जब वर्षा रुक जायगी और मार्ग भी उचित हो जायगा, तब आगे चलेंगे। यह सुनकर सघ के कुछ लोगो ने कहा—शाहजी, आप कोरे बुद्धू हैं। अरे, धर्म के लिए जो हिंसा होती है, वह हिंसा नही है।

यह सुनकर लोकाशाह ने कहा—भाइयो जैनधर्म या वैष्णवधर्म कोई भी ऐसा नही कह सकता कि धर्म के लिए जीवघात करने पर हिंसा नही है। जहर तो हसते हुए खावे तो भी मरेगा और रोते हुए खावे तो भी मरेगा। हिंसा तो हर हालत मे दु खदायी ही है। यह कहकर लोकाशाह सघ से वापिस लौट गये और अहमदाबाद मे जाकर कुछ विचारक पुरुषो को एकत्रित करके गोष्ठी की। उस समय पैतालीस प्रमुख व्यक्तियो ने कहा—धर्म के विषय मे अनेक मूढताएँ और भ्रम-पूर्ण धारणाएँ प्रचलित हो रही हैं, इनका निराकरण किये विना धर्म का उत्थान होना सभव नहीं है। उन लोगो ने लोकाशाह से कहा—शाहजी ! केवल शास्त्र सुनाने से काम नही चलेगा। घर से बाहिर निकलो और लोगो को बतलाओ कि साधुपना इस प्रकार पाला जाता है और साधु की क्रिया और चर्या इस प्रकार की होती है। तभी दुनिया पर असर पडेगा और लोग धर्म का यथार्थ मार्ग जान सकेंगे। आप आगे हो जावे और हम सब आपके पीछे चलते हैं। उनकी बात सुनकर लोकाशाह ने कहा—भाइयो, मैं आप लोगो के प्रस्ताव से सहमत हू, आपके विचार सुन्दर और उत्तम हैं। परन्तु मैं अभी प्रचार करना नही चाहता हू, क्योकि श्रावक-द्वारा प्रचार मे सावद्य और निरवद्य सभी प्रकार के काम सभव हैं। मुनि बने बिना निरवद्य प्रचार नही हो सकता। तब उन लोगो ने पूछा—हम किसके शिष्य बने ? लोकाशाह ने कहा—भाई, भगवान का शासन पचम काल के अन्त तक चलेगा। अभी तो केवल दो हजार वर्ष ही व्यतीत हुए हैं। आप लोग योग्य गुरु की खोज कीजिए।

जिन दिनो ज्ञानजी स्वामी अहमदाबाद मे विचर रहे थे। उस समय वे लोग अहमदाबाद आये और लोकाशाह के सिवाय उन पैतालीस ही लोगो ने वि० स० १५२६ की वैशाख शुक्ला तीज—अक्षय तृतीया के दिन दीक्षा ले ली और दीक्षा लेकर अपने उपकारी का नाम अमर रखने के लिए उन्होने लोकागच्छ की स्थापना की। इसके पश्चात् स० १५३६ मे चैत सुदी सप्तमी के दिन लोकाशाह ने दीक्षा ली। अब यहा दो मत हैं। कितने ही इतिहास-लेखको का मत है कि उन्होने दीक्षा नही ली, वे जीवन भर श्रावक धर्म ही

पालन करते रहे। और कुछ का मत है कि दीक्षा ली। किन्तु मेरे पास इस बात के प्रमाण है कि उन्होने दीक्षा ली और अनेकों को दीक्षा दी। तत्पश्चात् वे दिल्ली गये और वहां चर्चा की और विजय प्राप्त करके पीछे वापिस आये।

दिल्ली से लौटने पर उन्होंने साधु-समाज में फैल रहे भ्रष्टाचार की खुले रूप में खरी समालोचना करना प्रारम्भ कर दिया। इससे उनके अनेक प्रबल विरोधी उत्पन्न हो गये। वि० स० १५४६ मे तेला की पारणा के समय विरोधियों ने उष्ण-जल के साथ अलवर में विष दे दिया। उन्होने सोचा कि नेता के बिना यह नया पथ समाप्त हो जायगा। पर आप लोग देखते हैं कि दयानन्द सरस्वती को जहर देकर मारदिया गया तो क्या आर्य समाज समाप्त हो गया? एक सरस्वती मर गया तो अनेक सरस्वती-पुत्र उत्पन्न हो गये। कोई समझे कि व्यक्ति को मार देने से उसका पंथ ही समाप्त हो जायगा, तो यह नही हो सकता। एक मारा जाता है तो आज करोड़ो की संख्या में उनके अनुयायी सारे संसार मे फैले हुए है। जैसे यूरोप में ईसा मसीह ने अपने धर्म की वेदी पर प्राण दिये हैं। उसी प्रकार भारत मे लोकाशाहने सत्य धर्म के प्रचार करने मे अपने प्राण दिये हैं। उस समय आज कल के समाचार पत्र आदि प्रचार के कोई भी साधन नही थे, किन्तु फिर भी सहस्रो व्यक्ति लोका-गच्छ के अनुयायी बने और आज तो आठ लाख के लगभग उनके मत के अनुयायी हैं।

लोकाशाह का विचार किसी नये मत को निकालने का नहीं था। उनकी तो भावना यही थी कि धर्म के ऊपर जो धूल आकर पड़ गई है, मैं उसे साफ कर दूं। परन्तु उनके अनुयायियों ने उनके नाम से यह नाम चलाया है। यह कोई नया सम्प्रदाय नही है किन्तु आगमानुमोदित जैनधर्म का यथार्थ स्वरूपमात्र है।

लोकाशाह की परम्परा

लोकाशाह के बाद आठ पाट बराबर चले। फिर कुछ कमजोरी आगई तो श्रीमान लवजी, धर्मसिह जी, धर्मदास जी, और जीवराज जी जैसे सन्त पैदा हुए। उन्होने मुनि बनकर धर्म का प्रचार किया। आज सारे भारतवर्ष में इन चारो सन्तो का ही परिवार फैला हुआ है। धर्मसिह जी का दरिया पुरी सम्प्रदाय है। लवजीऋषि का खंभात और ऋषि सम्प्रदाय है। पजाब में अमरसिह जी महाराज का सम्प्रदाय है और कोटा में जीवराज जी के अनु-यायी साधुओं का सम्प्रदाय चला। जिसमे हुक्मीचन्द्र जी महाराज के पूज्य जवाहिरलाल जी, मन्नालाल जी, पूज्य शीतलदास जी, नानकराम जी, और तेजसिंह जी हुए। और जो बाईस सम्प्रदाय कहलाती है वे हैं--धर्मदास जी

की। उनके ६६ शिष्य हुए। उनमे एक तो वे स्वय और इक्कीस अन्य शिष्यो का परिवार आज सब का सब श्रमण सघ मे सम्मिलित है। यद्यपि कितने ही सन्त उदासीन होकर आज अलग हो गये हैं, तथापि उन्हे कल श्रमण सघ मे मिलना पडेगा, क्योकि यह समय की पुकार है और एक होने का युग है। विना एक हुए काम नही चल सकेगा। पूर्वज कह गये है कि 'संघे शक्ति कलौ युगे' अर्थात् इस कलियुग मे कोई एक व्यक्ति महान् काम नही कर सकता। किन्तु अनेक लोगो का सघ महान् काम कर सकेगा। जैसे एक-एक तृण मे शक्ति नगण्य होती है, पर वे ही मिल कर एक मोटी रस्सी के रूप मे परिणत होके मदोन्मत्त हाथियो को भी बाधने मे समर्थ हो जाते हैं। इसलिए वार-वार प्रेरणा करनी पडती है कि सब एक हो जावे। आज ये अलग हुए सन्त भले ही कहे कि हम एक साथ नही बैठेंगे, परन्तु समय सब को एक करके रहेगा। आज से कुछ पहिले रैगर, चमार आदि हरिजनो (भगियो) के साथ बैठना पसन्द नही करते थे। परन्तु आज आप क्या देख रहे हैं ? आज काग्रेस के अध्यक्ष (जगजीवनराम) कौन है ? जो लोग पहिले मन्दिरो की देहली पर भी पैर नही रख सकते थे, वे ही हरिजन मन्दिरो मे प्रवेश कर रहे हैं और सरकारी सरक्षण के साथ जा रहे हैं और अनेक उच्च पदो पर आसीन है और सब पर शासन कर रहे है। इसलिए भाई, जो समय करायगा, वही सबको करना पडेगा। जो उससे पूर्व करेंगे, उनकी वाह-वाही होगी और यदि पीछे करेंगे तो फिर क्या है। आज सबके एक होने की आवश्यकता है, तभी समाज मे शक्ति रह सकेगी। यह श्रमणसघ कोई नया नाम नही है। जो साधु के दश धर्मो का पालन करे, वही श्रमण है। आज सम्प्रदायवादियो की दीवाले फट रही है— और थभे लगाते-लगाते भी गिर रही है। जिस सम्प्रदाय मे कुछ समय पूर्व दो तीन सौ साधु थे, उसमे आज दो-दो, तीन-तीन रह गये है। यद्यपि वे जागरूक हैं और कहते हैं कि हम इस सम्प्रदाय को चलावेंगे। पर मेरा तो सर्व सन्तो से यही निवेदन है कि यदि आप सब लोग मिलकर काम करेंगे तो आपका, श्रमण सघ का और सारे समाज का भला है। मैं तो सबको समान दृष्टि से देखता हू। जो हमारे साथ है, वे भी श्रमण है, जो हम से बाहिर हैं, वे भी श्रमण हैं, और जो हमसे अलग होकर चले गये हे, वे भी श्रमण है। लाडू के सभी सेरे (दाने) मीठे हैं। यह हो सकता है कि किसी दाने पर चाशनी कम चढी हो और किसी पर अधिक। हलवाई ने तो सब पर समान ही चाशनी चढाने का प्रयत्न किया है। अत हम सबको एक होना आवश्यक है और यही समय की पुकार है।

दूसरा काम समाज के लोगों को करना है। समाज में आज अनेक व्यक्ति वेकार हैं, आजीविका के साधनों से विहीन हैं, अनेक वृद्ध और अपंग हैं तथा अनेक विधवा बहिनें ऐसी हैं, जिनके जीवन का कोई भी आधार नहीं हैं और महाजन होने के कारण घर से वाहिर निकल कर काम करने में असमर्थ हैं। इन सबकी रक्षा का और जीविका-निर्वाह के साधन जुटाने का काम आप लोगों को करना है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने समाज के कमजोर वर्ग का संरक्षण करे और उनका स्थिरीकरण करे। इसके लिए भी सबको मिलकर और पर्याप्त पूंजी एकत्रित कर काम करना चाहिए।

अभी अध्यक्ष महोदय ने कहा कि पापड़ की फैक्टरी खोली है। और उन्होंने उसमे काफी मदद दी है, परन्तु एक व्यक्ति से सब कुछ होना संभव नहीं है। यह काम तो सारी समाज के सहयोग से ही हो सकेगा। आपके जोधपुर में माहेश्वरी भाई कम हैं। परन्तु मुझे स्वयं दाऊदयालजी ने कहा कि हम इतना देते हैं, तो सुनकर आश्चर्य हुआ। आप लोग धन-सम्पन्न है और राज-सम्मानित हैं, फिर भी छोटी-छोटी सस्थाओ को आगे नहीं बढ़ाते हैं। यह किसी एक-दो व्यक्ति का काम नहीं है, किन्तु सारी समाज का है। सब भाई हाथ बंटा कर काम करेंगे तो काम के होने में कोई देर नही हो सकती है। आज जो हमारे भाई कमजोर हैं, कल वे अच्छे हो जायेंगे, इसके लिए सबको प्रयत्न करना होगा। परन्तु क्या कहे, आप लोगों के भीतर अभी तक काम करने का तरीका नहीं आया है।

पर्युषण पर्व में मैंने नौ जनों को खड़ा किया था। उन्होंने कहा था कि हम काम करेंगे। इस से ज्ञात होता है कि उनमे काम करने की भावना है। वहां पर दो स्कूल चल रहे है और दोनो के एकीकरण का प्रस्ताव भी पास किया। वे दोनो मिलकर यदि एक हायर सैकेन्डरी स्कूल बन जावे, तो बहुत भारी काम हो सकता है। खर्चे की भी बहुत वचत हो और समाज के वालकों को आगे नैतिकशिक्षा प्राप्त करने का भी सुअवसर प्राप्त हो, जो अलग-अलग रहने में नही हो सकती है। लोग खर्च करने को भी तैयार हैं और मकान देने के लिए भी तैयार है। यदि भूमिका शुद्ध है और मन में काम करने की लगन है, तो सब कुछ हो सकता है। पर इसके लिए सबको मिलकर ही काम करना चाहिए और प्रमुख लोगों को आगे आकर के नेतृत्व करना चाहिए। विना योग्य नेतृत्व के काम सुचारू रूप से सम्पन्न नहीं हुआ करते हैं।

आंखों के आपरेशन के लिए शिविर लगाने का काम प्रारम्भ किया, और लिखा-पढ़ी चल रही हैं। परन्तु जल्दी काम क्यों नहीं होता, क्योंकि लोगों का सहयोग नहीं है। आप लोगों को व्यर्थ की बातें करने के लिए तो समय मिलता है, परन्तु समाज का काम करने के लिए समय नहीं मिलता है, यह आश्चर्य और दुःख की बात है। यही कारण है कि अच्छे काम होने से रह जाते हैं। इसलिए अब आप लोग एक दूसरे की आलोचना करना छोड़े और आगे आवें। यदि आपके बालक और बालिकाएँ धर्म को पहिचानेंगे तो धर्म की उन्नति होगी और आप लोगों का भी नाम रोशन होगा।

उपसंहार

बन्धुओ, आज हमारे चातुर्मास का अन्तिम दिन है। इतने दिनों तक हम लोगों ने प्रातःकाल चौपाई और सूत्र सुनाये और व्याख्यान देकर आप लोगों का कर्तव्य भी बतलाया। बीच-बीच में मैंने अपने हृदय के भाव भी आप लोगों के सामने रखे। कभी कड़वे शब्दों में और कभी मीठे शब्दों में। यद्यपि साधु को मधुर शब्द ही कहना चाहिए। परन्तु कुछ कटु सत्य कहने की जो आदत पड़ गई है, वह अब जा नहीं सकती। पर इन सब मीठे-कड़ुए कहते समय एक ही भावना रही है कि आप लोगों का कुछ न कुछ भला हो। खरा कहने की जो जन्म-जात आदत है, वह जब आज सत्तर-अस्सी वर्ष से ऊपर का होने पर भी नहीं छूटी तो अब कैसे छूट सकती है? कड़ुवी बात कहते हुए मेरे हृदय में आप लोगों के प्रति वैर या द्वेष भाव नहीं रहा है। न मैं किसी को नीचा दिखाना चाहता हूं। मेरी तो सदैव यही भावना रहती है कि प्रत्येक जाति और प्रत्येक व्यक्ति ऊँचा उठे। आप लोग सामने हैं इसलिए आपसे बार-बार आग्रह किया है और प्रेरणा दी है कि आप लोग आगे आवें। जो आज नवयुवक है, वे वैसे ही न रहें, किन्तु आगे बढ़ें। यदि नवयुवकों में नया खून आ जाय, जोश आ जाय और बूढ़ों को होश आ जाय, तो फिर समाज और धर्म की उन्नति होने में देर नहीं लग सकती है। आज लोकाशाह की जयन्ती पर मैंने जो कुछ अपने विचार रखे है, उन पर आप लोग अमल करने का प्रयत्न करें यही मेरा कहना है।

भाइयो, चातुर्मास सानन्द समाप्त हो रहा है, यह हमारे आपके सभी के लिए हर्ष की बात है। कल सुखे-समाधे विहार करने के भाव हैं। मेरा यही बार-बार कहना है कि सब लोग संगठित रूप मे रहें। कोई भाई न्यारा नहीं है। सारे सन्त मोतियों की माला हैं। परन्तु एक शर्त रखो कि महाराज साहब, आप किसी ओर रहे, परन्तु संगठन को बुरा मत कहो। यदि वे श्रमण

संघ में मिलते है तो लाख रुपये की बात है। यदि बाहिर रहकर कार्य करते हैं तो सवा लाख रुपये की बात है और यदि स्वतन्त्र रहकर संगठन का कार्य करते है तो डेढ़ लाख रुपये की बात है। कोई कही भी रहकर और किसी भी संघ में मिलकर काम करे, पर एक ही आवाज सब ओर से ज्ञान, दर्शन और चारित्र की उन्नति के लिए ही आनी चाहिए, मैत्रीभाव लेकर के आवें और सब में मिलकर काम करें, यही भावना भरनी चाहिए।

बन्धुओ, कोई भी साधु किसी गच्छ या सम्प्रदाय का क्यों न हो, सबकी वाणी सुनना चाहिए और सबके पास जाना आना चाहिए। सुनने और जाने-आने में कोई आपत्ति या हानि नही है। किन्तु जो संगठन का विरोध करें और कहे कि हम ही साहूकार हैं और सब चोर है, तो भाई, जो होगा उसे ही सब चोर दिखेंगे और वही सबको चोर कहेगा। और यदि वह साहूकार होगा, तो औरों को भी साहूकार कहेगा और भला बतलायगा। नया और धुला हुआ कपड़ा पहिनते हैं। उसमें यदि कदाचित् कीचड़ के छींटे लग जाते हैं, तो उसे क्या फाड़कर फेंक देते हैं, या धोकर शुद्ध करते है। यदि कही किसी मे कोई कमजोरी दृष्टि गोचर हो तो उसे ठीक कर दो और यदि उचित जंचे तो आगे बढ़ने का प्रोत्साहन दे दो। सबको अपना उद्देश्य भी विशाल बनाना चाहिए और विचार भी उच्च रखना चाहिए।

अन्त में एक आवश्यक बात और कहना चाहता हूं कि यहां पर मनुष्यों की तो हितकारिणी सभा है और श्रावक संघ भी है। परन्तु बहिनों में तो कोई भी सभा आदि नहीं है। मैं चाहता हूं कि यहां पर एक वर्धमान स्थानकवासी महिला-मंडल की स्थापना हो। यहां की अनेक बहिनें अच्छी पढ़ी-लिखी और बी० ए० एम० ए० पास हैं और होशियार है। वे महिला-समाज में जागृति का काम करें, कुरीतियों का निवारण करें और दिन पर दिन बढ़ती हुई इस सत्यानाशी दहेज प्रथा को बन्द करने के लिए आगे आवें। मैं जहां तक जानता हूं, लड़के की मां को पुत्रवधू के घर से भर पूर दहेज पाने की उत्कट अभिलाषा रहती हैं। पर जब स्वयं उनके सिर पर बीतती है, तब क्या सोचती हैं? इसका हमारी बहिनों को विचार होना चाहिए। पढ़ी-लिखी लड़कियों को चाहिए कि दहेज मांगनेवालों को समाज का घातक व राक्षस समझें और ऐसे विवाहों का बहिष्कार कर देवें। यदि यह भावना इनमें आजाय और ये स्त्री समाज-सुधार का बीड़ा हाथ में उठा लें तो आधा काम रह जाय। आप बहिनों में अनेक बहिनें काम करने जैसी है। यदि काम करने की लगन हो तो पच्चीस-

पचास बहिने खडी हो जाये। इससे तुम्हारा विकास होगा। आज उन्नति करने का समय है। अब जार्जेट, और चूदडी पहिनने का जमाना नही है। यह हमने का समय नही, किन्तु रोने का समय है। अब गहनो से और फैशनवाले कपडो मे मोह छोडो। गुण्डे बढ रहे हैं। क्षण भर मे चाकू मारकर सब छीन लेंगे। अभी अखबार मे पढा है कि चार करोडपति मोटर मे बैठकर जाने वाले थे। उनके मोटर मे बैठते ही गुडो ने आकर छुरे भोक दिये और माल-मत्ता लेकर चम्पत हो गये। इसलिए आप लोग सौगध ले लो कि सादगी से रहेंगे और जोश और होश के साथ अपने आप को इस योग्य बनायेंगे कि गुण्डे उनकी ओर देखने का साहस भी नही कर सकेंगे। अतएव आप लोग अब समाज मे काम करने की प्रतिज्ञा करें। जो बहिनें पढी-लिखी और उत्साह-सम्पन्न हैं, उन्हें अपना अगुआ बनाओ और सब उनके साथ हो जाओ। अब यदि आप लोगो की इच्छा कुछ काम करने की हो तो आज का दिन बहुत उत्तम है। अपने मे से एक को मत्री बना लो और फिर एक अध्यक्ष एक उपाध्यक्ष, एक कोषाध्यक्ष और इकतीस सदस्यो को चुन लो और उनके नाम भेज दो। समाज मे काम कैसे किया जाता है, यह बात सघ के मत्री और अध्यक्ष से सीखो।

आज आप लोग पुरानी रूढियो और थोथी लोक-लाज को छोडे। मुझे सुनकर हसी आती है जब कोई बहिन कहती है कि मुझे सातसौ थोकडे याद हैं और मतलब एक का भी नही समझती हैं। ऐसे थोथे थोकडे याद करने मे क्या लाभ है। लाभ तो तब हो—जब कि आप लोग उनका अर्थ समझें और उनके अनुसार कुछ आचरण करें। यदि हमारी बहिनो ने महिला मडल की स्थापना कर कुछ समाज-जागृति और कुरीति निवारण का काम प्रारम्भ किया तो मेरे चार मास तक बोलने का मुझे पुरस्कार मिल जायगा। आप लोग उक्त कार्य के लिए जितनी और जैसी भी मदद चाहेगी, वह सब आप लोगो को पुरुष-समाज की ओर से मिलेगी। वैसे आप लोग स्वय सम्पन्न है और गृहलक्ष्मी है। फिर भी समुचित आर्थिक सहायता श्री सघ से आपको मिलेगी। अब यदि कोई कहे कि हमे तो बाहिर आते और बोलते लाज आती है, तो उनसे मेरा कहना है कि पहिले तो आप लोग चाँदणियो मे आती थी और आज दो-दो हाथ के ओढने ओढकर आती हो, तो क्या इसमे लाज नही आती है? यदि नही, तो फिर काम करने मे लाज आने की क्या बात है? इसलिए अब आप लोग तैयार हो जावें और निर्भीकता और शूरवीरता दिखाकर काम करें। मैंने सबसे कह दिया है। ये सब बैठे हुए लडके लडकिया आपकी ही सन्तान है। यदि आप लोग मिल कर काम करेंगी तो इन सबका भी सहयोग मिलेगा। फिर देखोगी कि सदा आनन्द ही आनन्द है।

कल मादलिया का संघ मेरी आंखों के आपरेशन कराने की विनती करने आया है। उनसे यही कहना है कि यदि डाक्टर कह देगा कि आपरेशन कराना आवश्यक है और मुझे सुख-समाधि रही तो मेरी भावना मादलिये मे कराने की है कल सुखे-समाधे विहार करने का भाव है। प्रातःकाल प्रार्थना करेंगे और साढे आठ बजे विहार का विचार है। यहां चल कर सोजतिया गेट के बाहिर जहां ठीक स्थान मिल जायगा वहां जाने का भाव है। उसके बाद कोठारी हरकचद जी के मकान मे जाने का भाव है। पुनः नवमी रोड पर इन्द्रमल जी के यहां भी जाने का विचार है तथा सूरसागर और महामन्दिर वा विद्यामन्दिर जाने के भी भाव हैं। ऐसा प्रोग्राम है। फिर कल जैसी समाधि रही वैसे वैसे ही जाने का भाव रखता हूं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

वि० सं० २०२७ कार्तिक शुक्ला १५
जोधपुर

श्री मरुधरकेसरी साहित्य-प्रकाशन-समिति का साहित्य

१	श्री मरुधर केसरी अभिनन्दन-ग्रन्थ	मूल्य २५)
२	श्री पाण्डव यशोरसायन (महाभारत पद्य)	१०)
३	श्रीमरुधर केसरी ग्रन्थावली, प्रथमभाग	५) ४० पैसा
४	,, ,, द्वितीय भाग	७)५० पैसा
५	जैनधर्म में तप : स्वरूप और विश्लेषण	१०)
६	जीवन-ज्योति	५)
७	साधना के पथ पर	५)
८	प्रवचन-प्रभा	५)
९	धवल ज्ञान-धारा	५)
१०	संकल्प-विजय	२)
११	सप्त-रत्न	२)
१२	मरुधरा के महान् संत	२)
१३	हिम्मत-विलास	२)
१४	सिंहनाद	१)
१५	बुध-विलास प्रथम भाग	१)
१६	,, द्वितीय भाग	१)
१७	श्रमण सुरतरु चार्ट	५)
१८	मधुर पंचामृत	१)
१९	पतंगसिंह चरित्र	५० पैसा
२०	श्री वसंत माधुमंजूघोषा	५० पैसा
२१	आषाढ़भूति	२५ पैसा
२२	भविष्यदत्त	२५ पैसा
२३	सच्ची माता के सपूत	१)
२४	तत्त्वज्ञान तरंगिणी	१)
२५	लमलोटका लफंदर	२५ पैसा
२६	भायलारो भिड़	२५ पैसा
२७	टणकाड़ रो तीर	२५ पैसा
२८	सच्चा सपूत	२५ पैसा
२९	पद्यमय पट्टावली	१)
३०	जिनागम संगीत	५० पैसा
३१	अद्भुत योगी	१)
३२	क्षमामूर्ति भूधर	१)

–

श्री मरुधरकेसरी साहित्य-प्रकाशन समिति

(प्रवचन प्रकाशन विभाग)

सदस्यों की शुभ नामावली

विशिष्ट-सदस्य

१ श्री घीसुलाल जी मोहनलाल जी सेठिया, मैसूर
२ श्री वच्छराज जी जोधराज जी सुराणा, सेला (सोजत-सिटी)
३ श्री रेखचन्द जी साहब राका, मद्रास (बगडी-नगर)
४ श्री बलवतराज जी खाटेड, मद्रास (बगडी-नगर)
५ श्री नेमीचन्द जी बाँठिया, मद्रास (बगडी-नगर)
६ श्री मिश्रीमल जी लूकड, मद्रास (बगडी-नगर)
७ श्री माणकचन्द जी कात्रेला, मद्रास (बगडी-नगर)
८ श्री रतनलाल जी केवलचन्द जी कोठारी, मद्रास (निम्बोल)
९ श्री अनोपचन्द जी किशनलालजी बोहरा, अटपडा
१० श्री गणेशमल जी खीवसरा, मद्रास (पूजलू)

प्रथम-श्रेणी

१ मैं० बी सी ओसवाल, जवाहर रोड, रत्नागिरी (सिरियारी)
२ शा० इन्दरसिंह जी मुनोत, जालोरी गेट जोधपुर
३ शा० लादूराम जी छाजेड, ब्यावर (राजस्थान)

४ शा० चम्पालाल जी डूंगरवाल, नगरथपेठ, बेंगलोर सिटी (करमावास)
५ शा० कामदार प्रेमराज जी, जुमामस्जिद रोड, बेंगलोर सिटी (चावंड़िया)
६ शा० चांदमल जी मानमल जी पोकरना, पेरम्बूर, मद्रास, ११ (चावंडिया)
७ जे. वस्तीमल जी जैन, जयनगर बेंगलोर ११ (पुजलू)
८ शा० पुखराज जी सीसोदिया, ब्यावर
९ शा० वालचंद जी रूपचन्द जी वाफना,

११८/१२० जवेरीवाजार बम्बई–२ (सादड़ी)
१० शा० वालावगस जी चम्पालाल जी वोहरा, राणीवाल
११ शा० केवलचन्द जी सोहनराज वोहरा, राणीवाल
१२ शा० अमोलकचंदजी धर्मीचन्दजीआच्छा,वड़ीकांचीपुरम्, मद्रास(सोजतरोड)
१३ शा० भूरमल जी मीठालाल जी वाफना, तिरकोयलूर, मद्रास (आगेवा)
१४ शा० पारसमल जी कावेडिया, आरकाट, मद्रास (सादड़ी)
१५ शा० पुखराज जी अनराज जी कटारिया, आरकोनम्, मद्रास (सेवाज)
१६ शा० सिमरतमल जी संखलेचा, मद्रास (वीजाजी का गुड़ा)
१७ शा० प्रेमसुख जी मोतीलाल जी नाहर, मद्रास (कालू)
१८ शा० गूदड़मल जी शांतिलाल जी तलेसरा, एनावरम्, मद्रास
१९ शा० चम्पालाल जी नेमीचन्द, जवलपुर (जैतारण)
२० शा० रतनलाल जी पारसमल जी चतर, ब्यावर
२१ शा० सम्पतराज जी कन्हैयालाल जी सूथा, कूपल (मारवाड़-मादलिया)
२२ शा० हीराचन्द जी लालचन्द जी धोका, नक्सावाजार, मद्रास
२३ शा० नेमीचन्द जी धर्मीचन्द जी आच्छा, चंगलपेट, मद्रास
२४ शा० एच० घीसुलाल जी पोकरना, एन्ड सन्स, आरकाट—N.A.D.T. (वगड़ी-नगर)

२५ शा० गीसुलाल जी पारसमलजी सिंघवीं, चांगलपेट, मद्रास
२६ शा० अमोलकचन्द जी भंवरलाल जी विनायकिया, नक्शावाजार, मद्रास
२७ शा० पी० वीजराज नेमीचन्दजी धारीवाल, तीरुवेलूर
२८ शा० रूपचन्द जी माणकचन्द जी वोरा, वुशी

२९ शा० जेठमल जी राणमल जी सर्राफ, वुशी

३० शा० पारसमल जी सोहनलालजी सुराणा कुंभकोणम्, मद्रास

३१ शा० हस्तीमल जी मुणोत, सिकन्दराबाद (आन्ध्र)

३२ शा० देवराज जी मोहनलाल जी चौधरी, तीरुकोईलूर, मद्रास

३३ शा० वच्छराज जी जोधराज जी सुराणा, सोजतसिटी

३४ शा० गेवरचन्द जी जसराज जी गोलेछा, बैंगलोरसिटी

३५ शा० डी० छगनलाल जी नौरतमल जी वंब, बैंगलोरसिटी

३६ शा० एम० मंगलचन्द जी कटारिया, मद्रास

३७ शा० मंगलचन्द जी दरडा % मदनलालजी मोतीलालजी,
शिवराम पैठ, मैसूर

३८ पी० नेमीचन्द जी धारीवाल, N. क्रास रोड, राबर्टसन पैठ, K.G.F.

३९ शा० चम्पालाल जी प्रकाशचन्द जी छलाणी नं० ५७ नगरथ पैठ, बैंगलूर-२

४० शा० आर. विजयराज जांगड़ा, नं० १ क्रासरोड, राबर्टसन पेठ, K.G.F.

४१ शा० गजराज जी छोगमल जी, रविवार पैठ ११५३, पूना

४२ श्री पुखराज जी किशनलाल जी तातेड, पोट-मार्केट, सिकन्द्राबाद–A.P.

४३ श्री केसरीमल जी मिश्रीमल जी आच्छा, वालाजाबाद-मद्रास

४४ श्री कालूराम जी हस्तीमल जी मूथा, गांधीचौक-रायचूर

४५ श्री वस्तीमल जी सीरेमल जी धुलाजी, पाली

४६ श्री सुकनराज जी भोपालचन्द जी पगारिया, चिकपेट बगलोर–५३

४७ श्री विरदीचन्द जी लालचन्द जी मरलेचा, मद्रास

४८ श्री उदयराज जी केवलचन्द जी वोहरा, मद्रास (वर)

४९ श्री भंवरलाल जी जवरचन्द जी दूगड, कुरडाया

द्वितीय श्रेणी

१ श्री लालचन्दजी श्रीश्रीमाल, ब्यावर

२ श्री सूरजमल जी इन्दरचन्द जी संकलेचा, जोधपुर

३ श्री मुन्नालाल जी प्रकाशचन्द जी नम्बरिया, चौधरी चौक, कटक

४ श्री घेवरचन्द जी रातड़िया, राबर्टसनपैठ

५ श्री वगतावरमल जी अचलचन्द जी खींवसरा ताम्बरम्, मद्रास
६ श्री छोतमल जी सायबचन्द जी खींवसरा, बोपारी
७ श्री गणेशमल जी मदनलाल जी भंडारी, नींमली
८ श्री माणकचन्द जी गुलेछा, ब्यावर
९ श्री पुखराज जी बोहरा, राणीवाल वाला हाल मुकाम-पीपलिया कलां
१० श्री धर्मीचन्द जी बोहरा, जुठावाला हाल मुकाम-पीपलिया कलां
११ श्री नथमल जी मोहनलाल जी लूणिया, चंडावल
१२ श्री पारसमल जी शान्तीलाल जी ललवाणी, बिलाड़ा
१३ श्री जुगराज जी मुणोत मारवाड़ जंक्शन
१४ श्री रतनचन्द जी शान्तीलाल जी मेहता, सादड़ी (मारवाड़)
१५ श्री मोहनलाल जी पारसमल जी भंडारी, बिलाड़ा
१६ श्री चम्पालाल जी नेमीचन्द जी कटारिया, बिलाड़ा
१७ श्री गुलाबचन्द जी गंभीरमल जी मेहता, गोलवड
[तालुका डेंणु—जि० थाणा (महाराष्ट्र)]
१८ श्री भंवरलाल जी गौतमचन्द जी पगारिया, कुशालपुरा
१९ श्री चनणमल जी भीकमचन्द जी रांका, कुशालपुरा
२० श्री मोहनलाल जी भंवरलाल जी बोहरा, कुशालपुरा
२१ श्री संतोकचन्द जी जवरीलाल जी जामड़,
१४६ बाजार रोड, मदरानगतम
२२ श्री कन्हैयालाल जी गादिया, आरकोणम्
२३ श्री धरमीचन्द जी ज्ञानचन्द जी मूथा, बगड़ीनगर
२४ श्री मिश्रीमल जी नगराज जी गोठी, बिलाड़ा
२५ श्री दुलराज जी इन्दरचन्द जी कोठारी
११४, तैयप्पा मुदलीस्ट्रीट, मद्रास-१
२६ श्री गुमानलाल जी मांगीलाल जी चौरड़िया चिन्ताधरी पैंठ मद्रास-१
२७ श्री सायरचन्द जी चौरड़िया, ६० एलीफेन्ट गेट मद्रास-१
२८ श्री जीवराज जी जवरचन्द जी चौरड़िया, मेड़तासिटी

२६ श्री हजारीमल जी निहालचन्द जी गादिया, १६२ कोयम्बूर, मद्रास
३० श्री केसरीमल जी झूमरलाल जी तलेसरा, पाली
३१ श्री धनराज जी हस्तीमल जी सचेती, कावेरीचाक
३२ श्री सोहनराज जी शान्तिप्रकाश जी सचेती, जोधपुर
३३ श्री भवरलाल जी चम्पालाल जी सुराना, वानावना
३४ श्री मागीलाल जी भवरलाल जी भसाली,
७७ लक्ष्मीअमन कोयल स्ट्रीट, पैरम्बूर मद्रास-११
३५ श्री हेमराज जी शान्तिलाल जी सिंघी,
११ बाजाररोड रायपेठ मद्रास-१४
३६ शा० अम्बूलाल जी प्रेमराज जी जैन, गुडियातम
३७ शा० रामसिंह जी चौधरी, ब्यावर
३८ शा० प्रतापमल जी मगराज जी मलकर—केसरीसिंह जी का गुडा
३६ शा० सपतराज जी चौरडिया, मद्रास
४० शा० पारसमल जी कोठारी, मद्रास
४१ शा० भीकमचन्द जी चौरडिया, मद्रास
४२ शा० शान्तिलाल जी कोठारी, उतशेटे
४३ शा० जव्वरचन्द जी गोकलचन्द जी कोठारी, ब्यावर
४४ शा० जवरीलाल जी धरमीचन्द जी गादीया, लाविया
४५ श्री सेंसमल जी धारीवाल, बगडीनगर (राज०)
४६ जे० नौरतमल जी वोहरा, १०१८ के० टी० स्ट्रीट, मैसूर-१
४७ उदयचन्द जी नोरतमल जी मूथा
c/o हजारीमल जी विरधीचन्द जी मूथा, मेवाडी बाजार, ब्यावर
४८ हस्तीमल जी तपस्वीचन्द जी नाहर, पो० कौसाना (जोधपुर)
४६ श्री आर पारसमल जी लुणावत, ४१-बाजार रोड, मद्रास
५० श्री मोहनलाल जी मीठालाल जी, बम्बई-३
५१ श्री पारसमल जी मोहनलाल जी पोरवाल, बैंगलोर
५२ श्री मीठालाल जी ताराचन्द जी छाजेड, मद्रास

५३ श्री अनराज जी शांतिलाल जी विनायकिया, मद्रास-११
५४ श्री चान्दमल जी लालचन्द जी ललवाणी, मद्रास-१४
५५ श्री लालचन्द जी तेजराज जी ललवाणी, त्रिकोयलूर
५६ श्री सुगनराज जी गौतमचन्द जी जैन, तमिलनाडु
५७ श्री के० मांगीलाल जी कोठारी, मद्रास-१६
५८ श्री एस० जवरीलाल जी जैन, मद्रास-५२
५९ श्री केसरीमल जी जुगराज जी सिंघवी, बैंगलूर-१
६० श्री सुखराज जी शान्तिलाल जी सांखला, तीरुवल्लुर
६१ श्री पुकराज जी जुगराज जी कोठारी, मु० पो० चावंडिया
६२ श्री भंवरलाल जी प्रकाशचन्द जी वग्गाणी, मद्रास
६३ श्री रूपचन्द जी बाफणा, चंडावल
६४ श्री पुखराज जी रिखबचन्द जी रांका, मद्रास
६५ श्री मानमल जी प्रकाशचन्द जी चोरडिया, पीचियाक
६६ श्री भीखमचन्द जी शोभागचन्द जी लूणिया, पीचियाक
६७ श्री जैवंतराज जी सुगनचन्द जी बाफणा, बेंगलोर (कुशालपुरा)
६८ श्री घेवरचन्द जी भानीराम जी चाणोदिया, मु० इसाली

तृतीय श्रेणी

१ श्री नेमीचन्द जी कर्णावट, जोधपुर
२ श्री गजराज जी भंडारी, जोधपुर
३ श्री मोतीलाल जी सोहनलाल जी बोहरा, ब्यावर
४ श्री लालचन्द जी मोहनलाल जी कोठारी, गोठन
५ श्री सुमेरमलजी गांधी, सिरियारी
६ श्री जवरचन्द जी बम्ब, सिन्धनूर
७ श्री मोहनलाल जी चतर, ब्यावर
८ श्री जुगराज जी भंवरलाल जी रांका, ब्यावर
९ श्री पारसमल जी जवरीलाल जी धोका, सोजत
१० श्री छगनमल जी बस्तीमल जी बोहरा, ब्यावर

११ श्री चनणमल जी थानचन्द जी खींवसरा, सिरियारी
१२ श्री पन्नालाल जी भंवरलाल जी ललवाणी, बिलाड़ा
१३ श्री अनराज जी लिखमीचन्द जी ललवाणी, आगेवा
१४ श्री अनराज जी पुखराज जी गादिया, आगेवा
१५ श्री पारसमल जी धरमीचन्द जी जांगड़, बिलाड़ा
१६ श्री चम्पालाल जी धरमीचन्द जी खारावाल, कुशालपुरा
१७ श्री जवरचन्द जी शान्तिलाल जी बोहरा, कुशालपुरा
१८ श्री चम्पालाल जी हीराचन्द जी गुन्देचा, सोजतरोड
१९ श्री हिम्मतलाल जी प्रेमचन्द जी साकरिया, सांडेराव
२० श्री पुखराज जी रिखबाजी साकरिया, सांडेराव
२१ श्री बाबूलाल जी दलीचन्द जी बरलोटा, फालना स्टेशन
२२ श्री मांगीलाल जी सोहनराज जी राठोड़, सोजतरोड
२३ श्री मोहनलाल जी गांधी, केसरसिंह जी का गुड़ा
२४ श्री पन्नालाल जी नथमल जी भंसाली, जाजणवास
२५ श्री शिवराज जी लालचन्द जी बोकडिया, पाली
२६ श्री चान्दमल जी हीरालाल जी बोहरा, ब्यावर
२७ श्री जसराज जी मुन्नीलाल जी मूथा, पाली
२८ श्री नेमीचन्द जी भंवरलाल जी डक, सारण
२९ श्री कोटरमल जी दीपाजी, सांडेराव
३० श्री निहालचन्द जी कपूरचन्द जी, सांडेराव
३१ श्री नेमीचन्द जी शान्तिलाल जी सीसोदिया, इन्द्रावड़
३२ श्री विजयराज जी आणंदमल जी सीसोदिया, इन्द्रावड़
३३ श्री लूणकरण जी पुखराज जी लूंकड़, बिग-बाजार, कोयम्बतूर
३४ श्री किस्तूरचन्द जी सुराणा, कालेजरोड कटक (उड़ीसा)
३५ श्री मूलचन्द जी बुधमल जी कोठारी, बाजार स्ट्रीट, मन्डिया
३६ श्री चम्पालाल जी गौतमचन्द जी कोठारी, गोठन स्टेशन
३७ श्री कन्हैयालाल जी गौतमचन्द जी कांकरिया, मद्रास (मेड़तासिटी)

३८ श्री मिश्रीमल जी साहिबचन्द जी गांधी, केसरसिंह जी का गुड़ा
३९ श्री अनराज जी बादलचन्द जी कोठारी, खवासपुरा
४० श्री चम्पालाल जी अमरचन्द जी कोठारी, खवासपुरा
४१ श्री पुखराज जी दीपचन्द जी कोठारी, खवासपुरा
४२ शा० सालमसींग जी डावरिया, गुलाबपुरा
४३ शा० मिट्ठालाल जी कातरेला, बगड़ीनगर
४४ शा० पारसमल जी लक्ष्मीचन्द जी कांठेड, ब्यावर
४५ शा० धनराज जी महावीरचन्द जी खींवसरा, बैंगलोर ३०
४६ शा० पी० एम० चौरड़िया, मद्रास
४७ शा० अमरचन्द जी नेमीचन्द जी पारसमल जी नागौरी, मद्रास
४८ शा० बनेचन्द जी हीराचन्द जी जैन, सोजतरोड, (पाली)
४९ शा० झूमरमल जी मांगीलाल जी गूंदेचा, सोजतरोड (पाली)
५० श्री जयन्तीलाल जी सागरमल जी पुनमिया, सादड़ी
५१ श्री गजराज जी भंडारी एडवोकेट, बाली
५२ श्री मांगीलाल जी रैंड, जोधपुर
५३ श्री ताराचन्द जी बम्ब, ब्यावर
५४ श्री फतेहचन्द जी कावडिया, ब्यावर
५५ श्री गुलाबचन्द जी चोरड़िया, विजयनगर
५६ श्री सिंघराज जी नाहर, ब्यावर
५७ श्री गिरधारीलाल जी कटारिया, सहवाज
५८ श्री मीठालाल जी पवनकंवर जी कटारिया, सहवाज
५९ श्री मदनलाल जी सुरेन्द्रराज जी ललवणी, बीलाड़ा
६० श्री विनोदीलाल जी महावीरचन्द जी मकाणा, ब्यावर
६१ श्री जुगराज जी सम्पतराज जी बोहरा, मद्रास
६२ श्री जीवनमल जी पारसमल जी रेड, तिरुपति (आ० प्रदेश)
६३ श्री बकतावरमल जी दानमल जी पूनमिया, सादड़ी (मारवाड़)
६४ श्री मैं० चन्दनमल पगारिया, औरंगाबाद

६५ श्री जवतराज जी सज्जनराज जी दुगड, कुरडाया

६६ श्री वी० भवरलाल जैन, मद्रास (पाटवा)

६७ श्री पुखराज जी कन्हैयालाल जी मूथा, वेडकला

६८ श्री आर० प्रसन्नचन्द चोरडिया, मद्रास

६९ श्री मिश्रीलाल जी सज्जनलाल जी कटारिया, सिकन्द्राबाद

७० श्री मुकनचन्द जी चादमल जी कटारिया, इलकल

७१ श्री पारसमल जी कातीलाल जी वोरा, इलकल

७२ श्री मोहनलाल जी भवरलाल जी जैन (पाली) बैंगलर

● ●

श्री मरुधरकेसरी जी म० का

प्रवचन-साहित्य

जीवन-ज्योति

प्रवचन माला पुष्प ३

प्रवचन १४

पृष्ठ सख्या : ३२४

प्लास्टिक कवरयुक्त मूल्य : ५) रु०

प्रकाशन वर्ष

वि०स० २०२३

पौष कृष्णा प्रतिपदा

'जीवन ज्योति' सचमुच मे जीवन को ज्योतिर्मय बनानेवाले और आत्म ज्योति को, प्रज्वलित करने वाले महत्वपूर्ण प्रवचनो का सकलन है। इन प्रवचनो मे श्रद्धेय गुरुदेव की वाणी का स्वर—जीवन-स्पर्शी रहा है। जीवन का रहस्य समझाकर मनुष्य को अपना मूल्याकन करने की प्रेरणा दी गई है। असली और नकली आभूषणों का अन्तर बताकर असली आभूषण, सत्य, दया, प्रेम, परोपकार आदि से जीवन को अलकृत करके जन से सज्जन और सज्जन से महाजन बनने का महत्व पूर्ण घोष इन प्रवचनो मे मुखरित हो रहा है।

प्रवचनो की भाषा बडी सरल है, प्रवाह पूर्ण है। विषय सीधा हृदय को छूता है। ये प्रवचन जोधपुर (वि० स० २०२७) के चातुर्मास म श्रावण महीने म दिये गये हैं।

अनेक पत्र पत्रिकाओ व विद्वानो ने और सत-प्रवरो ने पुस्तक की भूरि-भूरि प्रशसा की है और सग्रहणीय बताई है।

साधना के पथ पर

प्रवचन माला, पुष्प : ४

प्रवचन : १७

पृष्ठ संख्या : ३३६

प्लास्टिक कवर युक्त मूल्य : ५) रु०

प्रकाशन वर्ष : वि०सं० २०२६
अक्षय तृतीया

साधना का पथ—कांटों की राह है, तलवार की पैनी धार है—इस पथ पर बढ़ने के लिए प्रथम जीवनज्योति को जागृत करना होगा, फिर 'आत्म विकास का मार्ग' मिलेगा, साधना की पृष्ठ भूमि तैयार करनी होगी, सरलता, ऋजुता के बल पर। आत्मा और शरीर का पृथक्त्व—भेदविज्ञान समझना होगा, भेद विज्ञान से ही ध्यान में स्थिर योग आता है, तभी आत्मदर्शन होगा, आत्मद्रष्टा ही वीतराग बन सकता है, वही स्वयं स्वतंत्र होगा और विश्व को स्वतन्त्रता का सच्चा संदेश सुना सकेगा—साधना पथ के इन विविध अंगो का सुन्दर, सरल और जैन आगमों के रहस्य से भरा विवेचन इन प्रवचनो में प्राप्त होता है।

इन प्रवचनों को पढ़ने से जीवन का लक्ष्य स्थिर हो जाता है, साधना का पथ बहुत ही सरल और स्पष्ट दीखने लगता है। साधना पथ पर बढने के लिए त्याग, वैराग्य संयम और ध्यान-समाधि की ओर गतिशील होने के लिए इस पुस्तक का पठन-पाठन अत्यत उपयोगी है।

श्री मरुधर केसरी जी महाराज साहब के जोधपुर चातुर्मास में प्रदत्त प्रवचनों का यह दूसरा संकलन है। यह पुस्तक सर्वत्र समादरणीय एवं संग्रहणीय हुई है।

प्रवचन माला, पुष्प ५ — तीन खण्डो मे २३ अध्याय
४ महत्व पूर्ण परिशिष्ट — सम्पादक श्रीचन्द सुराना 'सरस'
पृष्ठ संख्या · ६१६ — प्लास्टिक कवर युक्त मूल्य १०) रु०

'तप' जैन धर्म का प्राण है, उसका सर्वांग सुन्दर अतिसूक्ष्म एवं अति गभीर विवेचन जैनधर्म के अनेकानेक ग्रंथो मे किया गया है।

तप सम्बन्धी समस्त जैन साहित्य का सारभूत विवेचन और सरल-सरस भाषा शैली मे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत पुस्तक मे किया गया है। श्री मरुधरकेसरीजी महाराज साहब के संपूर्ण प्रवचन साहित्य का दोहन करके तपसम्बन्धी प्रवचनो को यथाक्रम रखा गया है, और उसके बाह्य-आभ्यन्तर भेदों का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है।

पुस्तक की भूमिका लिखते हुए उपाध्याय श्री अमर मुनि जी ने लिखा है— 'जिज्ञासु साधक को इस एक ही पुस्तक मे वह सब कुछ मिल जाता है, जो वह तप' के सम्बन्ध मे जानना चाहता है।" 'तप' के सम्बन्ध मे यह एक अद्वितीय पुस्तक है।

अनशन आदि बाह्य तप, तथा प्रायश्चित्त, विनय, ध्यान, कायोत्सर्ग आदि आभ्यन्तर तप का विवेचन खूब विस्तार के साथ किया गया है। साथ ही तपोजन्य लब्धियां जैन व जैनेतर ग्रंथो म तप का स्वरूप, सज्ञान तप, सकाम तप आदि विविध विषय पर बडा ही गभीर चिंतन इस पुस्तक मे मिलता है।

विद्वानो, तत्वद्रष्टा मुनिवरो तथा विविध पत्र पत्रिकाओ ने इस पुस्तक की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।' ★

प्रवचन-प्रभा

प्रवचन माला, पुष्प . ६

प्रवचन : १७

पृष्ठ संख्या . ३४८

प्लास्टिक कवर युक्त

मूल्य : ५)रु०

प्रकाशन वर्ष :

वि०सं० २०२६ कार्तिक पूर्णिमा

●

ज्ञान मनुष्य की तीसरी आँख है, इसी प्रथम सूत्र को लेकर प्रवचनो की यह शृंखला चलती है जिसमे ज्ञान के साथ सम्यक्श्रद्धा, श्रद्धा से सुख-दु ख मे समता, मोह को जीतने के उपाय, धर्म का स्वरूप, क्षमापना, सगठन, आत्म-जागृति, साधना के तीन मार्ग आदि विविध विपयो का विशद विवेचन 'प्रवचन प्रभा' में हुआ है।

श्री मरुधर केसरी जी महाराज साहब के प्रवचनो मे स्पष्टता, सजगता और वस्तु को विविध दृष्टातो के साथ प्रतिपादन करने की अद्भुत क्षमता है। जब पढने लगते हैं तो उपन्यास का सा आनन्द आता है। सुनने लगते है तो जैसे शाति के सरोवर मे गोते लगाने लगते हैं।

जोधपुर चातुर्मास के ये प्रवचन सगठन, क्षमापना आदि सामयिक विपयो पर बडे ही नये दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं।

★

धवल ज्ञान-धारा

प्रवचन माला, पुष्प : ७

प्रवचन : २०

पृष्ठ संख्या ३४४

प्लास्टिक कवर युक्त

मूल्य : ५)रु०

प्रकाशन वर्ष :

वि०सं० २०२९

माघ पूर्णिमा
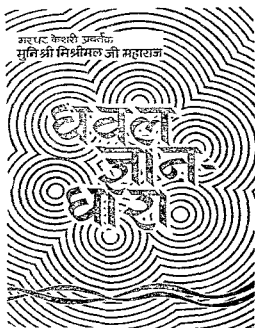
धवल ज्ञान-धारा-नाम से ही यह ध्वनित होता है कि इन प्रवचनों का मुख्य विषय ज्ञान की शुभ्र-निर्मल धारा ही है।

स्वभाव-रमण, आत्म-सिद्धि, समाधि प्राप्त करने का साधन, ऊर्ध्व मुखी चिंतन, आज के बुद्धिवादी, कर्मयोग, समन्वयवाद जैसे ज्ञान-प्रधान विषयों पर गुरुदेव का सूक्ष्म एव तर्क पूर्ण चिंतन इन प्रवचनों में स्पष्ट झलकता है।

ये प्रवचन भी जोधपुर चातुर्मास मे संकलित किये गये हैं। इन प्रवचनों में कहीं-कहीं *ऐतिहासिक दृष्टांत एवं लोककथाएं बड़ी रोचक शैली मे आई हैं।* मनुष्य जीवन मे ज्ञान का महत्व, ज्ञान प्राप्ति के उपाय आदि विषय भी प्रस्तुत पुस्तक मे बहुत सुन्दर ढंग से प्रतिपादित किये गये हैं।

★
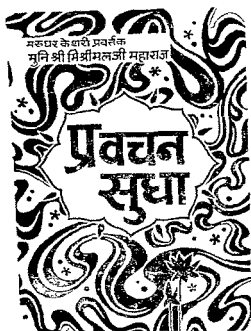
प्रवचन-सुधा

प्रवचन माला, पुष्प : ८

प्रवचन : ३०

पृष्ठ संख्या : ४१२

प्लास्टिक कवर युक्त :

मूल्य : ८)रु०

प्रकाशन वर्ष :

वि०सं० २०३० :

आषाढ़ी पूर्णिमा :

●

पूज्य मरुधरकेसरीजी महाराज साहब के जोधपुर चातुर्मास (वि० सं० २०२७) के प्रवचनों की यह पांचवी पुस्तक है। इसमें ३० प्रवचन संकलित हुए है।

प्रवचनो के विषय की विविधता को देखते हुए कहा जा सकता है कि इसमें इन्द्रधनुषी प्रवचन हैं। आत्मा, परमात्मा, एकता, संगठन विचारों की उदारता, दृढ़ता, समता, सहिष्णुता, मनकी पवित्रता, आस्था, ज्ञान, भक्ति आदि विभिन्न विषयों पर बड़े ही सुन्दर और भावोत्तेजक प्रवचन है।

दीपावली पर उत्तराध्ययन सूत्र का वाचन स्वरुप एक ही प्रवचन में सम्पूर्ण उत्तराध्ययन का संक्षिप्त सार परिचय, रूप चतुर्दशी को स्वरूप दर्शन की भूमिका बनाना और पूर्णिमा के पवित्र दिन की स्मृति में धर्मवीर लोकाशाह की धर्म क्रांति का ऐतिहासिक परिचय यों कुल ३० प्रवचन अनेक दृष्टियो से पठनीय एवं मननीय है।

इन प्रवचनो में श्रद्धेय गुरुदेव का ओजस्वी निर्भीक व्यक्तित्व पद-पद पर झलकता दिखाई देगा। स्पष्ट भाषा मे सत्य को उजागर कर समाज की तन्द्रा तोड़ने वाले श्री मरुधर केसरी जी महाराज साहब के ये प्रवचन मन को तुरन्त प्रभावित कर देते हैं।

★

—— ० ० — ——

आशुकविरत्न, प्रवर्तक

श्री मरुधरकेसरी जी महाराज

का

सम्पूर्ण साहित्य प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें—

१. **श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति**
जैन स्थानक, पीपलिया बाजार, ब्यावर

२. **पूज्य रघुनाथ जैन पुस्तकालय**
द्वारा : तेजराज जी पारसमल जी धोका
पो० सोजतसिटी (राजस्थान)

३. **जैन बुधवीर स्मारक मंडल**
द्वारा . शा० हीराचन्द जी भीकमचन्द जी सकलेचा
सुमेर मार्केट के सामने पो० जोधपुर

—— ० ० ——